श्रीद्वारकेशो जयति

[श्रीद्वा. ग्र. माला का पुष्प १३]

प्राचीन वार्ता-रहस्य

द्वितीय भाग

अष्ट-छाप

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश, (व्रजभाषा) मूल वार्ता एवं प्रासंगिक ऐतिहासिक विवेचन (गुजराती) सहित, सचित्र-

सम्पादक—प्रकाशक

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

श्रीविद्याविभाग—कांकरोली

वि. सं. १९९८ श्रीसूर शरणागति संवत ४३१ श्रीवल्लभाब्द ४६३

गो० श्रीव्रजभूषणात्मज

चि० श्रीगिरिधरगोपाल

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

विषय-सूचिका

गुजराती विभाग-ऐतिहासिक विवरण-

* प्रेस की असावधानी से कृष्णदासजी की 'काव्यसुधा ऊपर एक दृष्टि' और चरित्र-विवरण पत्र ११८-१९ पर दिया जा सका है।

—सम्पादक।

श्रीद्वारकेशो जयति ।

वक्तव्य—

श्रीद्वारकेश प्रभु के अनुग्रह बलसे प्रेरित होकर आज हम फिर 'प्राचीन वार्ता–रहस्य का द्वितीय भाग 'अष्टछाप' के नामसे साहित्य-सेवियों के आगे उपस्थित कर रहे हैं। आज से लगभग १॥ वर्ष पूर्व प्रथम भाग को प्रकाशित कर जिस सत्प्रयत्न में हाथ लगाया गया था, आज वही अपने अग्रिम रूपमें पुष्पित हो रहा है, जिसके लिये हम श्रीप्रभुको आन्तरिक प्रेरणा ही कारणरूप मानते हैं।

प्रथम भाग में चोरासी वार्ताओं की आदि की आठ वार्ताए श्री हरिरायजी के 'भाव–प्रकाश' के साथ प्रकाशित की गई थी, और परिशिष्ट में 'श्रीनाथदेव' कृत संस्कृतवार्ता–मणिमाला (जो अन्यत्र अप्राप्त थी) यथामति संशोधित कर छपाई गई थी। यद्यपि नियमानु-सार उसके आगेकी अन्य वार्ताए प्रकाशित करना उपयुक्त था, पर एसा न करने के लिये दो कारणों से बाध्य होना पडा है—

१ 'आधुनिक पुष्टिमार्गीय भाषा–साहित्य नी शोच्यस्थिति' नामक गुजराती पुस्तक में उपलब्ध वार्ता–संस्करणों के आधार पर उसका आन्तरिक रहस्य और उससे प्राप्त होनेवाली शिक्षा की ओर ध्यान न देकर अष्टसखाओं में से अन्यतम कृष्णदासजी और नन्ददासजी की वार्ता पर आक्षेप किया गया था। जिसका स्पष्टीकरण और समाधान प्राचीन वार्ता की लेखन–शैली तथा उस पर लिखे गये श्रीहरिरायजी के 'भावप्रकाश' से ही होता है। अतः सर्वप्रथम उसका प्रकाशन करना अत्यावश्यक समझा गया।

२ वर्तमान हिन्दी साहित्य–जगतमें आज एक एसा भी स्वयंभू समालोचक समुदाय उत्पन्न हो गया है जो–प्राचीन साहित्य के साथ

जहां आंख मिचौनी खेलता है, वहां उसे बिकृत कर देने में भी अपना परम पुरुषार्थ समझता है। इसी का परिणाम है कि—प्राचीन समय से सुव्यवस्थित अष्टसखाओं के जीवन चरित्र पर भी समालोचना और गवेषणा के नाम पर मनमाना लिखा जा रहा है, जिसका आज नहीं तो कल की भावी सन्तान पर बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना है। इस दूषित मनोवृत्ति एवं अन्वेषण की मिथ्या ख्याति—लोभ ने सत्य पर पड़दा डालने की कुचेष्टा की है। इस वृथा जलताडन से जहां वृथा साहित्यिक श्रम हुआ है, वहां उन महानुभावों के प्रति भी अन्याय हुआ है जो—हमारे साहित्य के उज्वल रत्न थे। क्या इस साहित्यिक पापाचरण से उन लोगों की मुक्ति हो सकती है? जो व्रज—भारती की आत्मा का हनन करते हैं!

संक्षेप में कहाजाय तो हमारी साहित्य के प्रकाशन में अभी वही मनोवृत्ति काम कर रही है जो—एक सोंठ को लेकर पसारी कहलाने वाले की होती है। अनन्त एवं अप्रकाशित साहित्य आज भी अनन्त अज्ञात रहस्य को अपने भीतर छिपाये हुए हैं, इस सत्यकी हठाग्रही व्यक्ति ही उपेक्षा कर सकता है।

वास्तव में ऐतिहासिक वृत्तान्तों के लिये तात्कालीन अथवा निकटवर्ती व्यक्ति का लेख जितना प्रामाणिक ठहर सकता है, उतना वर्तमान कालिक का नहीं. हमें यह कहते हुए आत्मसन्तोष एवं गौरव होता है कि—वार्ता रचना के समसामयिक विद्वान लेखक श्रीहरिरायजीने हमारे उन बहुत से अन्धतम प्रश्नों का दूरीकरण अपने 'भाव—प्रकाश' द्वारा कर दिया है जो—साहित्य—सेवियों के

---

* देखो 'साहित्य—सन्देश' (आगरा) वर्ष १९९७ अंक आषाढ, ११ पृष्ठ ४२५ 'सूरदासजी किसके शिष्य थे' (चुनीलाल शेषका लेख).

आगे चरित्रान्वेषण में विकट पहेली बने हुए हैं, और जिसका प्रस्तुत प्रकाशन किया जा रहा है।

प्रसंगोपात्त वार्ता के रचना–काल के सम्बन्ध में भी हम दो शब्द कहकर बहुत समयसे उलझे हुए इस प्रश्न को सुलझा देना चाहते हैं, जिस पर साहित्यिक महारथियों ने अपने २ तीर तरकसों का अस्थाने प्रयोग किया है।

हिन्दी साहित्य में जब भी गद्यसाहित्यका इतिहास लिखा जाता है, उसके धीरबुद्धि लेखक ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्ता–लेखक के नाम पर श्रीगोकुलनाथजी का नाम लिखा करते हैं, जो श्रीवल्लभाचार्य के पौत्र और श्रीगुसांइंजीके चतुर्थ पुत्र थे इनका समय सं. १६०८ से १६९७ के अंत तक है।

वल्लभाचार्य के चोराशी वैष्णवों के चरित्रात्मक प्रसंग श्रीगोकुलनाथजी के जन्म के पूर्व भी सम्प्रदाय–साहित्य में स्थान पा चुके थे, जिसका सर्वप्रथम दर्शन 'सम्प्रदाय प्रदीप' (रचना काल सं. १६१०) मे संक्षिप्त रूप में होता है। इसके अनन्तर श्रीगोकुलनाथजीने कथा-शैली में उनको प्रसंगात्मक रूप दिया, जिसका उल्लेख उनके अनुज रघुनाथजी के पुत्र देवकीनंदनजी, स्वरचित 'प्रभु–चरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ मे इस प्रकार करते हैं–

'तदपि भगवत्सेवापरैः श्रीगोकुलनाथैः शयनभोग–सेवोत्तरलब्ध-गाथावसरैः, सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथा–कथनानतरं श्रीमदाचार्य –तदात्मज–चरितकथापि नियमेन परिगृहीता वक्तुम् ×

× देखो विद्याविभाग कांकरोली द्वारा शिघ्र प्रकाशित होनेवाला 'श्रीबिट्ठलेश चरितामृत' तथा 'प्रभुचरित्र चिंतामणि' नामक ग्रन्थ।

इस से यह विदित होता है कि—श्रीगोकुलनाथजी कथा प्रवचनों में श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी के, प्रचलित निजवार्ता, बेठक चरित्र, घरुवार्ता और सेवकों से संबंध रखने वाले चरित्र (वार्ता के प्रसंग) वर्णन करते थे। यही समय है, जब वार्ताए कथानकरूप में वैष्णवों के समक्ष उपस्थित हुई। आदर्श तथा शिक्षा के लिये इसी समय से वार्ताए वैष्णव—समाज में व्यापकरूप धारण करतीं गईं। इसके कुछ समय बाद संग्रह की साहजिक मानवीय लिप्सा वृत्तिने उन्हे सुरक्षित रखने की आवश्यकता का अनुभव किया। जिसके कारण वे अव्यवस्थित्त रूप में लिखी जाने लगी।

श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी के यद्यपि चतुर्थ पुत्र थे, पर वे अपने अन्य छै भाइयों की अपेक्षा अधिक समय (सं. १६९७ फाल्गुन कृष्ण ९) तक विद्यमान रहे। इसी कारग वे तत्समय में शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य और नियामक पद पर प्रतिष्ठित रहे। एसी अवस्था में उनके द्वारा प्रवचन रूप में कही जानेवाली वार्ताओं के संरक्षग की आवश्यकता प्रतीत हुई और वे उन्ही की विद्यमानता एवंच उन्ही के तत्वाधान में उन्हीं के शिष्य श्रीहरिरायजी के द्वारा व्यवस्थित रूपमें संग्रहीत की गईं। इस प्रकार वार्ता—साहित्य के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी सिद्ध होते हैं।

यह तो निर्विवाद है कि—उस समय किसी भी ग्रन्थ की लिपि हो जाने पर क्रमशः उसकी प्रतिलिपियों में परिवर्द्धन होना प्रारंभ हो जाता था, जिसका फल आज हमारे सामने यह है कि—मूल रूप में रचनाकाल की वार्ताए उपलब्ध नहीं होती। फिर भी यह तो छाती ठोक कर कहा जा सकता है कि—श्रीगोकुलनाथजी के समय वार्ता का जो रूप था, वह बहुत

थोडे परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ हमे उसकी रचनाकाल के थोडे ही समय के बाद की प्रतिलिपि से मिल जाता है।

इस प्रकार मूल वार्ताओं का मौखिक प्रवचन समय सं. १६४२ से १६४५ तक निर्धारित होता है। जब श्रीगुसांईजी का तिरोधान हो जाता है और श्रीगोकुलनाथजी की उत्कृष्टता का समय आता है।

कांकरोली-विद्याविभाग 'सरस्वती भंडार' में ८४ वैष्णव की वार्ता की एक प्रति मिलती है जिसका लेखनकाल सं. १६९७ चैत्र सुदी ५, स्थान श्रीगोकुल है, और जिसका ब्लॉक हम इस के साथ छाप रहे हैं। इस को हम सम्प्रदाय की सब से प्राचीन वार्ता की पुस्तक तब तक कह सकते हैं जब तक अन्य और कोई प्राचीनतम पुस्तक नहीं मिल जाती। जहां तक ध्यान है इससे प्राचीन और उसी स्थान की लिखित पुस्तक–जहां उन दिनों श्रीगोकुलनाथजी का निवास था–अन्यत्र है भी नहीं। अतएव इस ग्रन्थ को हम पूर्ण प्रामाणिक मानने को विवश है, और यह इसलिये भी कि–श्रीगोकुलनाथजी के तिरोधान के ११ मास पहिले हीं यह लिखी गई है।

यहसंभव नहीं है कि–यह ग्रन्थ श्रीगोकुलनाथजी के दृष्टिपथ में न आया हो। यह पुस्तक श्रीद्वारकाधीश प्रभु के 'सरस्वती–भंडार' के साथ गोकुल से कांकरोली में आई थी।*

अतः यह कहना प्रासंगिक होगा कि–कम से कम सं. १६९७ तक वार्ता की पुस्तकों का लिपिबद्ध संस्करण हो चुका था, और वे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगी थीं। इन वार्ताओं के आन्तरिक रहस्य और तात्कालीन परिज्ञान इतिहास को प्रकाश में लाने का श्रेय श्रीहरिराय महाप्रभु (सं. १६४७ से १७७२) को है। यह

दीर्घजीवी और सम्प्रदाय के अन्यतम ख्यातनामा विद्वान आचार्य थे । उन्होंने वार्ता के ऊपर 'भाव–प्रकाश' नामक टिप्पण किया, जिससे जहां उनके बहुत कुछ संदेहों का निरस हो गया वहां वार्ता का एक स्थितरूप भी निर्धारित हो गया । इसी कारण से उनके बाद वार्ताए प्रायः एक ही रूपमें लिखी मिलती है ।

इन सब कारणों को देख कर हम यह कह सकते है कि वार्ता के कितने लिखित संस्करण हुए—

प्रथम संस्करण—श्रीगोकुलनाथजी के कथा प्रवचन के समय का मूलरूप जो उनके हास्य प्रसंगो के समान वचनामृत रूप में प्राप्त होता है । न तो इस में ८४ और २५२ का वर्गीकरण ही हुआ है और न सभी वैष्णवों की वार्ताए ही इस में लिखी गई है । इसे हम संग्रहात्मक वार्ता साहित्य कह सकते हैं ।

इसकी कई प्रतियां कांकरोली विद्याविभाग में और अन्यत्र भी उपलब्ध होती हैं । इसी का अर्द्ध गुजरातीभाषा मिश्रित व्रजभाषात्मक रूपान्तर भी प्राप्त होता है, जो गुजरात में प्रचलित अथच उसी देश के लेखकों द्वारा लिखी जाने से इस रूप में जहां तहां मिलता है । संभवतः इसी रूपान्तरवाली वार्ता को ग्रन्थ स्व. रामचन्द्रजी शुक्ल को प्राप्त हुआ होगा जिसके कारण वे वार्ताको प्रमाण कोटि में रखने से हिचकिचाते थे । और उसे गुजराती रचयिता की रचना मानकर बिचक गये थे । यद्यपि कई विद्वान लेखक वार्ताओं को प्रमाण मानते हैं और उनके द्वारा बहुत कुछ उलझी हुई चरित्रसम्बन्धिनी समस्याओं का हल निकालते हैं । पर हमारे शुक्लजी इससे कन्नी काटते रहे हैं ।

---

* इस संग्रहालय में १४ वीं शताब्दि तक के लिखित कई ग्रन्थ विद्यमान हैं–एक प्रतिलिपि तो ग्यारहवीं शताब्दी की भी उपलब्ध होती है ।

इसका समय सं. १६४५ से सं. १६९० तक माना जा सकता है।

द्वितीय संस्करण—श्रीगोकुलनाथजी के समय और तत्वावधान में श्रीहरिरायजी के द्वारा हुआ। इस समय वार्ताओंका वर्गीकरण और संकलन करते हुए 'चौरासी' तथा 'दोसौ बावन' वैष्णव संख्या का क्रम रक्खा गया × इस समय की वार्ताओं में प्रसंग आने पर 'श्रीगोकुलनाथजी' के नामका निर्देश होने लगा, जो श्रीहरिरायजीने अपनी ओर से संनिविष्ट किया है। उसी कारण कई इतिहास लेखकों को भ्रम हो गया है कि—"वार्ता में श्रीगोकुलनाथजी कानाम आनेसे-वह उनकी रचित नहीं है। यदि वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी रचित होतीं तो वे अपने नाम के स्थान पर 'अस्मद' शब्द का व्यवहार करते। अस्तु।

इस संस्कारणका समय सं. १६९४ से सं. १७३५ तक माना जा सकता है। इस समय की उल्लिखित एक पुस्तक हमारे यहां. सं. १६९७ की लिखि विद्यमान है। इस द्वितीय संस्करण के समय हरिरायजी की वय लगभग ४३ वर्ष की थी जो उनकी प्रौढता की द्योतक है।

तृतीय संस्करण—श्रीगोकुलनाथजी के अनन्तर और श्रीहरिरायजी के समय इसका संकलन हुआ। इस समय वार्ता में एसे आवश्यक प्रसंग वाक्य भी सम्मलित हो गये, जिनके विना प्रसंग की अपूर्णता विदित होती थी। अथवा जो आवश्यक स्पष्टीकरण के लिये उपयुक्त जचते थे। इसी समय में श्रीहरिरायजीने अपना 'भावप्रकाश'

× सं. कल्पद्रुम पत्र १४७ दोहाः—"भाषा शिक्षापत्र किय, **चौरासी** नृपमान! ७१। संख्या का रहस्य भी श्रीहरिरायजी ने ही अपने भाव प्रकाश में बतलाया है। (दिखो प्राचीनवार्तारहस्य प्रथम भाग पत्र. १५-१६)

नामक टिप्पण लिखा, जो वार्ता के हार्द को विशेषता के साथ समझाने में समर्थ है*

इस संस्करण का समय सं. १७३५ के अनन्तर सं. १७८० तक आता है। इस प्रकार १३५ वर्षों के बीच में लगभग प्रति ४५ वर्ष पर होनेवाले संस्करणवाली विविध वार्ताओं के अध्ययन से स्पष्टतया विदित होता है कि–वार्ताओं में उत्तरोत्तर वाक्य बिन्यास बढता चला गया है, और प्राय: स्पष्टीकरण के साथ उस के कथानक को समझाने की चेष्टाए की गई हैं। एसा होने पर भी उनका मूल अंश जहां का तहां सुरक्षित रक्खा गया है। अतएव उसका वास्तविक रूप विकृत हो गया है, इस प्रकार का आक्षेप करना केवल अज्ञान–विजृंभण है।

इस के प्रमाण में द्वितीय और तृतीय संस्करण के रूपान्तर वाली वार्ता में से नंददासजी के कुछ प्रारंभिक प्रसंग को उट्टंकित कर देना उचित प्रतीत होता है—

१ सं.१६९७ की वार्ता–जिसका चित्र दिया गया है–में लिखा है–

"अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददास सनोढ़िया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हैं, सो वे पूर्व में रहते तिनकी वार्ता। सो वे नंददास और तुलसीदास दोउ भाइ हते। तामें बडे तो तुलसीदास, छोटे नंददास।

* भावप्रकाश की रचना के बाद होने वाली वार्ता की प्रति लिपियों में लेखकों की असावधानीता से भावप्रकाश का बहुत कुछ अंश वार्ता के रूप में सम्मिलित हो कर प्रचलित हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप दोनों का सम्मिश्रण हो गया है। यह विना अध्ययन और परिश्रम के समझा नहीं जा सकता। चलती पंक्ति में विना स्थान छोडे बराबर लिखते जाना भी इसका द्वितीय कारण हो सकता है।

सो वे नंददास पढे बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानंद के सेवक हते"।

२ सं. १७५२ की 'भावप्रकाश' वाली पुस्तक—जिसके आधार पर यह पुस्तक प्रकाशित की गई है—में लिखा है—

"अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददासजी सनाढय ब्राह्मण, रामपुर में रहते, जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं, तिनकी वार्ता। सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बडे भाई और छोटे भाई नंददासजी हे। सो वे नंददासजी पढे बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानंदीन के सेवक हते।"

विद्वान समालोचक देखें कि—दोनो संस्करणों में मूल वार्ता का रूप बिगडा नहीं है, प्रत्युत वह अर्वाचीन पुस्तक में विशेष स्पष्टीकरण के साथ दिया गया है। शब्दों का रूपान्तर जैसे बहुत का बहोत, गई का गयी, और नाम के साथ 'जी' का प्रयोग आदि दोनों संस्कारणों के स्पष्टतः विभाजक हैं। प्रसंगों की संख्या की न्यूनता और वृद्धि भी इसी प्रकार का एक अन्यतम विभाजक है। जिससे प्रथम की अपेक्षा दूसरे संस्करण का रूप विशाल हो गया है।

जैसा कि—प्रथम भाग प्रकाशित किया गया है और ग्रन्थ के नाम स्वरूप से अवगत होता है, वार्ताओं के रहस्य को प्रकाशित कर उस पर आनेवाले आक्षेपों का परिहार करना हमारा उद्देश्य है।

इस प्रकार का सदनुष्ठान श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश से ही संभव है। उन्होंने अनेक यात्राए कर बहुत कुछ उन उन स्थानों में अन्वेषण किया था, जहां चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों का निवास था। उनकी इसी खोज के बल पर आज नहीं तो कल इतिहास प्रेमी उन ऐतिहासिक अंश को सत्य सिद्ध होते देखेंगे जो—साहित्य जगत में आज विवादास्पद हो रहे हैं।

इसी प्रकार एक विवाद का विषय नंददासजी और तुलसी-दासजी का भ्रातृत्वभाव है। उक्त दोनों महानुभाव चाहे चचेरे भाई हों चाहे सोदर, पर थे वे भाई ही; उनके भ्रातृत्व का सर्वथा लोप नहीं किया जा सकता। उनका पारस्परिक भ्रातृत्व–साम्मुख्य ६३ के समान ही है ३६ के समान नहीं। ऐसा ही एक प्रश्न उनके सरयू-पारीण अथवा सनाढय ब्राह्मण होने का है। आज जहां प्रस्तुत संशया-पनोदन के लिये प्राचीन ग्रन्थ और उनके प्रमाण प्रकाशित किये जा रहे हैं, वहां हमारे यहां की सं. १६९७ की वार्ता उसका स्पष्ट निर्देश कर देती है।

तुलसीदासजी का अन्तिम समय सं. १६८० निर्धारित है। इसके १७ वर्ष बाद उक्त वार्ता का लेखनकाल (सं. १६९७) आता है। इस वार्ता के लेखन समय में तुलसीदासजी के समसामयिक इस वार्ता का लेखक चुन्नीलाल ब्राह्मण, श्रीहरिरायजी महानुभाव और शु. सम्प्रदाय के आचार्य श्रीगोकुलनाथजी यह तीन व्यक्ति तो अवश्य ही विद्यमान थे, जिन्हे किसी जाति विशेष से कोई ममत्व न था। इस स्वल्प समय में (१७ वर्ष के भीतर) ही तुलसीदासजी और नन्द-दासजी के भ्रातृत्व और जाति के विषय में अंधाधुन्धी फैल जाना, किंवा उनके सम्बन्ध में इतनी अपरिचितता हो जाना इस बात को हठाग्रही के सिवाय स्थितप्रज्ञ विद्वान तो मानने को तयार नहीं होगा। अस्तु,

इस कथन से हमारा तात्पर्य वार्ता की उस प्रामाणिकता की ओर है जिस पर बिना देखे भाले कलम उठाई जाती है। वार्ता की इस प्रामाणिकता की सिद्धि बाद में लिखे गये श्रीहरिरायजी के भावप्रकाश से और भी होती है।

एसी अवस्था में प्राचीनता अथच लोकप्रियता के नाते सं. १६९७ की पुस्तक के आधार पर प्रस्तुत द्वि. भाग प्रकाशित करना यद्यपि उपयुक्त था परन्तु एसा करने में हमारे सन्मुख कुछ कठिनाइयाँ थी और प्रस्तावित आयोजना में व्यतिक्रम हो जाने की संभावना भी। हां तो सबसे बड़ी कठिन समस्या हमारे उद्दिष्ट आयोजन की पूर्ति में यह है कि–हम उस सं. १६९७ की लिखित प्राचीन वार्ता को यथावत् रूप में इसलिये प्रकाशित नहीं कर सके, क्योंकि इस के ऊपर भावप्रकाश नहीं मिलता है, और जिस सं. १७५२ वाली प्रति पर भावप्रकाश मिलता है, उसके प्रसंग उस प्राचीन प्रति के क्रम से मेल नहीं खाते। इस कारण हमें सं. १७५२ की प्रति को ही प्रकाशित करने में विवश होना पडा है। इससे एक यह बात भी विदित होती है कि भावप्रकाश की रचना सं. १७३५ के आसपास हुई है।*

जैसा कि प्रसिद्ध एवं निश्चित है, वार्ताओं के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी और उसके सम्पादक श्रीहरिरायजी हैं। कहने का तात्पर्य यह कि–वार्ताओं का रचयिता गोस्वामि वंशोद्भव कोइ समर्थ विद्वान् एवं सेवाशृंगार–प्रणाली का अतिशय विज्ञ और सम्प्रदाय का नियामक व्यक्ति ही हो सकता है।

नीचे लिखी बातों पर ध्यान देने से हमारे कथन की सत्यता सिद्ध हो सकती है:—

१ वार्ताओं का अतिशय प्रचार और उनकी मान्यता।

श्रीवल्लभाचार्य के सम्प्रदायानुयायियों के लिये यह प्रसिद्ध है कि–

* संप्रदाय कल्पद्रुम–जिसकी रचना सं. १७२९ में हरिरायजी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्टने की है–में हरिरायजी के रचित ग्रन्थों की सूची में 'भावप्रकाश' का नाम नहीं दिया है।

वे अन्य सब प्रमाणों की अपेक्षा अपने गुरुवाक्य पर अधिक श्रद्धा रखते हैं. वार्ताओं का जितना प्रचलन और मान्यता है उतनी श्रीवल्लभाचार्य रचित षोडश ग्रन्थों के सिवाय अन्य किसी सांप्रदायिक ग्रन्थ को नहीं है। किसी गोस्वामिमहानुभाव के सिवाय अन्य वैष्णव द्वारा रचित ग्रन्थ का इतना प्रचलन सर्वथा असंभव है। आज वार्ताओं को न केवल वैष्णवसमाज ही मानता है अपितु गोस्वामिवंशजभी उसको उतनी ही मान्यता प्रदान करता है, जितना आचार्यवाणी को। किसी वैष्णव की रची हुई वार्ताए सम्प्रदाय में इतनी लोक–प्रिय नहीं हो सकतीं.

२ वार्ताओं में सम्प्रदाय के सिद्धान्त की सूक्ष्म विवेचना और सेवाप्रणाली की आन्तरिक रहस्यमय विचारशैली की विद्यमानता।

वार्ताओं मे जिस सूक्ष्म सेवाप्रणाली और आन्तरिक रहस्यमय सिद्धान्तो का वर्णन है, गोस्वामिवंशज के सिबाय अन्य का उनका परिज्ञान होना सर्वथा असंभव है, कोई साधारण वैष्णव उनका वर्णन नहीं कर सकता। इसी प्रकार समय समय पर गाये जाने वाले कीर्तन जिन्हें अष्टछाप के कवियो ने तत्तत्समय बना कर गाया है, सेवा में रहने वाला व्यक्ति ही जान सकता है। यह सर्व विदित है कि–श्रीनाथजी की सेवा श्रीगुसांइजी और उनके सातों पुत्र एवं उनके वंशज ही किया करते थे।

एसी अवस्था में यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि–वार्ताओं के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी ही थे. वार्ता के कई इतिहास–लेखक यह शंका उठाया करते हैं कि–वार्ताओं की रचना श्रीगोकुलनाथजी के किसी सेवक ने की है, इसका कारण यह दिया जाता है कि–स्थान स्थान पर गोकुलनाथजी की प्रशंसा के वाक्य मिलते हैं। पर यह कथन

ठीक नही हैं। वार्ताओं के सतत अभ्यासो से यह छिपा नहीं रहेगा कि-वार्ता मे गोकुलनाथजी की अपेक्षा गुसांइजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी की कहीं अधिक प्रशंसा की गई है. ×

गोकुलनाथजी के शिष्य अपने गुरु की प्रशंसा करने के लिये सबसे अधिक प्रख्यात हैं, यहां तक कि—वे उन्हें श्रीप्रभु से कुछ कम नहीं मानते। एसी अवस्था में उनका कोइ सेवक यदि वार्ता लिखता तो वह या तो श्रीगिरिधरजी के प्रशंसापरक कई प्रसंगों को उडाहीं जाता, अथवा वह उसे इस रूप मे लिखता जिससे गिरिधरजी की कक्षा से गोकुलनाथजी को न्यून न बतलाना पडता। वास्तव मे गोकुलनाथजी के सेवकों रचित अन्य ग्रन्थ देखे जावें तो उससे गिरि-धरजी की निन्दा ही मालुम पडेगो। अतः यह कहना कि गुरु की प्रशंसा लिखी होने के कारण गोकुलनाथजो के किसी गुजरातो शिष्य ने वार्ता की रचना की है, अपरिपक्वबुद्धिका निदर्शन होगा।

हरिरायजी जिन्होने वार्ता पर भाव—प्रकाश लिखा है, किसी साधारण बैष्णव की रचित वार्ता पर अपनी कलम नहीं उठा सकने थे, एसा तो वे उसी महानुभाव की वाणी के लिये कर सकते थे जिसके प्रति उनकी श्रद्राभक्ति थी। अतःसिद्र होता है कि वार्ताकी रचना गोकुल-नाथजी ने ही की है, और बाद में उसके यथासमय संस्करण होते गये हैं जैसा कि ऊपर कहा जाचुका है।+

× देखो चतुर्भुजदासजी वार्ता

+ श्रीहरिरायजी अपने भावप्रकाश मे इस का स्पष्ट उल्लेख करते है कि 'श्रीगोकुलनाथजी' चोराशी वैष्णव की वार्ता कहते थे। इसी की पुष्टि प्रभुचरित्र चिन्तामणि के उस अंश से होती है जिसका संकेत पहिले किया

प्रस्तुत ग्रन्थका प्रथम भाग जिस शैली से निकाला गया था, उससे इस द्वितीय भाग के पाठकों को विभिन्नता दृष्टि गोचर होगी। उसके शब्दों के स्वरूप, लेखनशैली पर अधिकांश तथा प्राचीनता का ध्यान रखा गया था, अर्थात् इसके सम्पादक ने जिस ग्रन्थ से उसकी प्रतिलिपि प्रैस कापी, की थी प्रकाशन में उसका ही अनुसरण किया गया था।

उस समय वर्तमान कालके अनुरूप प्रकाशन पद्धति के अभाव में मैंने सम्पादन सम्बन्धी संशोधन की न्यूनता तथा त्रुटि के लिये प्र. भागके प्रास्ताविक पत्र ९ में हिचकिचाहट व्यक्त की थी, परन्तु कई महानुभाव उसका अर्थ वार्ता–संपादन की ओर ले गये अर्थात उन्होने यह कह देने का साहस किया कि वार्ताका सम्पादन यथावस्थित नहीं हुआ है, जिसे प्रकाशक (संचालक विद्याविभाग) भी स्वयं स्वीकार करते है आदि परन्तु मेरा तात्पर्य केवल इसी से था और है कि—उस समय हम प्रथम भाग को जिस नवीन रंगढंग अथवा शैली से निकालना चाहते थे, नहीं निकाल पाये। इसका कारण सम्पादक (श्रीद्वारका-दासजी) का और प्रकाशक (मेरा) का एकत्र संवास का अभाव एवं कार्यान्तर की व्यस्तता भी थी।

प्रस्तुत भाग की प्रेसकापी वार्तासाहित्य–सम्पादक ने सं. १७५२ की लिखित और सिद्धपुर और पाटन मे विद्यमान प्रतिलिपि के सम्वाद से तैयार की है। जिसमेंसें यहां यथावस्थित प्रसंग दिये गये हैं और शब्दोका रूप भी प्रायः वही रखा गया है। यद्यपि लेखक की त्रुटि से रह

जा चुका हैं. देखो प्राचीन वार्तारहस्य प्रथमभाग (वार्ता पत्र १६). " यह भाव तें चोरासी वैष्णव श्रीआचार्यजी के है, सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी चोरासी वैष्णव की वार्ता करत कल्याणभट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होइ गये, सो श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहन की हू सुधि नांहीं."

जानेवाली ह्रस्व दीर्घ की त्रुटियों को दूर कर दिया गया है, फिर भी गुजराती प्रेस कम्पोंजीटरों के अनुग्रह से यत्रतत्र दृष्टिगोचर हुए बीना न रहेगी। नीरक्षीर विवेकी पाठक उसका स्वयं संशोधन कर लेने की कृपा करें।

प्रस्तुत द्वितीयभाग मे सम्पादक ने गुजराती भाषा भाषियों के लिये अष्ट सखाओं का ऐतिहासिक विवरग एवं वार्ता की प्रामागिकताका विवेचन बडे परिश्रम से तयार किया है—जो साहित्य के लिये एक नई देन है और जिसकी ओर हिन्दीसाहित्यज्ञों का ध्यान अवश्यही जाना चाहिये। किसी स्वतन्त्र लेख और "पुष्टिमार्गीय भक्तकवि" नामक आगे चल कर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ में हिन्दी में भी इस विषय की सप्रमाण चर्चा चलाइ जायगी जिससे साहित्य जगत में अच्छा प्रकाश पडने की संभावना है।

पुस्तक की सुचारुता और आवश्यकता की पूर्ति के लिये इसमें यथास्थान निम्नलिखित चित्र भी दिये जा रहे हैं:—

१. श्रीगिरिधर गोपाल—जिनके स्मारक में प्रस्तुत वार्तासाहित्य का प्रकाशन हो रहा है।

२. श्रीचि० व्रजेश कुमार—जो श्रीगिरिधर गोपाल के ही अपरावतार हैं, और जिन्हें यह भाग समर्पित किया गया है।

३. श्रीहरिरायजी महाप्रभु—जो वार्तासाहित्य ही नहीं प्रत्युत संस्कृत, गुजराती और व्रजभाषा के भक्तिमार्गीय गद्यपद्यात्मक साहित्य के रचयिता, विवरणकर्ता और उन्नायक होने के साथ साथ अपने काल के एक महान् प्रतिभाशाली विज्ञ नियामक और अप्रतिम प्रचारक हुए हैं, जो विविध संकेतात्मक 'हरिधन' 'हरिदास' 'रसिक' 'हरिराय' आदि अनेक उपनामों के कारण सम्प्रदायेतर व्यक्तियों के लिये अपरिचित से बने हुए हैं।

४. अष्टछाप की स्थापना—जिसमें* श्रीविट्ठलेश्वर प्रभुचरण और अष्टसखा उपस्थित है।

५. महानुभाव श्रीसूरदासजी का अन्तिम समय।

६. सं. १६९७ की वार्ता की पुष्पिका

उपर के चार चित्र त्रिरंगी और अन्तिम चित्र एक रंगी है।

इस प्रकार जहां तक हो सका है पुस्तक को आवश्यक सजावट के साथ उपादेय भी बनाया गया है। इसके प्रकाशन में जो त्रुटियां रह गई हैं उनके लिये हम क्षमायाचना करते हैं। इसके मुद्रण में जिन उदाराशय दानी महानुभावों ने अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है, उनका उपकार—स्मरण गुजराती भूमिका में किया गया है। इसी प्रकार यदि कोई महानुभाव, अथवा ट्रस्ट फंड इस ओर ध्यान दे तो हम अष्टसखाओं के उस साहित्य को प्रकाशित करने का भी आयोजन करेंगे जो—विद्याविभाग कांकरोली में विद्यमान ओर अप्रकाशित है। यह कथन यद्यपि एक अप्रिय कटु सत्य होगा कि—अधिकांश द्रव्य उन्हीं व्यक्तियों को मिल जाता है, जो—अनुत्तर दायित्व ढंगसे चाहे जैसा साहित्य प्रकाशित किया करते हैं और जो येन केन उपायों से धनसंग्रह कर साहित्य प्रकाशन की सेवा भावना के पुण्यभागी बन जाने में प्रथम हो जाना चाहते हैं। अस्तु।

विद्याविभाग तो श्रीद्वारकेश प्रभु के अनुग्रह का अभिलाषी है, जिनकी इच्छा से सभी अवस्थाओं में ग्रन्थों का प्रकाशन होता जा रहा है, और जिसके फलस्वरूप श्रीद्वा. ग्रन्थमाला में अब तक

---

* श्रीगुसांईजी का चित्र द्वा. चित्रशाला कांकरोली और श्रीसूरदासजी का चित्र कृष्णगढ के राज्यसंग्रहालय के चित्र के आधार पर तयार कराया गया है। अन्य सात सखाओं के स्वरूप प्राचीन पुस्तको में से एकत्रित कराकर नविन रूपसे तयार कराया गया है।

कई ग्रन्थ मुद्रित कराये जा चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ द्वा० ग्र० माला के विगत १३ वें पुष्प का द्वितीय भाग है। इसके अग्रिम भाग इसी पुष्प में यथासमय प्रकाशित किये जावेंगे।

प्रथम भाग में 'श्रीनाथ देव रचित संस्कृतवार्ता मणिमाला' का समावेश किया गया था, पर उक्त ग्रन्थ में अष्टछाप की वार्ताए हमारे यहां पूर्ण नहीं हैं अतः उन्हें यथास्थान प्रकाशित नहीं किया जा सका जिसका हमें पश्चात्ताप है।

अष्टसखाओं के जीवन चरित्र सम्बन्ध में प्रस्तुत भाग, और हमारे यहां से प्रकाशित 'कांकरोली के इतिहास' में इन महानुभावों के प्रासंगिक चरित्रों से जो ऐतिहासिक नाम, संवत, मिती का विभेद विदित होगा उसका अन्य अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये। प्रस्तुत सम्बन्ध में जैसी जैसी गवेषणा होती गई है, उसी प्रकार उसका संशोधन भी अगले ग्रन्थों में किया गया है।

पुस्तक की उपादेयता अनुपादेयता के विषय में हम कुछ न कह कर पाठकों की सम्मतिपर ही उसे छोडते हैं। हां इतना कह देना आवश्यक समझते है कि—यदि इसी प्रकार प्रभु का अनुग्रह प्राप्त होता रहा तो क्रमशः सम्पूर्ण वार्ता 'भावप्रकाश' के साथ प्रकाशित करते रहने का आयोजन होता रहेगा। इस बीच में अन्य आवश्यक ग्रन्थ भी प्रकाशित करते रहने की शुभ कामना लिये हुए अपने इस वक्तव्य से विराम लेते हैं।

कांकरोली
श्रीमदाचार्य प्राकट्योत्सव
वै. कृ. ११

विधेय....
पो. कण्ठमणि शास्त्री
संचालक विद्याविभाग, **कांकरोली**

अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण*

(१) सूरदास

जीवनी के आधार—

आत्मचारित्रिक उल्लेख—साहित्य-लहरी के दृष्ट-कूट पदों में एक पद सूरदास के जीवन चरित्रसे सम्बन्ध रखता है। उससे निम्न लिखित बातें ज्ञात होती हैं कि-(१) सूरदास चंद के वंशज, जगात वंशी थे। (२) वे सात भाई थे जिनमें से ६ युद्ध में मारे गये। (३) सातवें, सूरजदास जन्मान्ध थे, भगवानने कृपा करके उनको दर्शन दिये, तभी से वे कृष्ण-भक्त हो गये। श्रीगुसांईजीने उनकी गणना अष्टछाप में की।

इस पद को वार्तासे विरुद्ध होनेके कारण हम प्रमाणिक नहीं मानते।

साहित्य-लहरी में उसका रचना काल कविने संवत १६०७ दिया है।
'मुनि पुनि रस न के रस लेख, दसन गोरी नन्दको लिखि सुबल संवत पेख'

सूर सारावली—इस ग्रन्थ के रचनाकाल के समय कविने अपनी आयु ६७ वर्षकी दी है।

'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।'

कई पदों में उन्होंने अपने अन्धे होने तथा श्रीवल्लभाचार्यजी के दीक्षागुरु होने का उल्लेख किया है।

---

* विद्याविभाग, कांकरोली द्वारा किये गये अन्वेषण के आधार पर.

अन्य प्रचलित बाह्य आधार --

१. भक्तमाल—यह सूरदास के समय का लिखा ग्रन्थ है इसमें कवि की भक्ति और काव्य की प्रशंसा की गई है। यह ग्रन्थ प्रमाणिक है।

२. चौरासी वार्ता—संवत १७५२ की हरिरायजी के भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता का इस लेखमें हमने प्रयोग किया है। यह ग्रन्थ प्रमाणिक है।

३. आईने अकबरी—यह बताती है कि सूरदासजी अकबर के दरबार के गवैये, रामदास के पुत्र थे। और वे भी रामदास के साथ अकबरके यहां जाया करते थे।

यह वृतान्त अष्टछापी सूरदासका नहीं है।

४. मुन्शियान अबुलफज़ल—यह अकबर के समय के पत्रों का संग्रह है। इसमें बादशाह अकबर की आज्ञासे अबुलफज़ल का सूरदास के नाम एक पत्रका उल्लेख है और अकबरसे सूरदास के मिलनेका भी उल्लेख है।

यह वृतान्त अष्टछाप वाले सूरदासका नहीं है। अनुमानसे यह वृतान्त मदनमोहन सूरदास का हो सकता है।

५. गोसाईं चरित—इस ग्रन्थ को हम प्रमाणिक नहीं मानते हैं।

साहित्य क्षेत्र में तीन सूरदास हुए हैं।

१. बिल्वमंगल सूरदास—एक रूपवती स्त्री के रूपकी आसक्तिसे इन को ज्ञान मिला था, और आंख फोड़ कर अंधे हो गये थे। ये भी भक्त कवि थे।

इनकी भाषा में गुजराती शब्दोंका प्रयोग अधिक हुआ है।

इस चरित्र को लोगोंने भूलसे अष्टछापी कवि सूरदास के साथ जोड़ दिया है ।

२. सूरदास मदनमोहन—ये लखनउ के पास संडीला स्थान के दीवान थे। ये अकबर के एक राजकर्मचारी के पुत्र थे। अकबरी दरबारसे इन्हीं सूरदासका सम्बन्ध था ।

३. सूरदास अष्टछाप वाले—हिन्दी व्रजभाषा साहित्य के 'सूर्य'और वल्लभ सम्प्रदायके 'सागर' और 'जहाज़' ये ही कहे जाते हैं।

हरिरायजीकृत भावप्रकाशवाली वार्ता तथा अन्य प्रमाणों के आधारसे—

जन्मस्थान-दिल्ली के पास सीहीं ग्राम में इनका जन्म हुआ था। प्रमाण—हरिरायजीकृत भावप्रकाश ।

जन्मकाल—संवत् १५३५ प्रमाण—निजवार्ता में उल्लेख है कि सूरदासजी और श्रीवल्लभाचार्यजी का जन्म एक ही संवत मेंहै । सम्प्रदायमें यह बात भी प्रचलित है कि सूरदासजी आचार्यजीसे दस दिन छोटे थे। सुना है कि श्रीद्वारिकेशजी के भाव-संग्रह में भी यही लेख है ।

कांकरौली की सं. १८५१ की निजवार्ता की प्रति में तथा छपी हुई निजवार्ता में भी लिखा है कि "सो सूरदासजी जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है।" आचार्यजी का जन्म सं. १५३५ में हुआ था ।

जाति—सारस्वत ब्राह्मण । प्रमाण—१६९७ की ८४ वार्ता तथा हरिरायजीका भावप्रकाश ।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके मातापिता निर्धन ब्राह्मण थे ।

इनसे तीन बड़े भाई और थे। ये अन्धे थे। इसलिये माबाप की उनकी ओरसे उदासीनता रहती थी। घरकी उपेक्षा और निर्धनता के कारण इन्होंने घर छोड़ दिया। इनके विवाहका कहीं उल्लेख नहीं है।

शिक्षा—सूरदासने साधु संगति से ज्ञान प्राप्त किया। ये गान्धर्व विद्यामें निपुण थे, और पदरचना भी करते थे। तथा इनको वाक्सिद्धि भी थी। इसलिये वल्लभसंप्रदाय में आने के पहले इनके बहुतसे शिष्य हो गये थे। उस समय ये भगवान की उपासना दासभावसे करते थे।

निवासस्थान—१८ वर्ष की उम्र तक ये अपने गांवसे चार कोस दूर एक तालाव के किनारे के एक स्थान पर रहे। उसके बाद ये मथुरा चले गये। वहांसे आकर आगरा और मथुरा के बीच गऊ घाट पर आचार्यजी की शरण आने के समय तक रहे। जबतक गऊघाट पर इनकी कुटी इनके शिष्योंने नहीं बनाई तबतक सूरदासजी 'रुनकता' गांव में रहते थे। सम्भव है इसी आधार से लोगोंने उनका जन्मस्थान 'रुनकता' मान लिया हो। वल्लभसंप्रदायमें आनेके बाद ये श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा में पहुंचे। वहां ये गोवर्द्धन के पास चंद्र-सरोवर परासोली में रहा करते थे।

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश—सं. १५६७ में गऊघाट पर श्रीआचार्यजीकी शरण आये। प्रमाण-८४ वार्ता तथा वल्लभदिग्विजय। तीसरी पृथ्वी-प्रदक्षिणा की पूर्ति के समय वार्ता के अनुसार दक्षिण दिग्विजय सं. १५६६ के अनन्तर (अडेल से व्रज आते समय) आचार्यजीने सूरदास को शरण में लिया। आचार्यजीने तीसरी प्रदक्षिणा

सं. १५६७ में समाप्त की थी। सूरदासजी आचार्यजी के विवाह बाद शरण आये इस बात का अनुमान वार्ता के एक कथन से होता है। सूरदासजी की वार्ता में लिखा है कि गऊघाट पर आचार्यजी "गादी ऊपर बिराजे।" आचार्यजीने विवाह बाद ही गादी के ऊपर बैठना आरम्भ कियाथा। उससे पहले वे ब्रह्मचर्य व्रतसे आसन पर ही बैठते थे।

अन्त समय—सूरदासजी की वार्ता के प्रसंग में लिखा है कि "सो बीचबीच में जब कुंभनदास, परमानंददासजी के कीर्तन के ओसरा आवते तब सूरदासजी श्रीगोकुल में नवनीतप्रियजी के दरशनकुं आवते।" सूर का नवनीतप्रियजी के दर्शनों को जाना और नवनीतप्रियजी के नग्न शृंगार पर पद गाना ये कार्य सं. १६२८ के बाद होने चाहिये। क्योंकि गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी का गोकुल में स्थायी निवास सं. १६२८ में हुआथा। इससे सिद्ध है कि सूरदास लगभग १६३० तक तो जीवित थे।

८४ वार्ता के भावप्रकाशमें सूरदास के अन्त समय के वृतान्त में लिखा है कि जैसे कृष्णने पहले यादवों का अंतर्धान किया और फिर स्वयं अंतर्धान हुए उसी प्रकार गुसांईजी का श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम का प्राकट्य है। "आचार्यजीने आप अन्तर्धान लीला की और गुसांईजी को अंतर्धान लीला करनी है, सो पहले भगवदीयन कूं नित्यलीला में स्थापन करके आपु पधारेंगे।" इससे अनुमान होता है कि गुसांईजी की मृत्यु के कुछ साल पहले ही (अनुमानतः दो चार साल) सूरदासजी का निधन हुआ था। गुसांईजी का निधन सं. १६४२ में हुआ। श्रीद्वारिकादासजी कांकरौली

की सम्मति है कि सूरदासजीका निधन सं. १६४० में हुआ। बाबू राधाकृष्णदासने भी सं. १६४० का ही अनुमान लगाया है।

मृत्युस्थान—परासौलीग्राम।

लीलात्मक स्वरूप—कृष्णसखा, चंपकलता सखी।

रचना—

सूरसागर—इसके अंतर्गत अनेक लीलाए आ जाती हैं।

सूरसारावली—६७ वर्षकी अवस्था सं. १६०२ में।

साहित्य लहरी—सं. १६०७ में।

—०—

(२) परमानन्ददास—

जीवनी के आधार—१ भक्तमाल। २ सं. १६९७ की ८४ वार्ता तथा श्रीहरिरायजी कृत ८४ वार्ता पर भावप्रकाश।

आत्मचारित्रिक उल्लेख—उपलब्ध पदों के देखने से ज्ञात होता है कि उन पदों में कविने अपने विषय में कुछ नहीं कहा। पदों में भक्तिभाव संबन्धी उल्लेख हैं। **जन्मस्थान**—कन्नोज, **जन्मकाल**—सं. १५५०।

प्रमाण—वल्लभसम्प्रदाय में यह प्रचलित है कि परमानंददासजी आचार्यजीसे १५ वर्ष छोटे थे।

जाति—कान्यकुब्ज ब्राह्मण। प्रमाण—चौरासी वार्ता।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके मातापिता निर्धन ब्राह्मण थे, परन्तु इनके जन्मदिन इनके पिता को बहुत सा द्रव्य मिला। इनका यज्ञोपवित बड़े समारोह के साथ हुआ। एकवार कन्नोज के हाकिमने इनके पिता का सब द्रव्य लूट लिया। तब इनके पिता फिर निर्धन हो

गये। इस समय परमानंददास बड़े हो गये थे। पिताने इनका विवाह करनेका आग्रह किया, परन्तु इन्होंने मना कर दी और फिर बाद को भी इन्होंने अपना विवाह नहीं किया। इनके पिताने इनसे धनोपार्जन के लिए आग्रह किया, परन्तु इनकी रुचि अब त्याग और वैराग्य की ओर हो चली थी। इनके मातापिता धनोपार्जन के लिये विदेश चले गये, परन्तु ये कन्नोज में ही रहे।

शिक्षा–परमानंददासजी की शिक्षा कन्नोज में ही हुई। इनके शिक्षागुरु कौन थे, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। वल्लभसम्प्रदाय में आनेसे पहिले ही गायन और कीर्तन में इनकी ख्याति हो गई थी। वार्ताकार कहता है कि ये बड़े योग्य व्यक्ति और कवीश्वर थे। गाना सीखने तथा कीर्तन में भाग लेने के लिये इनके पास बहुत लोग आते थे। इसीलिये ये स्वामी कहलाते थे।

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश–सं. १५७७ ज्येष्ठ शुक्ल १२ प्रयाग के पास अड़ेल में। प्रमाण–चौरासी वार्ता, बेठकचरित्र एवं वल्लभदिग्विजय।

अन्त समय–परमानंददासजी ने गुसाईं विठ्ठलनाथजी के सातों बालकों की बधाई गाई है। सातवें पुत्र श्रीघनश्यामजी का जन्म सं. १६२८ में हुआ। इससे सिद्र होता है कि परमानंददासजी सं. १६२८ तक तो जीवित ही थे। सात बालकों की बधाई के एक अन्तिम समय गाये हुए पद में इन्होंने श्रीघनश्यामजी के विषय में इस प्रकार लिखा है–"**श्रीघनश्याम, पूरण काम पोथी में ध्यान।**" श्रीघनश्यामजी को विद्याध्ययन करते देखा इससे उस समय घनश्यामजी की आयु लगभग बारह वर्ष की अवश्य रही होगी! 'पूरन काम' विशेषण से भी इसी बातकी

पुष्टि होती है। इससे सिद्ध होता है कि वे लगभग सं. १६४०, ४१ तक विद्यमान थे। वार्ता से अनुमान होता है कि इनकी मृत्य कुंभनदासजी के निधन के बाद हुई, जिनका मृत्यु सं. हमने लगभग १६४० माना है। अतः इनका अन्त समय हम सं. १६४०–१६४१ के बीच का मान सकते हैं।

स्थायी निबासस्थान–सुरभी कुंड, वार्ता के अनुसार परमानन्ददासजीने भादों वदी नौमी को मध्यान्ह के समय देह छोड़ी।

लीलात्मक स्वरूप–तोक सखा और चन्द्रभागा सखी,

रचना—परमानंद सागर। वार्ता में परमानंद सागर का उल्लेख है।इस सागर की कई प्रतियां कांकरोली में विद्यमान हैं। सबमें मिलाकर लगभग २००० पद होंगे। हमने इनकी पदरचनाओं का अध्ययन कांकरोली से प्राप्त परमानंददासजी के कीर्तनों से किया है। इन्होंने ब्रज कृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर द्वारिकागमन लीला तक पद लिखे हैं। इन लीलाओं के कथाभाग की ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। भक्तिभाव और काव्य दोनों की दृष्टि से इनके विरहके पद उत्कृष्ट हैं।

---

(३) कुंभनदास–

जन्मस्थान–गोवर्धन से कुछ दूर जमुनावतौ ग्राम।

जन्मतिथि–सं. १५२५। प्रमाण–गोवर्धननाथजी की प्राकटय की वार्ता में लिखा है कि जब श्रीनाथजी प्रकट हुए (सं. १५३५) उस समय कुंभनदासजी की आयु दस वर्षकी थी। वल्लभ सम्प्रदाय में किंवदन्ती है कि कुंभनदासजी के पिता एकवार कुंभस्नान करने गये

वहां उन्हें एक महात्मा की सेवा के फलरूप पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद मिला। उसी की स्मृति में कुंभनदास नाम रक्खा गया।

जाति—गोरवा क्षत्रिय ।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके पिता का नाम अज्ञात है। इनके चाचा का नाम धर्मदास था। कुंभनदासजी का कुटम्ब बहुत बड़ा था। इनके सात पुत्र और सात ही पुत्रवधुए थी। इनके एक पुत्र कृष्णदासको सिंहने मारडाला था। पांच बड़े पुत्र इन्होंने अलग कर दिये, केवल सबसे छोटे पुत्र, चतुर्भुजदासजी, जो इनकी तरह भक्त कवि थे, इनके साथ रहते थे। इनके यहां धन का सदैव अभाव रहता था। इनका व्यवसाय केवल खेती करना था। निर्धनी होकर भी ये त्यागी थे। एकबार राजा मानसिंहने इन्हें द्रव्य दिया परन्तु इन्होंने नहीं लिया। बादशाह अकबरकी भी उन्होंने उपेक्षा करदी थी। कांकरोली राज्य के एक कर्मचारी श्रीनरेन्द्रवर्मा, इन्हीं के वंशज हैं जो बड़े विद्यानुरागी और कवि हैं।

शिक्षा—ये गानविद्यामें बहुत निपुण थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के संसर्ग से इन्होंने भक्ति-ज्ञान प्राप्त किया था।

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश—सं. १५५६।

प्रमाण—श्रीगोवर्धननाथजी के प्राकट्य की वार्तासे विदित है कि श्रीवल्लभाचार्यजीने सं. १५५६ बैसाख शुक्ल तीजको श्रीनाथजी को गोवर्धन पर छोटे मंदिर में पधराया, और वहीं कुंभनदासजी को स्त्री सहित शरण लिया था।

अन्त समय—कुंभनदासने भी श्रीगो० विट्ठलनाथजी के सात बालकों की वधाई गाई है। इससे सिद्ध है कि वे सं. १६२८ (घन-

श्यामजीके जन्म—समय) में जीवित थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजीने ब्रजसे गुजरात की दो यात्राए की, एक संवत १६३१ में और दूसरी संवत १६३८ में। गुसांईजी की प्रथम यात्रा के समय इनको, ८४ वार्ता के अनुसार, श्रीनाथजीका विरह हुआ था। इससे सिद्ध है कि ये संवत १६३१ तक तो अवश्य जीवित थे। हमारा अनुमान है कि फतहपुर सीकरी में अकबर बादशाह से कुंभनदासजी सं. १६३८ में मिलेहोंगे, क्योंकि श्रीओझाजीके लिखे हुए उदयपुरके इतिहास पृ. ४५९ मे अकबर के दरबार का उल्लेख सं. १६३८ माघसुद ६ में होने का है। उसी समय बादशाहने कुंभनदासको फतहपुर सीकरी बुलाया होगा। वार्ता से यहभी विदित है कि सूरदासजी की मृत्यु के समय ये जीवित थे। इसलिये हम इनका मृत्यु समय भी लगभग सं. १६४० मान सकते हैं।

निबास स्थान—ब्रजमें जमुनावतौ।

मृत्युस्थान—आन्योर के पास संकर्षणकुंड

लीलात्मक स्वरूप—अर्जुन सखा और विशाखा सखी।

रचना—कुंभनदासजी के लगभग २०० पद कांकरौली में संग्रहीत हैं। इनके पद गोचारण और गोदोहन लीला के उत्कृष्ट हैं। कृष्ण की किशोर लीला पर भी इन्होंने बहुत पद लिखे हैं।

---

(४) कृष्णदास अधिकारी-

जन्मस्थान—चिलौतर गुजरात में। **जाति**—कुनबी पटेल (शूद्र)

जन्मतिथि—लगभग सं. १५५४। प्रमाण—८४ वार्ता हरिरायजी के भावप्रकाशवालीमें, लिखा है कि कृष्णदास तेरह वर्ष की अवस्था में आचार्यजी की शरण आये। इनका शरण समय सं. १५६७ है।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके पिता गांव के मुखिया थे, परन्तु वे एक धनलोलुप व्यक्ति थे, और अपने असत्याचरण से भी धनोपार्जन करते थे। कृष्णदास का स्वभाव बाल्यकाल ही से सत्य-प्रिय था। अपने पिता के असत्य आचरण के कारण ये १३ वर्ष की अवस्था में ही तीर्थयात्रा को निकल पड़े। इन्होंने अपना विवाह नहीं किया।

शिक्षा—इनको आरम्भिक गुजराती भाषा की शिक्षा बाल्यकाल में चिलौतरा में ही हुई होगी, बाद में श्रीआचार्यजी की शरण आने पर इनकी शिक्षा वल्लभसम्प्रदाय में ही हुई और वहीं पर इन्होंने व्रज भाषा सीखी। व्यवहार में ये बहुत कुशल थे। और हिसाब किताब में प्रवीण थे, इसी लिये गुसाईंजीने इन्हें श्रीनाथजी के मंदिरका अधिकारी बनाया था।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश—

वल्लभ—दिग्विजय में लिखा है कि आचार्यजी सूरदास को शरण ले कर जब मथुरा विश्रान्तघाटपर आये तभी उन्होंने कृष्णदास को शरण लिया। सूरदास को आचार्यजीने सं. १६६७ में शरण लिया था। अतः यही वर्ष इनके शरणागतिका निकलता है।

सं. १५९० में गोस्वामी विट्ठलनाथजीने इनको मंदिरका अधि-कार दिया। नाथद्वार में मंदिर के कृष्ण भंडारका नाम इन्हीं के नाम के आधार पर अब तक चला जाता है। और वहां अब भी अधिकारी का नाम कृष्णदासजी ही लिखा जाता है।

अंत समय—इन्होंने भी गुसाईंजी के सातों बालकों की वधाई गाई है। इस लिए सातवें पुत्र धनश्यामजी के जन्म समय सं. १६२८

तक ये जीवित थे। इन पदों में से एक में इन्होने श्रीघनश्यामजी की बालक्रीडाका इस प्रकार वर्णन किया है:—

"श्री वल्लभ—कुल मंडन प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ

× × ×

श्रीघनस्याम लाल बल अविचल केलिकलोल

कुंचित केस कमल मुख जानो मधुपन के टोल।"

इस पद रचना के समय घनस्यामजो की आयु हम ४ वर्ष की मान सकते है। इस हिसाब से कृष्णदास की स्थिति सं. १६३१ तक सिद्ध होती है।

कृष्णदास के बाद श्रीनाथजी के मंदिर के, चांपाभाई अधिकारी हुए, जो पहिले गोस्वामी विठ्ठलनाथजी की विदेश यात्राओं में उनके साथ भंडारी रहा करते थे। गुसांईजी के यात्राविवरण से पता चलता है कि उनकी, ब्रजसे गुजरात की सं. १६३१ की—प्रथम यात्रा में चांपाभाई उनके साथ थे, परन्तु उनकी दूसरी यात्रा (सं. १६३८) के विवरण में चांपाभाईका उल्लेख नहीं है। इससे अनुमान होता है कि इस दूसरी यात्रा से पहले कृष्णदासजी का निधन हो चुका था और चांपा भाई उनकी जगह अधिकारी बनादिये गये थे। इसीसे वे गुजरात यात्रा में गुसाईंजी के साथ नहीं गये। इस आधार से अनुमान है कि कृष्णदासका निधन सं. १६३१ के बाद और सं. १६३८ से पहेल हुआ था।

स्थायी निवास—बिलछूकुंड.

मृत्यु स्थान—पूंछरी के पास। कुए में गिर कर इनकी मृत्यु

हुई। यह कुआ अभीभी विद्यमान है और 'कृष्णदासका कुआ' इस नामसे आज भी प्रसिद्ध है।

लीलात्मक स्वरूप—ऋषभ सखा और श्रीललिता सखी।

रचना—कृष्णदासजो के ६७६ पदोंका संग्रह कांकरोली में है। हमने इनके काव्यका अध्ययन इन्हीं पदों के आधार से किया है। इसमें राधा कृष्ण अनुराग के शृंगारादिक पद अधिक हैं और उन्हीं शृंगारात्मक दम्पति--लीला वर्णन में इनकी काव्यपटुता का स्रोत बहा है।

---

(५) छीतस्वामी

जन्मस्थान—मथुरा.

जन्म संवत—श्रीद्वारिकादासजी, कांकरौली, इनका जन्म संवत १५७२ मानते है।

जाति—चतुर्वेदी ब्राह्मण और बीरबल के पुरोहित थे।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके मातापिता के विषय में विशेष वृतान्त ज्ञात नहीं। वार्तासे अनुमान होता है कि ये गृहस्थी थे।

शिक्षा और स्वभाव—वल्लभसम्प्रदायमें आनेसे पहेले ये एक लम्पट प्रकृति के पुरुष थे। वार्तासे यह भी अनुमान होता है कि ये शरण में आने से पहिले कविता भी करते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी के प्रभावसे उनके चित्त की वृत्ति लौकिक विषयोंसे हट कर एकदम परमार्थ की ओर लग गई और उस के बाद श्रीनाथजी की कीर्तन सेवामें रहकर इन्होंने अष्टछाप में स्थान पाया।

वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—

सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ. ५५ के लेख के अनुसार ये सं. १५९२ में गुसाईंजी की शरण आये।

स्थायी निवास—गिरिराज पर पूंछरी स्थान।

लीलात्मक स्वरुप—सुवल सखा और पद्मा सखी।

रचना—अभी तक हमारे देखने में इनके करीब २०० पद आये है। इनके पदों की भाषा सरल और सीधी है।

अन्त समय—संवत् १६४२.

श्रीगिरिधरलालजी के १२० बचनामृत में लिखा है कि जब श्री गुसांईजी का गोलोक वास हो गया, तब इस दुःखद समाचार को सुन कर छीतस्वामीको मूर्छा आ गई। उसी समय श्रीनाथजीने इन्हे दर्शन दिये और आज्ञा की कि अब तक तो मैं दो रूप से अनुभव कराताथा पर अब मैं सात रूपों द्वारा अनुभव कराऊंगा। इसी समय छीतस्वामीने गुसांईजी के सात बालकों का "विहरत सातोंरूप धरे" यह पद गाया और देह त्याग कर दी।

---

(६) गोविन्दस्वामी

जन्मस्थान—भरतपुर राज्य के अंतर्गत आंतरी ग्राम।

जाति—सनाढ्य ब्राह्मण।

जन्म तिथि—अनुमानसे सं. १५६२.

माता, पिता कुटुम्ब—इनके माता पिता के विषयमें कोई वृतान्त

ज्ञात नहीं है । वार्ता से ज्ञात होता है कि ये वल्लभसम्प्रदायमें आने से पहले गृहस्थ थे और इनके एक लड़की भी थी । परन्तु शरणमें आने के पहलेही इन्होने घरका मोह छोड़ दिया था। उनके एक बहन भी थी जो इनके साथ गोस्वामी विट्ठलनाथजो की शिष्या हो गई थी, और इन्हीं के साथ गोकुल महाबनमें रहती थी।

शिक्षा—वार्ता से ज्ञात होता है कि शरण में आनेसे पहले ये एक उच्च कोटिके कवि और गवैये थे । गानविद्या के ये एक बडे आचार्य समझे जाते थे । इसलिये इनके बहुतसे शिष्य भी हो गये थे । इसी से ये स्वामी कहलाये थे । अकबर के दरबारके नवरत्नों में से एक रत्न तानसेनजी जो स्वामी हरिदासजी के शिष्य थे इनसे गाना सीखने के लिये इनके कथनानुसार श्रीगुसांइजीके शिष्य हुए थे ।

वल्लभसंप्रदाय में प्रवेश—संवत १५९२ सम्प्रदाय–कल्पद्रुम पृ. ५५ के आधारसे । वार्ता से ज्ञात होता है कि, कुछ समय गृहस्थ आश्रम भोगने के बाद इनके चित्तमें भगवत्–प्राप्ति की इच्छा हुई उस समय तक इनकी ख्याति गाने और लिखने में हो चुकी थी, जिसके कारण बहुत से लोग इनके सेवक हो गये थे, और उस समय ये स्वामी कहलाते थे । भगवत्प्राप्ति की प्रेरणासे ये घर छोड कर व्रजमे आये और महावन में रहने लगे । वहां पर भी ये पद बना कर कीर्तन करते थे। हमारे अनुमानसे इस समय इनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की अवश्य रही होगी । इसके बाद ये गोस्वामीजो की शरण में आये ।

स्थायी निवास—ये गोकुल और महाबन के टीला पर बैठकर बहुधा पद गाया करते थे । गिरिराजकी कदमखंडी पर इनका निवास

स्थान था । ये स्थान गोविंदस्वामी की कदमखंडीके नामसे अब भी प्रसिद्ध है ।

अंत समय—सं. १६४२ । गोविंदस्वामीने भी गुसाईजी के सात बालकों की वधाई गाई है, इस लिये इनकी स्थिति सं. १६२८ तकतो सिद्धही है। श्रीगिरिधरलालजी के १२० वचनामृत नामक ग्रन्थमें लिखा है कि जब सं. १६४२ में गोस्वामी विट्ठलनाथजी लीला में पधारे तभी गोविंदस्वामीने भी देह सहित गोवर्द्धनकी कंदरामें प्रवेश किया और वे नित्यलीला में पहुंच गये ।

मृत्युस्थान—गोंवर्धन की कंदरा ।

लीलात्मक स्वरूप:—श्री दामा सखा और भामा सखी ।

रचना—इनके दोसौ बावन पद सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है इनके २५२ पदों के दो संग्रह कांकरौली में हैं। २५२ पदोंका एक संग्रह हमारे पास भी है जिसका मिलान हमने कांकरौली वाली प्रतियों से कर लिखा है । तीनो प्रतियों में कुछ थोडे पाठ भेद से एकसे पद हैं । इन २५२ पदों के अतिरिक्त इनके कुछ फुट कर पद भी कीर्तन संग्रहों में हैं । २५२ पदों का विषय मुख्यतः राधा कृष्ण की शृंगारात्मक अनुरागी लीलाएं हैं ।

---

(७) चतुर्भुजदास

जन्मस्थान—जमुनावतो गोंवर्धन के पास ।

जन्म तिथि—सम्प्रदाय कल्पद्रुम अनुसार सं० १५९७ ।

जाति—गोरवा क्षत्रिय ।

माता, पिता, कुटुम्ब—अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि और भक्त कुंभनदासजी इनके पिता थे। इनके ६ भाई इनसे बड़े थे। एक स्त्री के देहान्त के बाद इन्होंने अपनी जातिप्रथानुसार 'धरेजा' किया था। इन के राघोंदास नामक एक पुत्र भी था।

वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—सम्प्रदाय कल्पद्रुम के पृष्ठ ५७ में लिखा है कि सं. १५९७ में गिरिधरजी के प्राकट्य के बाद गोस्वामी विट्ठलनाथजी नंदमहोत्सव करके ब्रजमें आये, तभी चतुर्भुजदासको उन्होंने शरण में लिया। वार्ता से विदित होता है कि चतुर्भुजदास को इकतालीसवें दिन इनके पिताने गुसांईजी की शरण में दिया था।

शिक्षा—इनकी शिक्षा वल्लभसम्प्रदाय में रह कर ही हुई। इनके पदों से ज्ञात होंता है कि इनको संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। गानविद्या और कविताशक्ति का उपार्जन इन्होंने अपने पिता के द्वारा किया था।

अन्त समय—संवत १६४२ गोस्वामी विट्ठलनाथजी के गोलोक-वास के बाद ही।

प्रमाण—गोस्वामी विट्ठलनाथजी के सात बालकों की बधाई इन्होंने भी गाई है इसलिए सं. १६२८ तक इनकी स्थिति सिद्ध है। संवत् १६९७ की, गुसांईजी के चार सेवकन की बार्ता में लिखा है कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के परलोकवास पर इनको बहुत विरह हुआ। इस विरहमें इन्होंने गुसांईजी की प्रशंसा और स्मृति के पद गाये और फिर देह छोड़ दी। गुसांईजी की स्मृति में लिखे हुए इनके पद

इस बातका प्रमाण देते हैं कि इनका देहान्त गोस्वामीजी के परलोकवास के बाद हुआ।

स्थायी निवासस्थान—जमुनावतो।

मृत्युस्थान—रुद्रकुंड ऊपर इमली के वृक्ष के नीचे।

लीलात्मक स्वरूप—विशाल सखा और विमला सखी।

रचना—पद कीर्तन। इनके लगभग २०० पदों का संग्रह हमने कांकरौली विद्याविभाग में देखा है और उन्ही पदों के आधार पर हमने इनके काव्य का अध्ययन किया है। इन्होंने अपने पदों में ब्रज कृष्ण की सभी भावात्मक लीलाओं का चित्रण किया है। कृष्ण जन्म के समय के पदों से लेकर गोपीविरह तक के पद उन्होंने लिखे हैं। इनके पदों से इनका पांडित्य और उच्चकोटि की कविताशक्ति प्रगट होती है।

---
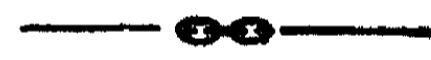
(८) नंददास

जन्म स्थान—रामपुर।

जन्म संवत्—सं. १५९४ अनुमान सिद्ध। श्रीद्वारिकादासजी कांकरौली का अनुमान है कि इनका जन्मसंवत १५९० है।

जाति—सनाढ्य ब्राह्मण। प्रमाण—सं. १६९७ की गुसांईजी के चार सेवकन की वार्ता।

माता, पिता, कुटुम्ब—वार्ता में इनके माता, पिता का कोई उल्लेख नहीं है। सं. १६९७ की वार्ता में तुलसीदास को इनका भाई लिखा है। सोरों में प्राप्त ग्रन्थों के आधारसे इनके पिताका नाम जीवाराम था, जो एक धर्मात्मा और विद्वान पुरुष थे। इनके पिताका देहान्त इनके बाल्यकाल में हो गया था। इनका विवाह हुआ और इनके संतान भी थी। सोरों की सामग्री के अनुसार इनके कृष्णदास नामक एक पुत्र भी था।

शिक्षा—वार्ता में लिखा है कि इनको गान विद्याका बड़ा शौक था और ये बहुत पढ़े हुए थे। इनके ग्रन्थों में कुछ उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि इनको संस्कृत भाषाका अच्छा ज्ञान था। वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहिले ये कविता भी करते थे, और ये रामानन्दी सम्प्रदाय के किसी महात्मा के शिष्य थे। सोरों में प्राप्त ग्रन्थो में इनके शिक्षागुरु का नाम पं० नरसिंह सूकरक्षेत्र–निवासी दिया हुआ है।

वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—वार्ता से ज्ञात होता है कि पहले ये बहुत विलासी थे। एक स्त्री के रूप पर मोहित होने के बाद इनके मनकी लौकिक वृत्ति पलटी और गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी के प्रभाव से ये परम भक्त बने। हमने अपने एक लेख में अनुमान किया था कि इनकी शरणागतिका समय लगभग सं.१६२८ है। परन्तु कांकरौली के श्री द्वारिकादासजी वार्तासाहित्य के विशेषज्ञ का कहना है कि ये सं. १६०६ में गोस्वामीजी की शरण आये और सूरदासजी के भविष्यदर्शी आग्रहसे

फिर ग्रहस्थ हो गए, वहां उनके संतान हुई और फिर लगभग सं. १६२४ अथवा इसके कुछ बाद वापिस श्रीनाथजी की सेवा में आए। वार्ता में लिखा है कि शरणागति के बाद गुसांईजीने इन्हें सूरदासकी संगति में रक्खा।

"नन्दनन्दनदास—हित साहित्यलहरी कीन" सूरदास के इस कथन के अनुसार श्रीद्वारिकादासजी यह मानते हैं कि 'नंद नंदनदास' शब्द नंददासके लिये प्रयुक्त हुआ है और सूरदासने साहित्यलहरी की रचना सं. १६०७ में नंददास के लिये ही की थी।*

अन्त समय—वार्तासे विदित है कि नंददास की मृत्यु बादशाह अकबर और बीरबल के समक्ष हुई। बीरबल की मृत्यु सं. १६४७ में हुई। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास की मृत्यु सं. १६४७ से पहिले हुई होगी। वार्ता में यह भी लिखा है कि नन्ददासकी मृत्यु के समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी जीवित थे। गोस्वामीजीका गोलोकवास सं. १६४२ में हुआ। इस लिए नन्ददासजीका परलोकवास सं. १६४२ से भी पहिले होना चाहिए। हमारा अनुमान है कि इनकी मृत्यु लगभग सं. १६४० में हुई। कदाचित अकबर बादशाह बीरबलके साथ व्रजमें मानसी गंगा पर इसी समय आया था।

स्थायी निवास—गोवर्धन मानसी गंगा।

मृत्यु स्थान—गोवर्धन मानसी गंगा।

लीलात्मक स्वरूप—भोज सखा और चंद्ररेखा सखी।

रचना—नन्ददासने सूरदासजी की तरह छंद और पद दोनों शैलियों में रचनाए की हैं। इनकी छन्दरचनाए अधिकतर बहुत छोटे

*विशेष देखिये उनके गुजराती अष्टछाप विभाग में.

आकार की हैं। कृष्णलीला के इनके कुछ लम्बे पदों को ही लोगोने इनके ग्रन्थरूपमें गगना कर ली है। हमने इनके निम्न लिखित उपलब्ध ग्रन्थ प्रमाणिक माने हैं। १. रास पंचाध्यायी २. सिद्धान्त पंचाध्यायी ३. भ्रमर गीत ४. पंचमंजरी (विरहमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, अनेकार्थमंजरी और मानमंजरी) ५. दशम स्कन्ध भाषा २८ अध्याय ६. रुक्मिणी मंगल ७. श्यामसगाई ८. सुदामा चरित ९. गोवर्धन लीला।

इनके लगभग ४०० पद हमारे देखने में आये हैं। नन्ददासके रास और राधाकृष्णके अनुराग के शृंगारिक पद काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। रोला लिखने में नन्ददास सिद्धहस्त हैं। इनकी व्रजभाषा बहुत श्रुतिमधुर है इसी लिए इनके विषय में कहावत प्रसिद्ध है "और सब गढ़िया नंददास जड़िया।"

नोट—नन्ददास की जीवनी के विषय में सोरों वाली सामग्री को एक बार हम देख चुके हैं। हमारा विचार फिरसे इस सामग्री को प्रमाणिकताको जांचने का है।

दीनदयालु गुप्त
एम. ए. एल. एल. बी.
हिन्दी लेक्चरर, **लखनऊ**—विश्वविद्यालय.

८४ और २५२ वैष्णव की वार्ता की प्रामाणिकता

वल्लभसम्प्रदायी कवियों की जीवनी का मुख्य सूत्र चौरासी वैष्णव तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता और अष्टसखान की वार्ता है। इन वार्ताओं को मुख्य सूत्र मान कर अष्टछाप कवियों के जीवन वृत्त देने से पहले उक्त वार्तासाहित्य की प्रमाणिकता तथा उसके रचना काल के विषय में विचार करना उचित होगा।

उक्त वार्ताओं के विषय में जो प्रश्न उठते हैं उन को हम इस प्रकार रख सकते हैं।

(१) ये वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी कृत हैं अथवा नहीं?
(२) इन वार्ताओं का रचनाकाल क्या है? क्या ८४ वार्ता, २५२ वार्ता तथा अलग से अष्टसखाओं की वार्ता एक ही समय की लिखी है, अथवा किसी अन्तर से लिखी गई हैं?
(३) इन में दिये हुए वृतान्त कहां तक प्रमाण कोटि में गिने जा सकते हैं?

पहले हम प्रथम प्रश्न को ही लेते हैं। वल्लभसम्प्रदायी वार्तासाहित्य तथा अन्य ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि यद्यपि श्रीवल्लभाचार्य के चरित्र सम्बन्धी प्रसंग श्रीगोकुलनाथजी के अल्पकालमें प्रचलित हो गए थे, फिर भीश्रीगोकुलनाथजीने ही—जो गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के चौथे पुत्र थे—इनको लिखित रूप दिलाया। ये मौखिक रूप से अपने सम्प्रदायी भावों को आचार्यजी के ८४ और अपने पिता श्रीगुसांईजी के शिष्यों को चारित्रिक कथाए सुनाया करते थे, जो बाद में उनके जीवनकाल में ही लिपि

बद्धकरली गई, इस के एक नहीं, अनेक प्रमाण हमें मिलते हैं।

श्रीकण्ठमणिशास्त्रीजीने प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना में वार्तासाहित्य के तीन संस्करण माने हैं-

प्रथम संस्करण-श्रीगोकुलनाथजी के कथा प्रवचन के समय का मूल रूप जो उनके हास्यप्रसंगों के समान बचनामृत रूपमें प्राप्त होता है। इसमें ८४ और २५२ का वर्गीकरग नहीं हुआ है"। शास्त्रीजीने इसको संग्रहात्मक वार्तासाहित्य कहा है।

द्वितीय संस्करण-" श्रीगोकुलनाथजी के समय में ही गो० श्रीहरिरायजी (समय सं. १६४७ से सं १७७२) द्वारा वर्गीकरण। इसी समयसे इन लिपिबद्ध वार्ताओं पर " श्रीगोकुलनाथजी कृत " इन शब्दोंका प्रयोग होने लगा। शास्त्रीजीने इस संस्करण का **समय** सं. १६९४ से सं. १७३५ तक माना है। कांकरौली में सं. १६९७ चैत्र सुदी ५ की एक हस्तलिखित ८४ तथा गुसांईजीके चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता विद्यमान है। उसमें हरिरायजी का भावप्रकाश नहीं है। यह ग्रन्थ जैसा कि उसकी पुष्पिका से विदित है गोकुल में लिखा गया था, यह किसी और भी प्राचीन ग्रंथ की **संक्षिप्त** प्रतिलिपि है, क्योंकि वीच बीच में वार्ताओं के भीतर अमुक पंक्तियां छोड़ दी गई हैं जिनकों लिखिया मूल प्रति से वांच नहीं पाया है। हमारे देखने में भी इससे अधिक प्राचीन ८४ वार्ता तथा गुसांईजी के चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता नहीं आई।

तृतीय संस्करण-श्रीगोकुलनाथजी के बाद, श्रीहरिरायजीने ८४ तथा २५२ वार्ताओं पर कुछ प्रसंग बढ़ा कर स्पष्टीकरण किया

जो गोस्वामी हरिरायजी की भावना की वार्ताए हैं ।

भावप्रकाशवाली ८४ तथा अष्टसखानकी वार्ता को एक प्रति सं. १७५२ की है, जो कांकरौली विद्याविभाग को पाटन से प्राप्त हुई थी और जिसके आधार पर प्रस्तुत अष्टछाप का संकलन किया हुआ है। भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की एक सचित्र प्राचीन प्रति हमने गोकुल में मोरवाले मंदिर के मुखिया श्रीगोरीलाल साचीहरजी के पास देखी है, जिसमेंसे हमने सूरदास की वार्ता भी उतार ली है। इसके आदि में इस प्रकार लिखा है:—"श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजन वल्लभाय नमः अथ चौरासी वैष्णवन की वार्ता श्रीगोकुलनाथजी प्रगटि कीए ताको श्रीहरिरायजी भाव कहत हैं"। इसी की सं. १८५७ की एक प्रति हमारे पास भी है।

श्रीहरीरायजी के भावप्रकाश, ८४ तथा अष्टसखान की वार्ता पर तो देखने में आए हैं परन्तु २५२ वार्ता पर अभी तक हमने कोई भावप्रकाश नहीं देखा । कहा जाता है कि २५२ की वार्ता पर भी हरिरायजोका भावप्रकाश है, परन्तु यहां हमारा प्रयोजन केवल अष्टछाप के चारित्रिक वृतान्तों से है । उस पर हरिरायजी का भाव प्रकाश मिलता ही है ।

छापे में आने वाली ८४ और २५२ वार्ताओं के वृतान्त और भाषा में बड़ा वैषम्य देखने में आता है। इसका कारण लिखियाओं की असावधानो तथा वैष्णव प्रेसवालों की स्वच्छन्दता है । इस बातका प्रमाण वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा बम्बईसे सम्पादित २५२ वार्ता की प्रस्तावनाका लेख है । सूरदास ठाकुरदास वाली वार्ताओं के आधारसे

ही बाद में इन वार्ताओंके संस्करण हिन्दी, गुजराती में छपे। इस प्रस्तावना का कुछ उद्धरण हम यहां देते हैं—

" सर्व भगवदीय वैष्णवनकुं हाथ जोड़ के बीनती करूं हूं, मेंने २५२ वैष्णवन की वार्ता अल्प बुद्धिसुं सोधि के छपाई है..........
..........और सब में विस्तार बहुत है परन्तु वो विस्तार कैसो है जो बांचि के वैष्णवन की वृत्ति स्थिर होवे और चित्त की वृत्ति श्रीप्रभुन में लगे सो वा विस्तारमें यह गुण नहीं है, सो ऐसो विस्तार काढ के संकोच करके लिखी है ।"

इस उद्धरग से स्पष्ट है कि अब तक छापे में आनेवाली वार्ताओं के बहुत से चारित्रिक, और विशेष रूप से ऐतिहासिक प्रसंग जो साम्प्रदायिक दृष्टि से भक्तिपक्ष में महत्त्वपूर्ण नहीं है, छोड़ दिये गए हैं। उदाहरणके लिए नंददास वाली वार्ता में, छपी प्रतियों में नंददास की जाति नहीं लिखी परन्तु प्रत्येक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में तथा पीछे कही हुई संवत १६९७ वाली प्रति में भी नंददास को सनाढ्य ब्राह्मग लिखा है।

इन वार्ताओं के विषय में जैसा कि श्रीकंठमणि शास्त्रीजीने अपने वक्तव्य में कहा है, हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि ये वार्ताए मूल रूप में श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं और ये वार्ताए उनके जीवनकाल में ही लिपिबद्ध हो गईं थीं, जिनमें से ८४ और अष्टसखान की वार्ता तो गोकुलनाथजी के समयकी मिल चुकी है। २५२ की वार्ता भी खोज करने से अवश्य मिलनी चाहिये।

हिन्दी के कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस वार्ता—साहित्य का

किसी वैष्णवने साम्प्रदायिक गौरव बढाने के लिये पीछेसे गोकुलनाथजीके नामसे लिख कर प्रचार कर दिया है। वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं। इतना अवश्य है कि इनको उन्होंने लिखा नहीं था। इस बात के प्रमाणों को हम संक्षिप्त में नीचे देते हैं।

१. हस्तलिखित प्राप्त होनेवाली अधिकांश वार्ताओं में इन्हें श्री गोकुलनाथजी कृत लिखा है।

२. जैसा कि श्रीकंठमणि शास्त्रीजीने अपने वक्तव्य में कहा है, श्रीगोकुलनाथजी के समसामयिक श्रीदेवकीनन्दनजी रचित 'प्रभु चरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थमें भी श्रीगोकुलनाथजी द्वारा कही हुई वार्ताओं का सूक्ष्म उल्लेख है।

३. जैसा कि पीछे कहा गया है श्रीगोकुलनाथजी के शिष्य और उनके समसामयिक गो. श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाशवाली वार्ताओं में इन वार्ताओं को गोकुलनाथजीकृत लिखा है।

४. श्रीहरिरायजी के शिष्य श्रीविट्ठलनाथ भट्ट द्वारा रचित सम्प्रदाय कल्पद्रुम में–जिसका रचनाकाल इसी ग्रन्थ में संवत् १७२९ दिया है और जो वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईसे सं. १९५० में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ १४१ पर–श्रीगोकुलनाथजी के बनाए ग्रन्थोंका उल्लेख है। वहां लेखक कहता है—

"बचनामृत चौबीस किय, दैवी जन सुख दान।
वल्लभ विट्ठल वारता, प्रगट कीन नृप मान"

इसमें श्रीवल्लभाचार्य और श्रीविट्ठलनाथजी दोनों की वार्ताओं का उल्लेख है।

६. " निजवार्ता घरूवार्ता और चौरासी बैठक के चरित्र " नामक छपे हुए ग्रन्थ के पृष्ठ ६३ पर श्रीगोकुलनाथजी के भक्तों की चारित्रिक वार्ताओं का मौखिक रूपसे कहने का इस प्रकार उल्लेख है।

" श्री गोकुलनाथजी आप भगवदीयनतें इतनी कथा कहि विराम करत भए, तब भगवदीयनने बीनती कीनी, महाराज ! आपने श्री आचार्यजी महाप्रभुकी तीन पृथ्वी परिक्रमा के चरित्र संक्षेप में सुनाए । परि या चरित्रामृत में हमकों तृप्ति नांहि होत। तातें और हू श्रीआचार्यजी के चरित्र सुनाइवेकी कृपा करोगे। तब श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करत भए जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरित्र तो अनन्त हैं पर और हू संक्षेप सों तुमकों सुनावत हों। ऐसे कहिके आप और हू चरितामृत अपने भगवदीयन को पान करावत भए।"

इसके बाद मे ८४ वार्ताओं का उल्लेख है।

७. इन वार्ताओं के प्रचारका ध्येय भक्तों के चारित्रिक उदाहरणों को उपस्थित करके भक्ति भावका हृदय में उद्रेक करना है। गोकुलनाथजी इसी विचारसे इन वार्ताओं को कथारूप से कहते थे। जगदीश्वर प्रेस से सं. १९५१ में छपी चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ. २९१ के लेख से तथा कांकरोली में श्रीद्वारिकादासजी के पास रक्षित निजवार्ताकी एक प्राचीन (सं. १८५१ की) प्रतिलिपि से भी इसकी पुष्टि होती है।

" और श्रीगोकुलनाथजी आप कथा कहते सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी आप दामोदरदास संभरवारे की वार्ता करत हुते, तब एक वैष्णवने पूछ्यो जो महाराज, आज कथा न कहोगे। तब श्रीगोकुल-

नाथजी आप श्रीमुखतें कह्यो जो आज तो कथा को फल कहत हैं। तातें भगवदीयन को अवश्य चौरासी वार्ता कहनी और सुननी, **जातें भगवद्भक्ति होंय और श्रीठाकुरजीके चरणारविंद में स्नेह होय और श्रीनाथजी प्रसन्न होय।"**

उपर्युक्त कथनसे यह सिद्ध है कि वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं, इसीलिए वे इनके कर्ता कहे गए हैं। वास्तव में गोकुलनाथजीने इन वार्ताओं को अपने हाथसे नहीं लिखा। इनके सम्पादक श्रीहरिरायजी हैं।

दूसरा प्रश्न है ८४ और २५२ वार्ता का रचनाकाल।

कंठमणि शास्त्रीजी के वर्गीकरण से वार्तासाहित्य के इतिहासका परिचय मिलता है। पीछे कहे प्रमाणों से पाठक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता २५२ वार्ता से अधिक पुरानी है। वास्तव में २५२ की हमें ८४ वार्ता के समान प्राचीन प्रति देखने को नहीं मिली। कहा जाता है कि कामबन में बहुत प्राचीन प्रति विद्यमान है। २५२ वार्ता की, लगभग १२० वर्ष पुरानी प्रतियां हमने गोकुल और मथुरा मे देखी हैं। उनमें के बहुत से प्रसंग छपी हुई २५२ में छोड़ दिये गए हैं। अप्रेल सन् १९३२ में ब्रज-भाषा के विशेषज्ञ प्रो. डा. धीरेन्द्र वर्माजीने 'हिन्दुस्तानी' में एक लेख इन वार्ताओं पर लिखा था। डा. वर्माने भाषा की दृष्टि से चोरासी वैष्णवन की वार्ता को दोसौ बावन वार्ता की अपेक्षा अधिक पुराना बताया है। अनुमान हमारा भी यही कहता है कि श्रीगोकुलनाथजीके ८४ वार्ता वाले बचनों का संकलन पहले हुआ और २५२ वार्ताका

बाद मे, परन्तु दोनों का संकलन हरिरायजी के सं. १७२६ में गोकुल छोड़ने से पहिले ही हो गया था। सं. १७२६ में औरंगज़ेब के अत्याचारसे वैष्णव, श्रीनाथजीको उनके सम्पूर्ण वैभव सहित गोवर्धनसे बाहर ले गए और दो वर्ष बाद सं. १७२८ में उनको नाथद्वारमें विराजमान किया। उनके साथ श्रीहरिरायजी भी आए थे। ज्ञात होता है कि श्रीहरिरायजीने अपने उत्तर जोवनकालमें वार्ता पर अपना भाव-प्रकाश लिखा होगा।

२५२ वार्ता में अजबकुंवर, गंगाबाई, लाड़बाई और धारबाई के चरित्रों में कुछ प्रसंग ऐसे आते हैं जिनमें औरंगजेब के मंदिर तोड़नेका जिक्र है। इसी वार्ता में श्रीगोकुलनाथजी का नाम आदर प्रदर्शक शब्दों में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के वृतान्त स्वभावतः पाठकों के हृदय में शंका उत्पन्न कर सकते हैं कि यह २५२ वार्ता ग्रन्थ गोकुलनाथजी कृत नहीं हो सकता क्यों कि ये घटनाएं श्रीगोकुलनाथजी के समय के बाद की हैं। किन्तु इन प्रसंगों का समावेश प्रथम श्रीहरिरायजीने किया है, जो औरंगज़ेबके मंदिर तोड़ने के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। गोकुलनाथजी के कहे हुए प्रसंगों को उनके अनेक शिष्यों ने लिखा है, विशेष रूप से श्रीहरिरायजीने*। २५२ वार्ता में हरिरायजीके बहुत

* भावप्रकाश में हरिरायजीने ऐतिह्य साधनोंका भी संग्रह किया था जैसा कि सूरदास, परमानन्द आदि की प्रस्तुत ग्रन्थकी भावप्रकाश वाली वार्ताओंमें विद्यमान है। इससे यह भी निश्चित है कि वार्ता के तृतीय संस्कर-णके समय जो कि सं. क. के आधारसे सं. १७२९ के बाद हुआ है, श्रीहरिरायजीने लाडबाई, धारबाई. अजबकुंवर और उस समय तक बिद्यमान गंगा क्षत्रानी आदिके श्रीगोकुलनाथजी द्वारा प्रकटित अपूर्ण प्रसंगों को

समय बाद वैष्णवोंने अब वार्ताओंको छपवाया, उस समय उन्होंनें मन मानी घटा बढी कर ली, जैसा कि सूरदास ठाकुरदासके कथनसे सिद्ध होता है। २५२ वार्ता की प्रस्तावना में वैष्णव सूरदास ठाकुरदास आगे लिखते हैं, " २५२ वैष्णवन की वार्ता सम्पूर्ण मिली नहीं, जासु मैंने वल्लभकुलके बालकन के मुखसों और प्राचीन वैष्णवन के मुख सूं सुनी है सो वार्ता मिलायके २५२ वार्ता संपूर्ण करी है।"

अब प्रश्न है कि इन वार्ताओं में दिए हुए वृतान्त कहां तक प्रमाण कोटिमें गिने जा सकते हैं। हिन्दी के कई बिद्वानोंने कहीं तो यह कहकर ८४ और २५२ को अप्रमाणिक कह दिया है कि ये साम्प्रदा-किय गौरव बढानेके लिए गढ़ी हुई कपोल कल्पनाएं हैं। और कहीं कुछ विद्वानों ने छपी वार्ताओंमें श्रीगोकुलनाथजी के समय के बाद दो एक घटनाओं का समावेश तथा भाषा संबन्धी रूपान्तर देख कर सम्पूर्ण वार्ता को अप्रमाणिक सिद्ध कर दिया है।

पहले कथन की सहमति में हम इतना मानते हैं कि भक्तों के आध्यात्मिक चरित्रों में अलौकिक घटनाओं का समावेश किसी हद तक अवश्य हुआ है, वैसे भक्तो की दृष्टिसे यही अलौकिक घटनाएं अधिक महत्त्वकी हैं, परन्तु वार्ताके भौतिक चरित्र—प्रसंगो में घटा बढी से सम्प्रदाय का कोई गौरव नहीं बढता। चाहे कोई भक्त क्षत्रिय हो और चाहे ब्राह्मण। वैसे आचार्यजी और गुसांईजी के शिष्यों में चूहड़ जाति

पूर्ण किया है, और इसी अरसे में श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता की भी रचना की है जिसका उल्लेख गंगाबाईकी वार्ता में मिलता है।

से लेकर ब्राह्मण तक, सभी जाति के लोगों का समावेश है। मेरे विचारसे भक्तों के चरित्रो में अलौकिक चरित्र के कारण प्रसंगो में ऐतिहासिक महत्ता अग्राह्य नहीं होनी चाहिए। विशेष रूप से वहां, जहां अन्य विश्वस्त प्रमाणों का अभाव है।

दूसरे आक्षेप पर हम पहले ही कह चुके हैं कि वास्तवमें चौरासी वार्ता अष्टसखाओं की वार्ता, २५२ वार्ता तथा अन्य कई ग्रन्थ श्री गोकुलनाथजी के हाथ के लिखे हुए नहीं हैं। भाषा का रूपान्तर ८४ और २५२ वार्ताओं में अवश्य है। परन्तु यह रूपान्तर हमें केवल चौरासी में भी जिसको डा. धीरेन्द्र वर्मा और रामकुमार वर्माने भी प्रामाणिक माना है, भिन्न भिन्न समय की प्रतिलिपियों में बहुत मिलता है। प्रतिलिपिकारों का तथा प्रतिलिपि कराने वाले वैष्णवों का ध्यान भाषा की शुद्धता को ओर नहीं रहा। उनका ध्यान केवल वृतान्त के भाव की ओर रहा है, इसी लिये लिखियाओंने अपने अपने प्रान्त और अपनी अपनी शिक्षा बुद्धि के अनुसार भाषा का रूपान्तर कर मारा है। इसलिए जिस वैष्णव ग्रन्थ में जो तिथि दी हो हम केवल उसी समय की भाषा का अनुमान उस ग्रन्थसे लगा सकते है। इस प्रकार भाषा के आधारसे साधारण लोगों की नवीन प्रतिलिपियों को महत्त्व पूर्ण नहीं समझना चाहिये।

हम पहले कह चुके हैं कि ये वृतान्त श्रीहरिरायजीने संगृहीत किये हैं और उन्होंने अपनी टिप्पणीयोंसे उनको स्पष्ट किया है। हरि-रायजी सम्प्रदाय के बहुत विद्वान; बडे भारी लेखक और उन्नायक हुए

हैं, उन्होने बहुत सी यात्राएंकी थीं। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह हमारा अनुमान है अधिकांश में विश्वस्त सूत्र से सूचना लेकर लिखा होगा। अष्टछाप कवियों पर हरिरायजी की अलग से भावना है। इस लिये हम अष्टकवियों की जीवन सामग्री के लिए भावनावाली ८४ और अष्ट वार्ताओं की प्रतियों को कांकरोली की १६९७ की प्रतिको प्रामाणिक मानते हैं। २५२ वार्ता की भावनावाली प्रति मिले तो उसकी प्रामाणिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा अन्यथा अष्ट कवियों की जीवनी के प्रमाण स्वरूप तो उपर्युक्त ग्रन्थ उस समय तक पर्याप्त है जब तक लोगों को कोई अन्य अधिक विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता।

कांकरोली
ता. २५।६।१९४१

दीनदयालु गुप्त
एम. ए. एल. एल. बी.
हीन्दी लेक्चरर **लखनऊ** विश्वविद्यालय

—◇—

विद्याविभाग कांकरोलीद्वारा प्रकाशित—

अष्टछाप पर अभिप्राय

हिन्दी साहित्यमें व्रजभाषा के अष्टछाप कवि एक विशेष महत्व का स्थान रखते हैं। इन कवियों की जीवनियों का अधिकांश में विश्वस्त आधार '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा '२५२ वैष्णवन की वार्ता है।

सन १९१९ में हिन्दी के प्रोफेसर, आचार्य डा० धीरेन्द्रवर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय, ने डाकौरजी से सं. १९६० में प्रकाशित ८४ और २५२ वार्त्ताओं के आधार पर अष्टछाप कवियों की वार्ताओं का, 'अष्टछाप' नाम से संकलन किया था। प्रस्तावना में उन्होंने इन वार्ताओं की ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बन्धी महत्ता पर प्रकाश डाला है। श्री वर्माजी का यह संग्रह विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में हिन्दी गद्यसाहित्य की पाठ्य पुस्तक रूप में पढ़ाया जाता है। हिन्दीसाहित्य के इतिहासकारों ने 'अष्टछाप' कवियों का वृतान्त अधिकांश में इन वार्ताओं के सहारे पर ही दिया है।

वल्लभसंप्रदायी साहित्य-संग्रहालयों में तथा वैष्णव घरों में वार्ता के उपर्युक्त वृत्तान्त के अतिरिक्त, इन वार्ताओं पर गो० हरिरायजी (समय सं. १६४७ से सं. १७७२ तक) कृत 'भावप्रकाश' भी मिलता है, जिनमें पुष्टिमार्गीय भक्तों के वृत्तान्त कुछ विशेष सूचना के साथ दिये हुए हैं। गो० हरिरायजी के 'भावप्रकाश' की सूचना का सबसे प्रथम प्रसार सं.१९९६ में कांकरोली से प्रकाशित 'प्राचीन वार्ता

रहस्य' प्रथम भाग नामक पुस्तक से हिन्दी-संसार में हुआ। अष्टभक्त कवि के भावप्रकाश वाले वृत्तान्त की सूचना जब कुछ विद्वानोंने पत्रिकाओं निकलवाई तो हिन्दी संसार का ध्यान इस 'भावप्रकाश' की ओर विशे रूप से आकृष्ट हुआ। हरिरायजी की भावनावाली ८४ वार्ता (सं. १८५७ की प्रतिलिपि) तथा २५२ वार्ता के चार 'अष्टछाप वाले कवियों की वार्ता की हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे भी गोकुल पिछले वर्ष प्राप्त हुई थी। मैंने उन्हे डा० वर्मा तथा अन्य हिन्द प्रेमियों को दिखाया तो उन्होंने मुझे उनके 'अष्टछाप' सम्बन्धं वृत्तान्त को, अलग से छपवाने की सम्मति दी। अष्टछाप पर नवीन सामग्री की मांग का अनुभव कांकरौली विद्याविभागने भी किया।

कांकरोली विद्याविभाग में वल्लभ-सम्प्रदायी तथा अन्य प्राचीन हस्तलिखित साहित्य का, एक बृहत और सुव्यवस्थित संग्रह सुरक्षित है। जिसका अवलोकन आजकल मैं कांकरौली में रहकर कर रहा हूँ। विद्वद्वर श्रीकण्ठमणि शास्त्री इस विभाग के संचालक हैं और इस बहुमूल्य संचित निधि का उपयोग अपनी लेखनी द्वारा कर रहे हैं। उन्होंने तथा साम्प्रदायिक साहित्य और सेवाविधि के विशेषज्ञ श्रीद्वारिकादासजीने बडी योग्यता पूर्वक गो० हरिरायजी कृत 'भाव-प्रकाश' के साथ प्रस्तुत 'अष्टछाप' वार्ता का संकलन किया है। उन्होंने अपने इस कार्य से वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक आवश्य-कता की पूर्ति की है।

उक्त संकलनका आधार, जैसा कि ग्रन्थ की प्रस्तावना में सूचित है, सं. १७५२ का 'अष्टसखान को वार्ता' पर गो० हरिरायजी का

भावप्रकाश है। अष्टसखा तथा ८४ वार्ता की सं. १६९७ की लिखी एक प्रति कांकरौली विद्याविभाग में विद्यमान है। इस प्रति का मैंने निरीक्षण किया है और इस की प्राचीनता पर मुझे संदेह नहीं है। यह वार्त्ता गो० गोकुलनाथजी के समय की ही लिखी हुई है। सं. १६९७ की यह वार्ता और सं. १७५२ की प्रस्तुत वार्ता भाषा की दृष्टि से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रस्तावना श्रीकण्ठमणि शास्त्रीजी ने बड़ी खोज के साथ लिखी है, जिससे संस्कृत और साम्प्रदायिक साहित्य के विद्वान शास्त्रीजी के हार्दिक हिन्दी साहित्यानुराग और विद्वत्ता का परिचय मिलता है। शास्त्रीजी प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक, श्रीद्वारिकादासजी के सहयोग से अष्टछाप कवियों के काव्य का तथा अन्य वल्लभ-सम्प्रदायी कवियों का, उनके परिचय सहित संग्रह निकालने वाले है। मैं, उनके इस विचार और कार्यकी हृदय से प्रशंसा करता हूं। प्रस्तुत 'अष्टछाप' के संकलन और प्रकाशन के लिये कांकरौली विद्याविभाग हिन्दी संसार की प्रशंसा का भागी है। मुझे ज्ञात हुआ है कि इस साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में कांकरौली के विद्या और कलाके प्रेमी महाराजश्री गो० व्रजभूषणलालजी तथा उनके अनुज गो० श्री विठ्ठलनाथजी विशेष प्रोत्साहन दे रहे हैं। श्री महाराजों का यह कार्य वास्तव में स्तुत्य है

दीनदयालु गुप्त
एम, ए. एल. एल. बी.
हिन्दी लेक्चरर, **लखनउ** विश्वविद्यालय,

शुद्धि-पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ-पंक्ति	
करनफूल कछु	करनफूल और कछु	३१	१२
सूरश्याम पके	सूरश्याम छापके	४५	१५
सूरजदास	सूरज	५६	९
भगवद् वर्णन	भगवद्जश वर्णन	७३	१७
नन्द खेलत	नन्द के खेलत	७५	१०
१६०५	१६२५	९३	२१
औरे सब	औरे तो	९५	२
करन	करनफूल	१२४.	१९
करत नहीं	नहीं करते	१२८	२१
श्रीअक्रूरजी	श्रीकृष्णजी	१८६	२२
गाय सों	गाय वा सों	२०६	१७
होयकी	होयवे की	२१७	२०
कछू	जो कछू	२२४	२
पहिची	पहोंचि	२२९	७
सब बालकन सहित	×	२५५	२०
ब्राह्मण	ब्राह्मण जाके पद अष्टछापमें गाइयत हैं	२६४	३
रहे जो	रहे और विचारे जो-जो	२६४	१४
लोगन सों	लोगन ने	२६९	१
आज और......	सुभग सिंगार आज......	३०३	४
उहनो	उराहनो	३१८	२१
पढै	पठे	३२३	२१
तूम	तू	३२६	१९
जब	तब	३२७	१६

श्रीहरिराय महाप्रभु.

प्राकट्य संवत् १६४७ भाद्रपद वदी ५

સૈયા આર્ટ પ્રીન્ટરી, અમદાવાદ.

अष्टछाप

(१) महानुभाव श्रीसूर

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सूरदासजी सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सींही[1] गाम है तहां रहते, तिन की वार्ता-

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश-

सो ये सूरदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के अष्टसखा हैं, सो तिन में ये 'कृष्ण सखा' को प्राकट्य हैं। तहां यह संदेह होय जो- निकुंज **आधिदैविक** लीला में तो सखीजनन को अनुभव है, जो **मूलस्वरूप** सखा तहां नाही हैं। सो सूरदासजीने रहस्य-लीला, विना अनुभव कैसे गाई ?

तहां कहत है जो श्रीभागवत में कहे हैं जो-जब श्रीठाकुरजी आप वन में गोचारन लीला में सखान के संग पधारत हैं, सो सगरी गोपी-जन लीला को अनुभव करत हैं। सो घर में सगरी लीला वन की गान

---

१. सींहीं गामने सीहोरा अने शेरगढना नामथी पण केटलाक प्राचीन ग्रन्थोमां लख्युं छे.

करत हैं। ता पाछें जब श्रीठाकुरजी संध्या समय वन ते घरकूं आवत हैं, ता पाछें रात्रिकों गोपीजन सों निकुंज में लीला करत हैं। सो ता अंतरंगी सखान कों विरह होत है, तब वे निकुंजलीला को गान करत हैं,* अनुभव करत हैं। सो काहेतें ? कुंज में सखीजन हैं सो तिन के दोय स्वरूप हैं, सों कहत हैं:—पुंभाव के सखा और स्त्री भाव की सखी। सो दिन में सखा द्वारा अनुभव और रात्रि कों सखी द्वारा अनुभव है। सो काहेतें ? जो वेद की ऋचा हैं सो गोपी हैं। और वेद के जो मंत्र हैं सो सखा हैं। परंतु गोपीजन देखिवे मात्र स्त्री है, सो इनके पति हैं, परंतु ये स्त्री नांही हैं। सो एसे–(जैसे) भुज्यो अन्न होय सो धरती में बीज नाही ऊगे। तेसेही इनको लौकिक विषय नांही है। सो यहां तो रसरूपलीला सदा सर्वदा एक रस हैं। सो तेसेही अंतरंगी सखा श्रीठाकुरजी के अंगरूप हैं। सो सखी रूप, सखा रूप दोउ रूप सों रात्रदिन लीलारस करत हैं.

सो तासों सूरदास 'कृष्ण सखा' को प्राकट्य हैं। और कृष्ण सखा को दूसरो स्वरूप सखी है, सो लीला कुंज में है तिनको नाम चंपकलता है। सो तासों सूरदास को सगरी लीला को अनुभव श्री आचार्यजी महाप्रभुन की कृपा ते होयगो।

सो प्रकार कहत हैं। तहां यह संदेह होय, जो– लीला संबंधी है सो पहले तें अनुभव क्यों नाही भयो। सो इन कों मोह क्यों भयो ? तहां कहत हैं जो– श्रीठाकुरजी भूमि के ऊपर प्रकट होय के लौकिक

---

* જુઓ શ્રીમદ્‌ભાગવત દશમસ્કંધના વેણુગીત ઉપરની કારિકા ૧–૨, અને શ્રીમતી ટિપ્પણી.

की नांई लीला करत हैं, सो जस प्रकट करनार्थ। सा लीला गाइ जगत में लौकिक जीव कृतार्थ होत हैं। तैसेई श्रीठाकुरजी के भक्त हू जगत में लौकिक लीला करि अलौकिक दिखावत हैं। जैसें श्रीरुक्मिनीजी साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी को स्वरूप हैं, परंतु जब जन्मी तब देवी पूजि के वर मांग्यो। फेरि श्रीठाकुरजी के पास ब्राह्मण ब्याह के लिये पठायो। सो यह जग में लीला प्रकट करणार्थ। जैसे कालिंद्रीजी सूर्यद्वारा प्रकट होय के श्रीयमुनाजी में मंदिर करि तपस्या करि, अर्जुन सों कही जो– मैं श्रीठाकुरजी कों बरूंगी। तब श्रीठाकुरजी आपु विवाह कियो। सो ये लीलामात्र, (क्यों जो) ये सदा श्रीठाकुरजी की प्रिया हैं। सो व्रजमें श्रीस्वामिनीजी और श्रीठाकुरजी आपु ये दोउ एक रूप हैं, परंतु व्रजलीला प्रकट करिवे के लिये श्रीठाकुरजी श्रीनंदरायजी के घर प्रकटे और श्रीस्वामिनीजी श्रीवृषभानजी के घर प्रकट होय के अनेक उपाय मिलिवे कों रात्रदिन किये। सो यह लीला (केवल) जगत में प्रकट करिवे के लिये (ही)। (नातर) ये तो सदा एक रस लीला करत हैं।

सो तैसेई सूरदासजी श्रीआचार्यजी के सेवक होय के भगवल्लीला गाये। सो यामें स्वामी को जस वढै। सो जिन के सेवक सूरदास एसे भगवदीय, तिन के स्वामी श्रीआचार्यजी आपु तिन की सरन जैये। सो या प्रकार जगत में लीला करि जस प्रकट किये, सो आगे लौकिक जीव को गान करि भगवत्प्राप्ति होय। सो सूरदासजी जगत पर अब ही प्रकटे, परंतु लीला को ज्ञान नांही है।

सो सूरदासजी दिल्ली के पास चारि कोस ऊरे में एक सीहीं गाम

है, जहां राजा परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ कियो है। सो गाम में एक सारस्वत* ब्राह्मण के यहां प्रकट

सूरदासजी का पूर्व चरित्र

सो सूरदासजी के जन्मत ही सों नेत्र नाही है और नेत्रन को आकार गठेला कछू नाह ऊपर भोंह मात्र है। सो या भांति सों सूरदास को स्वरूप है। सो तीन बेटा या सारस्वत ब्राह्मण के आगे के हत

+ ઉક્ત રામદાસને સીંહી ગામના દરિદ્ર બ્રાહ્મણ તરીકે અહ વર્ણવ્યા છે. જ્યારે 'આઇનિઅકબરી'વાળા 'રામદાસ ગ્વાલેરી' સંબંધ મિષ્ટર બ્લૉકમૈન સાહેબ પોતાના 'આઇનિઅકબરી'ના અનુવાદમ 'બાબા રામદાસ' સંબંધી નોટ કરતાં આ પ્રમાણે લખે છે—

"Note—Badaoni (II 42) Says Ramdas came from Lakhnau. He appears to have been with Bairamkhan during his rebellion and he received once from him one lakh of tankahas, empty as Bairam's treasure chest was. He was first at the court of Islamshah and is looked upon as second only to Tansen. His son Surdas is mentioned below."

આ લેખથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે 'બાવા રામદાસ' પહેલાં દિલ્હીના બાદશાહ ઇસલામશાહ કે જે સન ૧૫૪૫ ઇસ્વીમાં ગાદી ઉપર બેઠો હતો, અને સન ૧૫૫૩ ઇસ્વીમાં મરી ગયો. (સં. ૧૬૦૨ થી ૧૬૧૦) તેના દરબારમાં હતા. પછી બાદશાહ હુમાયુના રાજ્ય-કાળમાં એના વજીર બેરામખાંની પાસે તે રહેવા લાગ્યા, અને વિ. સં. ૧૬૧૬–૧૭ માં બેરામખાં હુમાયુના બેટા અકબરથી બંડ

और घर में बहोत निष्किंचन हतो। वा सारस्वत ब्राह्मण के घर चौथे सूरदासजी प्रकटे। सो तब इनके नेत्र न देखे, आकार (हू) नांही। सो या प्रकार देखि के वा ब्राह्मण ने अपने मनमें बहोत सोच कियो, और दुःख पायो।

जो देखो—एक तो विधाता ने हमकों निष्कंचन कियो, और दूसरे घर में एसो पुत्र जन्म्यो। जो अब याकी कौन तो टहल करेगो ? और कौन याकी लाठी पकरेगो ? सो या प्रकार ब्राह्मण ने अपने मन में बहोत दुःख पायो। सो काहेतें जो— जन्मे पाछे नेत्र जांय तिनको आंधरा कहिये, सूर न कहिये। और ये तो सूर हैं, सो मातापिता घर के सब

करी लड्यो त्यारे ते वखते तेओ साथे हता. आ रामदास **लखनौथी** आवेला हता.

हवे सांप्रदायिक इतिहास तरफ दृष्टिपात करतां ए विस्पष्ट छे के ज्यारे चोथा पुत्र तरीके श्रीसूरनो जन्म सं. १५३५ मां छे त्यारे तेमना पिता एक दरिद्र ब्राह्मण सारस्वत रामदासनो जन्म ओछामां ओछो सं. १५१५ ना लगभग होवो जोइए. ए हिसाबे उक्त इतिहासने मेळवो तो १६२० थी शरू थता अकबरना दरबारमां आ रामदास जो आव्या होय तो ते वखत तेमनी उमर सो वर्षथी पण उपरनी होवी जोईए.

ए तद्दन असंभवित छे के एटली उमरनो एक प्राकृत मनुष्य तानसेन आदि महा गवैयाओमां बीजा नंबरे होई शके ! केमके ते उमरे राग, कंठ आदि सुमधुर एक सरखां गावाने योग्य रहेतां नथी. वळी अकबर बादशाहने त्यां रहेवाथी तेओ दरिद्र पण संभवे नही ते आपणे प्रत्यक्ष जोई शकीए छीए. तेथी अहिं आईनेअकबरी-वाळा रामदास कोई बीजाज होवा जोईए.

—सम्पादक

कोई इनसों प्रीति करें नांहीं । जानें, जो– नेत्र बिना को पुत्र कह
तासों इनसों कोई बोलतो नाहीं ।

सो एसे करत सूरदासजी वरस छह के भये । तब पिता
वा गाम के एक द्रव्यपात्र क्षत्री जजमान ने दोय मोहोर दान में दीनी
तब यह ब्राह्मग उन मोहोरन को ले के अपने घर आयो, और अप
मन में बहोत प्रसन्न भयो, और स्त्री तथा घर में देह संबंधी बेटा बे
हते सो तिन सबनसों कही जो– भगवान ने दोय मोहोर दीनी हैं
कालि इनको बटाय के सीधो सामान लाऊंगो । तातें अपने घर में दो
चार महीना को काम चलेगो । सो या प्रकार सबन को वे दोय मोहो
दिखाई । ता पाछें रात्रिकों एक कपडा में बांधि के ताक में धरि
सोयो । तब रात्रि को दोय मोहोरन कों मूसा ले गये, सो घर क
छांतिन में भिह्ले में धरि दीनी ।

तब सवारे उठि के देखे तो मोहोर नाही है। सो तब तो सूरदास
के माता पिता छाती कूटन लागे, और रोवन लागे, और अपने मन मे
अति कलेश करन लागे । सो बा दिन खानपान नांही कियो । सो य
भांति सों घनो विलाप करन लागे । सो देखि के सूरदासजी मातापित
सों बोले जो– तुम एसो दुख विलाप क्यों करत हो ? जो श्रीभगवान
को भजन सुमिरन करो तासों सब भलो होय । सो या भांति सूर-
दास उनसों बोले । तब मातापितान ने सूरदास सों कही जो– तू एसी
घडी को सूर जनम्यो है, सो हम कों वाही दिन सों दुख ही मे जनम
बीतत है। जो हम कों काहू दिन सुख नाही भयो, और हमकों भरपेट
अन्नहू नाही मिलत है। जो श्रीभगवानने हमकों दोय मोहोरो दीनी हती
सोहू योंही गई ।

तब सूरदासजी बोले जो– तुम मोकों घर में न राखो तो मैं अब ही तिहारी मोहोर बताय देउं। परि पाछे मोकों घर में राखियो मति और तुम मेरे पीछे मति परियो। तब यह सुनि के मातापिता ने सूरदास सों कह्यो जो– और हमकों कहा चहियत है? जो तू हमकों मोहोर बताय देउ, और हमारी मोहोर पावे फेरि तेरे मन में आवे तहां तू जाइयो। हम तोकों बरजेंगे नांही। तब सूरदास बोले जो– छांति में भिल्लो है सो भिल्ले के मोहोडे पर धरी है। तब वह ब्राह्मण खोदि के मोहोर पाये।

तब सूरदासजी घरमें ते चलन लागे। मातापिता कों मोह उत्पन्न भयो। जो देखो, या सूरदास को सगुन बहोत आछो भयो। याके कहे प्रमान मोकों तुरत ही मोहोर मिली है। सो यह बिचारि के मातापिता ने सूरदासजी सो कह्यो– जो सूरदास! अब तुम घरतें क्यों जात हो? अब तो यह मोहोर पाय गई है, तातें जहां तांई यह मोहोरन को अनाज रहै तहां तांई तुमहू खावो, पाछैं जहां जानो होय तहां तुम जैयो। तब सूरदास बोले जो– मोकों अब तुम घर में मति राखो, जो मोकों घर में राखोगे तो तिहारी मोहोर फेरि जायगी. और तुम दुख पावोगे।

यह सुनि के माता पिता कछु बोले नाही, और सूरदासजी तो हाथ में एक लाठि लेकें घर सें निकसे। सो सींही तें चले, सो चार कोस ऊपर एक गाम हतो, तहां एक तलाव गाम बाहिर हतो। सो वहां एक पीपर के वृक्ष नीचे सूरदासजी आय बैठे और वा तलाव को जल पियो। तहां दोय चार घडी दिन पाछलो रह्यो हतो, तब ता गाम को ब्राह्मण जमींदार तहां आय के सूरदासजी कों पहचान के कहन लाग्यो जो– मेरी १० गाय तीन दिनतें मिलत नाही, कोई बतावे तो दो गाय वाको दउं।

देयगो, ताईं तहां मै तुमकों लाउंगो, और सवेरे या तलाव पर तथा गाम में जहां तुम कहोगे तहां छापरा डार दऊंगो.

पाछे सवेरो भयो, तब यह जमींदारने आय के कह्यो– जो तिहारो मन कहां रहेवोको है? तब सूरदासने कही– जो अब तो याही तलाव पर पीपरा नीचे कछुक दिन रहवे को मन है। तब वा जमींदारने वहां एक झोंपडी छवाय दीनी और टहल करिवेकुं एक चाकर राखि दियो।

ता पाछें वा जमींदारने दसपांच जनेके आगे बात करी– जो फलानेको। बेटा सूरदास बडो ज्ञानी है। हमारी गाय खोय गई हती सो बताय दीनी सो वह सगुन में आछो जाने है। सो मै वाकों तलाव के उपर पीपरके नीचे झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियो है। और नित्य पूरी दहीं दूध पठावत हूं, सो तासों काहूकों सगुन पूछनो होय तो वाकूं जाय के पूछि आइयो।

यह सुनि के सब लोग गाम के आवन लागे। सो जो कोइ पूछे तिनकों सगुन बतावे सो होई। तब सूरदास की बडी पूजा चली, भीर लगी रहै। खानपान भली भांति सों आवन लाग्यो। सो तब कछुक दिनमें सूरदास कों रहिवे के लिये एक बडो घर तलाव पर बनाय दियो, और वह झोंपरी हू दूरि कीनी। और वस्त्र द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो। सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये। जाके कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय। सो सूरदास विरह के पद सेवकनकों सुनावते। सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो.

या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे वरस अठारे के भये। सो एक दिन रात्रिको सोवत हते, ता समय सूरदास को

तब सूरदासजी ने कही जो– मोकों तेरी गाय कहा करनी है ? पर तू पूछत है तब कहत हूं जो– यहां सों कोस ऊपर एक गाम है। सो वा गाम के जमींदार के मनुष्य रात्रि कों आय के तेरी १० गाय ले गये हैं। वा जमींदार के घर के भीतर एक दूसरो घर है, सो तहां जमींदार के घोडा बंधे हैं, सो उन घोडान के पास तेरी गाय बंधी हैं। तब वे जमींदार दस आदमी संग ले जाइ देखे तो गाय सब बंधी हैं, सो ले आय के सूरदासजी सों कह्यो जो– सूरदास ? तिहारे कहे प्रमान मेरी दस गाय पाय गई हैं, सो ये दोय गाय तुम राखो। तब सूरदासजी ने कही जो– मैं अपनो ही घर छोडि के श्री ठाकुरजी को आश्रय करि के बेठो हूं सो मैं तेरी गाय काहेको लेऊं।

तब वह जमींदार सूरदास कों बालक जानि के शिक्षा की बात करन लाग्यो, जो अरे ! तू फलाने सारस्वत को बेटा है, और नेत्र तेरे हैं नाही, और कोऊ मनुष्य हू तेरे पास नाहीं है, सो तू अपने घर कों छोडि के रूठि के यहां क्यों बेठ्यो है ? नेत्र हैं नाही, कैसे दिन कटेंगे ?

तब सूरदासने कह्यो जो– मैं तेरे ऊपर तो घर छोड्यो नाहीं। मैं तो नारायण के ऊपर घर छोड्यो है, सो वे सगरे जगत को पालन करत हैं, सो मेरो हू करेंगे। और जो होनहार होयगी सो होयगी।

तब जमींदार ने कही, मैं हू ब्राह्मण हों, दारि रोटी मेरे घर भई है, कहे तो लाउं। तब सूरदास ने कही जो– मैं तो गैल की चली रोटी नाही खात। तब वह जमींदार अपुने घर जाइ पूरी कराइ और दूध ले जाइ सूरदास कों जल भरि दे के कह्यो जो– सूरदास ! तुम कोई बात को दुःख मति पाइयो। जो जहां तांई भगवान मोकों खायवेकों

देयगो, ताई तहां मै तुमकों लाउंगो, और सवेरे या तलाव पर तथा गाम में जहां तुम कहोगे तहां छापरा डार दऊंगो.

पाछे सवेरो भयो, तब यह जमींदारने आय के कह्यो– जो तिहारो मन कहां रहेवोको है? तब सूरदासने कही– जो अब तो याही तलाव पर पीपरा नीचे कछुक दिन रहवे को मन है। तब वा जमींदारने वहां एक झोंपडो छवाय दीनी और टहल करिवेकुं एक चाकर राखि दियो।

ता पाछें वा जमींदारने दसपांच जनेके आगे बात करी– जो फलानेको। बेटा सूरदास बडो ज्ञानी है। हमारी गाय खोय गई हती सो बताय दीनी सो वह सगुन में आछो जाने है। सो मै वाकों तलाव के उपर पीपरके नीचे झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियो है। और नित्य पूरी दहीं दूध पठावत हूं, सो तासों काहूकों सगुन पूछनो होय तो वाकूं जाय के पूछि आइयो।

यह सुनि के सब लोग गाम के आवन लगे। सो जो कोइ पूछे तिनकों सगुन बतावे सो होई। तब सूरदास की बडी पूजा चली, भीर लगी रहै। खानपान भली भांति सें आवन लाग्यो। सो तब कछुक दिनमें सूरदास कों रहिवे के लिये एक बडो घर तलाव पर बनाय दियो, और वह झोंपरी हू दूरि कीनी। और वस्त्र द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो। सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये। जाके कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय। सो सूरदास विरह के पद सेवकनकों सुनावते। सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो.

या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे वरस अठारे के भये। सो एक दिन रात्रिको सोवत हते, ता समय सूरदास को

वैराग्य आयो । तब सूरदासजी अपने मनमें बिचारे जो– देखो, मैं श्री भगवान के मिलन अर्थ वैराग्य करि के घरसों निकस्यो हतो, सो यहां माया ने ग्रसि लियो। मोकूं अपनो जस काहेको बढावनोह तो ? जो मैं श्रीप्रभुको जस बढावतो तो आछो। और यामें तो मेरो विगार भयो, तासों अब कब सवारो होय और मैं यहां सों कूंच करूं ।

सो एसे करत सवारो भयो । तब एक सेवकको पठाय मातापिता को बुलाय सब घर उनकों सोंपि दियो । पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरिके लाठी ले के उहां ते कूंच किये । सो तब जो सेवक माया के जंजाल में हते, सो संसारमें लपटे और उहांई रहे । और कितनेक सेवक जो संसार सों रहित हते, सो सूरदास की संग ही चले । सो सूरदास मनमें बिचारे जो– व्रज है सो श्रीभगवानको धाम है, सो उहाँ चलिये । तब सूरदास उहां तें चले, सो श्रीमथुराजी में आये। तहां विश्रांतघाटपे रहिके सूरदासने विचार कियो जो– मैं मथुराजीमें रहूंगो सो यहां हू मेरो माहात्म्य बढेगो और यह श्रीकृष्णकी पुरी है, सो यहां मोकों अपनो माहात्म्य प्रकट करनो नाही । और संसारमें अनेक लोग सुख दुख पावें हैं सो सब पूंछिवे आवेंगे । और यहां मथुरिया चौबे हैं सो यहां माहात्म्य बढेगो तो ये दुख पावेंगे, तासों यहां रहनो ठीक नाही ।

सो यह बिचारि के सूरदास मथुरा के और आगरेके बीचोंबीच गउघाट है, तहां आयके श्रीयमुनाजी के तीर स्थल बनायकें रहे ।

सूरदासको कंठ बहोत सुन्दर हतो । सो गान विद्यामें चतुर, और सगुन बतायवे में चतुर। सो उहां हू बहोत लोग सूरदासजी के पास आवते । उहां हूं सेवक बहोत भये सो सूरदास जगत में प्रसिद्ध भये ।

वार्ता प्रसंग–१

सो गऊघाट ऊपर सूरदास रहते, तब कितनेक दिन पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आपु अडेल तें ब्रजकूं पधारत हते। सो कछूक दिनमें श्रीआचार्यजी आप गऊघाट पधारे। ता समय श्रीआचार्यजी के संग सेवकन को वहोत समाज हतो। सो सब वैष्णव सहित श्रीआचार्यजी आपु श्रीयमुनाजी में स्नान किये। ता पाछें संध्यावंदन करि पाक करन कों पधारे और सेवक हू सब अपनी अपनी रसोई करन लगे। ता समय एक सेवक सूरदास को तहां आयो। सो वाने जायके सूरदास कों खबरि करी जो–सूरदासजी! आज यहां श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं। जो जिनने काशीमें तथा दक्षिन में मायावाद खंडन कियो है, और भक्तिमार्ग स्थापन कियो है।

तब यह सुनि के सूरदास ने अपने सेवक सों कह्यो जो–जब श्रीवल्लभाचार्यजी भोजन करिकें निश्चितता सों गादी तकियान के ऊपर विराजें ता समय तू हमकों खबरि करियो। जो–मैं श्रीवल्लभचार्यजी के दर्शन कों चलूंगो। तब वह सेवक दूरि आय के बैठि रह्यो। सो जब श्रीआचार्यजी आपु भोजन करि के गादी तकियान पे विराजे, और सेवक हू सब आसपास आय बैठे, तब वा सेवक ने जाय के खबरि करी। तब सूरदास वाही समय अपने संग सगरे सेवकन कों लेकें श्रीआचार्यजी के दरशन कों आये। सो तब आयके श्रीआचार्यजी को साष्टांग दंडवत करी।

तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो- सूर ! कछू भगवत्‌जस वर्णन करो। तब सूरदासने श्रीआचार्यजी को दंडवत करि कह्यो जो- महाराज ! जो आज्ञा। ता पाछें सूरदास ने यह पद श्रीआचार्यजी आगें गायो। सो पदः—

। राग धनाश्री ।

हौं हरि सब पतितन को नायक+ ।

फेरि दूसरो पद गायो, सो पदः—

'प्रभु हौं सब पतितन को टीको'+

सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु सूरदास सों कहे, जो- सूर है कें एसो घिघियात काहे को है ? सो तासों कछु भगवल्लीला वर्णन कर।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश	ताको आशय यह है जो- जीव श्रीभगवान सो बिछुरयो, सो तब पतित तो भयो। सो ताकों बहोत कहा कहनो, तासों भगवल्लीला गावो, जासों सुद्ध होय।

तब सूरदास ने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो- महाराज ! मैं कछू भगवल्लीला समुझत नांही हूं। तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख तें कहे जो- सूर ! श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो, जो हम तुम कों समुझाय देंगे। तब सूरदास प्रसन्न होय कें श्रीयमुनाजी में स्नान करि के अपरस ही में श्रीआचार्यजी पास आये। तब श्रीआचार्यजो ने कृपा करि

+ વિસ્તાર ભયથી આ પ્રસિદ્ધ પદો અહીં સમ્પૂર્ણ આપ્યાં નથી.

कें सूरदास कों नाम सुनायो, तापाछें समर्पन करवायो । पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये ।

श्रीहरिराय कृत भावप्रकाश

अष्टाक्षर मंत्र सुनायो तासों सूरदास के सगरे जनम के दोष मिटाये, और सात भक्ति भई । पाछें ब्रह्मसंबंध करवायो, तासों सात भक्ति और नवधा भक्ति की सिद्धि भई । सो रही प्रेमलक्षणा, सो दसम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाये । तब संपूरन पुरुषोत्तम की लीला सूरदास के हृदय में स्थापन भई, सो प्रेमलक्षणा भक्ति सिद्धि भई ।

सो सगरी श्रीसुबोधिनीजी को ज्ञान श्रीआचार्यजीने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो । तब भगवल्लीला जस बर्णन करिवे को सामर्थ्य भयो । तब अनुक्रमणिका तें सगरी लीला हृदय में स्फुरी । सो कैसे जानिये ? जो श्रीआचार्यजी आप दसम स्कन्ध की सुबोधिनीजी में मंगलाचरण की प्रथम कारिका किये हैं, सो कारिका कहत हैं । श्लोक :—

" नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि–शायिनं ।
लक्ष्मीसहस्र--लीलाभि; सेव्यमानं कलानिधिम् ॥ "

सो या मंगलाचरण के अनुसार सूरदासने श्रीआचार्यजी के आगे यह पद करिके गायो । सो पद:—

राग बिलावल :--

'चकईरी ! चल चरणसरोवर जहां नहिं प्रेम वियोग'
सो यह पद दसमस्कंध की कारिका के अनुसार किये हैं।

'लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिं।' जैसे श्लोक में कह्यो है, तैसेही सूरदासने या पदमें कही जो-

"जहां श्रीसहस्र सहित नित क्रीडत शोभित सूरजदास।"

सो यामें कहे। तामें जानि परी जो- सूरदास कों सगरी लीला श्रीसुबोधिनीजी की स्फुरी।

सो सुनिके श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये। और जाने जो- अब लीला को अभ्यास भयो। सो तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें सूरदास सो आज्ञा किये जो- सूर! कछू नंदालय की लीला गावो। तब सूरदासनें नंदमहोत्सव को कीर्तन वर्णन करिके गायो। सो पद :—

राग देवगंधार :—

'व्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी।'

सो यह बडी बधाई गाई। सो श्रीनंदरायजी के घरको वर्णन किये, तहां तांई तो श्रीआचार्यजी आप सुने। ता पाछे गोपीजन के घर को वरणन करन लागे तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख तें सूरदास सों कहे जो-

'सुन सूर सबन की यह गति जो हरि-चरन भजे।'

सो या भोग की तुक आपु कहि कें सूरदास कों चुप करि दिये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो यातें जो व्रजभक्तन को आनंद है सो भगवदीयन के हृद-यमें अनुभव-योग्य है । सो बाहिर प्रकाश होय तासों सूरदास को थांमि दिये। और सूरदासजी के हृदय में यह भी आयो हतो, जो मैंने सेवक किये हैं तिन की कहा गति होयगी ? तब श्री आचार्यजीने कही:-'सुन सूर ! सबन की यह गति जो हरिचरन भजे.'

तब श्रीआचार्यजी आप प्रसन्न होय के कहे, जो- मानों सूर नंदालय की लीला में निकट ही ठाडे हैं । सो एसो कीर्तन गायो ।

तापाछे श्रीआचार्यजीने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायो । तब सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदासने प्रथम स्कंध श्रीभागवत सों द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये। तामें अनेक दानलीला, मानलीला आदि वर्णन किये हैं।

तापाछें गऊघाट ऊपर श्रीआचार्यजी आप तीन दिन रहे। सो तब सूरदासने जितने सेवक किये हते, सो सब श्रीआचार्यजी के सेवक कराये। तापाछें श्रीआचा-र्यजी आप व्रजमें पधारे। तब सूरदास हू श्रीआचार्यजी के संग व्रज में आये।

सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप गोकुल पधारे। तब श्रीआचार्यजीने श्रीमुख सों कह्यो जो- सूर ! श्रीगोकुल

को दरशन करो। तब सूरदासजी ने श्रीगोकुल कों साष्टांग दंडवत किये। सो दंडवत करत ही श्रीगोकुल की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी।

तब सूरदासजी अपने मनमें विचारे, जो–श्रीगोकुल की लीला मैं बरनन कसैं करौं। सो काहे तें–जो श्रीआचार्यजी को मन श्रीनवनीतप्रियाजी के स्वरूप के ऊपर आसक्त है, सो श्रीनवनीतप्रियाजी को कीर्तन श्री गोकुल की बाललीला को वरनन, एसो पद सूरदासजी ने गायो। सो पदः—

राग बिलावलः-

'शोभित कर नवनीत लिये'।

सो यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आप सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। सो तापाछें सूरदासने और हू पद बाल-लीला के श्रीआचार्यजी कों सुनाये। ता पाछें श्रीआचार्यजी ने बिचारयो– जो श्रीगोवर्द्धननाथजी को मंदिर तो समरायो, और सेवा हू को मंडान भयो। तातें सूरदास कूं श्रीनाथजी के पास राखिये। तब समे समे के सगरे कीरतन को मंडान और भयो चाहिये। सो आगे वैष्णवजन सूरदास के पद गाय के कृतार्थ बहोत होंयगे।

तब यह विचारि के सूरदास कूं संग लेके श्रीआचार्यजी

आप श्रीगोवर्द्धन पधारे, सो ऊपर पधारके श्रीनाथजी के दर्शन किये। तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख सों सूरदास सों कहे जो–'सूर ! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करो और कीर्तन गावो'। तब सूरदासजी ने श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। तापाछें सूरदासजी ने प्रथम विज्ञप्ति को पद दैन्यता सहित गायो। सो पदः—

राग धनाश्रीः—

'अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल'

× × ×

सूरदास की सबै अविद्या दूर करहु नंदलाल !

सो यह पद सूरदासजी ने श्रीनाथजी कां सुनायो। सो सुनि–के श्रीआचार्यजी आप सूरदास सों कहे जो–सूरदास ! अब तो तिहारे मन में कछू अविद्या रही नांही, जो तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथजी ने दूरि कीनी है। तासों अब तुम भगवल्लीला गावो जामें माहात्म्य पूर्वक स्नेह होय।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

परंतु भगवदीय जितने हैं सो तितनेन की यही बोली है जो-अपुने को हीन कहत हैं। सो यह भगवदीयन को लक्षण है। और जो कोई अपने को आछो कहै और आपुनी बडाई करे, सो भगवान तें सदा बहिर्मुख है।

तब श्रीआचार्यजी के और श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे सूरदासजी ने माहात्म्य स्नेह युक्त कीर्तन किये। सो पद :–

राग गोरीः—

'कौन सुकृत इन व्रजबासिन को वदत विरंचि शिव शेष'

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आप बहोत प्रसन्न भये।

क्यों जो—जैसो श्रीआचार्यजी आपु पुष्टिमार्ग प्रकट किये, **श्रीहरिरायजी कृत** ताही अनुसार सूरदासजी ने यह कीर्तन **भावप्रकाश** गायो।

सो श्रीआचार्यजी के मारग को कहा स्वरूप है? जो माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ स्नेह सो सर्वोपरि है, सो श्रीठाकुरजी कों बहोत प्रिय हैं। परन्तु जीव माहात्म्य राखे। सो काहेतें? जो माहात्म्य बिना अपराध को भय मिटि जाय। तासों प्रथम दशा में माहात्म्य युक्त स्नेह आवश्यक चहिये। और व्रजभक्तन को स्नेह है सो सर्वोपरि है। तासों भक्तन के स्नेह के आगे श्रीठाकुरजी को माहात्म्य रहत नांही। सो श्रीठाकुरजी स्नेह के वस होय भक्तन के पाछें २ डोलत हैं। **सो जहां तांई एसो स्नेह नांही होय तहां तांई माहात्म्य राखनो। सो जब स्नेह को नाम ले के माहात्म्य छोडे और श्रीठाकुरजी के आगे बैठे, बात करे और पीठि देय तो भ्रष्ट होय जाय। तासों माहात्म्य बिचारे, और अपराध सों डरपे × तो कृपा होय। और जब (सर्वोपरि) स्नेह होयगो तब आपही तें। स्नेह एसो पदार्थ है जो—माहात्म्य कूं छुडाय देयगो।**
सो दसम स्कंध में वरनन है—

+ देखो श्रीहरिरायजी कृत शिक्षापत्र.

जो श्रीभगवान वारंवार माहात्म्य व्रजभक्तन कों और श्रीयशोदाजी कों दिखायो। सो पूतना वध करि, सकट, तृनावर्त करि, यमलार्जुन करि, बकासुर, धेनुक, कालीदमन करिकें लीला में माहात्म्य दिखायो। परंतु **व्रजभक्तन को स्नेह** परम अद्भुत अनिर्वचनीय है। तासों माहात्म्य तथा ईश्वरभाव न भयो। सो एसो स्नेह प्रभु कृपा करि दान करें ताको आपही तें माहात्म्य छूटि जायगो। और जाको स्नेह पति, पुत्र, स्त्री, कुटुंब में तथा द्रव्य में है, और अपने देह सुख में है सो **भगवान को माहात्म्य छोडि लौकिक रीति करे तो श्रीभगवान को अपराधी होय। तासों वेद मर्यादा सहित श्रीठाकुरजी के भय सहित सेवा करे, और सावधान रहे। सो यह श्रीआचार्यजी महाप्रभु के मारग की रीत है।** तासों माहात्म्य पूर्वक स्नेह करिये। और माहात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो– **समय समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहै,** ताको नाम माहात्म्य पूर्वक स्नेह कहिये।

पाछे श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–सूर! तुमकों पुष्टिमारग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धनधर के यहां समय समय के कीर्तन करो। ता समय सेन भोग सरि चुक्यो हतो, सो तब मान के कीर्तन सूरदासने गाये। सो पदः–

राग बिहागरोः–

'बोलत काहे न नागर बैना'। २ 'सुखद सेज में पोढे रसिकवर'। ३ 'पोढे लाल राधिका उर लाय'।

सो पाछें या प्रकारसों कीर्तन सूरदासजी नें नित्य प्रातःकाल के जगायवे तें लेके सेन पर्यंत के हजारन किये।

वार्ता प्रसंग—२.

और एक समय सूरदासजी पांच सात वैष्णवन के संग मारग में चले जात हते। सो तहां दस पांच जने चोपडि खेलत हते। सो चोपडि के खेल में एसे लीन भये हते सो मारग में गैल में काहू आवते जाते मनुष्य की कछू खबरि नांही।

सो या प्रकार उनकों मगन देखिकें सूरदासजी ने अपने संग के वैष्णवन के आगे एक पद गायो। और उन वैष्णवन सों सूरदासजी ने कह्यो जो— देखो, यह प्रानी मनुष्य-जन्म वृथा खोवत है। जो श्रीभगवान ने मनुष्य-देह अपने भजन करिवेके लिये दीनी है। सो या देह सों यह प्राणी वृथा हाड कूटत है। सो यामें लौकिक में तो निंदा है जो— यह जुवारी है। और अलौकिक में भगवान सो बहिर्मुखता है। तासों भगवान ने तो एसी इनकों मनुष्य-देह दीनी है, तिनको एसी चोपडि खेली चाहिये। सो तासमय सूरदास-जीनें यह पद करि के संग के वैष्णव हते, तिन को सुनायो। सो पदः—

राग केदारो—

मन! तू समझ सोच विचार।
भक्ति विना भगवान दुर्लभ कहत निगम पुकार॥

साधु संगत डार पासा फेरि रसना सार।
दाव अब के पर्यो पूरो, उतरि पहली पार ॥
छांडि सत्रह सुन अठारे, पंचही को मार।
दूरि तें तज तीन काने चमक चोंक बिचार ॥
काम क्रोध मद लोभ भूल्यो ठग्यो ठगिनी नार।
सूर हरि के पद भजन बिन चल्यो दोउ कर झार ॥

सो सुनिके उन वैष्णवननें सूरदास सों कह्यो जो– सूरदासजी ! या पदमें समुझ नांही परी है। तासों हमकों अर्थ करिके समुझावो, सो तब समुझ्यो जाय।

तब सूरदासजी उन वैष्णवन सों कहे, जो– तीन वस्तु चोपडि में चाहियें, समुझ, सोच और बिचार। सो ये तीन्यो वस्तु भगवान के भजन में हू चहिये (क्यों ?) जो– जैसे पहले समुझे तब चोपडि खेलेगो, सो तैसे ही भगवान कों जानेगो तो भजन करेगो। और चोपडि में सोच होय जो– एसो फांसा परे तो मैं जीतूं। सो तैसे ही या जीव कों काल को सोच होय, तब यह जीव प्रभु की सरन जाय। और (तीसरी वस्तु जो) बिचार, सो यह जो– विचारके गोट कों फांसा के दावकूं चले जो– यहां नांही मारी जायगी इत्यादि। सो तैसेही विचार वैष्णव को होय, जो– यह कार्य मैं करत हूं सो आछो है, के बुरो है ? तब यह जीव बुरो काम छोडिकें भगवत्धरम की चाल में चले। और चोपडि में फांसा के दाव परें तब दोऊ ओर के मनुष्य पुकारत हैं। सो तेसे ही जगत में निगम जो

वेद, पुराण सो पुकारिके कहत हैं जो– भक्ति बिना भगवान दुर्लभ हैं, सो तासों कोटि साधन करो। और चोपडि में दूसरो संग मिले तब चोपडि खेली जाय, सो तैसे ही भगवान की भक्ति में भगवदीय वैष्णव की संगति होय तब भक्ति बढे। और चोपडि खेलिवेवारे के मन में (जैसे) अपने दाव को सुमिरन रहत है जो– यह दाव परे तो मैं जीतूं, सो तेसे ही रसना सों यह जीव भगवद्वार्ता में मन लगायके सब रस को सार रूप (एसो भगवन्नाम) कह्यो करे । और (जेसे) चोपडि में सुंदर पूरो दाव परे तब गोट पार जाय, और तब उतरि के घर में आवे, और मरिवे को भय मिटे। सो तेसे ही मनुष्य देह संसार सों पार उतरिवेकों पूरो दाव बडी पुन्याई सों मिले है, सो तो या देह सों भगवदाश्रय करि संसार तें पार उतरि जाय। 'राखि सत्रे सुनि अठारे' चोपड में सत्रे अठारे बडे दाव हैं, सो तैसे ही जगत में सब पुरान हैं, सो तिनही कों राखि, सुनि अठारे जो– श्रीभागवत सुनन को (और) पुरान हू को धरि राख। और पांचों जो इन्द्रिय, पंचपत्री अत्रिग्रा है, सो इनकूं मार । सो काहेतें ? जो शास्त्र के वचन हैं सो–

पतंग–मातंग–कुरंग–भृंग–मीना हताः पंचभिरेव पंच ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच ॥१॥

१ पतंग–नेत्र विषय तें दीपक में परे। २ हाथी– स्पर्श विषय करि मरे । ३ कुरंग–श्रवन विषय तें मरे । ४ भृंग– गंध नासिका विषय तें मरे, ५ मीन– जिभ्या विषय तें मरे।

सो एक एक विषय तें मरि परै, तो मनुष्य तो पांचन को सेवन करत है, सो निश्चय काल इनको भक्षन करे।

तासों नाद पांचो मारि। सो जेसे चोपडि में गोट मारत हैं। और चोपडि में सब तें छोटो दाव तीनि काने हैं, सो कोऊ नाही चाहत है। तैसे ही तू तीन–तामस, राजस, सात्त्विक यह माया के गुण हैं, सो सगरो संसार सोइ चोक है, सो यामें चतुराई सों डार। चतुराई यह जो–इनकों डारि पाछे इनकी ओर देखे मति। सो जेसे चोपडि में सब की सुध बुध भूलि जात हैं, सो तब ठग्यो गयो। सो तेसे काम क्रोधादि जंजाल है, और स्त्रीरूप भगवद्माया है। सो यह सगरे जगत को ठगेगी। सो जैसे चोपडि खेलि के हारिकें सब दोऊ हाथ झारि के उठें, सो तेसे ही श्रीठाकुरजी के पदकमल के भजन बिना दोऊ हाथ झारिके या मनुष्यने देह खोई। जो कछु भलो परोपकार संग नाहीं कियो।

सो या प्रकार वैष्णव सुनि के सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

वार्ता प्रसंग–३

और सूरदास कों जब श्रीआचार्यजी देखते तब कहते जो– आवो सूरसागर! सो ताको आशय यह है, जो–समुद्र में सगरो पदार्थ होत है। तेसे ही सूरदासने सहस्रावधि पद किये हैं। तामें ज्ञान वैराग्य के न्यारे न्यारे भक्ति भेद, अनेक भगवद् अवतार, सो तिन सबन की लीला को वरनन कियो है।

पाछे उनके पद जहां तहां लोग सीखि के गावन लागे। सो तब (एक समय) तानसेनने एक पद सूरदास को सीखिके अकबर पात्शाह के आगे गायो। सो पदः–

राग नट–'यह सब जानो भक्त के लक्षन'

यह सुनि देशाधिपति अकबरने कह्यो जो– एसे लक्षन बारे भक्तन सों मिलाप होय तो कहा कहिये ? सो तानसेनने कही जो– जिननें यह कीर्त्तन कियो है सो व्रज में रहत हैं ? और सूरदासजी उनको नाम है।

यह सुनि देशाधिपति के मन में आई जो– कोई उपाय करि के सूरदाससों मिलिये। पाछें देशाधिपति दिल्ली तें आगरा आयो। तब अपने हलकारान सों कह्यो जो– व्रज में सूरदासजी श्रीनाथजी के पद गावत है, सो तिनकी ठीक पारिके मोकों श्रीमथुराजी में खबरि दीजियों, और (जो) यह बात सूरदास जानें नांहीं।

तब उन हलकारानने श्रीनाथजीद्वार में आयके खबरि काढी। तब सुनी जो– सूरदासजी तो मथुराजी गये हैं। सो तब वे हलकारा श्रीमथुरा में आयके सूरदास कों नजरि में राखे, जो– या समय यहां बैठे हैं। तब उन हलकारानने देशाधिपति कों खबरि करी जो–अजी साहब ! सूरदासजी तो मथुराजी में हैं।

तब सूरदासकूं अकबर पात्शाहने दस पांच मनुष्य बुलायवेकों पठाये। सो सूरदासजी देशाधिपति के पास आये। तब देशाधिपतिने उनको बहोत आदर सन्मान कियो। पाछे

सूरदासजी सों देशाधिपतिने कह्यो जो–सूरदासजी! तुमने विष्णु-पद बहोत किये हैं, सा तुम मोकों कछु सुनावो।

तब सूरदासनें अकबर पातसाह आगे यह पद गायो। सो पदः–
राग बिलावलः–' मनारे तू कर माधो सों प्रीत '।+

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यह पद केसो है, जो या पद को सुमिरन रहै तब भगवत् अनुग्रह होय, और मनकूं बोध होय। और संसार सों वैराग्य होय और श्रीभगवान के चरणारविंद में मन लगे। तब दुःसंग सों भय होय, सत्संग में मन लगे। सो देहादिक में ते स्नेह घटे, और लौकिक आसक्ति छूटे। जो भगवान को प्रेम है, सो अलौकिक है। सो ताके उपर प्रीति बढे।

यह सुनि देशाधिपति बहोत प्रसन्न भयो। पाछे देशाधिपति के मन में आई जो–सूरदासजी की परीक्षा देखूं। सो भगवान् को आश्रय होयगो, तो ये मेरो जस गावेगो नांही।

सा यह विचारके देशाधिपतिनें सूरदास सों कही जो–श्रीभगवानने मोकों राज्य दियो है, सो सगरे गुनीजन मेरो जस गावत हैं, सो तिनकों मैं अनेक द्रव्यादिक देत हौं। तासों तुमहू गुनी हो, सो तुमहू मेरो कछु जस गावो। सो तिहारे मन में जो इच्छा होय सा मांगि लेहु।

सो यह देशाधिपति ने कह्यो। तब सूरदासजी ने यह पद गायो। सा पद—

+ यह पद 'सूरपच्चीसी' नाम से प्रसिद्ध है।

राग केदारो :– 'नाहिन रह्यो मन में ठौर'

सो यह पद सुनिके देशाधिपति ने अपने मन में विचार्यो जो– ये मेरो जस काहेको गावेंगे? जो इनकों कछु लेवे को लालच होय तो ये मेरो जस गावें। ये तो परमेश्वर के जन हैं, सो ये तो ईश्वर को जस गावेंगे।

सो सूरदासजी या कीर्त्तन में पिछले चरन में कहे हैं, जो– 'सूर! एसे दरसकों ये मरत लोचन प्यास'

सो देशाधिपति ने सूरदास सों कह्यो जो–सूरदास! तुमारे तो नेत्र हैं नाही, सो प्यासे कैसे मरत हैं? सो यह तुम कहा कहे? तब सूरदासजीने कही जो– या बात की तुमकों कहा खबरि है? जो ये लोचन तो सब के हैं, परंतु भगवान के दरसन की प्यास काहूकों है? जो श्रीभगवान के दरसन के जे प्यासे नेत्र हैं, सो तो सदा भगवान के पास ही रहत हैं। सो स्वरूपानंद को रसपान छिन छिन में करत हैं, और सदा प्यासे मरत हैं।

यह सुनि अकबर पात्साह ने कही जो– इनके नेत्र तो परमेश्वर के पास हैं, सो परमेश्वर को देखत हैं, औरकों देखत नांही।

तब पात्शाहने सूरदास के समाधान की इच्छा कीनी। दोय चारि गाम तथा द्रव्य बहोत देन लाग्यो, सो सूरदासने कछु नांही लियो। तब अकबर पातशाह सूरदासजी सों कहे, जो–बाबा साहिब! कछु तो मोकों आज्ञा करिये।

तब सूरदासजीने कही जो- आज पाछे हमकों कबहू फेरि मति बुलाइयो, और मोसों कबहू मिलियो मति ।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो अकबर पातशाह विवेकी हतो । सो काहेतें ? जो ये योगभ्रष्ट तें म्लेच्छ भयो है । सो पहले जन्ममें ये बालमुकुंद ब्रह्मचारी+ हतो सो एक दिन ये बिना छाने दूध पान कियो, तामें एक गाय को रोम पेट में गयो। सो ता अपराध तें यह म्लेच्छ भयो है ।

सो सूरदास कों दंडवत करि के समाधान करि के बिदा किये।

वार्ता प्रसंग-४

तापाछे सूरदास श्रीनाथजीद्वार आये । पाछे देशाधिपतिने आगरे में आयके सूरदास के पदन की तलास कीनी। जो कोऊ सूरदासजी के पद लावे तिनकूं रुपैया और मोहोर देय। सो वे पद फारसी× में लिखायके बांचे । सो मोहोर के लालच सों पंडित कवीश्वर हू सूरदास के पद बनाय के लाये। तब अकबर पातसाह ने उनसों कह्यो जो- यह पद सूरदासजी को नांही । सो ये पैसा के लिये पद की चोरी करत हैं ।

तब पंडित कवीश्वरन ने कही, जो- तुम कैसे जाने जो यह सूरदास को पद नांही ? जो यह तो सूरदास को ही पद है ।

× જુઓ નાગરીપ્રચારિણી પ્રકાશિત અકબરી દરબાર પેજ ૧૬૪.

तब पातसाह ने अपने पास सों सूरदास को पद अपने कागद के ऊपर लिखायो। और वे पंडित कवीश्वर सूरदास को भोग (छाप) को बनाय के लाये सो दोऊ कागद जल में धरिके कह्यों जो-ईश्वर सांचे होय तो या बात को न्याव करि दीजो।

सो यह कहि जल में डारि दिये। सो उन पंडित जोतसीन को पद बनायो हतो सो कागद गळिके जल में भीजि गयो; और सूरदास को पद हतो सो कागद जल में नांही भींज्यो।

सो या भांति सों, जो-जिन भगवदीयन कों भगवान मिले श्रीहरिरायजीकृत हैं, उनके पदजो गायगो सो संसार सों तरेगो। भावप्रकाश- और चतुराई करि लौकिक मनुष्य के काव्य के कीर्तन कवित्तजो गावेगो, सो या प्रकार सों संसार में डूबेगो।

तब सगरे पंडित कवीश्वर लज्जा पायके नीचो माथो करिके अपने घरकों गये।

सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के एसे परम कृपापात्र भगवदीय हत।

સંભવ છે કે આ પ્રવૃત્તિના અંગે શ્રીસૂરની શુદ્ધ વ્રજભાષામાં 'મહેલાત' આદિ ફારસી શબ્દોનું સંમિશ્રણ થયા ઉપરાંત ફારસીમાં તેની અનુવાદાત્મક રચના પણ થઈ હોય. જે હાલ પ્રાપ્ત છે-

वार्ता प्रसंग-५

सो इन सूरदासजी नें श्रीनाथजी के कीर्तन की सेवा बहोत दिन तांई करी। सो बीच बीच में जब कुंभनदासजी, परमानंददासजी के कीर्तन के ओसरा आवते, तब सूरदासजी श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी के दरशन कूं आवते।

सो एक दिन सूरदासजी श्रीगोकुल आये हते, सो बाललीला के पद बहोत गाये। सो सुनिकें श्रीगुसांईजी आप बहोत प्रसन्न भये।

तब श्रीगुसांईजी आप एक पलना कों कीर्तन करिकें संस्कृत में सूरदासजी कों सिखायो। सो तासमय श्रीनवनीतप्रियाजी पालने में बिराजे, तब सूरदासने श्रीगुसांईजीकृत यह पलना गायो। सो पद-

राग रामकलीः- 'प्रेंख पर्यंक शयनं'.

सो यह पद सूरदासने श्रीनवनीतप्रियाजी के आगे गयो। पाछे या पद के अनुसार सूरदासजीने बहुत पद करिके गाये। सो पद-

'प्रेंख पर्यंक गिरिधरन सोहैं'

सो यह पलना को कीर्तन सूरदासजीने गायो। पाछे बाललीला के पद बहोत गाये। तापाछे यह पद गाये। सो पद-

राग बिलावलः- १ 'देख सखी इक अद्भुत रूप'
२ सोभा आज भली बनि आई'

इत्यादिक पद सूरदासजीने श्रीनवनीतप्रियाजी के

आगे गाये। तब श्रीगुसांईजी और श्रीगिरधरजी आदि सब बालक कहन लागे जो– हम जा प्रकार श्रीनवनीतप्रियाजी को सिंगार करत हैं, सो ताही प्रकारके कीर्तन सूरदासजी गावत हैं। तातें इन सूरदास के ऊपर बहोत ही कृपा है।

वार्ता प्रसंग–६

तापाछें श्रीगुसांईजी आप तो श्रीनाथजीद्वार पधारे। सो सूरदासजीने हू श्रीनाथजीद्वार जाइवे को विचार कियो। तब श्रीगिरधरजी आदि सब बालकन ने कह्यो,जो –सूरदासजी ! दोय दिन श्रीनवनीतप्रियाजी कों और हू कीर्तन सुनावो, पाछे तुम जाइयो। तब सूरदासजी श्रीगोकुल में रहे।

सो तब श्रीगिरधरजी सों श्रीगोविंदरायजी, श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी ये तीनों भाई कहे जो– ये सूरदासजी, जेसा श्रृंगार श्रीनवनीतप्रियाजी को होत है, तेसेही वस्त्र आभूषण वरणन करत हैं। सो एक दिन अद्भुत अनोखो श्रृंगार करो, और सूरदासजी कों जनावो मति। सो देखें, ये कीर्तन केसो करत हैं ?

तब श्रीगिरधरजीने कह्यो जो– ये सूरदासजी भगवदीय हैं, सो इनके हृदयमें स्वरूपानंदको अनुभव है। तासों जेसो तुम श्रृंगार करोगे, सो तेसोही पद सूरदासजी वरणन करिके गावेंगे। तासों भगवदीय की परीक्षा नांही करनी।
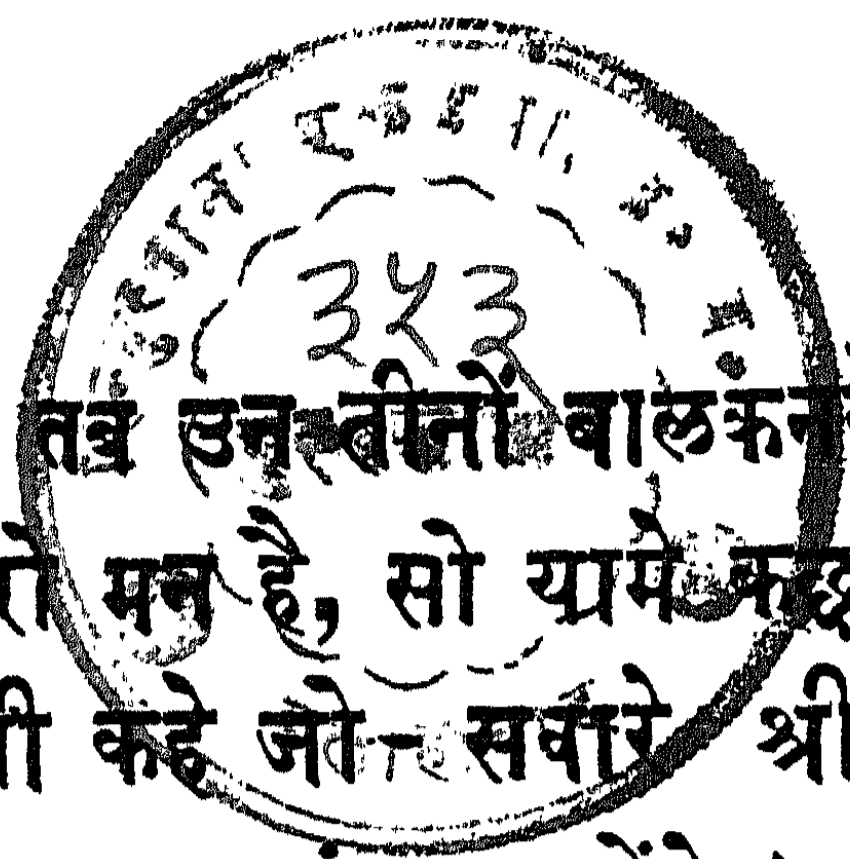
तब इन तीनों बालकनने श्री गिरधरजी सों कही जो–हमारो मन है, सो यामें कछु बाधा नांही है। तब श्रीगिरधरजी कहे जो–सवारे श्रीनवनीतप्रियाजी को शृंगार करेगें सो अद्भुत शृंगार करेंगे।

तापाछे सवारे श्रीगिरिधरजी तीनों बालकन सहित श्रीनवनीतप्रियाजी के मंदिर में पधारे, और सेवा में न्हाये।

पाछें श्रीनवनीतप्रियाजी कों जगाये, तापाछें मंगल भोग धर्यो। फेरि न्हवाय के शृंगार धरावन लागे। सो अषाढ के दिन हते तातें गरमी बहोत। सो श्रीनवनीतप्रियाजी कों कछु वस्त्र नांही धराए। सो मोतीन के दोय लर मस्तक पर, मोती के बाजू पोहोंची, कटि–किंकिनी, नूपुर, हार, सब मोतिन के, तिलक नकवेसर करनफूल कछु नांही।

सो सूरदासजी जगमोहन में बेठे हते, सो इनके हृदय में अनुभव भयो। तब सूरदासजी अपने मन में बिचारे जो–आजु तो श्रीनवनीतप्रियाजी को अद्भुत शृंगार कियो है। एसो शृंगार तो मैंनें कबहू देख्यो नांही, और सुन्योहू नांही, जो केवल मोती धराए हैं, और वस्त्र तो कछु धराए हैं नांही। तासों आज मोकों कीर्त्तन हू अद्भुत गायो चहिये।

जब शृंगार के दर्शन खुले, तब श्रीगिरिधरजीने सूरदासजी कों बुलाये, और कह्यो जो–सूरदासजी! दरशन करो, और कीर्त्तन गाओ। तब सूरदासजी ने बिलावल में यह

कीर्त्तन करिके श्रीनवनीतप्रियाजी कों सुनायो। सो पद- 'देखेरी हरि नंगम नंगा'

सो सुनिके श्रीगिरधरजा आदि सगरे बालक अपने मन में बहोत प्रसन्न भये। और सूरदास सों कहन लागे जो- सूरदासजी ! यह तुम कहा गाये ? तब सूरदासजीने विनती कीनी, जो- महाराज ! जेसो आपने अद्भुत शृंगार कियो, तेसो ही मैं अद्भुत कीर्त्तन गायो है।

तब सगरे बालक यह सुनिकें सूरदासजी के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

सो ये सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभु के एसे परम कृपा पात्र भगवदीय हते, सो इनकों श्रीठाकुरजी नित्य हृदय में अनुभव करावते।

तापाछे श्रीगिरिधरजी आप सूरदासजी को संग लेके श्रीनाथजीद्वार आये। तब श्रीगिरिधरजी ने सब समाचार श्रीगुसांईजी सों कहे जो-या प्रकार अद्भुत शृंगार श्रीनवनीतप्रियाजी को सगरे बालकन के मनोरथ सों कियो। सो सूरदासजी ने एसो ही कीर्तन कियो। सो इनके हृदय में अनुभव है।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरिधरजी सों कहे-जो सूरदासजी की कहा बात है? जो- ये पुष्टिमार्ग के जहाज है। सो भगवल्लीला को अनुभव इनकों अष्टप्रहर हैं। सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग—७

और सूरदासजी के पास एक व्रजवासी को लरिका हतो, सो सब कामकाज सूरदासजी को करतो। ताको नाम गोपाल हतो। सो एक दिन सूरदासजी महाप्रसाद लेन को बैठे, तब वा गोपाल सों सूरदासजी कहे जो— मोकूं तू लोटी में जल भरि दीजो। तब गोपाल व्रजवासी ने कह्यो जो— तुम महाप्रसाद लेनको बेठो जा मैं जल भरि देऊंगो।

सो यह कहिके गोपाल तो गोबर लेन कों गयो। सो तहां दोय चारि वैष्णव हते सो तिनसों बात करन लाग्यो, तब सूरदास कों जल देनो भूलि गयो। और सूरदासजी तो महाप्रसाद लेन बैठे, सो गरे में कोर अटक्यो। तब बांये हाथ सों लोटा इतउत देखन लागे, सो पायो नांही। तब गरे में कोर अटक्यो सो बोल्यो न जाय। तब सूरदास व्याकुल भये। सो इतने में श्रीनाथजी सूरदासजी के पास आयके अपनी झारी धरि आए। तब सूरदासजीने झारी में ते जल पियो।

तब गोपाल व्रजबासी कों सुधि आई, जो— सूरदासजी कों मैं जल नांही भरि आयो हूं। सो दोर्‌यो आयो। इतने में सूरदास महाप्रसाद लेकें आये। तब गोपाल व्रजवासीने आयके सूरदास सों कह्यो जो— सूरदासजी ! तुम महाप्रसाद ले उठे ? सो तुमने जल कहांते पियो ? जो मैं तो गोबर लेन गयो

हतो, सो वैष्णव के संग बात करतमें भूलि गयो। तासो अब मैं दोरयो आयो हूं।

तब सूरदासने व्रजवासी सों कह्यो जो- तेंने गोपाल नाम काहेकों धरायो? जो गोपाल तो एक श्रीनाथजी हैं। सो तासों आज मेरी रक्षा करी। नातर गरे में एसो कोर अटक्यो हतो, सो जल बिना बोल निकसे नांही। तब मैं व्याकुल भयो, तब हाथ में जल की झारी आई, सो म जल पान कियो। तासों मैने जान्यो जो तेने धरयो होयगो। और अब तू आइके कहत है- जो मैं नांही हतो। सो तातें मंदिर वारो गोपाल होयगो। जो देखि तो झारी केसी है?

तब गोपाल व्रजवासी जहां सूरदासजी महाप्रसाद लिये हते तहां आय के देखें तो सोने की झारी है। सो उठाय के गोपाल सूरदासजी के पास आय के कह्यो जो- ये झारी तो मंदिर की है। सो तब सूरदासने वा गोपाल व्रजवासी सों कह्यो जो- तेनें बहोत बुरो काम कियो, जो श्रीठाकुर-जी को इतनो श्रम करवायो। जो मेरे लिये झारी लेकें श्रीठाकुरजी कों आनो परयो।

सो या प्रकार सूरदासजीने अपने मन में बहोत पश्चात्ताप कियो। तापाछे सूरदासजीने गोपालदास सों कह्यो जो- ये झारी तू जतन सों राखियो। और जब श्रीगुसांईजी आपु पोंढि के उठें तब उन कों सोंपि आइयो। तब गोपालदासने झारी

लेके श्रीगुसांईजी के पास आय, दंडवत करि आगे राखी। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे– ये झारी तेरे पास केसे आई ? जो ये झारी तो श्रीगोवर्द्धनधर की है। तब गोपालदासने श्री गुसांईजी सों विनती कीनी जो– महाराज ! यह अपराध मोसों परयो है। पाछें सब बात कही।

तब यह बात सुनिके श्रीगुसांईजी आप तत्काल स्नान करिकें झारी को मंजवाय दूसरो वस्त्र लपेटिकें मंदिर में बेगि ही झारी लेके पधारे। पाछे श्रीगोवर्द्धनधरकूं जलपान कराइके कहे जो– आज तो सूरदास की बडी रक्षा कीनी। **सो तुम बिना कोन वैष्णव की रक्षा** करे ? तब श्रीनाथजीने कही जो– सूरदास के गरे में कोर अटक्यो सो व्याकुल भये, तासों झारी धरि आयो।

श्री हरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेते ? जो सूरदास व्याकुल भये, सो मैं ही व्याकुल भयो। जो भगवदीय है सो मेरो स्वरूप है।

तापाछे उत्थापन के किंवाड खोले। सो सूरदासजी आइ के उत्थापन के दर्शन किये। सो उत्थापन समे को भोग श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकों धरि सूरदास के पास आइके कहे जो–आज गोपालने तिहारे ऊपर बडी कृपा करी है। तब सूरदासजीने कह्यो जो– महाराज ! यह सब आप की कृपा है। नांहि तो श्रीनाथजी मो सरीखे पतितन कों कहा जानें ? जो सब श्रीआचार्यजी की कानि तें अंगीकार करत हैं।

तब यह वचन सुनिके बनिया अपने मन में बहोत ही खिस्यानो हाय गयो, और वह बनिया सूरदास सों बोल्यो जो– सूरदासजी ! तुम यह बात और काहू के आगे मति कहियो। जो मैं यासों दरशन कों नाहि आवत हों, जो हाट छोडि दरसन कों जाऊं तो यहां वैष्णव सोदाकों फिरि जाय, जो और की हाट सों लेन लागें, तब मैं खाऊं कहांते ? और कोऊ मेरे पास एसो मनुष्य नांहि है, जो जा समय दरशन के किंवाड खुलें ता समय मोकों आय के ख़बर करे, जातें मैं बेगि ही दोरिके दरशन करि आऊं

तब वा बनियातें सूरदासने कही जो– मैं जा समय आइकें खबरि करूं सो ता समय तू चलेगो? तब वा बनियाने कही जो– तुम आइके खबरि करियो, जो– मैं चलूंगो। जो मेरे मन में दरशन की बहोत है।

तब सूरदासजी कहे जो– मैं उत्थापन के समय आऊंगो। सो यह कहिके सूरदासजी तो गये। पाछे जब उत्थापन को समय भयो तब शंखनाद भये, तब सूरदासजीने आइके वा बनियासों कही जो– अब शंखनाद भये हैं, तासों दरशन को समय है, सो अब चलो। तब वा बनियाने सूरदासजी सों कह्यो जो– या समय गांव के लोग सोदा लेन आवत हैं, सो भोग के किंवाड खुलें ता समय तुम मोकों खबरि करियो.

तब सूरदासजीने पर्वत ऊपर आइके श्रीनाथजी के दर्शन किये, और कीर्तन किये। तापाछे श्रीनाथजी के भोग के दरशन

को समय भयो, तब सूरदासजी परवत सों नीचे उतरिके वा बनिया सों कहे जो– दरशन को समय है, तासों अब तो दरशन कों चल। तब वा बनियाने सूरदास सों कह्यो जो– सूरदासजी! अब तो वनतें गाय आइवे को समय भयो है, तासों मंदिर में चलूं तो गाय आइके मेरो सगरो अनाज खाय जॉय। तासों अब तुम सेन आरती के समय जताइयो सो तहां तांई गाय सब अपने २ घर जाँयगी।

तब सूरदासजी फेरि भोग के समय जाइके दरशन किये। तापाछें संध्या के दरशन किये। पाछें सेन आरती के दरशन को समय भयो, तब सूरदासजीने आइके बनिया कों खबरि कीनी जो–चल अब सेन आरती के दरशन को समय है।

तब वा बनियाने सूरदास सों कही जो– सूरदासजी! आज तुम कों बहोत श्रम भयो है। परंतु अब दीवा बारिवे को समय है, सो काहेतें जो– अब या समय लक्ष्मी आवत है, तासों दीवा न होय तो लक्ष्मी पाछी फिरि जाय। और कोई मेरी हाटतें अन्न चुराय लेय तो मैं कहा करूं? तासों अब मैं सवारे प्रातःकाल दरशन करि ता पाछें हाट खोलूंगो। तासों मोकों मंगला के समय आइके खबरि करियो। आज मैनें तुम सों बहोत फेरा खवाये।

तब सूरदासजी मंदिर में आइके श्रीनाथजी के दरशन किये। तापाछें सेन समय कीर्तन गाये

पाछें प्रातःकाल भयो, तब न्हाइके सूरदासजीने आइके वा बनिया सों कही जो- मंगला को समय है, सो अब तो चल। तब वा बनियाने कही जो- सूरदासजी ! अब ही तो हाट बुहारि के मांडनी है। तासों बोहनी के समय कोई गाहक फिरि जाय तो सगरो दिन खाली जाय। तासों हाट लगायके शृंगार के दरशन कों चलूंगो। तासों शृंगार के समय कहियो।

तब सूरदासजीने मंगला आरती के दरशन किये। पाछें सूरदासजी शृंगार के समय फेरि आये। तब वा बनियाने कही जो- अब ही मैं आछी काहू की बोहनी कीनी नांही है, और गाय डोलत हैं। तासों अब राजभोग के दरशन अवश्य करूंगो। सो देखो तुम कालि तें मेरे लिये बहोत फिरत हो, जो तुम बडे भगवदीय हो।

सो सूरदासजी फेरि श्रीनाथजी के दरशन कों परवत पर आए। तब श्रीनाथजी के शृंगार के दर्शन किये कीर्तन किये। ता पाछें राजभोग आरती को समय भयो। तब सूरदासजीने वा बनिया सों कह्यो जो- अब चलोगे ? तब वा बनियाने कह्यो जो- या समय मैं कैसे चलूं ? जो अब वैष्णव राजभोग के दरशन करि के नीचे आवेंगे। सो सब या समय सीधा सामग्री लेत हैं। जो मैं बूढो, कब आऊं परवत सों उतरि कें, कैसे बेगि आयो जाय ? और याही वखत विक्री को समय है। जो याही समय कछु मिले सो मिले। तासों उत्थापन के समय दरशन करूंगो।

या प्रकार सूरदासजी वा बनिया के साथ तीन दिन तांई रहे। परंतु वह बनिया एसो लोभी सो दरशन कों नांहि गयो। ता पाछे चोथे दिन न्हायके सूरदासजी प्रातःकाल मंगला के दरशन कों चले। तब सूरदासजी अपने मन में बिचारे– जो देखो या बनिया कों तीन दिन भये, परंतु दरशन कों नांही गयो। तासों आज जो यह न चले, तो याको भय दिखावनो, और दरसन करावनो।

यह बिचारिके सूरदासजी वा बनिया की पास आय के कह्यो– जो तीन दिन बीति चुके मोकों फिरते, परि तू दरशन को नांही चल्यो। जो आज तो चल। तब वा बनियानें कह्यो– जो कछु बोहिनी करि शृंगार के दरशन करूंगो। तब सूरदासजीने वा बनिया सों कही– जो अब तो मैं तेरी बात सगरे वैष्णवन में प्रकट करूंगो। जो यह बनिया झूठो बहोत है, सो कबहू याने श्रीनाथजी को दरशन नांही कियो। और यह वैष्णव हू नांही है। अब तेरे पास कोई वैष्णव सोदा लेंन आवेगो तो मैं तेरे दोहा, चोपाई, पद कुटिलता के करिके वैष्णवन कों सुनाऊंगो। सो या भांति कहिके भैरव राग में एक पद गायो। सो पदः–राग भैरव।

'आज काम कालि काम परसों काम करनो'०

सो यह पद सूरदासजीनें वा बनिया को वाही समय करिके सुनायो, सो तब तो वा बनिया अपने मन में डरप्यो। पाछें सूरदासजीके पावन परि वा बनियाने बिनती

कीनी– जो तुम मेरे दोहा कवित्त कछु बरनन मति करो, और तुम मेरी बात कोई सों प्रकट मति करो। जो मैं अब ही तिहारे संग चलूंगो।

पाछे वह बनिया सूरदासजी के संग आयो। तब मंगला के किंवाड खुले, तब सूरदासजीनें श्रीनाथजी सों कह्यो जो– महाराज! यह बनिया दैवी जीव है, सो तासों अब याके मनको आकर्षन करिके याको उद्धार करो। सो काहेते? जो यह तिहारी ध्वजा के नीचे रहत है। तब श्रीनाथजी कहे जो--मेरे पास रहत है, सो कहा मोकों जानत है? तुम सब भगवदीयन की कृपा होय सो तब ही मोकों पावे।

हरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहेते? जो गंगा यमुना में अनेक जीव हैं सो कहा कृतार्थ हैं? जो माखी मच्छर चेंटी आदि श्रीप्रभु के बहोत जीव हैं, सो कहा कृतार्थ हैं? जो भगवदीयन को संग होय तब ही कृतार्थ होय। सो तब ही श्रीप्रभून कों पावे। भगवदीयन के संग सों दासभाव होय तब ही कृपा होय।

पाछे श्रीनाथजीने वा बनिया कों एसो दरशन दियो, सो वाको मन हरिलीनो। सो जब मंगला के दरशन होय चुके तब वा बनियाने सूरदासजी के चरन पकरि के बीनती कीनी जो–महाराज! मेरो जनम सगरो वृथा गयो द्रव्य जोरवे में, मेरे पास द्रव्य बहोत हैं, सो अब तुम चाहो तहां या द्रव्य को खरच करो। और मोकों श्रीगुसांईजी को सेवक करायके वैष्णव करो।

तब सूरदासजीने वा बनिया सों कह्यो– जो तू न्हायके काहू को छुइयो मति, यहां आय बैठियो। सो इतने में श्रीगुसांईजी आपु शृंगार करि चुके, तब सूरदासजीनें श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो–महाराज! या बनिया कों शरण लीजिये।

तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख सों सूरदासजी सों कहे जो–सूरदासजी! तुमने भलो साठि वरस को बूढो बेल नाथ्यो। तुम बिना या बनिया को सगरो जनम योंही जातो।

पाछे श्रीगुसांईजी आप वा बनिया को बुलाय कें श्रीनाथजी के सन्निधान बेठायके नाम–ब्रह्मसंबंध करवायो। सो वा बनिया की बुद्धि निरमल होय गई। सो तब सगरे दरसन नित्य नेमसों करन लाग्यो। और वा बनिया नें श्रीगुसांईजी कों बहोत भेट करी। और श्रीनाथजी के वागा वस्त्र सामग्री कराय आभूषण कराये, और अंगीकार कराये।

ता पाछे एक दिन वा बनिया ने सूरदासजी सों कही जो–सूरदासजी! तिहारी कृपातें मैं श्रीगोवर्धननाथजी के दरसन पायो, और वैष्णव भयो। तासों अब एसी कृपा करो, जो–याही जनम में मेरो अंगीकार करैं, और मोकों संसार को दुख सुख बाधा न करे।

तब सूरदासजीने एक पद करि के वा बनिया को सिखायो। सो पद। राग बिलावल :–

'कृष्ण सुमिर तन पावन कीजे'।[१]

---

१ આ પદ સૂરસાઠીના નામથી પ્રસિદ્ધ છે.

तब वा बनिया कों दृढ भक्ति भई। लौकिक की बासना सब दूरि भई। सो ज्ञान वैराग्य सर्वोपरि भक्ति भई। सो श्रीनाथजी के चरण कमल में द्रढ आसक्ति और स्वरूपानंद को अनुभव भयो। तब रस में मगन होय गयो।

सो या प्रकार सूरदासजी के संगतें एसो लोभी बनियाहू कृतार्थ भयो। सो वे सूरदासजी एसे भगवदीय हते।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहे तें? जो–मूल में दैवी जीव है। सो श्रीललिताजी की सखी है। सो लीला में याको नाम 'विरजा' है। सो सूरदास को संग पायके लीला को अनुभव भयो। तातें भगवदीयन को संग सर्वोपरि है।

वार्ता प्रसंग–९

और एक समय श्रीगोकुल तें परमानंद आदि सब वैष्णव दस पंद्रह सूरदासजी सों मिलवेकों और श्रीगोवर्धननाथजी के दर्शन कों आये। सो सेनआरती के दरशन करि सूरदासजी के पास आये। तब सूरदासजी ने सगरे वैष्णवन को बहोत आदर सन्मान कियो और ताही समय कीर्तन गाये।

राग कान्हरोः–

१ 'हरिजन संग छिनक जो होई' २ 'प्रभु जन पर प्रसन्न जब होई'। ३ 'हरि के जन की अति ठकुराई' राग हमीरः– ४ 'जा दिन संत पाहुने आयें'

सो या प्रकार सूरदासजी ने अनेक पद वैष्णवन कों सुनाये। तब सब वैष्णव बहोत प्रसन्न भये। पाछे सूरदासजीने

उन वैष्णवन सों कह्यो जो– कछू मो पर कृपा करिके आज्ञा करिये । तब सब वैष्णवन ने सूरदासजी सों कह्यो जो– ज्ञान, योग, परमतत्व और श्रीठाकुरजी को प्रेम, स्नेह को स्वरूप सुनाओ । तब सूरदासजीने यह कीर्तन सुनायो । सो पद ।
राग बिहागरो:–

'जोग सों कोउ नांही हरि पाये'

सो या भांति अनेक कीर्तन करि वैष्णवन कों समुझाये । तब सगरे वैष्णव प्रसन्न होयकें कहे, जो– सूरदासजी के ऊपर बडी भगवत् कृपा है । ता पाछें सवारे भये सगरे वैष्णवन ने श्रीनाथजी के दर्शन किये । ता पाछें सूरदासजीसों विदा होय के श्रीगोकुल आये । सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के एसे परम कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग–१०

सो या प्रकार सूरदासजी नें बहोत दिन तांई भगवत्
'सूरश्याम' पके सेवा कीनी । ता पाछें जानें जो–
२५ हजार पद भगवद् इच्छा मोकों बुलायवे की है ।
सो काहेते ? जो प्रभुन की यह रीति है, जो जब वैकुंठ सों
श्रीहरिरायजीकृत भूमि पर प्रकट होयवे की इच्छा करत हैं,
भावप्रकाश तब वैकुंठवासी जो भक्त हैं, सो पहले भूमि पर प्रकट करत हैं । ता पाछें आपु श्रीभगवान प्रकट होय भक्तन के संग लीला करत हैं । पाछें अपुने भक्तन को या जगत सों तिरोधान होय ता पाछें वैकुंठमें लीला करत हैं । सो जैसें नंद, जसोदा,

गोपीजन, सखा, वसुदेव, देवकी, यादव, सब प्रकट पहले ही किये। ता पाछे आप प्रकट होयकें लीला भूमि पर करिके पाछे जादवनकूं मूसल द्वारा अंतर्ध्यान करि लीला किये। सो श्रीनंदरायजी, श्रीजसोदाजी, गोपीजन कों अंतर्ध्यान लौकिक लीला नांहि दिखायें। सो तैसेही श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को प्राकट्य है। सो लीला-संबंधी वैष्णव प्रकट किये। अब श्रीआचार्यजी आप अंतर्ध्यान लीला किये। **और श्रीगुसांईजी कों करनो है।*** सो पहले भगवदीयन कूं नित्यलीला में स्थापन करिके आपु पधारेंगे। सो भगवदीयन को (अपनी) लौकिक अंतर्ध्यानलीला दिखावत नांही। सो जैसें चाचा हरिवंशजी सों कहे जो—तुम गुजरात जावो। सो या प्रकार गुजरात पठाय के अंतर्ध्यान लीला किये। सो सूरदासजी कूं नित्यलीला में बुलायवे की इच्छा श्रीगोवर्धनधर की है।

सो तब सूरदासजी मन में विचारे जो—मैं तो अपने मन में सवा लाख कीर्तन प्रकट करिवेको संकल्प कियो है, सो तामेतें लाख कीर्तन तो प्रकट भये हैं। सो भगवद् इच्छा तें पचीस हजार कीर्तन और प्रकट करने। ता पाछे यह देह छोडि के अंतर्धान होय जानो।

सो या प्रकार सूरदासजी अपने मनमें विचार करत हते। वाही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु प्रकट होयके दरशन दे के कह्यो जो— सूरदासजी! तुमने जो सवा लाख कीर्तन को मन

---

* આ શબ્દોમાં સૂરદાસજીનો લીલાપ્રવેશ ૧૬૪૦ નો ૨૫૮ જણાય છે. જે ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી સિદ્ધ છે.

में मनोरथ कियो है, सो तो पूरन होय चुक्यो है, जो पचीस हजार कीर्तन मैंने पूरन करि दिये हैं। तासों तुम अपनो कीर्तन को चोपडा देखो.

तब सूरदासजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो– तुम मेरे कीर्तन के चोपडा देखो। सो तब वह वैष्णव देखे तो सूरदासजी के कीर्तन के बीच बीच में 'सूरश्याम' को भोग (छाप) है। सो एसे कीर्तन सगरी लीला में है। सो पचीस हजार हैं सो बात वा वैष्णवने सूरदास सों कही जो –काल तक तो 'सूर-श्याम' के कीर्तन हते नांही, और आज सगरी लीला की बीच में है।

तब सूरदासजी श्रीनाथजी को दंडवत करिके कहे जो– अब मेरो मनोरथ आप की कृपातें पूरन भयो। तासों अब आपु आज्ञा देउ सो करों।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो–अब तुम मेरी लीला में आयके लीलारस को अनुभव करो। सो यह आज्ञा करिके श्रीनाथजी अंतर्धान भये।

तब सूरदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके मन में बहोत प्रसन्न भये। परंतु पास दोय वैष्णव साधारन हते, सो जाने नाहीं जो–श्रीठाकुरजी आपु सूरदासजी के पास पधारे, और कहा आज्ञा दीनी। सो काहेतें जो–श्रीठाकुरजी के स्वरूप को अनुभव भगवदीय विना और काहू को नांहि।

वार्ताप्रसंग–११

सूरदास का अंतिम समय

सो तब सूरदासजी अपने मन में यह विचार करिके परासोली आये। सो तहां अखंड रासलीला ब्रह्मरात्र करि भगवानने रासपंचाध्याई की सगरी लीला उहां करी है। सो जहां उडुराज चंद्रमा प्रकटयो है। सो तहां चंद्रसरोवर है, एसे अलौकिक स्थल में आये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

जो ये अष्टसखा हैं। सो श्रीगिरिराज में आठ द्वार हैं। सो तहां के ये अधिकारी हैं। तासों आठों सखा अपने अपने द्वार पर श्रीगिरिराज में ही देह छोडी है। और अलौकिक देह धरिके सदा सर्वदा लीला में विराजमान हैं। (१)सो गोविंदकुंड ऊपर एक द्वार है। ताके सन्मुख परासोली चंद्रसरोवर है, तहां सूरदासजी सेवा में मुखिया हैं। (२) और अप्सराकुंड ऊपर एक द्वार है, तहां सेवामें छीतस्वामी मुखिया हैं। (३) सुरभीकुंड ऊपर द्वार है, सो तहां परमानंददास सेवा में मुखिया हैं। (४) और गोविंदस्वामी की कदमखंडी पास एक द्वार है, तहां गोविंदस्वामी मुखिया हैं। (५) और रुद्रकुंड के पास एक द्वार है तहां चत्र-भुजदास सेवा में मुखिया हैं। (६) बिलछू सन्मुख एक बारी है, सो जा मारग होय के रासलीला कों पधारत हैं सो तहां की सेवा के कृष्णदास अधिकारी मुखिया हैं। (७) और मानसी गंगा के पास एक द्वार है सो तहां की सेवा में नंददास मुखिया हैं। (८) और आन्योर के सन्मुख

एक द्वार है, सो तहां जमुनावतो गाम है, सो ता द्वार के मुखिया कुंभनदास हैं ।

या प्रकार श्रीगिरिराज में नित्य निकुंज-लीला है । सो ता निकुंजलीला के आठ द्वार हैं । तहां के आठ सखा सखी रूप हैं, सो सेवा में सदा तत्पर हैं । तासों सूरदासजी को ठिकानो परासोली है ।

सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजा कों साष्टांग दंडवत् करि के ध्वजा के सन्मुख मुख करिके सूरदासजी सोये, परंतु मन में यह आई जो– श्रीआचार्यजी और श्रीगुसांईजी आपु मेरे ऊपर बडी कृपा करी है । श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला को याही देह सों अनुभव कराये । परंतु या समय एकवार श्रीगुसांईजी आपु मेरे ऊपर कृपा करिके दरशन देंय, तो मेरे बडे भाग्य हैं । श्रीगुसांईजी को नाम कृपासिंधु हैं, सो भक्तनको मनोरथ पूरन कर्ता हैं, सो पूरन करेंगे ।

सो या प्रकार सूरदासजी श्रीगुसांइजीके स्वरूप को चिंतवन करत हते, और यहां श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रृंगार करत हते । सो वा दिन श्रीगुसांईजीने सूरदासजी कों जगमोहन में बैठे कीर्तन करत न देखे । सो ता समय श्री-गुसांईजी आपु सेवकन सों पूछे जो– सूरदासजी कहां है ?

तब एक वैष्णवनें श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो– महाराज ! सूरदासजी तो आज मंगला आरती के दरशन करिके परासोली में सगरे सेवकन सों भगवत्-स्मरन करिके गये हैं ।

तब श्रीगुसांईजी आप जाने जो–भगवद् इच्छा सूरदासर्ज कों बुलायवे की भई है, तासों आज सूरदासजी परासोर्ल कों गये हैं। सो तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख सों सगरे वैष्ण वन सों यह आज्ञा किये जो–' पुष्टिमारग को जहाज जात सो जाकों कछू लेनो होय सो लेऊ, और उहां जायके सूरदासर्ज कों देखो। सो या भांति सों जो राजभोग आरती उपरां रहत हैं तो मैं हू आवत हों। ' सो तब सगरे वैष्णव सूरदासर्ज की पास आये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यहां 'जहाज' कहिवे को आशय यह है जो–जैसे कोई जहा में काहू ब्योपारीने ब्योपार अर्थ अनेक वस् जहाज में भरी है, सो तैसे ही सूरदासजीके हृद में अलौकिक वस्तु नाना प्रकारकी भरी है।

ता समय सूरदासजीने श्रीगुसांईजी के और श्रीगोव र्द्धननाथजी के स्वरूप में मन लगायके बोलिवो छोडि दियो सो तब श्रीगुसांईजीने पंद्रह व्रजवासी दोराये। जो घडी २ हमसों सूरदासजी के समाचार आय कहियो। तब वे व्रज वासी आयके श्रीगुसांईजी सों कहे जो–महाराज! अब त सूरदासजी काहू सों बोलत नांही हैं। सो एसे करत २ राज भोग आरती को समय भयो। सो राजभोग आरती श्रीगोव र्द्धननाथजी की करिके श्रीगुसांईजी आपु परासोली में जह सूरदासजी हते तहां पधारे।

श्रीसूरका अंतिम समय
सं० १६४०

रघुनाथ, पालीवाल
नाथद्वारा

तब श्रीगुसांईजी के संग रामदास, कुंभनदास, गोविंद-स्वामी, चत्रभुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी के पास आये। तब देखे तो सूरदासजी अचेत होय रहे हैं, कछू देहको अनुसंधान नांही है।

सो तब श्रीगुसांईजी आप सूरदासजी को हाथ पकरिके कहे जो- सूरदासजी ? कैसे हो ? तब सूरदासजी तत्काल उठिके दंडवत् करिके कहे जो-बावा! आये? जो मैं आपु की वाट ही देखत हतो। या समय आपने बडी कृपा करिके दरशन दियो। जो महाराज! मैं आप के स्वरूप को ही चिंतन करत हतो।

ताही समय सूरदासजीने यह कीर्तन सारंग राग में गायो। सो पद-

'देखो देखो हरिजू को एक सुभाव'.

यह पद सूरदासजीने श्रीगुसांईजी के आगे गायो। तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीमुख सों कहे जो-या प्रकार श्रीठाकुरजी आपु अपने भगवदीयन कों दीनता को दान करत हैं, सो ताकों पूरन कृपा जानिये। सो दैन्यतारस के पात्र यही हैं।

सो ता समय सगरे वैष्णव श्रीगुसांईजी के पास ठाडे हते। उनमें ते चत्रभुजदासने कह्यो जो-सूरदासजी परम भगवदीय हैं, और सूरदासजीने श्रीठाकुरजी के लक्षावधि पद किये हैं।

परंतु सूरदासजीनें श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को जस वरनन नांही कियो ।+

यह सुनिके सूरदासजी कहे जो– मैं तो सगरो जस श्रीआचार्यजी को ही वरनन कियो है, जो मैं कछु न्यारो देखतो तो न्यारो करतो । परि तेने मोसों पूछी है, सो मैं तेरे पास कहत हों, सो या कीर्तन के अनुसार सगरे कीर्तन जानियो । सो पद—

राग बिहागरो–'भरोसो दृढ इन चरणन केरो'०।

सो या कीर्तन में सूरदासजीने अपने हृदय को भाव खोलि दियो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश. जो भरोसो सो जीव को विश्वास, दृढ चरण के शरण को। सो मोकों (सूरदासकों) दृढता श्रीआचार्यजी के शरण की है। सो श्रीआचार्यजी के नख जो दसों चरणारविंद के अलौकिक मणिरूप नख को प्रकाश, सो ता बिना सगरे त्रिलोकी में अंध्यारो दीखे है । सो तब भरोसो दृढ जानिये। सो या कलि में श्रीआचार्यजी के चरण के आश्रय विना और उपाय फलसिद्धि को नांही है। तासों मैं न्यारो कहा वर्णन करों? जो श्रीगोवर्द्धनधर में और श्रीआचार्यजी के स्वरूप में भिन्न, जो द्विविध तामें तो मैं अंध हों।

सो जैसे श्रीकृष्ण और श्रीस्वामिनीजी में न्यारो स्वरूप जाने सो अज्ञानी। सो तैसें श्रीगोवर्द्धनधर और श्रीआचार्यजी हैं। सो तिनको मैं

+ સૂરની છાપનાં શ્રીમહાપ્રભુજીના જે પદો પ્રચલિત છે તે અષ્ટછાપના શ્રીસૂરનાં નથી. વિશેષ જુઓ અમારા તરફથી પ્રકટ થતો 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તકવિ' નામક ગ્રન્થ.

बिना मोल को चेरो हों। सो बिना मोल कहा ? जो केवल भाव करि के। जैसें रासपंचाध्याई में व्रजभक्त गोपिकागीत में कहे हैं जो– 'शुल्क दासिको' सो बिना मोल की दासी, अलौकिक, जाको मोल नांही। सो काहे ते ? जो भक्ति करिके प्रभुन सों (अर्थ) चाहै, सो सगरे, मोल के दास कहिये। उनकी भक्ति श्रेष्ठ नांही। तासों निष्काम भक्ति सर्वोपरि है। सो ताकों अमोलिक दास कहिये। ता भाव के प्रभु वस होय। सो जैसें पंचाध्याई में श्रीभगवान कहे हैं जो–तिहारो भजन एसो है, जो मोसों पलटो दियो न जाय। जो मैं सदा तिहारो रिनियाँ रहूंगो। सो यह अमोलिक दास के लक्षन हैं। सो यह पद गायो।

सो यह पद कैसो है ? जो या कीर्तन के भाव तें, सवा लाख कीर्तन सूरदासजी ने किये हैं, सो सब को पाठ होय।

तब चत्रभुजदास प्रसन्न भये। पाछें सगरे वैष्णव और श्रीगुसांईजी आपु कहे जो– सूरदासजी के हृदय को महा अलौकिक भाव है, तासों श्रीआचार्यजी आपु सूरदासजी सों 'सागर' कहते। जैसे समुद्र अगाध है, तैसे सूरदासजी को हृदय अगाध है। सो तब चत्रभुजदास कहे जो–सूरदासजी! तुम विना अलौकिक भाव कोन दिखावे? जो अब थोरे में, श्रीआचार्यजी को यह पुष्टिभक्ति मारग है, ताको स्वरूप सुनावो। सो कोन प्रकार सों पुष्टिमारग के रस को अनुभव करिये।

तब वा समय सूरदासजीने यह पद गायो। सो पद– राग सारंग–' भज सखी भाव भाविक देव'०

सो पद सूरदासजीने सगरे वैष्णवन कों सुनायो ।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो या पद में यह जताये–जो गोपीजन के भाव सों जो प्रभु कों भजे । सो तिनके भाविक जो–श्रीगोवर्द्धनधर, सो तिनको गोपीन के भाव करि सखीभाव सों भजिये । कुंजलीला में सखीजन को अधिकार है । तासों (यहां) सखी कहे । और कोटि साधन वेदके करो, परंतु एक हू सेवा नांही मानत हैं । ताको दृष्टांत :–जो सोलह हजार अग्निकुमारिका ऋचा हैं । 'धूम्र–केतु' एसी जो अग्नि ताके पुत्र जो सोलह हजार ऋषि, सो वे रामचंद्रजी के स्वरूप ऊपर मोहित होय दंडकारण्य में कहे जो–हमसों विहार करो । तब उनसों श्रीरामचंद्रजी यह आज्ञा किये जो–व्रज में तुम स्त्री होय प्रकटोगी तब तिहारो मनोरथ पूरन होयगो ।

तासों स्त्री को वेद कर्म में अधिकार नांही है । और श्रीपूर्णपुरुषोत्तम की लीला में मुख्य स्त्रीभाव को अधिकार है । यह भक्तिमारग की वेद सों उलटी रीत है । जेसें रास पंचाध्याई में व्रजभक्त उलटे आभूषन वस्त्र धारन करे, सो लोक में उनसें 'बावरो' कहें, सो स्नेह में सर्वोपरि कहिये । जैसे जा छाप में उलटे अक्षर होंय सो शरीर में सूधे आछे अक्षर होंय, तैसे या जगत में अज्ञानी, प्रभु की लीला में चतुर होय सो प्रपंच भूले, सो ताको प्रेम कहिये । मुख्य भक्तिरस में वेदविधिको नेम नांही है । तासों एसो जो प्रेम होय सो श्रीठाकुरजी को वस करे, जैसे गोपीजनन्नने श्रीठाकुरजी वस किये । सो श्रीठाकुरजी कैसें हैं, जो सबही कों मोहि डारें । और सूर है, सो काहूसों जीते जाय नाहीं । और वेही चतुर शिरोमणि हैं, सो काहू के वस होय

नांही, तोऊ प्रेम के वस हैं। सबकूं भूलि जाय। यह पुष्टिमारग की भक्ति और पुष्टिमारग को स्वरूप है। सो या भांति सों सूरदासजी कहे।

सो तब चत्रभुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी कों धन्य धन्य कहे जो– इनके ऊपर बडी भगवत् कृपा है, तब सूरदासजी चुप होय रहे।

तब श्रीगुसांईजी आप सूरदासजी सों पूछो जो –सूरदासजी! अब या समय चित्त की वृत्ति कहां है? तब वाही समय सूरदासजीने एक पद गायो। सो पद—

'बलि २ हौं कुंवर राधिका नंदसुवन जासों रति मानी०'.

पाछें दूसरो यह पद गायो–

राग बिहागरो– खंजन नैन रूप रस माते०'.

सो यह पद सूरदासजीने गायो। पाछे सूरदासजी जुगल स्वरूप को ध्यान करिके यह लौकिक शरीर छोडि लीला में जाय प्राप्त भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आप तो गोपालपुर पधारे। तब सगरे वैष्णवनने मिलिके सूरदासजी की देह को अग्निसंस्कार कियो। ता पाछे सगरे वैष्णव श्रीगुसांईजी की पास आये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो इन सूरदासजी के चारि नाम हैं। श्रीआचार्यजी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होय सो रणमें सो पाछो पांव नांहि देय, जो सबसों आगे चले। तैसेई सूरदासजी की भक्ति दिन दिन चढती दिशा भई। तासों श्रीआचार्यजी आप 'सूर' कहते।

और श्रीगुसांईजी आप 'सूरदास' कहते। सो दासभाव में कबहू घटे नांही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयो, त्यों त्यों सूरदासजी कों दीनता अधिक भई। सो सूरदासजी कों कबहूं अहंकार मद नांही भयो। सो 'सूरदासजी' इन को नाम कहे।

और तीसरो इन को नाम 'सूरजदास' है। जो श्रीस्वामिनीजी के ७ हजार पद सूरदासजीने किये हैं, तामें अलौकिक भाव वर्णन किये है। तासों श्रीस्वामिनीजी कहते जो ये 'सूरज' हैं। जैसे सूरज सों जगत में प्रकास होय, सो या प्रकार स्वरूप को प्रकास कियो। सो जब श्रीस्वामिनीजीने 'सूरजदास' नाम धरच्यो, तब सूरदासजीने वहोत कीर्तननमें 'सूरज' भोग धरे।

और श्रीगोवर्द्धननाथजीने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदासजी कों करि दिये। तामें 'सूरश्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदास-जी के चारि नाम प्रकट भये। सो सूरदासजी के कीर्तन में ये चारो 'भोग' कहे हैं।

या प्रकार सूरदासजी मानसी सेवा में सदा मग्न रहते। तातें इनके माथे श्रीआचार्यजीने भगवत् सेवा नांही पधा-राये×। सो काहेतें ? जो—सूरदासजी कों मानसी सेवा में फल रूप अनुभव है। सो ये सदा लीलारस में मगन रहत हैं।

×चापासेनीमें विराजमान श्रीश्याममनोहरजी ठाकुरजी सूरदासजी के कहे जाते हैं, पर इस वार्ता के उल्लेख से वे किसी अन्य सूरदासजी के होना चाहिये। क्या इस पर कोई प्रकाश डालेगा ? —सम्पादक.

सो सूरदासजी की वार्ता में यह सर्वोपरि सिद्धांत है, जो–दैन्यता समान और पदारथ कोई नांही हैं, और परोपकार समान दूसरो धर्म नांही है। जो वा बनिया के लिये सूरदासजीने इतनो श्रम कियो। परि वाको अंगीकार करवाय वाको उद्धार करि दियो।

तासों श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी आपु और सगरे वैष्णव जीवमात्र सूरदासजी के ऊपर बहोत प्रसन्न रहते। सो जो सूरदासजी सों आयके पूछतो, तिनकों प्रीति सों मारग को सिद्धांत बतावते, और उनको मन प्रभुन में लगाय देते। तासों सूरदासजी सरीखे भगवदीय कोटिन में दुर्लभ हैं।

सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हते। तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं सा कहां तांई लिखिये।

(२) श्रीपरमानन्ददासजी

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक परमानंदस्वामी, कनोजिया ब्राह्मण कनौज में रहते, जिनके पद गाइयत हैं अष्टछापमें, तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

सो ये परमानंददासजी लीला में अष्टसखान में 'तोक' सखा को **आधिदैविक मूल** प्राकट्य हैं। सो तोक सखा को दूसरो स्वरूप **स्वरूप** निकुंज में सखीरूप है। ता स्वरूप को नाम 'चंद्रभागा' है। सो सुरभीकुंड के पास श्रीगिरिराज के एक द्वार+ है ताके मुखिया हैं।

सो ये कनौज में कनोजिया ब्राह्मण के यहां जन्मे। जा दिन परमानंददासजी जन्मे, वा दिन उनके पिता कों एक सेठ ने बहोत द्रव्य दान दियो। तब वा ब्राह्मण ने बहोत प्रसन्न होय के कह्यो जो— श्रीठाकुरजी ने मोकों पुत्र दियो, और धन हू बहोत दियो। तासों यह पुत्र बडो भाग्यवान है, जाके जनमत ही मोकों परम आनंद भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम 'परमानंददास' हो धरूंगो।

+ श्यामतमाल वृक्ष के नीचे है।

पाछे जब नाम करन लागे तब वा ब्राह्मण ने कही जो– नाम तो मैं पहले ही या पुत्र को 'परमानंद' बिचारि चुक्यो हों। तब सब ब्राह्मण बोले जो–तुमने बिचारयो है सोइ नाम जन्मपत्रिका में आयो है। तब तो वह ब्राह्मण बहोत ही प्रसन्न भयो। पाछे वा ब्राह्मणने जातकर्म करि दान बहुत ही कियो। एसे करत परमानंददास बडे भये। तब पिताने बडो उत्सव कियो। और इनको यज्ञोपवीत कियो।

सो ये परमानंददास बडे कृपापात्र भगवदीय हैं, लीलामध्यपाती श्री-ठाकुरजी के अत्यंत (अतरंग) सखा हैं। सो जब श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्धननाथजी की आज्ञातें दैवी जीवन के उद्धारार्थ भूतल पर प्रकट भये, तेसेही श्रीठाकुरजी सहित सगरो परिकर प्रकट भयो। सो दैवी जीव अनेक देशांतर में प्रकट भये।

सो गोपालदासजी वल्लभाख्यान में गाये हैं जो–' अनेक जीवने कृपा करवा देशांतर प्रवेश '० सो कनौज में परमानंददासजी बहोत ही प्रसन्न बालपने तें रहते।

पाछें ये बडे योग्य भये, और कवीश्वर हू भये। वे अनेक पद बनायके गावते। सो ' स्वामी ' कहावते और सेवक हू करते। सो परमानंददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनीजन संग रहते।

एक समय कनौज में अकाल परयो सो हाकिम की बुद्धि बिगरी। सो गाममें सों दंड लियो और परमानंददास के पिता को सब द्रव्य लूटि लियो। तब मातापिता बहोत दुःख पाय के परमानंददास

सों कहे जो – हम तेरो ब्याह हू न करन पाये, और सब द्रव्य योंही गयो, तासों अब तू कमायवे को उपाय कर। सो काहेतें ? जो–तू गुनी और तेरे द्रव्य बहोत आवत है। सो तू वा द्रव्य कों इकठोरे करे तो हम तेरो ब्याह करें।

तब परमानंददासने मातापिता सों कह्यो जो– मेरे तो ब्याह करनो नांहीं है, और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषारथ कियो ? सगरो द्रव्य योंही गयो। तासों द्रव्य आये को फल यही है जो– वैष्णव ब्राह्मण कों खवावनो। तासों मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहू नांही करूंगो। और तुम खायवे लायक मोसों नित्य अन्न लेहू, और बेठे २ श्रीठाकुरजी को नाम लियो करो। जो अब निर्धन भये हो तासों अब तो धन को मोह छोडो।

तब पिताने परमानंददास सों कह्यो जो– तू तो वेरागो भयो। तेरी संगति वेरागीन की है, तासों तेरी एसी बुद्धि भई। और हमतो गृहस्थी हैं। तासों हमारे धन जोरे बिना कैसे चले ? जो कुटुंब में ज्ञाति में खरचें, तब हमारी बडाई होय।

पाछें पिता धन के लिये पूरव को गयो। तहां जीविका न मिली तब दक्षिन कों गयो, और तहां द्रव्य मिल्यो सो तहां रह्यो। और परमानंददासनें अपने घर कीर्तन को समाज कियो। सो गाम गाम में प्रसिद्ध भये। सो परमानंददास गान–विद्या में परम चतुर हते।

वार्ता प्रसंग–१

सो एक समय+ परमानंददास कनौज तें मकरस्नान कों प्रयाग में आये, सो तहां रहे। और कीर्तन को समाज नित्य करैं, सो बहोत लोग इनके कीर्तन सुनिवे कों आवते।

सो पार अडेल में श्रीआचार्यजी बिराजत हते। अडेल तें लोग कछु कार्यार्थ गाममें आवते। सो परमानंददास के कीर्तन सुनिके अडेल में जायके श्रीआचार्यजी सों कहते जो–एक परमानंददास कनौज तें आयो है, सो कीर्तन बहोत आछो गावत है।

तब श्रीआचार्यजी कहे जो–परमानंददास दैवी जीव है, जो इनको गुन होय सो उचित ही है।

सो श्रीआचार्यजी को सेवक एक 'कपूर क्षत्री' जलघरिया हतो, वाकी राग ऊपर बहोत आसक्ति हती। सो यह बात सुनि के वाके मनमें आई जो–मैं श्रीआचार्यजी न जानें एसे परमानंदस्वामी को गान सुनूं। काहेतें जो–श्रीआचार्यजी आपु सुनेंगे तो खीजेंगे, जो–तू सेवा छोडिके क्यों गयो? तासों प्रयाग न जाय सके। परंतु वा जलघरिया 'क्षत्री कपूर' को मन परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवे कों बहोत हतो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेतें? जो इनको पूर्व को संबंध है। जो लीला में यह क्षत्री परमानंददास की सखी है, सो ये चंद्रभागा की सखी 'सोनजुही' याको नाम है।

+ सं. १५७७ में। (देखो श्रीविठ्ठलेश्वर चरितामृत)

सो यह क्षत्री सुदामापुरी में एक क्षत्री के घर प्रकटे, इन को पिता महाविषयी हतो। सो जहां तहां परस्त्री को संग करतो। और द्रव्य बहोत हतो, सो सब विषय में खोयो। ता पाछें गाम के राजाने सगरो घर लूटि लियो। सो या क्षत्री के मातापिता पुत्र सहित बंदीखाने में दिये। तब याको पिता एक सिपाई का कछू देकें रात्रिकों स्त्रीपुरुष और या पुत्र सहित बंदीखाने में सों भाजे। सो दिन दोय तीन तांई भाजे, सो तहां एक बन में जाय निकसे। तहां नाहरने याके माता-पिता कों मार्यों, और यह पुत्र वरस चौदह को बच्यो। सो वन में बैठ्यो रुदन करे, सो भूख्यो प्यासो चल्यो न जाय।

क्षत्री कपूर का प्रसंग

सो भागिजोग तें पृथ्वीपरिक्रमा करत श्रीआचार्यजी गहवरवन(सघन वन) में आये। तब या क्षत्री सों पूछी जो– तू कौन है ? जो अकेलो वनमें रुदन करत है। तब इनने दंडवत करिके अपनो सब वृत्तांत कह्यो।

तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास मेघन सों कहे–जो कछू महाप्रसाद होय तो याकों खवायके बेगि जलपान करावो, जो याके प्राण बचें। तब कृष्णदास मेघन के पास प्रसाद हतो, सो या क्षत्री कों न्हवायके खवायके जल पिवायो। तब या क्षत्री को मन ठिकाने आयो। तब या क्षत्रीनें श्री-आचार्यजी सो विनति कीनी जो– महाराज ! मोकों आप पास राखो। जो मैं जनम भरि आप को गुलाम रहूंगो। अब मेरे मातापिता भगवान आपु हो।

तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों कहे जो-तू चिंता मति करे, और तू हमारे संग ही रहियो। तब यह क्षत्री श्री-आचार्यजी के संग ही रह्यो। ता पाछें दूसरे दिन श्रीआचार्यजी आपु वा क्षत्री को नाम ब्रह्मसंबंध करवायो, और जल लायवे की सेवा याकों दिये।

पाछे कछूक दिन में श्रीआचार्यजी आपु अडेल पधारे तब, वह क्षत्री श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करिके अपने मनमें बहोत प्रसन्न भयो। और कह्यो जो- मैं अनाथ हतो, सो श्रीआचार्यजी आपु मोकों कृपा करिके शरण लेके संग लाये, सो मोकों साक्षात् श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन भये। तब वा क्षत्री कपूर जल-घरिया कों मन श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप में लगि गयो।

सो तब या क्षत्रीने अपने मन में बिचारी जो-अब मोकों श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा कछु मिले, तब मैं सदा सेवा करूं और दरशन करूं। सो श्रीआचार्यजी आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, सो या क्षत्री के मन की जानि याकों पास बुलाय के कह्यो जो- तेरे मन में सेवा की आई, सो तेरे बडे भाग्य हैं। तासों अब तू श्रीनवनीतप्रियजी के जलघरा की सेवा कियो कर।

तब वा क्षत्रीने प्रसन्न होयकें श्रीआचार्यजी कों दंडवत करिकें बिनती कीनी-जो महाराज! मेरे हू मन में एसें हती, सो आपु तो परम कृपालु हो, तासों मेरो सर्व मनो-रथ पूरन कियो।

ता पाछें अति प्रीति सों वह क्षत्री वैष्णव प्रसन्न होयके
खारो तथा मीठो जल भरन लाग्यो। सो कछुक दिन में श्री-
नवनीतप्रियजी आपु सानुभावता जतावन लागे। परंतु सेवा
में अवकाश नांही, जो ये परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवे
कों जाय।+

सो एक दिन एकादशी को दिन हतो। ता दिन
प्रयाग सों एक वैष्णव श्रीआचार्यजी के दर्शन कों अडेल में
आयो। तब वा क्षत्री जलघरियाने वा वैष्णव सों परमानंद-
स्वामी के समाचार पूछे। तब वा वैष्णवनें कह्यो जो–
नित्य तो चारि घडी तथा पहर को समाज होत है रात्रि के समे
और आज तो एकादशी है, जो सगरी रात्रि परमानंदस्वामी के
यहां जागरन होयगो।

सो ये बचन सुनिके वह क्षत्री वैष्णव अपने मन में
बहात प्रसन्न भयो, और विचार कियो जो–आजु परमानंद-
स्वामी के कीर्तन सुनिवे को दाव लग्यो है। तासों जब श्री-
आचार्यजी आपु रात्रि कों पोढेंगे तब मैं रात्रि कों प्रयाग
में जायके परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनूंगो।

ता पाछें रात्रि भई। तब वह क्षत्री कपूर जलघरिया
अपनी सेवा सों पहोंचिके श्रीआचार्यजी के श्रीमुख तें कथा
सुनिके रात्रि प्रहर डेढ़ गई, ताही समय अडेल सों प्रयाग कों

+ क्षत्री कपूर जलघरिया का प्रसंग हरिरायजीकृत भावप्रकाश का है, वार्ता का नहीं है।

चल्यो। तब अपने मन में विचार्यो जो–या समय घाट ऊपर तो नाव मिलनी नांही है, तासों पैरिके जाऊं।

सो वे पेरिवे में बडे निपुन हते। पाछे घाट ऊपर आय परदनी एक छोटीसी पहरिके, धोती उपरना माथे सों बांधे। सो उष्णकाल गरमी के दिन हते सो पैरिके परमानंदस्वामी कीर्तन करत हते तहां आये।

सो इनको पहलें परमानंदस्वामी सों मिलाप तो कब हू भयो न हतो, तासों दूरि बैठि गये। उहां श्रीआ-चार्यजी के सेवक प्रयाग के वैष्णव बैठे हते सो इन कों जानत हते। सो तहां अपने पास ही इन क्षत्री कपूर को बेठारि लिये। सो वे जहां परमानंदस्वामी बैठे हते तिनके पास जाय बैठे। और और गुनीन ने पद गाये पाछें परमानंद-स्वामीने गायवे को आरंभ कियो। सो परमानंदस्वामी विरह के पद गावते।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेतें ? जो ऊपर इनको स्वरूप कहि आये हैं जो–ये परमानंददास लीला में सों विछुरे हैं, सो अबही श्रीआचार्यजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन भये नांहि हैं। सो जब श्रीआचार्यजी श्रीनाथजी को दर्शन करावेंगे तब परमानंददास कों लीला को ज्ञान होयगो। श्रीआचार्यजी के मारग को यह सिद्धांत है जो–भगवदीयन को संग होय तब श्रीठाकुरजी कृपा करें। ताके लिये श्रीआचार्यजी परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करन के अर्थ अपने कृपापात्र भगवदीय क्षत्री कपूर जलघरिया कों पठाये।

सो क्षत्री कपूर जलघरिया कैसे हते जो-जिनकों श्रीठाकुरजी एक क्ष
हू नांही छोडत हैं, जो सदा वैष्णव के संग ही रहत हैं ।

तासों सूरदासजी गाये हैं-'जो भक्तविरहकातर करुणाम
डोलत पाछें लागें०' और ऊपर जगन्नाथजोषी की वार्ता* में कहि आ
हैं जो- जब वा रजपूत नें तरवार काढी तब श्रीठाकुरजी आपु पाछे
आयके तरवार सहित हाथ ऊपर ही थांभि दीयो, सो हाथ चलन न दियो

तासों श्रीभागवत में सब ठौर वरणन है जो- भगवदी
वैष्णव के संगही श्रीठाकुरजी डोलत हैं । सो परमानंददास कों अबह
वियोग है । तासों विरह के कीर्तन नित्य गावते ।

सो विरह के पद परमानंददासने गाये । सो पद :-

राग बिहागरो । १ 'व्रजके विरही लोग बिचारे०
२ 'गोकुल सब गोपाल उपासी०' ।

राग कान्हरो-३ 'कोन रसिक है इन बातनको' ।

राग सोरठ-४ 'माइरी ! को मिलिवे नंदकिशोरै'

इत्यादि बहोत कीर्तन परमानंददास नें गाये सगरी रात्रि
ता पाछें चार घडी रात्रि रही तब कीर्तन राखे । सो जो को
जागरन में आये हते वे सब अपने अपने घर कों गये । पाछे
यह जलघरिया क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी सों भगवत्स्मरन
करिके उठिके तहांते चल्यो । सो परमानंदस्वामी के
कीर्तन सुनिके अपने मनमें बहोत प्रसन्न होयके कह्यो जो-
जैसो परमानंदस्वामी को गुन सुनत हते सो तैसेई हैं ।

---

* चौरासी वैष्णवन की वार्ता सं. ३१

सो या प्रकार परमानंदस्वामी की सराहना करत करत वह क्षत्री कपूर श्रीयमुनाजी के तट आइके वाही प्रकारसों पैरिकें पार आय, धोवती उपरना परदनी सहित न्हायके अपरसही में आये। ताही समय श्रीआचार्यजी आपु पोंढिके उठे हते, सो श्रीआचार्यजी के दरशन करि, दंडवत करि अपने जलघरा की सेवा में तत्पर भये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो या प्रकार ये क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करिवे के अर्थ परमानंदस्वामी के पास गये। नांही तो इनको श्रीठाकुरजी आप सानुभाव हते, सो एसे भगवदीय काहेकों काहू के घर जांय? परंतु परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा होनहार है, तासों श्रीनवनीतप्रियजी वा क्षत्री कपूर जलघरिया को मन प्रेरिकें याके संग आपुही पधारि, याही की गोद में बैठिके परमानंदस्वामी के कीर्तन सुने।

सो या प्रकार वह क्षत्री जलघरिया परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनि जब प्रयाग सों अडेल कों चले, सो तब परमानंदस्वामी सगरी रात्रि के श्रमित हते, सो येहू सोये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो तहां यह संदेह होय जो— परमानंदस्वामी सगरी रात्रि जागरण करिकें चारि घडी पिछली रात्रि रही तब सोये। सो सोये तें जागरन को फल जात रहत है। जो परमानंदस्वामी तो सुज्ञान हैं, और चतुर हैं। तासें

वे क्यों सोये ? तहां कहत हैं जो– परमानंदस्वामी लीला संबंधी पुष्टि
जीव हैं । सो एक श्रीठाकुरजीकों चाहत हैं और जागरन के फल कं
चाहत नांही हैं ।

सो ये परमानंद स्वामी एकादसी के जागरन को मिस मात्र लें
भगवन्नाम अधिक लियो जाय ताके लिये जागरन करत हते । सं
इनकों विधि रीति सों कछू जागरन करिवे के फल कों कारन नांह
है । तासों परमानंददास चारि घडी रात्रि पिछली रही तब सोये । सं
यातें जो–जागरन को फल जायगो, परंतु भगवन्नाम लियो, सो गुन तं
कोई काल में जायगो नांही । तासों भगवन्नाम लेंयवेके अर्थ चारि घड
रात्रि पाछिली कों सोये । सो काहे तें ? जो– सोवें नांही तो द्वादसी के
दिन आलस शरीर में रहे । फेरि द्वादशी की रात्रि कों डेढ पहर रात्रि
तांई कीरतन करने हैं । तासों जागरन को आश्रय छोडिकें भगवन्ना
को आश्रय करिकें सोये ।

**सो नींद आवत ही परमानंदस्वामी कों स्वप्न आयो। स
स्वप्नमें देखे तो श्रीआचार्यजी के सेवक क्षत्री जागरन में बै
हैं। और इनकी गोद में श्रीनवनीतप्रियजी बैठे देखे। और श्री
नवनीतप्रियजी स्वप्न में मुसिक्याय के परमानंदस्वामी क
आज्ञा कीये जो–आज मैंने तेरे कीर्तन सुने हैं। सो श्रीआ
चार्यजी के कृपापात्र सेवक कपूर क्षत्री जलघरिया तेरे यहां
रात्रि कों जागरन में आये। तासों इनके साथ मैंहू आयो। स
इतने दिनन में आजु तेरे कीर्तन सुन्यो हों।**

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यह कहे, तहां यह संदेह होय जो–श्रीठाकुरजी तो सदा सुनत हैं, और सब ठोर व्यापक हैं। सो कहे जो–'आज मैं सुन्यो' ताको कारन कहा? तहाँ कहत हैं–जो इतने दिन सों अंगीकार में ढील हती, सो अंतर्यामी साक्षिरूप सों सुने। तासों अब अंगीकार करनो है और कृपा करनी है, सो बेगि कृपा करन को लक्षण बताये। तासों कहे जो–आजु मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हों सो आज मैं तोपर पूरन कृपा करी। तासों अब बेगि मोकों पावोगे। सो यह आशय जाननो।

तब परमानंदस्वामी की नींद खुली। सो नेत्रन में श्री नवनीतप्रियजी को स्वरूप कोटिकंदर्पलावण्य, जो स्वप्न में दर्शन भयो। तासों नेत्रन में हृदय में ज्ञान भयो। तब परमानंदस्वामी के मनमें वड़ी चटपटी लगी, और आर्ति भई, जो–अब मैं कब श्रीनवनीतप्रियजी को दरशन करों?

ता पाछें परमानंदस्वामीने अपने मनमें विचार कियो जो–मैं इतने दिन तें जागरन कियो और कीर्तन हू गाये, परंतु मोकों एसा दर्शन कबहू न भयो। जो आज भयो है सो–श्री आचार्यजी को सेवक जलघरिया क्षत्री कपूर आयो, तासों उनकी गोद में भयो। क्षत्री कपूर बिना श्रीनवनीतप्रियजी को दरशन न होयगो, तासों उनके पास चलिये, और उनसों मिलिये तब अपनो कार्य सिद्ध होय।

सो यह बिचार मनमें करिके परमानंदस्वामी तत्काल उठि

के अड़ेलकों चले। इतने में प्रातःकाल भयो। सो श्रीयमुना के तीर पे आये, सो प्रथम ही नाव पार चली, तामें बैठि परमानंदस्वामी पार आये।

ता समय श्रीआचार्यजी श्रीयमुनाजी में स्नान करि प्रातःकाल की संध्या करत हते। सो परमानंदस्वामी कों आचार्यजी के दरसन अत्यद्भुत अलौकिक साक्षात् श्रीकृष्ण के स्वरूप सों भयो। सो जैसो श्रीगुसांईजी श्रीवल्लभाष्ट में वर्णन किये है जो– 'वस्तुतः कृष्ण एव०'

एसो दर्शन करिके परमानंदस्वामी चकित होय रहे सो कछु बोल न निकस्यो। तब परमानंदस्वामीनें अपने म में बिचार कियो जो– श्रीआचार्यजी के सेवक कपूरक्षत्री गोदमें बैठिके श्रीनवनीतप्रियजी मेरे कीर्तन क्यों न सुनें जिनके माथे श्रीआचार्यजी आपु एसे धनी बिराजत हैं तासों मैं हू इनको सेवक होऊंगो। परि मेरो सामर्थ्य नांही है जो–मैं इनसों सेवक होंन की बिनती करों। तासों वह क्षत्री फेर मिले तो उनसों सगरी बात कहिके सेवक होंन की बिनती करों।

यह बिचार परमानंदस्वामी अपने मनमें करत हते, इतने में श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखतें परमानंदस्वामी सों आज्ञा किये जो–परमानंददास! कछु भगवल्लीला गावो। तब परमानंददासजीने श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके यह पद गायो:–

राग सारंग—१ कौन बेर भई चलेरी। गोपालें०'। २ जियकी साध जियही रही री०'। ३ 'वह बात कमलदलनैन की०'। ४ 'सुधि करत कमलदलनैन की०'।

या भांति सो परमानंददास ने विरह के पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये। सो सुनिके श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो–परमानंददास! कछु बाललीला के पद गावो। तब परमानंददास ने हाथ जोरिके श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो–महाराज! मैं बाललीला में कछु समुझत नांही हों।

तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास सों आज्ञा किये जो– तुम श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो; जो हम तुमकों समुझाय देयगें।

पाछें परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो– महाराज! आपुको सेवक क्षत्री कपूर कहां है? सो तब श्रीआचार्यजी आप कहे जो–कछु सेवा टहल में होयगो। तब परमानंददास श्रीयमुनाजी में स्नान करनकों चले, और श्री आचार्यजी तो सेवा को समय हतो सो वेगिही उहां ते मंदिर में पधारे। × और श्रीनवनीतप्रियजा कों जगाये।

+ इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि–आचार्यश्री के समय से प्रातः संध्या के अनन्तर भगत्सेवा करनेकी मर्यादा थी। आजभी बहुतसे गोस्वामि बालक इसी मर्यादानुसार चलते हैं किंतु भगवत्सेवा के समय के पूर्वही आचार्यश्री प्रातःसंध्या कर लेतेथे, जिससे श्रीठाकुरजी के सेवासमय का अतिक्रम एवं परिश्रम न हो। यह बात खास लक्ष्य में रखने की है।

इतने ही में वह क्षत्री जलघरिया श्रीयमुनाजल भरिवे कों गागर लेके श्रीयमुनाजीके पार आयो। सो उनकों देखि के परमानंदस्वामी परम आनंद सों दोऊ हाथ जोरिके भगवत् स्मरन करिके कह्यो, जो– रात्रि कों तुम कृपा करकें जागरन में पधारे हते, सो नवनीतप्रियजीने तिहारी गोदि में बैठिके मेरे कीर्तन सुने। सो मैं सोयो तब श्रीनवनीतप्रियजीने दरशन दीयो, और कृपा करिके आज्ञा किये जो–आज मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हूं। तासों तुमने मेरे ऊपर बडी कृपा करी। सो अब तिहारे दरशन कों आयो हों। तासों अब आप जा प्रकार श्रीआचायजी आपु मोकों शरण लेंय और श्रीठाकुरजी कृपा करिके मोकों नित्य दरशन देंय, सो प्रकार कृपा करिके बतावो। और मोकों श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके श्री कृष्णजी के स्वरूपको दरशन दियो है, सो यह तिहारे सत्संग को प्रताप हैं।

तब यह बात सुनिके क्षत्री कपूरनें उनसों कह्यो जो– तिहारी ऊपर श्रीआचार्यजी की कृपा भई है। तासों तुमको एसो दरसन भयो हैं। और तुमसों आपने आज्ञा करी है, शरण लेवे के लिये, सो जासों तुम वेगिही न्हायके अपरस ही में श्रीआचार्यजी के पास चलो। सो तुमकों प्रभु कृपा करिके शरण लेंयगे, तब तिहारो सब मनोरथ सिद्धि होयगो। और रात्रि कों मैं जागरन में तिहारे पास गयो, सो बात तुम

श्रीआचार्यजीके आगें मति करियो। नांहि तो आपु मेरे ऊपर खीजेंगे जो– तू सेवा छोडिके क्यों गयो हता ?

यह वचन परमानंदस्वामी सों कहिके वा क्षत्री वैष्णव ने तो श्रीयमुनाजलकी गागर भरी, और परमानंददास स्नान करिके अपरसही में श्रीआचार्यजी के पास उन जल-घरिया क्षत्री के पाछे पाछे आये। ता समय श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को शृंगार करिके श्रीगोपीबल्लभ भोग धरिकें बिराजे हते।

ता समय परमानंददास न्हाय के आये। तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो– परमानंददास ! बेठो। तब परमानंददास श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके बेठे। पाछें श्रीआचार्यजी आपु भीतर पधारि भोग सरायके परमानंददास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी की सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे ब्रह्मसंबंध करवायो। पाछें श्रीभागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो ताको हेतु यह है जो–प्रथम परमानंददास सों श्रीआचार्यजीने कह्यो जो–कछु भगवद् वर्णन करो। तब परमानंददासने विरह के पद गाये। पाछें श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों कहे जो–बाललीला गावो। सो ताको हेतु यह है जो– बाललीला श्रीनंदरायजी के घर की लीला है, सो संयोग रस है। सो एकवार संयोग होय ता पाछे विरह फलरूप होय। सो काहेतें

जो– रासपंचाध्यायी में व्रजभक्तन कों बुलायके लीला किये। ता पाछें अंतरध्यान में विरह फलरूप भयो। तासों भगवान कहे–'यथाऽधनो लब्ध धने विनष्टे तच्चिन्तया०'

जैसे धन पायके धन जाय, तब धन को चिंतन बहोत होय। सो पहले श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–बाललीला गावो। क्यो ? जो–अनुभव करिके विरह को गान वेगि फले। परि परमानंददासने विनती कीनी जो– महाराज ! मैं कछू समुझत नांही हों।

ताको आशय यह है जो– संयोग रस अब ही है नांही। जो मूल लीला में हतो सो विस्मृत भयो है। परि लीला में तें बिछुरे हैं, और दैवी जीव हैं, तासों विरह जनम ही तें गाये। सो अब नाम समर्पन करायके अज्ञान प्रतिबंध दूरि कियो, ता पाछें श्रीभागवत दसस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये। सो तब साक्षात् श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप को अनुभव भयो और दशम की सगरी लीला स्फुरी।

परमानंददास कों दसम की अनुक्रमणिका सुनाये ताको कारण यह है जो– सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीगुसांईजी प्रकट किये हैं। तामें श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं जो– 'श्रीभागवत पीयूषसमुद्र–मथन क्षमः'। सो श्रीभागवतको श्रीगुसांईजी अमृत को समुद्र करिके वर्णन किये, सो श्री-आचार्यजी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवतरूपी समुद्र परमानंददास के हृदय में स्थापन कियो। सो तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदय में अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवतरूपी समुद्र स्थापन कियो हतो। तासों वैष्णव तो अनेक श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हैं, परंतु सूरदास और

परमानंददास ये दोऊ 'सागर' भये। इन दोउन के कीर्तन की संख्या नांही, सो दोऊ सागर* कहवाये।

सो श्रीआचार्यजीने आज्ञा करी जो— बाललीला गावो। अब संयोग रस को अनुभव भयो।

तब परमानंददासजीने श्रीआचार्यजी के आगे बाललीला के पद गाये। सो पद—

राग आसावरी—१ 'माइरी! कमलनैन श्यामसुंदर झूलत हैं पलना०'

राग बिलावल—२ 'जसोदा तेरे भाग की कही न जाइ०।' ३ मणिमय आंगन नंद खेलत दोऊ भैया०'

राग कान्हरो—४ 'प्यारे को जस गावत गोपांगना०'

सो एसे पद परमानंददासने बाललीला के बहोत ही गाये। सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछें परमानंददास अडेल में श्रीआचार्यजी के पास रहे। तब श्रीआचार्यजी परमानंददास सों कहें जो—अब समय समय के पद नित्य श्रीनवनीतप्रियजी कों सुनायो करो, सो यह सेवा तुम कों दीनी।

तब परमानंददास नित्य नये पद करिके समय समय के श्रीनवनीतप्रियजी कों सुनावते। और जब श्रीनवनी-

---

* परमानंदसागर की हस्तलिखित ३ प्रतियां कांकरोली विद्याविभाग में विद्यमान हैं।

तप्रियजी कों अनोसर होय, तब परमानंददास श्रीआचार्यजी के आगे अनेक व्रजलीला के कीर्तन करते। और श्रीआचार्यजी आपु श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहते। सो जा समय (जा) प्रसंग की कथा श्रीआचार्यजी के श्रीमुखते सुनते ताही प्रसंग के कीर्तन कथा भये पीछे परमानंददास श्रीआचार्यजी कों सुनावते×

वार्ता प्रसंग-२

एक दिन परमानंददासनें श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य कथा में श्रीआचार्यजी के श्रीमुखतें सुन्यो। सो ता समय परमानंददासने श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य सहित कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो। सो पद—

राग कान्हरो—'चरणकमल वंदों जगदीस०'

ता पाछे श्रीआचार्यजी के आगे प्रार्थना को पद गायो। सो पद—

राग कान्हरो—'यह मागों गोपीजन वल्लभ०'

सो यह पद परमानंददासने गायो सो सुनिके श्रीआचार्यजी महाप्रभु आपु जाने, जो या पदमें व्रज के दरशन की प्रार्थना

× इस से ज्यादा कीर्तन की प्रामाणिकता क्या हो सकती है? इससे दो बात स्पष्ट होती हैं। एक यह जो-कीर्तन में कल्पितता का आरोप नहीं आ सकता है। और दूसरा उस समय जो भी कुछ सांप्रदायिक भाषारूप साहित्य प्रकट होता था, आचार्य के निवेदित होकर ही उसका प्रचार होता था।

कीनी है। तासों परमानंददास कों व्रज के दरशन अवश्य करवा-वने। तब *श्रीआचार्यजी आपु व्रजमें पधारिवे को उद्यम किये।

सो तब दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, परमानंददास, और यादवेन्द्रदास आदि सब वैष्णवनकों संग लेके श्रीआचार्यजी आपु अडेलतें व्रज कों पधारे।

सो व्रज कों आवत मारग में परमानंददास को गाम कनौज आयो। तब परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों विनती करि अपने घर पधराये।

पाछे परमानंददास अपने भाग्य मानिके परम प्रीति सों अपने घर पधरायकें सब सामग्री बजारतें लाये। और जो वैष्णव हते सो तिनसों बहोत बिनती दैन्यता करिके सबन कों सीधो सामान देके रसोई करवाई। पाछे श्रीआचार्यजी आपु सखडी अनसखडी पाक सामग्री सिद्ध करिके श्रीठाकुरजी कों भोग धरि भोग सराय आपु भोजन किये। ता पाछे परमानंददास आदि सब वैष्णव कों महाप्रसाद देकें आपु गादी तकीयान के ऊपर बिराजे। पाछे परमानंददास महाप्रसाद ले आचार्यजी के पास आय दंडवत करिके बैठे। तब आपु आज्ञा किये जो परमानंददास! कछू भगवद्जस गावो।

तब परमानंददास अपने मनमें बिचारे जो—या समय श्री आचार्यजी को मन तो व्रजलीला में श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास

---

* सं. १८८२ के लगभग

है। तासों विरह को पद गाऊं, जामें एक एक क्षण कल्प समान जाय। सो पद–

राग सोरठ–'हरि तेरी लीला की सुधि आवै०'।

यह पद परमानंददासने गायो। सो यामें यह कहें जो–'हरि तेरी लीला की सुधि आवे०'। सो ताही समय श्रीआचार्यजी आपु लीला में मग्न होय गये।

सो तहां श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी को स्वरूप श्रीवल्लभाष्टक में श्रीहरिरायजीकृत वरणन कियो है जो–'श्रीमद् वृंदावनेंदु प्रकटित भावप्रकाश रसिकानन्द सन्दोहरूप–स्फूर्जद्रासादिलीलामृत० एसे रस सों भरे हैं। और सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आचार्यजी को नाम कहे–'रासलीलैकतात्पर्याय नमः'। सो श्रीआचार्यजी को कार्य कहियत हैं, जो जो ग्रन्थ किये सो तामें रासलीला ही तात्पर्य है। और कछु काहू बात में आपु को तात्पर्य नांही है। सो तासों रासलीला में मगन होय गये।

सो ऊपर सरीर को–देह को–अनुसंधान हू रह्यो नांही। सो तीन दिनलों श्रीआचार्यजी कों मूर्छा रही। सो नेत्र मूदि के गादी तकियान पें बिराजे हते, और दामोदरदास हरसानी आदि वैष्णव (जो) श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप कों जानत हतें सो जाने। सो कोई वैष्णव बोले नांही। बैठें बैठे चुप होय के श्रीआचार्यजी को दरशन कियो करें।

सो काहेतें ? जो जैसें श्रीआचार्यजी आप पूरन पुरुषोत्तम हैं सो
श्रीहरिरायजीकृत इनको शरीरधर्म बाधक नांही। जो मनुष्य देह
भावप्रकाश धारण किये तासों मनुष्य की क्रिया जगत में
दिखावत हैं, परि इनकों देह को धर्म बाधक नांही है। तासों सब सेवक
तीन दिनलों बैठे रहे।

सो पाछें चौथे दिन सावधान होयकें श्रीआचार्यजीने नेत्र खोले, तब सब वैष्णव प्रसन्न भये।

सो तहां यह पूर्व पक्ष होय जो—रासादिक लीला में मगन तीन
श्रीहरिरायजीकृत दिन तांई क्यों रहे ? सो तहां कहत हैं जो—रासा-
भावप्रकाश दिक लीला में तीन ही ठोर मुख्य हैं। जो श्री
गिरिराज, श्रीवृंदावन और श्रीयमुनाजी। १ श्रीगिरिराज स्वरूप होय
सगरी लीला की सामग्री सिद्धि करत हैं। २ श्रीवृंदावनकी लीला रसात्मक
कुंजविहार में। ३ और श्रीयमुनाजी सब रास को मूल.

या प्रकार जल स्थल की लीला हैं। सो एक दिन श्रीगिरिराज संबंधी लीला रस को अनुभव किये, जो कंदरा में नाना प्रकार के विलास, चत्रभुजदासजी गाये हैं—'श्रीगोवर्द्धनगिरि सघन कंदरा०' आदि। दूसरे दिन वृंदावन लीला, और तीसरे दिन श्रीयमुनाजी की पुलिन (में) रास जलविहारादि। या प्रकार तीन दिनलों तीनों रस को अनुभव किये। ता पाछे भूमि पर भक्तिमारग प्रकट करिकें अनेक जीवन कों सरन लेकें लीलारस को अनुभव करवावनो है, सो चौथे दिन श्रीआचार्यजी आपु नेत्र खोलि कें सावधान भये।

तब परमानंददासजी अपने मनमें डरपे, जो–एसो पद फेरि कबहूं नांही गाऊंगो ।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो परमानंददासजी यासों डरपे जो–श्रीआचार्यजी आपु रस के अनुभव करिके कदाचित् लीलारस में मगन होइ जांय। सो भूमि पर पधारिवे को मन न करें तो यह दैवीजीवन को उद्धार कौन भांति सों होयगो ? तासों परमानंददासने अपुने मन में बिचार कियो जो–अब मैं फेरि विरह को पद आचार्यजी आगे नांही गाऊंगो ।

सो काहेते ? जो–श्रीआचार्यजी आपु विरहात्मक स्वरूप हैं सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आपु श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं ‘जो विरहानुभवैकार्थ सर्वत्यागोपदेशक: ’ सो विरहरस के अनुभव के अर्थ सर्व लौकिक में त्याग किये, सो उपदेश करत हैं । यामें विरह को स्वरूप जताये। विरह दशा में लौकिक वैदिक की कछू सुधि न रहे, सो तब विरह भयो जानिये ।

ता पाछें परमानंददासने सूधे पद गाये । सो पद–

राग रामकली–‘ माईरी ! हौं आनंद मंगल गाऊं० ’ ।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु भोजन करिके पोढे, तब सब वैष्णव महाप्रसाद लिये। ता पाछें परमानंददास महाप्रसाद लेके श्रीआचार्यजी आगे यह पद गायो–

राग गोरी–१ ‘ विमल जस वृंदावन के चंदको० ’ ।

ता पाछे परमानंददासने यह पद गायो। सो पद–

राग सारंग—'चल सखी! नंदगाम जाय बसिये०'।

यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो— अब व्रजकों चलिये।

पाछें परमानंददासने जो सेवक किये हते, तिन सबन कों श्रीआचार्यजी के पास लाय बिनती कीनी जो— महाराज! इन जीवन कों अंगीकार करिये। तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो—इनकों तुम नाम सुनाय के सेवक किये हैं, तातें अब हम पास तुम इनकों सेवक क्यों करावत हो?

तब परमानंददास कहे जो— महाराज! यह तो पहली दशा में स्वामीपनो हतो, तासों सेवक किये हते। और अब तो मैं आपु को दास हों। 'स्वामीपद' तो जो स्वामी हैं तिनही को सोहत है। दास होय स्वामीपद चाहे सो मूरख है। तासों मैं अज्ञान दशा में सेवक किये, सो अब आप इनकों शरन लेके उद्धार करिये।

तब सबन कों श्रीआचार्यजीने नाम सुनाय सेवक किये। ता पाछे सब वैष्णवन को संग ले कनौज सो व्रज में पधारे। कछूक दिन में श्रीगोकुल में पधारे। सो गोविंदघाट ऊपर स्नान करिके छोंकर के नीचे श्रीआचार्यजी आपु अपनी बेठक में आय बिराजे। सो एक भीतर बेठक श्रीद्वारकानाथजी के मंदिर के पास है, तहां रात्रि कों श्रीआचार्यजी के विश्राम करिवे की ठोर है। सो आपु जब श्रीगोकुल पधारते, तब आपु उहां

उतरते । सो यह भीतर की बेठक है। सो श्रीआचार्यजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने झुलाय दधिकांदो जन्माष्टमी को उत्सव किये हैं । सो ऊपर गज्जनधावन की वार्ता में वरणन करि आये हैं ।

सो श्रीआचार्यजी आपु स्नान करि छोंकर के नीचे अपनी बेठक में बिराजे हते । तब सब वैष्णव परमानंददास सहित स्नान करि प्रभुन के (श्रीआचार्यजी के) पास बैठे हते । पाछें श्रीआचार्यजीने श्रीयमुनाष्टक को पाठ परमानंददासको सिखाये। तब परमानंददास के हृदय में यमुनाजी को स्वरूप स्फुर्‌यो । सो श्रीयमुनाजी को जस वर्णन कियो । सो पद–

राग रामकली–१ 'श्रीयमुनाजी यह प्रसाद हौं पाओं०'। २ 'श्रीयमुनाजी दीन जान मोहि दीजे०' । ३ 'कालिंदी कलि कल्मष–हरनी०' ।

एसे पद परमानंददासनें श्रीआचार्यजी के आगे श्री यमुनाजी के तटपे गाये । तब श्रीआचार्यजी आपु प्रसन्न होय के परमानंददास कों श्रीगोकुल की बाललीला के दरशन कर-वाये । सो बाललीला विशिष्ट परमानंददास कों एसे दर्शन भये जो–व्रजभक्त श्रीयमुनाजल भरत हैं, और श्रीठाकुरजी आपु व्रजभक्तन सों नाना प्रकारकें ख्याल लीला करि सुख देत हैं। सो परमानंददास लीला के दरशन करि एसे ही पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये । सो पद—

राग बिलावल—१ 'श्रीयमुनाजल घट भरि ले चली श्री चंद्रावलि नारी०'।

राग सारंग—२ 'लाल नेक टेको मेरी बहियां०'।

ता पाछे परमानंददासने श्रीगोकुल की बाललीला के पद बहोत किये। सो जामें श्रीगोकुल को स्वरूप जान्यो परे, सो पद—

राग कान्हरो—१ 'गावत गोपी मधु मृदु बानी०' २ 'रानी जसुमति गृह आवत गोपीजन०'।

राग हमीर—३ 'गिरधर सब ही अंग को बांको०'

या भांति परमानंददासने बहोत कीर्तन किये। सो श्री गोकुल के दरशन करिके परमानंददास कों श्रीगोकुल पे बहोत आसक्ति भई। तब श्रीआचार्यजी के आगे एसे प्रार्थना के पद गाये जो—मोकों श्रीगोकुल में आप के चरणारविंद के पास राखो, जासों नित्य श्रीठाकुरजी के दरशन करों, और सगरी लीला को अनुभव होय। सो पद—

राग सारंग—१ 'यह मागौं जसोदानंदन०'।

राग कान्हरो—२ 'यह मागों संकर्षन वीर०'।

सो एसे कीर्तन परमानंददासने प्रार्थना के गाये सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

वार्ता प्रसंग—३

पाछे श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सहित सब वैष्णव समाज लेके श्रीगोकुल तें गोवर्द्धन पधारे। सो उत्थापन के समय श्रीआचार्यजी आपु गिरिराज पधारे। तहां स्नान करि

श्रीआचार्यजी श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर पधारे। तब परमानंददास न्हायके श्रीगिरिराज कों साष्टांग दंडवत करिके पर्वत के ऊपर मंदिर में आय, उत्थापन के दर्शन किये। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करत ही परमानंददास आसक्त होय रहे। तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखतें परमानंददास सों कहे जो—परमानंददास! कछू भगवल्लीला के कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सुनावो।

तब परमानंददास अपने मन में विचार किये जो—मैं कहा गाऊं? क्यों जो रसना तो एक है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप तो अपार है, और इनकी लीला हू अपार है। जो वस्तु स्मरन करों सो ताही में बुद्धि विक्षिप्त होय जात है। परंतु श्रीआचार्यजी की आज्ञा है, तासों कछू गावनो तो सही। सो एसो पद गाऊं जामें प्रथम तो अवतार—लीला, पाछें कुंज—लीला, पाछें चरणाविंद की वंदना, पाछें स्वरूप को वर्णन, ता पाछे माहात्म्य सहित श्रीठाकुरजी की लीला होय। सो एसो पद गायो। सो पद—

राग बिलावल—१ 'मोहन नंदरायकुमार०'।

सो यह प्रार्थनाको पद गायके पाछे आसक्ति को पद गायो।

राग आसावरी—२ 'माई मेरो माधो सों मन मान्यो०'।

राग गोरी—३ 'मैं अपुनो मन हरि सों जोर्‍यो०'।

राग कान्हरो—४ 'तिहारी बात मोही भावत लाल०'।

ता पाछे श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन-आरती किये। ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद—

राग केदारो-१ 'पोढे रंग महल गोविंद०'

सो एसे पद परमानंददासजीने बहोत गाये, सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पोढायके अनोसर करि पर्वत नीचे पधारे। तब श्रीआचार्यजीने रामदास भीतरिया सों कह्यो जो-परमानंददास कों प्रसादी दूध पठाय दीजो। तब रामदासने वह प्रसादी दूध पठायो। परमानंददास प्रसादी-दूध लेंन लागे, सो तातो लाग्यो। तब सीरो करिके लियो।

पाछे परमानंददास श्रीआचार्यजी पास आय दंडवत करिके बैठे। तब श्रीआचार्यजी आप परमानंददास सों पूछे जो-परमानंददास! महाप्रसादी दूध लियो सो कैसो हतो? तब परमानंददासनें श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो-महाराज! दूध तो तातो हो। तब श्रीआचार्यजीने सब भीतरियान सों बुलाय के पूछ्यो, जो- दूध तातो क्यों भोग धरत हो? सो आछो सुहातो होय तब भोग धरनो। तब सगरे भीतरियानने कही जो- महाराज! अब तें सुहातो सीरो करिके भोग धरेंगे।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो परमानंददास कों श्रीआचार्यजी आपु प्रसादी दूध यासों दिवायो, जो-श्रीठाकुरजी कों दूध बहोत प्रिय है। तासों सेवक कों दूध निकुंज-लीला संबंधी रस के दान करन कों, और सामग्री बिगरी सुधरी वैष्णव द्वारा श्रीठाकुरजी कहत हैं। जो-सामग्री वैष्णव सराहें तब जानिये जो-श्रीठाकुरजी भली भांति सों अनुभव किये। सो या भावतें दूध पिये।

ता पाछें परमानंददास कों दूध अधरामृत पिये तें सगरी रात्रि लीला-रस को अनुभव भयो। तब रात्रि की लीला में मगन होय के ये पद गाये। सो पद-

राग कान्हरो-१ 'आनंदसिंधु बढ्यो हरि तन में०'। २ 'पिय मुख देखत ही रहिये०'।

राग गोरी-३ 'कौन रस गोपिन लीनो घूंट०'। ४ 'यातें माई! भवन छांडि बन जइये०'।

राग हमीर-'५ अमृत निचोइ कियो इकठोर०'।

राग बिहागरो-६ 'यह तन नवलकुंवर पर वारों०'।

सो या भांति परमानंददासने सगरी रात्रि लीला को अनुभव कियो, सो बहुत कीर्तन गाये। ता पाछे प्रातःकाल भयो, तब श्रीआचार्यजी आपु स्नान करिके पर्वत ऊपर पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगाये। तब परमानंददास ने यह पद गायो। सो पद-

राग रामकली-१ 'जागो गोपाललाल! देखों मुख तेरो०'। २ 'लाल को मुख देखन कों आई०'। ३ 'ग्वालिन पिछवारे व्हे बोल सुनायो०'।

सो या प्रकार के पद परमानंददासने बहोत गाये। ता पाछे श्रीआचार्यजीने परमानंददास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा दीनी। सो नित्य नये पद करिके परमानंददास श्रीनाथजी कों सुनावते।

वार्ता प्रसंग-४

एक दिन* एक राजा अपनी रानी को संग लेके व्रज में यात्रा करिवे आयो। वह राजा श्रीआचार्यजी को सेवक हतो। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिके डेरान में आयके वा राजानें अपनी रानी सों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी को दर्शन बहुत सुंदर है, सो तू श्रीगिरिराज पर जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिआव।

तब रानीनें राजा सों कह्यो जो–जैसे हमारी रीत है सो परदान में दर्शन होय तो मैं करूं। तब राजा नें रानी सों कही जो–ये व्रज के ठाकुर हैं सो श्रीठाकुरजी के दर्शन में परदा को कहा काम है? सो ये ठाकुर व्रज के हैं सो काहूको परदा राखत नांही।

या प्रकार राजाने रानी कों बहोत समझाई, पर रानीने राजा को कह्यो मान्यो नांही।

तब राजाने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो–महाराज! मैनें रानी कों बहोत समुझायो, परंतु वह मानत नांही, जो वह परदा में दर्शन कियो चाहत है।

तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–वाको परदा में ही ले आव, जो सबतें पहले दर्शन करवाय देंगे। तब रानी परदान में आई और श्रीनाथजी के दर्शन करन लागी। तब श्रीनाथजी (भक्तोद्धारक स्वरूप सों) सिंहासन सों उठिके सिंहपोरि के

---

* सं. १५८५ के लगभग।

किंवाड खोलि दिये, सो भीड वा रानी के ऊपर परी। सो वाके देह के सब वस्त्र निकसि गये। तब रानी बहुत लज्जित भई। जब राजा सों रानी ने डेरान में आयके सब समाचार कहे। तब राजाने रानी सों कही जो—मैं तोसों पहले ही कह्यो हतो, जो—ये श्रीनाथजी व्रज के ठाकुर हैं, सो इनने काहूको परदा राख्यो नांही है।

ता समय परमानंददास यह पद गावत हते, सो वाकी एक तुक कही हती। सो पद :—'कोन यह खेलिवे की बान, मदनगोपाललाल काहूकी राखत नांहिन कान०।'

सो यह सुनिके श्रीआचार्यजी परमानंददास कों बरजे जो— एसे न कहिये, यासों एसे कहो जो— 'भली यह खेलिवे की बान'।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेतें? जो अब ही परमानंददास कों दास पदवी दिये हैं। सो दासभाव सों रहे, और बोले, तो प्रभु आगे कृपा करें। जब परम भाव दृढ होय, तब बराबरी सों वार्ता होय। तासों बिना अधिकार अधिक भाव नांही है। जो करे तो नीचे गिरे। सो जब श्रीठाकुरजी सरल भाव को दान करें, तब ही बने।

दूसरो आशय—श्रीआचार्यजी आपु अपनो स्नेह श्रीगोवर्द्धननाथजी में राखे सो सर्वोपरि दिखाये, जो—स्नेही सों एसे न बोले। जो कार्य सनेही प्रीति सों न करे सो तासों हू कहिये जो—भलो कार्य किये। एसी सनेह की रीति है।

तासों श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास को बरजे–'कौन यह खेलिवे की बान०' या भांति सों कबहू न कहिये। कहिवे, बरजिवे लायक तो व्रजभक्त हैं, सो तासों चाहैं तैसें बोलें। तासों तुम एसे कहो जो–'भली यह खेलिवे की बान०'

तब परमानंददासने एसे ही पद गाये। सो पद—

राग सारंग– 'भली यह खेलिवे की बान०'।

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये।

या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानंददासने किये। तासों परमानंददास के पदन में बाललीला भाव, (और) रहस्य हू झलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानंददास को भयो, ताही लीला के पद परमानंददास गाये। परंतु श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों बाललीला रस कों दान हृदय में कियो है, तासों बाललीला गूढ पदन में हू झलकत है।

वार्ता प्रसंग–५

और एक दिन सगरे भगवदीय सूरदासजी, कुंभनदासजी तथा रामदास आदि सब बैष्णव मिलिके जहां परमानंद-दास रहत हते तहां इनके घर आये। सो सब भगवदीय कों अपने घर आये देखिके परमानंददास अपने मन में बहोत प्रसन्न भये जो–आज मेरो बडो भाग्य है। सो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिके पधारे, ये भगवदीय कैसे हैं जो–साक्षात श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप ही हैं। तासों आज मो ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजीनें बडी कृपा करी है।

सो काहेतें ? जो–अनेकरूप होयके श्रीठाकुरजी मेरे घर पधारे हैं।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश सो भगवदीय के हृदय में श्रीठाकुरजी आपु बिराजत हैं, तासों मेरे बडे भाग्य हैं। अब मैं कृतकृत्य होय गयो, जो सब भगवदीय कृपा किये हैं। सो प्रथम तो इन भगवदीयन की न्योछावरि करी चाहिये। सो एसी कहा वस्तु है? जासों सब भगवदीयन की न्योछावर हौंय।

पाछे परमानंददासने भगवदीय वैष्णवन सों मिलिके ऊंचे आसन बेठारिके यह पद गायो। सो पद—

राग बिहागरो– १ 'आये मेरे नंदनंदन के प्यारे०'।

ता पाछें दूसरो पद गायो। सो पद–

राग बिहागरो– २ 'हरिजन–संग छिनक जो होई'।

सो एसे पद परमानंददासने गाये। सो सुनिके सब भगवदीय परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। तब परमानंददासने सब बैष्णवन सों बिनती कीनी, जो–आजु कृपा करिके मेरे घर पधारे सो कछू आज्ञा करिये। तब रामदासजीने पूछी, जो–परमानंददास! व्रज में सगरो प्रेम व्रजभक्तन को हैं, सो श्रीनंदरायजी, गोपीजन, ग्वाल, सखान को। तामें सब तें श्रेष्ठ प्रेम किन को है?

सो काहेते ? जो–तिहारी बाललीला में लगन बहुत है। ओर

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश तुम कृपापात्र भगवदीय हो, तासों यह संदेह है सो दूरि करो। सो या प्रकार रामदासजीने परमानंददास सों यों पूछी जो–श्री आचार्यजीके अभिप्रायमें

तो गोपीजनको प्रेम बहोत है। और परमानंददासने नंदालय की लीला और बाललीला बहोत वर्णन किये हैं, तासों श्रीआचार्यजी के हृदय के अभिप्राय की खबरि परी के नांही? तासों परमानंददास की परीक्षा लेनी।

ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद—

राग नायकी—१ 'गोपी प्रेमकी ध्वजा०'।

राग कान्हरो—२ 'व्रजजन सम धर पर कोउ नांही०'।

सो यह पद परमानंददासने गाये। तब सगरे वैष्णव कहे जो—परमानंददास! तुम धन्य हो।

या प्रकार सगरे वैष्णव प्रसन्न होयके परमानंददास की सराहना करत बिदा होय अपने घर आये। ता पाछे परमानंददासने बहोत दिन तांई श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा कीनी।

वार्ता प्रसंग—६

ता पाछे एक दिन परमानंददास श्रीगुसांईजी के और श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन कों गोपालपुर तें श्रीगोकुल आये, सो दर्शन करिके रात्रि तहां रहे।

पाछे प्रातःकाल श्रीगुसांईजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे तब परमानंददासकों बुलाये। तब परमानंददास आगे आय दंडवत किये। सो तब श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों कहे जो—श्रीठाकुरजी कों सगरी लीला व्रज की बहोत प्रिय है। सो नित्यलीला व्रज की श्रीठाकुरजी कों सुनावे, सो तो कोई काल में हू पार पावे नांही। सो काहेतें?

जो-एक लीला को पार पैये, तो सगरी लीला कोन गावे। परंतु मै एक कीर्तन करि देत हों, तामें सगरी व्रज की लीला को अनुभव है। सो तुम या समय नित्य गाईयो।

तब परमानंददास कहे जो-महाराज! वह पद कृपा करि के बताइये। सो श्रीगुसांईजी तो मारग के चलायवे वारे हैं सो भाषा के पद करे नांही*। तासों संस्कृत में कीर्तन गायो। सो पद—

१ 'मंगल मंगलं व्रजभुवि मंगलम्'०।

सो यह पद श्रीगुसांईजी आपु गायके परमानंददास कों गवाये। सो परमानंददास 'मंगल मंगलं०' गाये। तब मंगलरूप परमानंददास ने और हू पद गाये। सो पद—

राग भैरव—१ 'मंगल माधो नाम उच्चार'०।

सो यह पद परमानंददासने गायो, ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु मंगल भोग सरायके मंगला आरती किये। ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद—

राग भैरव—'मंगल आरती करि मन मोर०'

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी कृत 'मंगल मंगलं०' के अनुसार परमानंददासने बहोत कीर्तन किये, और श्रीगुसांईजी कृत मंगल मंगलं० पद नित्य गावते।

---

* इस विषयमें देखो 'पुष्टिमार्गीय भक्तकवि' नामक ग्रन्थ। विद्याविभाग कांकरोली।

यामें सगरी व्रजलीला है, सो ठाकुरजीको नित्य सुनावत हैं, । और

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

मंगल मंगलं० के पाठतें व्रजलीला को सब पाठ होय । सो तहां मंगला को पद परमानंददासने कियो सो तामें कहे—'मंगल तन वसुदेवकुमार०'। सो तहां यह संदेह होय जो—परमानंददास तो नंदनंदनके उपासक हैं । सो वसुदेवकुमार व्रजलीलामें कहे, ताको कारन कहा ?

तहां कहत है, जो—वेणुगीत और युगलगीत में 'देवकीसुत' गोपिकान ने कहे, सो ये कुमारिकाके भावतें। सो काहेतें ? जो—कुमारिका श्रीयशोदाजी कों माता कहते, तासों श्रीठाकुरजी में पतिभाव है । याही सों वसुदेव—सुत कहि पतिभाव दृढ करत हैं । जो यशोदा सुत कहें, तो भाइ बहन को भाव होय ।

पाछे परमानंददास श्रीगोवर्द्धनधर के दर्शन कों श्रीगोकुल तें श्रीगिरिराज आये । सो तहां मंगला आरती पहलें 'मंगल मंगलं०' पद परमानंददासनें गायो। सो तब तें* श्रीगोवर्द्धनधर के यहां 'मंगल मंगलं०' की रीत भई । सो वे परमानंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग-७

और जब जन्माष्टमी आवती तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी को पंचामृत स्नान करवायके शृंगार करि श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर पधारिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के

---

* सं. १६०५ के आसपास में

शृंगार करते। ता पाछे राजभोग सों पहोंचिके फेरि श्री गिरिराज तें श्रीगोकुल आवते। सो तहां श्रीनवनीतप्रियजी कों मध्यरात्रि कों जन्म की रीति करिके पलना झुलाय श्री नाथजी के यहां नंदमहोत्सव करते।

सो जब जन्माष्टमी आई, तब श्रीगुसांईजी आप परमानंददासजी को संग लेय के श्रीगिरिराज सों श्रीगोकुल पधारे। सो जन्माष्टमी के दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराये। ता समय परमानंददासने यह वधाई गाई। सो वधाई—

राग धनाश्री– १ 'मिलि मंगल गावो माई०'

ता पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीनवनीतप्रीयजी के शृंगार करिके तिलक कियो, ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद–

राग सारंग– १ 'आज बधाई को दिन नीको०'।
२ 'घरघरतें ग्वाल देत है हेरी०'।

या प्रकार परमानंददासने बहोत पद गाये। ता पाछे अर्द्धरात्रिके समय श्रीगुसांईजी आपु जन्म करायके श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने में पधरायके श्रीनंदरायजी श्रीयशोदाजी, गोपी ग्वाल को भेष धराये। ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद–

राग धनाश्री– १ 'सोवन फूलन फूली जसोदा०'।

सो या पदमें परमानंददासजी यह कहे जो-'ऐसे दशक होय जो औरे सब कोऊ सुख पावे'। सो भगवदीयनके वचन सत्य करिवे के लिये श्रीगुसांईजी के बालक सातों और श्रीगुसांईजी तथा श्रीआचार्यजी तथा श्रीगोवर्द्धननाथजी सो ये दस स्वरूप प्रकट होयके सबको सुख दिये हैं। सो 'सब' माने सगरे दैवी पुष्टिमार्गीय। सो या प्रकारसों भाव सहित परमानंददासजीनें कीर्तन गाये।

पाछें श्रीनंदरायजी और गोपी ग्वाल वैष्णवनके जूथ अपने लालजी सब (कों) लेके दधिकांदो किये। तब परमानंददास को चित्त आनंद में विक्षिप्त होय गयो। वा समय परमानंददास नाचन लागे और यह पद गायो। सो वा प्रेम में परमानंददास रागको हू क्रम भूलि गये। सो रात्रिको तो समय और सारंग में गाये। सो पद-

राग सारंग- 'आजु नंदराय के आनंद भयो०'

यह पद गाये पाछे परमानंददास प्रेम में मूर्छा खायके भूमि में गिरि पडे। तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तकमल सों परमानंददास कों उठायके अंजुलि में जल लेके वेदमंत्र पढिके आपु परमानंददास के ऊपर छिरके। सो तब उच्छलित प्रेम जो विकल करतो, सो हृदय में स्थिर भयो। सो परमानंददास सगरी लीला को अनुभव किये, और गान किये।

या प्रकार परमानंददास के उपर श्रीगुसांईजीनें कृपा करी। ता पाछे यह पद पलना को परमानंददासने गायो। सो पद–

राग बिलावल– १ 'हालरो हुलरावत माता०'।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो या भांति सों 'अखिल भुवनपति गरुडगामी' एसे परमानंदजीने कह्यो। सो अखिल भुवन–पति यातें जो श्रीभगवान गरुड प बिराजमान सो (तो) सब जगतके पति है, और नंदसुवन सबन के ठाकुर, सो परमानंददासने कही, जो–ये मेरे स्वामी हैं।

सो यह कीर्तन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास की उपर बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे परमानंददासने यह पद कान्हरो राग में करिके गायो। सो प्रेम में राग को क्रम नांही, लीला को क्रम। सो जेसी लीला करी, सो स्फुरी। सो तैसी परमानंददास गाये। सो पद–

राग कान्हरो– १ 'रानी तिहारो घर सुबस बसो०'

सो यह असीस को पद परमानंददासने गायो। तब श्रीगुसांईजी आपु अपने पुत्र श्रीगिरधरजी कों श्रीनवनीतप्रियजी के पास राखिके दधिकांदों किये।

ता पाछे परमानंददास को संग लेके श्रीगुसांईजी आपु

श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। सो दधिकांदों देखिके परमानंददास लीलारस में मग्न होय गये।

ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धनाथजी कों राजभोग धरिके बाहिर आये। तब श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास की अलौकिक दशा देखिके कहे जो—जैसे कुंभनदास को किशोर लीला में निरोध भयो, सो तैसे बाललीला में परमानंददास को निरोध भयो है।

पाछे परमानंददास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि, पर्वत तें नीचे उतरे सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजा कों दंडवत करि, सुरभीकुंड ऊपर आयके अपने ठिकाने कुटीमें आय बोलिवो छोडि दियो। सो नंद-महोत्सव के रस मेंमग्न होयके परमानंददास अपनी देह छोडिवे को विचार करि के सुरभीकुंड ऊपर आयके सोये। और यहां श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की राजभोग आरती करिके अनोसर करवाये।

अंतिम समय

पाछे श्रीगुसांईंजी आपु सेवकन सो पूछे जो—आज राजभोग आरती के समय परमानंददास को नांही देखे, सो कहां गये ?

तब एक वैष्णवने श्रीगुसांईजी सों आय बिनती कीनी जो—महाराज! परमानंददासजी तो आजु विकल से दीसत हैं, और काहू सों बोलत नांही, और सुरभीकुंड पें जायके

सोये हैं। तब श्रीगुसांईजी आपु वा वैष्णव को संग ले सुरभी कुंड ऊपर पधारिके परमानंददास के पास आये। सो पर- नंददास के माथे पर श्रीहस्त फेरिके श्रीगुसांईजी आपु परमानंद- दास सों कहे जो–परमानंददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं। जो अब तिहारो दरसन दुर्लभ भयो। तब परमानंददास उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत किये। ता समय यह पद परमानंददासने गायो। सो पद–

राग सारंग—'प्रीति तो श्रीनंदनंदन सों कीजे०'।

सो यह पद परमानंददासने श्रीगुसांईजी को सुनायो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो परमानंददासजीने या पदमें श्रीगुसांईजीसों प्रार्थना कीनी, जो–प्रीति हू तुमसों करनो सो सदा कृपा एक रस करो। सो परम कृपालु, अपने हस्त कमलकी छायातें जनकों राखत हैं। या समय हू मोकों दरशन देय मेरे मस्तक ऊपर श्रीहस्तकमल धरे। सो मेरे अंत:करणमें जो मेरो मनोरथ हतो सो पूरन किये। सो वेद पुरान सबही कहत है जो–सदा भक्तनको भायो करि भक्तनको आनंद दिये हैं।

जैसे एक समें इन्द्रकी पदवी लायक जीव कोई न देखे तब भग- वान ही इन्द्र होयके इन्द्रको कार्य चलाये। सो प्रसाद वैष्णव सुदामा भक्त कों दिये। तामें सुदामा को वैभव पाये हू मोह न भयो। सो तेसें आपु जो व्रज में लीला करत हैं सो–परमानंदरूप सों कृपा करिके

मोकों दान दिये । सो आपके गुन मैं कहां तई कहौं । सो एसी प्रार्थना परमानंददासजी श्रीगुसांइजो सों किये ।

यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आपु बहोत प्रसन्न भये । ता समय एक वैष्णव नें परमानंददास सों कह्यो, जो मोकों कछू साधन बतावो सो मैं करों। तातें श्रीठाकुरजी आपु मेरे ऊपर प्रसन्न होयके कृपा करें ।

तब परमानंददास वा वैष्णव सों प्रसन्न होयके कहे जो–तुम मन लगाय के सुनो। जो सुगम उपाय है सो मैं कहूं। या बात को मन लगायके सुनोगे तो फलसिद्धि होयगी। सो या प्रकार प्रीति सों समाधान करिके परमानंददासने एक पद वा वैष्णव कों सुनायो । सो पद—

राग भैरव—'प्रात समे उठि करिये श्रीलक्ष्मनसुत गान०'

सो या प्रकार यह कीर्तन परमानंददासनें गायो। यह सुनिके श्रीगुसांईजी और सगरे वैष्णव प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों पूछे जो— परमानंददास! अब तिहारो मन कहां है? तब परमानंददासने यह कीर्तन सारंग राग में गायो । सो पद–

राग सारंग—१ 'राधे बेठी तिलक संमारति०'।

सो या प्रकार जुगल स्वरूप की लीला में मन लगायके परमानंददास देह छोडिके श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला में जायके प्राप्त भये ।

पाछे श्रीगुसांईजी गोपालपुर में आयके स्नान करि
पर्वत के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी को उत्थापन कराये। पाछे से
पर्यंत सेवा सों पहोंचिके अनोसर करवाय पर्वत तें उत
अपनी बैठक में आय बिराजे। तब सब वैष्णवननें परमानंदद
की देह कों अग्निसंस्कार कियो और पाछे गोपालपुर में अ
के श्रीगुसांईजी के आगे बहोत बडाई करन लागे।

सो ता समय श्रीगुसांईजी आपु उन वैष्णवन के अ
यह वचन श्रीमुख सों कहे, जो–ये पुष्टिमार्ग में दोइ 'साग
भये। एक तो सूरदास और दूसरे परमानंददास। सो ति
कों हृदय अगाध रस, भगवल्लीला रूप जहां रत्न भरे हैं
सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास
सराहना किये।

सो वे परमानंददासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपाप
भगवदीय हते। जिन के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी सदा प्रस
रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नांही सो अनिर्वचनीय
सो कहां तांई कहिये।

(३) श्रीकुंभनदासजी

अब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुन के सेवक कुंभनदासजी गोरवा क्षत्री, जमुनावते में रहते, तिनकी वार्ता—

—o—

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

आधिदैविक मूल स्वरुप

ये कुंभनदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के 'अर्जुन' सखा अंतरंग तिनको प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो अर्जुन सखा हैं और रात्रि की लीला में विशाखा सखी हैं, सो श्रीस्वामिनीजी की। सों तिनको (विशाखाजीको) दूसरो स्वरूप कृष्णदास मेघन, सदा पृथ्वीपरिक्रमा में श्रीआचार्यजी के संग रहते, और कुंभनदासजी सदा श्रीगोवर्द्धननाथजी के संग रहते। सो या भावतें कुंभनदासजी सखाभावमें अर्जुन सखारूप, और सखीभावमें विशाखारूप हैं। सों गिरिराज में आठ द्वार हैं। तामें एक द्वार आन्योर पास है। सो तहां की सेवा के ये मुखिया हैं।

और गाम को नाम 'जमुनावता' यासों कहत हैं, जो—श्रीयमुनाजीके प्रवाह, सारस्वत कल्पमें दोय हते। एक तो जमुनावता होय कें आगरे

के पास जात हतो, और एक चीरघाट होय श्रीगोकुल होय कें। उ
दोऊ धारा एक मिलि सारस्वत कल्प में बहती।×

और ता समय आगरा आदि गाम नांही हतो। दोऊ धारा एक मिलि
आगे कों गई हती। सों चीरघाट तें धारा होयके गिरिराज आवत
तासों पंचाध्याई को रास 'परासोली' में चंद्रसरोवर ऊपर किये।
व्रजभक्त, अंतरध्यान के समय चंद्रसरोवर सों द्रुमलतान सों पू
चली। सो गोविंदकुंड के पास होयके अप्सराकुंड ऊपर आय
श्रीठाकुरजी के चरणारविंद के दर्शन भये। तासों अप्सराकुंड ऊ
चरनचिन्ह हैं।

तहां ते आगे चलिके राधा सहचरी की बेनी गुही, सो सिंदु
काजर सगरो शृंगार+ कियो तासों वहां सिंदूर, कजली और बाजनी सि
है। ता पाछे जब रुद्रकुंड ऊपर आयके राधा सहचरी को मान भय
सो श्रीठाकुरजी सों कह्यो जो–मोसों तो चल्यो नांही जात है। त
श्रीठाकुरजी के कांधे चढन के मिष वृक्ष तरे ही अंतर्ध्यान भये। तब
राधा सहचरी रुदन कियो, जो–

× गो. ति. श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज आज्ञा करते थे, कि–लीला में श्रीयमुनाजी की सौ धारा है और श्रीगोवर्द्धन पर्वत के शिखर भी सौ है। परंतु अब पृथ्वी पर तीन ही शिखर प्रकट दर्शन देते हैं। एसे श्रीयमुनाकी धारा भी एक ही विद्यमान हैं।

+ यह स्थल आज भी 'शृंगार स्थल' के नाम से प्रसिद्ध है जहां लीलास्थ गोस्वामिबालकों के तुलसीक्यारा और समाधियाँ हैं।

'हा नाथ रमणप्रेष्ठ क्वासि २ महाभुज!
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्'।

तासों वा कुंड को नाम 'रुद्रकुंड' हे। सो अब तांई लोग वासों रुद्रकुंड कहत है। पाछें तहां सब गोपी आय मिली। पाछे आगे चलि के 'जान' 'अजान' वृक्ष सों पूछते पूछते जमुनावता श्रीजमुनाजी की पुलिन में गोपिका गीत ('जयति तेऽधिकं') गाय के सब भक्तनने रुदन कियो।÷ तब श्रीठाकुरजी आपु प्रकट होय के फेरि 'परासोली' चंद्रसरोवर पें रास किये, सो श्रम भयो। तब श्रीयमुनाजी के जल में जलविहार किये। सो या प्रकार सारस्वतकल्प की पंचाध्याई को रास श्रीगिरिराज के पास है।*

और व्रजभक्त ढूंढत २ श्रीठाकुरजी के मिलनार्थ दूरि गई। **सामई ओर श्यामढाक** सो अंधियारो देखि के उहांते फिरे।
'तमः प्रविष्टमालक्ष्यततो निववृतु र्हरेः'।। इति।

सो यह अंधियारो श्यामढाक के आगे 'सामई' गाम हैं। सो तहां स्यामवन है, सो महासघन। ताते वहां पंचाध्याई के अनुसार सगरे स्थल दर्शन देत हैं।

÷ इसी भाव से आजमी गोस्वामिबालक व महानुभाव भक्तगण श्रीगिरिराजकी परिक्रमा करते हैं।

*इस प्रसंग का श्रीवल्लभाचार्यजी कृत रासप्रकरण कीपंचाध्याय सुबोधिनी और नंददासजीकृत भाषा पंचाध्यायी से मिलान कीजिये।

और कालीदह के घाट तें हू श्रीवृंदावन कहत हैं। तहां हू बंसीबट है। तहां अनेक श्वेतवाराह कल्प में पंचाध्याई को रास उहां ही किये हैं। और सारस्वतकल्प में शरद ऋतु किए सो 'परासोली' श्रीगिरिराज ऊपर किये। पाछें वसंत चैत्र वैशाख को रास केसीघाट पास बंसीबट नीचे किये।+ सो या प्रकार रास दोऊ ठिकाने। परंतु मुख्य पंचाध्याई सारस्वत कल्प को रास गिरिराज को।

या प्रकार लीला के भेद हैं। तासों 'जमनावता' में एक धारा श्रीयमुनाजी की सारस्वतकल्प में वहती, तासों वा गाम को नाम 'जमुनावता' है। सो नंदगाम बरसाने के मध्य संकेत पास धारा होयके श्रीयमुनावता आई। तासों संकेत के पास श्रीयमुनाजी के पधारिवे को चिन्ह हैं।×

सो या प्रकार यातें कह्यो जो—अबके जीव को विश्वास दृढ होत नांही है। सो सब चिन्हनकों देखे, सुने तब विश्वास होय। और जब फल सिद्ध होय, तब भाव बढे, तासों खोलिके कहे।

वार्ता प्रसंग–१

सो जमुनावता में कुंभनदास रहते। सो परासोली चंद्रसरोवर के ऊपर कुंभनदास के बापदादान के खेत हते* तहां

+ इसीसे दोनो स्थलों में श्रीआचार्यजी विराजते थे।

× श्रीयमुनाजी के पधारने का एसाही चिन्ह 'पूछरी' परभी अभीतक विद्यमान है।

* अबभी ये खेत और पेड़ विद्यमान है जहां श्रीनाथजी खेलते थे। ये खेत चंद्रसरोवर से कुछ दूर श्रीनाथजी के बगीचा के पास हैं।

कुंभनदास खेती करते। सो परासोली में कुंभनदास खेत अर्थ बहोत रहते हते। उन कुंभनदास कों बालपने तें गृहासक्ति नांही, और झूठ बोलते नांही, और पापादिक कर्म नांही करते। सूधे व्रजवासी की रीति सों रहते।

सो जब कुंभनदास× बडे भये। तब 'जेत' (गांव) के पास बहुलावन है तहां कुंभनदास को ब्याह भयो, सो स्त्री साधारन आई, लीला-संबंधी तो नांही। परंतु कुंभनदासजी सरिखे वैष्णव भगवदीयन कों संग निष्फल जाय नांही, सो उद्धार होयगो। परंतु अब ही श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिराज ऊपर प्रकटे नांही। जब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिराज ऊपर प्रकट होयके श्री-आचार्यजी कों अपने पास बुलावेंगे, तब श्रीआचार्यजी आपु सरन लेयगें, और तब ये भगवदीय प्रसिद्ध होयगें।

सो एक समय श्रीआचार्यजी आपु पृथ्वी-परिक्रमा करत दक्षिन में झारखंड में पधारे। सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्री-आचार्यजी सों कहे जो-हम श्रीगोवर्द्धन में प्रकटे हैं, सो आपु यहां आयके हम कों बाहिर पधरायके हमारी सेवा जगत में प्रकट करि प्रकास करो।

तब श्रीआचार्यजी आपु पृथ्वीपरिक्रमा उहां झारखंडम राखिके सूधे व्रज कों पधारे। तब दामोदरदास हरसानी,

× कुंभनदासजी के काका का नाम धरमदास था। कुंभनदासजी का जन्म सं. १५२५ में हुआ था।

कृष्णदास मेघन, माधवभट्ट, नारायनदास और रामदास सिकंदरपुरवारे ये पांच सेवक श्रीआचार्यजी के संग हते। सो तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत के नीचे 'आन्योर' में 'सदूपांडे' के द्वारपे एक चोतरा हतो तापे आय बिराजे।

पाछें श्रीगोबर्द्धननाथजी के प्राकट्य को प्रकार श्रीआचार्यजी सदूपांडे, और उनके भाई माणिकचंद पांडे, नरो भवानी, ये सब सेवक भये हते तिन सों पूछ्यो। सो सब प्रकार ऊपर सदुपांडे की वार्ता में कहि आये हैं।

पाछें रामदास चौहान पूछरी के पास गुफा में रहते सो सेवक भये, तिन कों श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सोंपी। सो रामदास व्रजवासी आदि औरहू सेवक भये। सो कुंभनदास 'जमुनावता' गाम में रहते। तहां ये समाचार सुने जो एक बडे महापुरुष 'अन्योर' में आये ह। सो श्रीगोबर्द्धननाथजी श्रीठाकुरजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत म सों प्रकट करे हैं, और सदूपांडे आदि व्रजवासी बहोत लोग सेवक भये है।

तब कुंभनदास सुनिके अपनी स्त्री सों कहे जो-'आन्योर में चलिके श्रीआचार्यजी के सेवक हूजिये, सो इनकी कृपातें श्रीठाकुरजी कृपा करेंगे। सो तब स्त्रीने कही, जो-म हू चलूंगी, जो मेरे कोई संतति बेटा नहीं है, सो वे महापुरुष देंय तो होय।

सो या प्रकार बिचार करिके दोऊ जनें श्रीआचार्यजी

के पास आयके दंडवत करी। सो तब श्रीआचार्यजी आपु पूछे जो-कुंभनदास! आये? सो तब कुंभनदासने दंडवत करि बिनती करी जो–महाराज! बहोत दिनतें भटकतो हतो, सो अब आपु मो ऊपर कृपा करो। सो कुंभनदास तो दैवीजीव हैं, सो श्रीआचार्यजी के दरशन करत ही श्रीआचार्यजी के स्वरूप को ज्ञान होय गयो।

तब श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदास सों कहे जो–तुम स्त्री पुरुष दोउ जने न्हाय आवो। तब दोऊ जने संकर्षणकुंड में न्हायके श्रीआचार्यजी के पास आये। तब श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदास और उनकी स्त्री कों नाम सुनायो।

तब वा स्त्रीने आचार्यजी सों बिनती करी जो–महाराज! आपु बडे महापुरुष हो, मेरे बेटा नांही है, तासों आपु कृपा करिके देऊ। तब श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके प्रसन्न होयके कहे जो–तेरे सात बेटा होयगें, तू चिंता मति करे। सो तब वह स्त्री अपने मन में वहोत प्रसन्न भई।

तब कुंभनदासन अपनी स्त्री सों कही जो–यह कहा तेनें श्रीआचार्यजी के पास मांग्यो। जो श्रीठाकुरजी मांगती तो श्रीठाकुरजी देते। तब वा स्त्रीने कही जो–मोकों चहियत हतो सो मने मांग्यो, और जो तुम को चाहिये सो तुम मांगि लेहु।

तब कुंभनदास चुप होय रहे। ता पाछें श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धनधर को छोटो सो मंदिर बनवायके ता मंदिर

में श्रीगोवर्द्धनधर कों पधरायके रामदास चौहान कों सेवा की आज्ञा दीनी।

सो रामदास, सदूपांडे आदि व्रजवासी सब सीधो सामग्री ले आवते। सो दूध दही माखन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भोग धरिके ता महाप्रसाद सों रामदास निर्वाह करते। और व्रजवासी जो सेवक कुंभनदास आदि भक्त, तिन कों श्री आचार्यजीने आज्ञा दीनी जो-ये श्रीगोवर्द्धननाथजी हमारो सर्वस्व हैं, तासों इनकी सेवा में तुम तत्पर रहियो, और श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये बिना महाप्रसाद मति लीजियो। और श्रीगोवर्द्धनाथजी की सेवा सावधानी सों करियो।

सो कुंभनदास कीर्तन बहुत सुंदर गावते। कंठहू इनको वहोत सुंदर हतो। तासों कुंभनदास सों श्रीआचार्यजी आपु कहे जो-तुम समय समय के कीर्तन नित्य श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों सुनाइयो।

सो प्रातःकाल श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगायके कुंभनदास कों कहे जो-कछु भगवल्लीला वरणन करो। तब कुंभनदास श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके पहले यह पद गायो। सो पद-

राग विलावल। 'सांझ के सांचे बोल तिहारे०'

सो यह कीर्तन कुंभनदास के मुखतें सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो-कुंभनदास! निकुंज-लीलासंबंधी रस को

अनुभव भयो’? तब कुंभनदासने दंडवत कीनी और कह्यो जो–महाराज! आपु की कृपातें। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–तिहारे बडे भाग्य हैं। जो प्रथम प्रभु तुम कों प्रमेय बल को अनुभव बताये, तासों तुम सदा हरिरस में मगन रहोगे। तब कुंभनदासने विनती कीनी जो–महाराज! मोकों तो सर्वोपरि याही रस को अनुभव कृपा करिके कीजिये।

सो कुंभनदास सगरे कीर्तन जुगल स्वरूप संबंधी किये। सो वधाई, पलना, बाललीला गाई नांही। सो एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

या प्रकार कुंभनदासजी आदि वैष्णवन ऊपर कृपा करि श्री-आचार्यजी दक्षिन के झारखंड में पृथ्वी–परिक्रमा छोडिके पधारे हते, सो फेरि जीवन की ऊपर कृपा करन के अर्थ परि-क्रमा करन पधारे।

वार्ता प्रसंग–२

और यहां कुंभनदासजी नित्य सवारे ‘जमुनावता’ गाम तें श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धनाथजी के दरशन कों आवते, सो समय २ कीर्तन करते। श्रीगोवर्द्धनाथजी आपु कुंभ-नदास सों सानुभावता जनावते, सो संग खेलन लागे। और खेल की वार्ता करते।

पाछे कछुक दिन में एक म्लेच्छ को उपद्रव भयो, सो सगरे गाम को लूटत मारत पश्चिमतें आयो। ताके डेरा श्री-गिरिराजतें पांच कोस आगे भये। तब सदूपांडे, माणिकचंद पांडे,

रामदासजी, कुंभनदासजी ये चारि वैष्णवननें अपने मनमें बिचार कियो जो–यह म्लेच्छ बुरो आयो है, जो–भगवद्धर्म को द्वेषी है। तासों कहा विचार करनो ?

सो ये चारों वैष्णव श्रीनाथजी के अंतरंग हते, सो इन सों श्रीगोवर्द्धननाथजी वार्ता करते। तासों इन चारयों वैष्णवन नें मंदिरमें जायके श्रीनाथजी सों पूछी जो–महाराज! अब कैसी करें ? जो धर्म को द्वेषी म्लेच्छ लूटत आवत है। तासों आपु कृपा करिके आज्ञा करो सो करैं।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी यह आज्ञा किये जो–हमकों तुम टोड के घने में पधराय के ले चलो। हमारा मन वहां पधारिवे को है।

तब चारयों वैष्णवनें बिनती कीनी जो–महाराज! या समय असवारी कहा चहियें ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो–सदूपांडे के घर भैंसा है, सोई ले आवो, तापे चढिके चलूंगो। पाछे सदूपांडे वा भैंसा को ले आये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी वा भैंसा पे चढिके पधारे।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो वह भैंसा दैवी जीव हतो। सो वह लीला में श्रीवृषभानजी के घर की मालिन है। सो नित्य फूलन की माला श्रीवृषभानजी के घर करिके ले आवती। सो लीला में 'वृंदा' याको नाम है। एक दिन श्रीस्वामिनीजी बगीची में पधारी। ता समय वृंदा के पास एक बेटी हती, सो ताको खवावती हती। सों याने उठिके न तो दंडवत कीनी ओर न समाधान कियो। तो भी श्रीस्वामिनीजीने यासों कछु कह्यो नांही।

ता पाछे श्रीस्वामीनीजीने वृंदा सों कही, जो–तू श्रीनंदरायजी के घर जायके श्रीठाकुरजी सों समस्या सों हमारो यहां पधारिवो कहियो। तब श्रीस्वामिनीजी के वचन सुनिके वृंदा ने कही, जो–अभी मेरे माला करिके श्रीवृषभानजी कों पठावनी है, तासो मैं तो जात नांही।

यह वचन सुनिके श्रीस्वामिनीजीने यासों कही जो–मैं यहां आई तब तेने उठिके सन्मान हू न कियो, और एक कार्य कह्यो सोऊ तोसों नांही बन्यो। तासों तू या बगीची में रहिवे योग्य नांही है। और तू यहां सो गिरिके भैंसा को जन्म लेहु।

सो यह श्राप श्रीस्वामिनीजीनें वा मालिन को दियो। तब तो यह मालिन श्रीस्वामिनीजी के चरणारविंद में जाय परी, और बहोत ही बीनती स्तुति करन लागी। और कही जो–अब एसी कृपा करो, जो फेरि में यहां आऊं।

तब श्रीस्वामिनीजीने यासों कही जो–जब तेरे ऊपर चढिके श्रीठाकुरजी वनमें पधारेंगे, तब तेरो अंगीकार होयगो। सो भैंसा को देह छोडिकें सखी–देह धरिके फेरि या बाग की मालिन होयगी। सो या प्रकार वह मालिन सदूपांडे के घर में भैंसा भई।

सो वाही भैंसा के ऊपर श्रीनाथजी आपु चढिके 'टोड' के घने में पधारे×, सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कों एक ओरतें रामदासजी पकडे चले, और एक ओरतें सदूपांडे पकडे रहे। और कुंभनदास और मानिकचंद पांडे बीच में थांभे जाय। सो

× मिति श्रावण शुक्ल १३ सं. १५६० के लगभग।

मारग में कांटा बहोत लागे, वस्त्र सब फाटि गये, बहोत दुःख पायो। मारग आछो न हतो।

सो वा 'टोड' के घना में बीच में एक निकुंज है। तहां नदी (?) है, सो कुंभनदास और मानिकचंद पांडे ये दोउ जने श्रीनाथजी के आगे मारग बतावें, लता कांटा टारत जांय। सो या प्रकार 'टोड' के घने में भीतर एक चोतरा है तहां छोटोसो सरोवर है, और एक गोल चोक मंडलाकार है। तहां रामदासजी और कुंभनदासजी श्रीनाथजी सों पूछे जो—आपु कहां विराजोगे? तब श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये जो—याही चौंतरा पे विराजेंगें। सो तब श्रीनाथजी के नीचे भैंसा के ऊपर गादी डारे हते सो वही गादी चौंतरा ऊपर डारि बिछाई, तापें श्रीनाथजी कों पधराये।

पाछे श्रीनाथजी रामदासजी सों आज्ञा किये जो—तू कछू भोग धरिके न्यारे ठाडे होउ। तब रामदासजी तथा कुंभन-दासजी मन में विचारे जो- कोई व्रजभक्तन के मनोरथ पूरन करिवे के लिये यहां लीला करी है। पाछें रामदासजी थोडी सामग्री भोग धरे। सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें जो—सब सामग्री धरि देउ। सो रामदासजी उतावली में दोय सेर चून को सीरा कर लाये हते सो सगरो भोग धरे।+

+ कहते हैं कि इस समय विष्णुस्वामि—मतानुयायी नागाओं का महंत 'चतुरा' नामक एक व्यक्ति यहां पर रहता था. उसने उसी समय ककोडा ला दिये सो रामदासजीने सिद्ध करकें सीरा के संग भोग धरे, तब से संप्रदाय में श्रा. सु. १३, सीरा और कंकोडा के भोग के लिये प्रसिद्ध हुई।

पाछे रामदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी तें कहे जो–सगरी सामग्री भोग धरी, परि यहां रहनो होय तब कहा करेंगे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो–यहां रहनो नांही है। जो इतनो ही काम हतो।

पाछे कुंभनदास सहित सदुपांडे मानिकचंदपांडे और रामदासजी ये चारों जन एक वृक्ष की ओट में जाय बैठे। सो तब निकुंज के भीतर श्रीस्वामिनीजी अपने हाथ सों मनोरथ की सामग्री करी हती सो लेके श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास पधारी। पाछे मिलिके भोजन करनो विचार कियो। सो सामग्री करत रंचक श्रीस्वामिनीजी को श्रम भयो। तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु श्रीमुखतें कुंभनदास सो आज्ञा किये जो–कुंभनदास! तू कछू या समय कीर्तन गावे तो मन प्रसन्न होय। और मैं सामग्री अरोगत हौं, तासों तू कीर्तन गाउ।

सो कुंभनदास अपने मनमें बिचारे, जो–प्रभुन को मन कछू हास्य प्रसंग सुनिवेको है। और कुंभनदास आदि चारचों वैष्णव भूखे हते और कांटाहू लगे हते, सो ता समय कुंभनदासने एक पद गायो। सो पद–

राग सारंग। 'भावत है तोहि टोंड को घनो०'।+

+ 'टोंड के घने' का स्थान जतीपुरा सें गुलालकुंड हो कर नहर की पटली पटली सात फर्लांग पर है। वहां कोटास्थ गो. श्रीद्वारकेशलालजी महाराज की सम्मति ले कर प. भ. श्रीजदुनाथदासजीने श्रीनाथजी की बेठक उसी स्थल पर सं; १९८४ में वनवाई है, और छोटा सा कुंड

सो यह कीर्तन सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीस्वामिनीजी बहोत प्रसन्न भये। और सब वैष्णव हू प्रसन्न भये। ता पाछे माला के समय कुंभनदासने यह पद गायो। सो पद–

राग मालकोस। १ 'बोलत स्याम मनोहर बैठे कमल-खंड और कदम की छैंया०'।

यह पद कुंभनदासने गायो, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु बहोत प्रसन्न भये।

तब श्रीस्वामिनीजीनें श्रीगोवर्द्धनधर सों पूछी जो–तुम कौन प्रकार पधारे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने कही जो–सदु-पांडे के घर भैंसा हतो सो वा उपर चढिके पधारे हैं। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी के वचन सुनिके श्रीस्वामिनीजी आपु वा भैंसा की ओर देखिके कृपा करिके कहे जो–यह तो मेरे बाग की मालिन है, सो मेरी अवज्ञा तें भैंसा भई परंतु आज याने भली सेवा करी, तासों अब याको अपराध निवृत्त भयो।× सो या प्रकार कहि, नाना प्रकार की केलि टोड के घने में करिके श्रीस्वामिनीजी तो बरसाने में पधारे।

भी खुदवाया है। वहां गोलाकार मंडल चोक में अति प्राचीन श्यामतमाल, कदम आदि दर्शनीय वृक्ष हैं। जब से बेठक बनी है तब से प्रत्येक यात्रा का रास वहां होता है।

× सेवा का अपराध सेवा से ही निवृत्त होता है। देखो श्रीगोकुलनाथजी तथा श्रीदेवकीनन्दनजी के हास्यप्रसंग।

सो तहां कांटा बहोत हते, सो श्रीस्वामिनीजी ऊहां कैसे पधारे ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश. यह शंका होय तहां कहत हैं। जो–ये व्रज के वृक्ष परम स्वरूपात्मक हैं, सो जहां जैसी इच्छा होय सो तहां तैसी कुंज लता फल फूल होय जात हैं। सो कबहू सकल कांटा तो यह लौकिक लोगन को दीसत हैं। सो तहां कुंज में सब व्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आप लीला करत हैं। सो तहां गोपन को और मर्यादा वारेन को यह कांटन की आड होत है, (नातर) सघनवन होत है। सो व्रज के भक्त सदा सेवा में तत्पर रहत हैं, सो तासों यह संदेह नांही है।

और श्रीगोवर्द्धननाथजी भैंसा ऊपर चढिके टोड के घना में पधारे। सो ता समय चार वैष्णव संग हते। सो मारग में व्रजवासी लोग बहोत मिलते, सो श्रीगोवर्द्धनाथजी को देखे नांही, जाने जो– भैसा लिये चारि जन जात हैं। सो कांटा न होय तो सगरे व्रजवासी तहां आवें। या प्रकार केवल व्रजभक्तन को सुख देनार्थ श्रीठाकुरजी की लीला रस है। सो लौकिक में डरिके छिपिके पधारनो, सो यह रस है। ईश्वरताको भाव नांही बिचारनो है। ईश्वरतामें कहे तो भजनो कहा ? डर, जहां माधुर्य रस में है सो प्रेमसों; ईश्वर तामें डरत नांही है। या प्रकार रसिक जन नेत्रन सों जो देखत हैं सो तिन को आनंद उपजत है, सो ज्ञाननेत्रन–अलौकिक नेत्रन–सों लीलारस को अनुभव होत है।

सो जब श्रीस्वामिनीजी बरसाने पधारे, तब चारयों भगवदीयन को श्रीगोवर्द्धननाथजीने अपने पास बुलाये।

सो तहां यह संदेह होय जो ये भगवदीय तो अंतरंग हैं । सो श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश. जब लीला को अनुभव है तो फेरि श्रीगोवर्द्धन-नाथजी इन कों न्यारे ओट में क्यों विदा किये ? तहां कहत हैं जो–ये भगवदीय जद्यपि सखीरूप सों लीला को दर्शन करत हैं, तोऊ श्रीस्वामिनीजी कों अपने श्रीहस्त सों हास्यविनोद करत आरोगावनो है, सो पास सखी होय तो लज्जा, संकोच रहे । सो ताही सों निकुंज में जब स्वरूप लीला करत हैं, तब सखी सब जालरंध्र व्हेके लतान की ओट लीला को सुख अवलोकन करत हैं । सो तासों श्रीगोवर्द्धननाथजीने भगवदीयन को नेक ओट में बैठाये हते, सो बुलाये ।

सो जब चारयों वैष्णव आये, तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने सदूपांडे सों कह्यो जो–अब देखो उपद्रव मिट्यो ? तब सदूपांडे टोंडके घने सों बाहिर आये, सो इतने में श्रीगोवर्द्धन सों समाचार आये जो–वह म्लेच्छ की फौज आई हती सो पाछी गई हैं । तब सदूपांडेने आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो–वह फौज तो म्लेच्छ की भाजि गई । तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे जो–अब तुम मोंको गिरिराज ऊपर मंदिर में पधरावो । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भेंसा ऊपर बेठाये । पाछे चारयों वैष्णवननें श्रीनाथजी कों श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर मंदिर में पधराये। तब भैंसा पर्वत सों उतरिके देह छोडके फेरि लीला में प्राप्त भयो ।

पाछे सगरे व्रजवासी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिके बहोत हरषित भये, और कहन लागे जो–धन्य है, देवदमन! जो इनके प्रतापसों, एसो उपद्रव भयो हतो सो एक क्षण में मिटि गयो सो कछू जान्यो हू न पर्यो।

तब कुंभनदासने श्रीनाथजी के आगे यह पद गायो। सो पद—

राग श्रीराग। १ 'जयति २ श्रीहरिदासवर्यधरने०'। २ 'कृष्ण तरनि–तनया तीर रास मंडल रच्यो०'।

सो एसे कीर्तन कुंभनदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों बहोत सुनाये। सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। सो कुंभनदासजी के पद जगत में प्रसिद्ध भये।

वार्ता प्रसंग–३

सो कुंभनदासजीने बहोत पद बनाये, सो जहां तहां लोग गावन लागे। ता पाछे एक कलावतने एक पद कुंभनदासजी को सीख्यो, सो देशाधिपति के आगे गायो। सो सीकरी फतेपुर में देशाधिपति के डेरा हते सो तहां यह पद गायो। सो पद—

राग धनाश्री। 'देखिरी आवनि मदन गुपालकी०'।

सो यह कीर्तन सुनिके देशाधिपति को मन वा पद में

गडि गयो, सो माथो धुन्यो ओर कह्यो जो– एसे एसे महापुरुष भूमि पर होय गये, सो जिन को एसे दर्शन परमेश्वर के होते।

तब वा कलावतने देशाधिपति सों कही जो साहिब ! वे महापुरुष पद के करिवे वारे यहां ही हैं। सो तब यह देशाधिपति वा कलावत के ऊपर बहोत प्रसन्न होयके पूछ्यो जो– वे महापुरुष कहां हैं ? तब कलावतने कही जो– श्रीगोवर्द्धन के पास 'जमुनावतो' गाम है, सो तहां वे महापुरुष रहत हैं, और कुंभनदासजी उन को नाम है। तब देशाधिपति ने कही जो उन को यहां ही बुलावो जो– हम उन सों मिलेंगे।

पाछें देशाधिपतिने अपने मनुष्य ओर सब तरह की असवारी कुंभनदास कों लेवे कों पठाई। सो जमुनावता गाम में भेजी तब वे मनुष्य असवारी लिवाये जमुनावता गाम में आये। ता समय कुंभनदासजी तो जमुनावता में हते नांही, परासोली चंद्रसरोवरिमें अपने खेत ऊपर बैठे हते। सो तब उन मनुष्यनने जमुनावता में आयके पूछी। पाछे खबरि पायके गाम में ते एक मनुष्य को संग लेके वे लोग कुंभनदासजी के पास आये।

तब देशाधिपति के मनुष्यनने आयके कुंभनदास सों कह्यो जो– तुमको देशाधिपतिने बुलाये हैं। तब कुंभनदासने कही, जो–हमतो गरीब व्रजवासी हैं, सो काहूके चाकर नांही हैं। तासों हमारो देशाधिपति सों कहा काम है ? जो मैं चलूं।

तब देशाधिपति के मनुष्यनने कह्यो जो– बावा साहिब !

हम तो कछु समुझत नांही हैं। सो हम कों तो देशाधिपति को हुकम है– जो तुम कुंभनदासजी कों ले आवो, सो ये घोडा पालकी तिहारी असवारी के लिये आये हैं। सो तिनके ऊपर तुम असवार होयके चलिये। हम आये हैं जो– देशाधिपतिने भेजे हैं, सो हम तुम कों लेके जायंगे। और जो हम न ले जांय तो देशाधिपति को हुकम टरें, तो देशापधिति हम कों मरवाय डारे। तासों आपु चलिये, ओर उन सों मिलिके चले आईये।

तब कुंभनदासनें अपने मन में बिचार कियो जो– यह आपदा जो आई है, तासों अब गये बिना चले नांही। तासों आपदा होय सोऊ भुगतनो।

सो कुंभनदास कों देशाधिपतिन असवारी पठाई हती, सो तिनके संग मनुष्य आये हते सो उनने कह्यो जो– बावासाहिब! घोडा तथा पालकी पर चढिके बेगि चलिये। तब कुंभनदासने उन मनुष्यन सों कह्यो जो– मैं तो कबहू असवारी में बैठ्यो नांही। हम सों तुम कछू बोलो मति, जो हम जोडा पहरिके पायन चलेंगे। तब उन मनुष्यनने बहोत विनती कीनी, परि कुंभनदास तो असवारी में बैठे नांही, सो जोडा पहरि के पायन चले। सो फतेपुर सीकरी में देशाधिपति के डेरान की पास गये। तब देशाधिपति कों खबरि करवाई, जो कुंभनदासजी महापुरुष आये हैं।

तब देशाधिपतिने कुंभनदास को भीतर बुलवाये, तब भीतर गये। पाछे देशाधिपतिने कही जो– बावा साहिब ! आगे आवो। तब कुंभनदासजी तनिया पहरे, फटी मेली पाग, पिछोरा, टूटे जोडा सहित देशाधिपति के आगे जाय ठाडे भये।

तब देशाधिपतिने कही जो– बावा साहिब ! बैठो। सो तहां जडाउ रावटी ही, तामें मोतिन की झालरि लागि रही है, ओर सुगंध की लपट आवत है। परंतु कुंभनदासजी के मन में महादुख, जो–जीवते मानो नरक में बैठ्यो हूं। (ओर बिचारे जो) यासों तो मेरे व्रजके हींसन के रूख आछे हैं। जहां साक्षात श्रीगोवर्द्धनधर खेलत हैं।

सो या प्रकार कुंभनदासजी अपने मन में विचार करत हते. इतने में देशाधिपति बोल्यो जो– बावा साहिब ! तुमने विष्णु-पद बहोत किये हैं। तासों तिहारे मुखतें मैं कछू विष्नु पद सुनूंगो तासों आप कोई विष्णु–पद गावो।

तब देशाधिपति के वचन सुनिके एक तो कुंभनदास मन में कुढि रहे हते, और दूसरे देशाधिपति ने गायवे की कही। तब कुंभनदास के मन में बहोत बुरी लगी। तब कुंभन-दास अपने मन में विचार कियो जो– गाये बिना छुटकारो होयगो नांही। और या म्लेच्छ के आगे तो श्रीठाकुरजी की लीला के पद गाये जाय नाही। सो तासों मैं कहा गाऊ ? जो

मेरी बानी के सुनिवे वारे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं, और या म्लेच्छने मोकों बुलायके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिछोयो करायो है। तासों याको कछू एसो सुनाऊं जो- यह बुरो माने तो आछो। और बुरो मानि के मेरो कहा करेगो?

तब कुंभनदासजी के मन में यह बात आई-'जाको मनमोहन अंगीकार करें; एको केस खसै नही सिरतें जो जग बैर परे।

सो यह विचारिके एक नयो पद करिके कुंभनदासने देशाधिपति के आगे गायो। सो पद-

राग सारंग-'भक्त कों कहा सीकरी काम। आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम०'॥

सो यह पद कुंभनदासने गायो सो सुनिके देशाधिपति अपने मन में बहोत कुढ्यो*।

सो पाछे उनने अपने मन में बिचारी, जो-इनकों कछू लेवे को लालच होय तो ये मेरी खुसामद करें। जो इनको तो अपने ईश्वर सो काम हैं।

यह बिचारिके अकबर पात्साहने कुंभनदास सों कह्यो जो-बाबासाहिब! मोकों कछु आज्ञा फरमावो सो मैं करूं। तब कुंभनदासने कही जो-आज पाछे मोकों कबहूं बुलाइयो मति। तब देशाधिपतिने कुंभनदास कों विदा किये।

---

* यहां अकबर बादशाह के पूर्व स्वरूप का वर्णन हैं जो सूरदासजी की वार्ता में आ जानेसे यहां नहीं दिया है। —सम्पादक

सो तब कुंभनदास ऊहां ते चले, सो मारग में आवत कुंभनदास के मनमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को विरह कलेश (भयो) जो–अब मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी को मुख कब देखौं ? सो एसें विचार करत मारग में आवत कुंभनदासने विरहको पद गायो । सो पद–

राग धनाश्री–' कब हौं देखि हौं इन नेनन० '

सो एसे पद मारग में गावत कुंभनदास श्रीगिरिराज ऊपर आय श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये । सो दोय प्रहर वीते सो कुंभनदास कों मानो दोय जुग वीते । ता पाछे श्री-गोवर्द्धननाथजी को श्रीमुख देखत ही सगरो दुख बिसरि गयो । ता समय कुंभनदासने एक पद गायो । सो पद–

राग धनाश्री–१ ' नेन भरि देखौं नंदकुमार० ' ।
२ हिलगन कठिन है या मनकी० '

सो एसे पद कुंभनदासने बहोत ही गाये । सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कहे जो– कुंभनदास ! तू धन्य है । जो–मेरे बिना एक छिन तोकों कल नाहीं है । तासो मोहूकों तो बिना कछु सुहात नांही है । सो या प्रकार कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी की परस्पर प्रीति हती ।

वार्ताप्रसंग–४

और एक समय मानसिंह देसदेस में दिग्विजय करिके जीतिके आगरे में देशाधिपति के पास आयो । तब देशाधि-

पति सों सीख मांगिके अपने देस को चल्यो। तब राजा मानसिंहने अपने मन सों बिचार्‍यो जो– बहोत दिन में आयो हूं, सो श्रीमथुराजीमें न्हायके अपने देश जाऊं तो आछो है।

सो राजा मानसिंह यह बिचारिके श्रीमथुराजी में आयो। तहां विश्रांत घाट ऊपर न्हायो। तब चोबेनने मिलिके कह्यो जो–श्रीकेसोरायजी ठाकुरजी के दरशन कों चलो। सो गरमी ज्येष्ठ मास के दिन और मथुरिया चोबेननेx राजा को आवत जानिके श्रीकेसोरायजी कों जरीकी ओढनी, वागा, पिछवाई, चंदोवा सब जरी के किये। सोने के आभूषण पहिराये। सो दरसन करिके राजा मानसिंहने अपने मन में कह्यो, जो–इनने मेरे दिखायवे के लिये श्रीठाकुरजी को इतनी जरी लपेटी है। पाछे भेट धरि के चले।

पाछे उनने कही जो–वृंदावन में श्रीठाकुरजी के मंदिर है, सो तहां दरशन कों चलेंगे। पाछे राजा मानसिंह श्रीवृंदावन में आयो। सो श्रीवृंदावन के संत महंतनने सुनिके मन में विचारी जो–यहां राजा मानसिंह दरशन को आवेगो। यह जानिके अपने श्रीठाकुरजी के लिये भारी भारी जरीके चीरा, वागा, पटका, सूथन जरी की ओढनी भारी भारी उढाई और सोने के आभूषन पहराये।

---

x इस समय (सं. १६२० से ३० लगभग) श्रीकेसोरायजी की सेवा मथुरिया चौबे करते थे।

पाछे राजा मानसिंह आयके दोय चार ठिकाने बडे २ मंदिरन में दरसन करि भेट किये। गरमी बहोत लगी सो डेरान पे आयो और कह्यो जो– ये मोकों दिखायवे के लिये कियो है।

ता पाछे राजा मानसिंह वृंदावन सों चल्यो, सो तीसरे प्रहर श्रीगोवर्द्धन में आयो। तब काहूने कही जो– श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के दर्शनको चलोगे ? तब राजा मानसिंहने कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन तो अवश्य करने हैं।

सो तब गोपालपुर में आय के दरशन को समय पूछ्यो, तब काहूने कही जो–उत्थापन के दरशन होय चुके है। और भोग के दर्शन की तैयारी है। तब यह सुनि के राजा मान-सिंह पर्वत की ऊपर चढ्यो, सो महा गरमी पडै। सो उघारे पांव राजा गरमी में व्याकुल होय ऊपर गयो। सो तब ही भोग के किंवाड खुले हते। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करत ही राजा मानसिंह के नेत्र सीरे होय गये। सो ऊन दिनन में श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा बडे वैभव सों होत ही। सो ऊष्णकाल के दिन हते, तातें गुलाब के जल सों छिरकाव भयो हतो, और अरगजा की लपट आवत है, और सुगंध आवत है, और दोहरो पंखा होत है। सुपेद पाग परदनी को श्रृंगार, श्रीकंठ में मोतीन की माला, और मोतीन के करन और मोतीन के सूक्ष्म आभूषन। सो सुगंध सहित सीरी ब्यारि लागी। सो राजा मानसिंह को रोम २ सीतल भयो। सेवा

रीति देखि के राजा मानसिंहने कह्यो जो– सेवा तो यहां है। जो श्रीठाकुरजी सुख सों बिराजे है। सो साक्षात् श्रीकृष्ण प्रकट भये सुने हते श्रीभागवत में। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी यही हैं। तासों आजु मेरे बडे भाग्य हैं जो– मेने एसो दरशन पायो है।

ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे कुंभनदासजी पद गावत हते। सो जैसे श्रीगोवर्द्धनधर कोटि कंदर्प लावण्य स्वरूप मन हरन, और तैसे ही रसरूप कुंभनदासजीने पद गाये। सो पद—

राग नट–१ 'रूप देखि नेनां पलक लगे नाही'। २ 'पूतरी पोरिया इनके भये माई'। राग गोरी–३ 'आवत गिरिधर मनजू हर्यो हो'।

सो एसे पद कुंभनदासजीने गाये। ता पाछे भोग को समय होय चुक्यो तब टेरा आयो। पाछे राजा मानसिंह दंडवत करि के अपने डेरान में आयो। ता पाछे सेनआरती की समे कुंभनदासजीने यह पद गायो। सो पद–

राग केदारो। 'लाल के वदन पर आरती वारों'।

सो या प्रकार सनेह के कीर्तन गाय अपनी सेवा सों पहोंचि के कुंभनदासजी अपने घर जमुनावता में आये। सो ऊहां राजा मानसिंह अपने डेरान में जाय के अपने मनुष्यन के आगे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा श्रृंगार की वार्ता कहन

लाग्यो। और कह्यो जो-श्री गोवर्द्धननाथजी के आगे विष्णु पद गावत हते, सो कोन हतो? जो एसे पद गाये सो मनमें पेठि गये हैं। एसे पद आज तांई मैंने कबहू सुने नाही।

तब एक व्रजवासीने कह्यो जो-ए गोरवा हैं और कुंभनदासजी ईनको नाम हैं। जो अपनी खेती में अन्न होय सो ताही सों निर्वाह करत हैं। जो तुमने सुनेही होयगें जो आगे देशांधिपति ने बुलाये हते, परंतु कुंभनदासजी कछु लिये नांही। जो ये महापुरुष हैं।

सो तब राजा मानसिंहने कह्यो जो-आज तो रात्रि भई हैं यातें काल सवारे हमहू इनसो मिलेंगे। सो तब प्रातकाल राजा मानसिंह उठि के श्रीगिरिराज की परिक्रमा करत परासोली में आयो। सो परासोली में चंद्रसरोवर हैं। तहां कुंभनदासजी न्हाय के खेत ऊपर बैठे हते सो इतने ही में श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कुंभनदास के पास पधारे। सो श्रीमुख देखत ही कुंभनदासजी श्रीनाथजी सों कहे जो-बावा! आगे आवो। तब श्रीनाथजी आपु कुंभनदासजी की गोद में बैठि के कहे जो-कुंभनदास! में तोसों एक बात कहन आयो हूं।

सो या प्रकार कहत हते, इतने में राजा मानसिंह कुंभनदास के पास आयो। सो ताही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भाजि के डरि के एक वृक्ष की ओट में जाय के ठाडे भये। सो ताही समय कुंभनदासजी की दृष्टि तो एक श्रीगोवर्द्धननाथजी

के संग गई । सो जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाडे हते सो ताही और कों देख्यो करें। तब राजा मानसिंह कुंभनदास को प्रणाम करि के पास बेठयो, परंतु कुंभनदासजी तो राजा मानसिंह की और दृष्टि हू नाही किये ।

सो कुंभनदासजी की एक भतीजी हती । सो जमुनावते सो बेझिरि को चूंन कठोटी में करि, लेके कुंभनदास को रसोई* करिवे के लिये लावत हती । सो या भतीजी सों एक व्रजवासीने कह्यो जो—तू बेगि जा । जो कुंभनदासजी की पास राजा गयो हैं सो वह कछु देवे तो तू लीजियो । क्यों, जो कुंभनदासजी तो छूवेंगे हू नाही । तब यह भतिजी बेगि ही कुंभनदासजी के पास आई । तब कुंभनदासजी की दृष्टि एक वृक्ष के और देखि के कहे जो—बाबा ? राजा बैठयो है । जो कछू इनको समाधान करो । तब कुंभनदासजी कहे जो—मैं कहा करू जो बैठयो हैं तो । जो कछू बात कहत हते सोऊ भाजि गये । सो अब बात कहेंगे के, नाही कहेंगे.

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु सेनही में कुंभनदासजी सों कहे, जो—में तिहारे ऊपर बहोत प्रसन्न हूं। जो मैं बात कहूंगो तू चिंता मति करे। तव कुंभनदासजी को चित्त ठिकाने आयो । सो कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी की वार्ता राजा आदि काहूने जानी नाही ।

---

* इस से यह सिद्ध होता है कि कुंभनदासजी स्वयंपाकी थे। स्त्री साधारन होने के कारन उस के हाथ की भी रसोई नहीं लेते थे ।

पाछे कुंभनदासजीने भतीजी सों कह्यो जो–बेटी ! आसन और आरसी लावे+ तो मैं सिलक करि लेऊं। तब भतीजीने कह्यो जो–बाबा ! आसन (घासको) पडिया (भेंसकी पाडी) खाय के आरसी (कठोटी को जल) पी गई। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो–और आसन आरसी करि ले आऊ तो आछो।

यह बात सुनि के राजा मानसिंहने अपने मनमें कह्यो जो –आसन खाय के आरसी पडिया पी गई ! (सो कहा ?) सो इतने ही में भतीजी एक पूरा घास को और एक कठोटी में पानी भरि के ले आई। सो पूरा को आसन बिछाय दियो सो ता पूरा पर कुंभनदासजी बैठि के कठोटी में पानी में मुख देखि के तिलक करन लागे।

तब राजा मानसिंहने अपने मनमें जान्यो जो–कुंभनदासजी के द्रव्य को बहोत संकोच हैं, जो आसन आरसी तिलक करवे की नाही है। सो कुंभनदासजी त्यागी सुनत हते सो देखे। तब राजा मानसिंहने आरसी सोने की जडाऊ घर में जडी एसी मनुष्य सों मंगाई। और पाछे वह आरसी कुंभनदासजी के आगे धरि के कह्यो जो–बाबासाहिब ! या मे मुख देखि के तिलक करिये। तब कुंभनदासजी कहे जो–अरे भैया ! में याकों धरुंगो कहां ? हमारे तो यह छानि के घर हैं। जो यह आरसी

+ भगवदभक्त अपनी बानी में कमी हुकुमत के शब्दों का प्रयोग करत नहीं है। इससे यहां 'लावो' एसे न कह कर 'लावे तो' एसे शब्द को उपयोग कियो है।

हमारे घर में होय तो याके पीछे कोई हमारो जीव लेय, तासों हमारे नांही चहियत हैं। तब राजा मानसिंहने मनमें विचारी जो– ये आरसी लेके कहा करेंगे? जो कहा याकों बेचन जांयगे? यह तो इन के काम की नांही है। तासों कछू एसो द्रव्य देऊं जो जनमादि भरिके खायो करें। तब हजार मोहोर की थेली कुंभनदासजी के आगे धरी।

तब कुंभनदासजीने कही जो– यह हमारे काम की नांही है। हमारे तो खेती होत है, तामें जो धान उपजत है सो हम खात हैं। और कछू हम कों चहियत नांही।

तब राजा मानसिंहने कह्यो जो–तिहारो गाम जमुनावता है, सो ताको मैं तुम कों लिख्यो करि देऊं। तब कुंभनदासजीने राजा मानसिंह सों कह्यो जो–मैं ब्राह्मण तो नांही जो–तेरो उदक लेऊं। और जो– तेरे देनो होय तो और काहू ब्राह्मण कों दीजियो, मोकों तिहारो कछु नांही चहियत है।

तब राजा मानसिंहने कह्यो जो– तुम मोकों अपनो मोदी बतावो, सो ताके पास सों सीधो सामान लियो करो। तब कुंभनदासजीने कही जो– जैसे हम हैं सो तैसे ही हमारो मोदी है। तब राजा मानसिंहने कह्यो जो– बतावो तो सही, जो मैं वाको देऊंगो। तब कुंभनदासजीने एक करील को वृक्ष दिखायो, और एक बेर को वृक्ष दिखायके कह्यो जो– उष्ण-काल में तो मोदी करील है, सो फूल और टेंटी देत है। और

सीतकाल को मोदी बेर को झाड़ है, सो बेर बहोत देत है। सो एसे काम चल्यो जात है।*

तब राजा मानसिंहने कही जो- धन्य है। जिनके वृक्ष मोदी हैं, जो मैने आज तांई बडे २ त्यागी वैरागी देखे, परंतु ये गृहस्थ सो एसे त्यागी हैं। सो एसे धरती पर नांही हैं।

सो तब राजा मानसिंह कुंभनदासजी कों प्रणाम करिके कह्यो जो- बाबा साहेब! मोसों कछू तो आज्ञा करो। तब कुंभनदासजी कहे जो-हम कहेंगे सो करोगे? तब राजा मानसिंहने कही जो-तुम आज्ञा करो सोई में अपनो परम भाग्य मानिके करूंगो। तब कुंभनदासजीने कही जो- आज पाछे तुम हमारे पास कबहू मति आइयो ×, और हम सों कछु कहियो मति।

तब राजा मानसिंहने दंडवत करिके कही जो-तुम धन्य हो, माया के भक्त तो मैं सगरी पृथ्वी में फिर्यो, सो बहोत देखे, परंतु श्रीठाकुरजी के सांचे भक्त तो एक ही तुम देखे।

---

* मोदी के प्रसंग से यह सिद्धांत स्पष्ट होता है कि-भक्तजन कभी कोई वस्तु उधार नहीं लेते, ईश्वर सहज में जो दे देता है उसी पर निर्वाह करते हैं। इस प्रसंग में निस्पृहता, त्याग, तथा आश्रय भी स्पष्ट किया है। कुंभनदासजी का निर्वाह ईश्वर के ही आश्रय पर निर्भर है न कि किसी मोदी आदि के।

× कुंभनदासजीने यहां संप्रदाय का परमोत्कृष्ट सिद्धांत-जिस वस्तु से प्रभु के स्मरण ध्यान और सेवा आदि में विक्षेप पडे उस का संपूर्ण त्याग -'तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः'-स्पष्ट किया है।

सो यह कहिके राजा मानसिंह चल्यो गयो। तब भतीजीने पास आयके कुंभनदासजी सों कही जो– घर में तो कछू हतो नांही, सो राजा देत हतो सो क्यों न लियो? तब कुंभनदासजी कहे जो–बैठि रांड?* गोवर्द्धननाथजी सुनेगे तो खीजेंगे, जो– कुंभनदास की भतीजी बडी लोभिन है। तब भतीजीने कह्यो जो– मैने तो हसिके कह्यो हतो, जो– मोकों तो कछू नांही चहियत है। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो–बेटी! काहू सों लेवेकी वार्ता हांसी में हू कबहू न कहिये।

सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आयके कुंभनदासजी की गोद में बेठिके कहे जो–तू एक छिन में एसो क्यों होय गयो? तेरे मन में कहा है? सो तू मोसों कहे? तब कुंभनदासजीने यह पद गायो। सो पद–

राग सारंग–१ 'परमभावते जियके मोहन, नैनन तें मति टरो०'

सो यह कीर्तन कुंभनदासजी को सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी गरे सों लपटिके कहे जो–कुंभनदास! मैं तोसों एक बात कहन कों आयो हूं। तब कुंभनदासने कही, जो– कहिये। आपु वा समय बात कहत हते सो ता समय तो राजा अभागिया आय गयो, सो आपु भाजि गये। सो तब सों मेरो मन वा

---

* यह शब्द कुंभनदासजी का सहज प्रतीत होता है क्योंकि "कौन रांड ढेढिनी को जन्यो०" आदि कीर्तनों में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

बात में लागि रह्यो है, सो वह बात आपु कृपा करिके कहिये।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कुंभनदास सों कहे जो– कुंभनदास! आज सखान में होड परी है, जो भोजन सब के घर को न्यारो न्यारो देखिये। तामें सुन्दर कोन के घर को है? सो तुमहू कछु मनोरथ करोगे? सो मैं यह बात तोसों कहिबे आयो हूं। तब कुंभनदासजी पूछे जो– आप की रुचि काहे पे है?

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे–जो ज्वार की महेरी, दही, दूध, बेझरि की रोटी और टेंटी को साक संधानो*। तब कुंभन-दासजी कहे जो–यह तो घर में सिद्ध है। तब श्रीगोवर्द्धनना-थजी कहे जो– बेगि मंगावो। सो तब कुंभनदासजी भतीजी सों कहे जो–घरतें बेझरि को चून, टेंटी को साक, संधानो, दही, दूध बेगि ले आउ। तब भतीजीने कही जो– बेझरि को चून टेंटी को साक, संधानो, दही इतनो तो मैं ले आई हूं और दूध जमायवेके तांई तातो होत है। तब कुंभनदासजी कहे जो– आज दूध जमावे मति। दूध की हांडी और ज्वार घरतें दरिके ले आव सो तहां तांई में रसोई करत हौं। सो न्हायके

× श्रीनाथजीने कुंभनदासजी से यह इस लिये कहा कि–उनके यहां और कुछ नहीं था, यदि अन्य सामग्री का नाम लेते तो प्रभु की प्रसन्नता के अर्थ वे दुख उठाकर भी उद्यम करते और यदि वह सिद्ध न होता तो क्लेश पाते। पर प्रभु भक्त को प्रसन्न ही देखना चाहते हैं और प्रेम की वस्तु को अंगीकार करते हैं।

तो कुंभनदासजी बैठे ही हते। तासों वेझरि की रोटी लोंन डारिके ठीकरा पे किये। इतने में भतीजी जमुनावता गाम में जायके ज्वारि दरिके दूध की हांडी ले आई। तब कुंभनदासजी हांडी में पानी डारिके ज्वारकी सामग्री सिद्ध किये। इतने में घर घरतें सखान की छाक आई, सो कुंभनदास की सामग्री श्रीगोवर्द्धननाथजी पास राखे। पाछे घर के सखानको चखाय आपु आरोगे।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश. कुंभनदासजी की सामग्री विशाखाजीने दूध में मिश्री डारि श्रीस्वामिनीजी को आरोगाय अति मधुर कर दीनी। सो काहतें? जो– विशाखाजी को प्राकट्य कुंभनदासजी हैं।

और जब श्रीठाकुरजी कों कुंभनदासजी की सामग्री बहोत स्वाद लगी, ता समय कुंभनदासजीने ये कीर्तन गाये। सो पद–

राग सारंग–१ 'व्रजमें बडो मेवा एक टेंटी।' २ 'घरतें आई है छाक।*'

---

* घर तें आई है छाक॥ खाटे मीठे और सलोने विविध भांत के पाक ॥ १ ॥ मंडल रचना करि जमुनातट सघन लता की छांहि। गोपी ग्वाल सकल मिलि जेमत मुख हि सराहत जांहि ॥२॥ बांटत बल, मोहन दोउ भैया कर दोना अति सोहे। चाखत आपुन सखन मुखन दे के गोपीजन मन मोहे ॥३॥ टेंटीं, साक, संधानो, रोटी, गोरस सरस महेरी। कुंभनदास गिरधर रसलंपट नाचत दे दे फेरी ॥४॥

सो यह कुंभनदासजी अति आनंद पायके गाये। और अपने मन में कहे जो–श्रीगोवर्द्धननाथजीने भली एक बात कही, जो यामें या लीला को अनुभव भयो।

या प्रकार श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदासजी की ऊपर कृपा करते।

वा दिन कुंभनदासजी रस में मग्न होय गये। सो सांझ को सरीर की सुधि नांही। तब परासोली तें दौरे जो–आज में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन नांही पायो। विरह मनमें उठि आयो सो सेन भोग सरत हतो ता समय कुंभनदासजी मंदिर में आये। मनमें यह जो– कब दरशन पाऊं।

इतने में सेन के किंवाड खुले। तब कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करि नेत्र इकटक लगायके यह कीर्तन गाये। सो पद–

राग बिहागरो– १ 'लोचन मिलि गये जब चारचों०'। २ 'नंदनंदन की बलि २ जइये०'। राग केदारो– ३ 'छिनु छिनु बानिक और ही और०'।

सो या प्रकार रस के कीर्तन कुंभनदासने बहोत गाये। सो वे कुंभनदासजी एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–९

और एक समय* वृंदावन के संत महंत कुंभनदासजी सों मिलिवे कों श्रीगिरिराज पे आये। सो यासों आये जो– जाने जो इनसों श्रीठाकुरजी साक्षात् बोलत हैं। और कुंभनदासजी

* सं. १९१५ के अगहन मासमें (देखो–विठ्ठलेश्वर चरितामृत)

श्रीस्वामिनीजी की बधाई गाये हैं, तासों इनसों मिलिके पूछें जो–श्रीस्वामिनीजी को वर्णन हमहू किये हैं। और देखें जो– कुंभनदासजी कैसो वर्णन करत हैं ?

सो यह बिचारिके हरिवंश, हरिदास प्रभृति महंत, स्वामी आय कुंभनदासजी सों मिलिके पूछे जो–कुंभनदासजी ! तुमने जुगल स्वरूप के कीर्तन किये हैं, सो हमने तिहारे कीर्तन बहोत सुने, परि कोई श्रीस्वामिनीजी को कीर्तन नांही सुन्यो, तासों आपु कृपा करिके कोई पद श्री स्वामिनीजी को सुनावो।

तब कुंभनदासजीने श्रीस्वामिनीजी को एक पद करिके उनकों सुनायो। सो पद–

राग रामकली– १ 'कुंवरि राधिके ! तुव सकल सौभाग्य सीमा, या वदन पर कोटिशत चंद वारि डारों'।०

यह पद कुंभनदासजीने गायो सो सुनिके श्रीवृंदावन के संत महंत बहोत प्रसन्न भये। और कहे जो–हमने श्रीस्वामिनीजी के पद बहोत किये हैं, तामें चंद्रमा आदि की उपमा बहोत दी हैं। परि कुंभनदासजी ! तुमने तो शतकोटि चंद्रमा वारि डारें हैं। तासों कुंभनदासजी कों श्रीस्वामिनीजी आगे जगत में कोऊ उपमा देवे योग्य नांही। सो या प्रकार अद्भुत स्वरूप को वरणन किये हैं।

ता पाछे कुंभनदासजी सों बिदा होयके सिगरे वृंदावन में आये ।

सो ये कुंभनदासजी भावना, लीलारस में मग्न रहते । सो एसे कृपापात्र भगवदीय हैं ।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समय* श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियजी सों बिदा मांगिके श्रीद्वारिकाजी पधारिवे को विचार किये सो परदेश में दैवी जीवन के उद्धारार्थ, श्रीगोकुलतें श्रीनाथजीद्वार आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी के सेवा शृंगार किये । ता पाछे अनोसर करायके आपु भोजन करि के अपनी बैठक में गादी तकियान के ऊपर बिराजे हते, सो तहां सिगरे वैष्णव आयके पास बैठे हते । सो बात चलत में कुंभनदासजी की बात चली ।

तब काहू वैष्णवनें श्रीगुसांईजी के आगे यह बात कही जो–महाराज! कुंभनदासजी के घर आजकाल द्रव्य को बहोत संकोच है, सो काहेतें ? जो घरमें परिवार बहोत है, जो सात बेटा हैं, और सातों बेटानकी बहू है । और आपु स्त्रीपुरुष और एक भतीजी । सो ताहूमें आये गये वैष्णवन को समाधान करत हैं, और आमदनी तो थोरीसी है । जो परासोली में खेती है, तामें निर्वाह टेंटी फूलन सों करत हैं ।

---

* सं. १६३१ के लगभग ।

यह वात सुनिके श्रीगुसांईजीने अपने मनमें राखी। ता पाछें (जब) कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी के दरशन कूं आये, तब दंडवत करिके ठाडे होय रहे। तब श्रीगुसांईजी कहे जो– कुंभनदासजी! बैठो। तब कुंभनदासजी बेठे।

पाछे श्रीगुसांईजी सिगरे वैष्णवनकों विदा करिके कुंभनदाससों कहे, जो– कुंभनदासजी! हम श्रीद्वारिका के मिस परदेशकों जात हैं, तहां अनेक वैष्णवनसों मिलाप होयगो। सो वैष्णवननें बहोत विनती पत्र लिखे हैं, तासों अवश्य जानो है, सो तुम हमारे संग चलो। सो भगवदीयनको विरहको क्लेश बाधा न करे, और भगवदीयन को काल आछें व्यतीत होय। सो तिहारे संग तें कछू जान्यो न परे। और हमने सुन्यो है जो– तिहारे घर द्रव्यको संकोच है, सोऊ कार्य सिद्ध होयगो। तासों तुमकों सर्वथा चल्यो चहिये।

तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांइजीसों विनती कीनी जो– महाराज! आपु के साम्हे हमसों बहोत बोल्यो नांही जात है, जो– आपु आज्ञा करो सोई हमकों करनो।

इतने में उत्थापन को समय भयो। तब श्रीगुसांईजी स्नान करिके, श्रीगोवर्द्धननाथजी कों उत्थापन करायकें, सेन पर्यंतकी सेवासों पहोंचिके आपु बैठकमें पधारे। तब श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदास सों कहे जो– अब तुम घर जाऊ, जो सवारे घर सों विदा होयके आइयो, राजभोग आरती पाछे परदेश कों चलेंगे।

पाछे कुंभनदासजी श्रीगुसांइजीकों दंडवत करिके अपुने घर जमुनावता में आये। ता पाछे सवारे घरतें श्रीगुसांईजी के पास आये।

तब श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके परवत ऊपर पधारि के श्रीनाथजी कों जगाये। पाछे सेवाशृंगार करि राजभोग धरि समयानुसार भोग सरायके, राजभोग आरती करि श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिदा होय परवत सों नीचे पधारे।

सो अप्सराकुंड ऊपर डेरा अगाऊ भये हते। तब कुंभनदाससों कहें जो– अब हम अप्सराकुंड ऊपर डेरान में जायकें सोवेंगे। सो तब सब वैष्णव तथा कुंभनदासजी अप्सराकुंड ऊपर आये। तब कुंभनदासजी अपने मनमें विचार करन लागे जो– हे मन! अब कहा करिये?

'कहिये कहा कहिवे की होय? माननाथ बिछुरन की बेदन जानत नांहि न कोय' ॥ १ ॥

या प्रकार विचार करत श्रीगोवर्द्धननाथजी को बिरह हृदयमें बढ़ि गयो। तब श्रीगुसांइजी आपु डेरान के भीतर जागे। सो जब उत्थापन को समय भयो, तब कुंभनदासजी कों श्रीनाथजी के दरशन की सुधि आई× नेत्रनमें सों आंसुन

× प्रेम में जब कभी याद आती है, तब विव्हलता होती है। आसक्ति में समयानुसार याद आने पर विकलता प्राप्त होती है। और व्यसन में चोवीसों घंटा याद आने पर अस्वास्थ्य होते ही तन्मयता से एक रूपता

की धारा चली, सो सगरे सरीर में पुलकावली होंन लागी। पाछे कुंभनदासजी डेरान के पासही एक वृक्ष* तरें ठाड़े २ धीरे २ गावन लागे। सोपद–

राग सारंग–' कितेक दिन व्हे जु गये बिनु देखे० '।

यह कीर्तन कुंभनदासजीनें अत्यंत विरह क्लेश सों गायो। सो श्रीगुसांईजी आपु डेरान के भीतर बेठिके कुंभनदासजीको सगरो कीर्तन सुने। सो कुंभनदासजी को क्लेश श्रीगुसांईजी आपु सही नांही सके। सो आपु डेरानतें बाहिर पधारिके कुंभनदासजी की यह दशा देखे, जो– नेत्रन सों जल बह्यो जात है, महाविरह करिके दुखी होय रहे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखतें कुंभनदाससों कहे जो– कुंभनदास! तुम मंदिर में जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करो, जो तिहारो विदेश होय चुक्यो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो काहेतें ? जो जैसी तिहारी दशा यहां है, सो तैसी दशा उहां श्रीगोवर्द्धननाथजी की होयगी। सो कैसे जानिये ? जो–जैसे 'गज्जनधावन' को श्रीअक्काजी ने पान लेवे कों पठायो सो गज्जन कों तो श्रीनवनीतप्रियजीके विरहको एक क्षन सह्यो

हो जाती है। इस प्रकार प्रेम की अवस्था ये हैं। कुंभनदासजीं कों आसक्ति थी जिससे उन्हें उत्थापन के समय सेवा का समय जानकर विकलता प्राप्त हुई।

* पूछरी पर रामदासजी की गुफाके सामने 'धों'के वृक्षके नीचे। यहां यदुनाथदासजीने एक चोंतरा सं. १९८१ में बनवा दिया है।

न जातो, सो पान लेवे कों द्वारसों बाहिर जात ही विरह ज्वर चढ
सो द्वार पास ही दुकान में परि रह्यो मूर्च्छा खाइके । और यहां म
में श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को राजभोग धरे । तब श्रीनवन
प्रियजी ने महाप्रभुन सों कही जो–मेरो गज्जन आवेगो तब मैं आरोगूंगं

तब श्रीआचार्यजी सबनसों पूछे जो–गज्जन कहां गयो है ?

तब श्रीअक्काजी कहे जो– पान न हते तासों गज्जन को पान
पठायो है । तब श्रीआचार्यजी कहे जो–तुम जानत नांही जो–गज्
बिना श्रीनवनीतप्रियजी एक छिन नांही रहत हैं ? तासों गज्जन
पान लेनको क्यों पठायो ? ।

ता पाछे गज्जन को बुलायेवे कों व्रजवासी पठायो, सो गज्जन
बुलायके ले आयो । तब गज्जनने श्रीनवनीतप्रियजी की पास अ
के कह्यो जो– बावा ! आरोगो । तब श्रीनवनीतप्रियजी आरोगे । स
गज्जन विना आपु विरह करिकें बैठि रहे ।×

सो यह श्रीआचार्यजीके मार्ग की मर्यादा है । जो–जैसो सेवक
एक चित्त सों स्वामी के ऊपर (अनन्य) भाव होय, तैसेही स्वामी क
भाव दास विषे (विशेष) सेवक के ऊपर होय । तासों श्रीभगवान
अर्जुन प्रति कहे हैं जो–

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' ।

तासों श्रीगुसांइजो आपु कुंभनदासजी सों कहे जो–जैसो तुम यह
श्रीगोवर्द्धनाथजी के लिये विरह दुःख करत हो, तैसे उहां श्री-

× सं. १५७५ के लगभग ।

गोवर्द्धननाथजी तिहारे लिये विरह दुःख करत हैं। तासो तुम बेगि जायकें श्रीगोवर्द्धनाथजी के दर्शन करो, तिहारो विदेस होय चुक्यो।

या प्रकार श्रीगुसांईजीने कुंभनदासकों आज्ञा दीनी। तब कुंभनदासको रोम रोम सीतल होय गयो। तब मनमें प्रसन्न होय श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि बेगि अप्सराकुंडतें दोरिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में आये।

ता समय उत्थापन के दरशन को समय हतो, सो किंवाड खुले। तब कुंभनदासजी ने यह पद गायो। सो पद–

राग नट–'जो पै चोंप मिलन की होय०'।

यह पद सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी प्रसन्न होयके कुंभनदास सों कहे जो– कुंभनदास! मैं तेरे मनकी बात जानत हूं। जो तू मेरे बिना रही नांहि सकत है। तैसें मैं हू तो बिना रहि नांही सकत हों। तासों अब तू सदा मेरे पास ही रहेगो।

तब कुंभनदासजीने बहोत प्रसन्न होयके साष्टांग दंडवत कीनी, और हाथ जोरिके कुंभनदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों विनती कीनी जो– महाराज! मोकों यही चहियत हतो, और यही अभिलाषा हती, जो– तुमसों बिछोयो न होय।

सो कुंभनदासजी एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और एक समय श्रीगुसांईजी के पास कुंभनदास बैठे हते, और सगरे वैष्णव हू बैठे हते। सो श्रीगुसांईजी

आपु हसिके कुंभनदासजी सों पूछे जो– कुंभनदास! तिह
बेटा कितने हैं। तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी सों क
जो– महाराज! बेटा तो मेरे डेढ़ है।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो– हमने तों सात बेटा सुने
और तुम डेढ़ बेटा कहे, ताको कारन कहा? तब कुंभनदासज
ने कह्यो जो– महाराज! यों तो सात बेटा हैं, तामें पांच
लौकिकासक्त हैं, जो वे बेटा काहे के हैं? और पूरो एक बे
तो चत्रभुजदास है। और आधो बेटा कृष्णदास है। सो श्रीगो
वर्द्धननाथजी की गायन की सेवा करत है।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो तहां यह संदेह होय जो–गायन की सेवा तो सर्वोपरि है
और गायन की सेवा किये तें बहोत वैष्ण
श्रीठाकुरजी कों पाये हैं, और कुंभनदास
कृष्णदास कों आधो बेटा क्यों कहे?

तहां कहत हैं, जो– श्रीआचार्यजी आपु यह पुष्टिमार्ग प्रक
किये हैं। सो पुष्टिमार्ग व्रजजन को भावरूप मार्ग है। सो भगवदीय
गाये हैं जो–'सेवा रीति प्रीति व्रजजन की जनहित जग प्रकटाई'।

सो व्रजभक्तन की कहा रीति है? जो श्रीठाकुरजी के सन्निधान मे
तो सेवा करें, सो स्वरूपानंद को अनुभव करि संयोग रस में मग्न रहें
और जब श्रीठाकुरजी गोचारन अर्थ व्रज में पधारें तब व्रजभक्त विरह
रस को अनुभव करि गान करें.

सो या प्रकार संयोग रस और विप्रयोग रस को अनुभव जाकों होय सो पूरो वैष्णव होय। और (जामे) एक न होय सो आधो वैष्णव है। सो कृष्णदास तो गायन की सेवा करत है। और श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरशनहू होत है। परंतु व्रजभक्तन की रहस्य लीला को अनुभव नांही है। तासों ये आधो है। और चत्रभुजदास संयोग और विप्रयोग दोऊ रस के अनुभवयुक्त सेवा करत हैं, सो लीलासंबंधी कीर्तन हू गान करत हैं। तासों कुंभनदासजी चत्रभुजदास कों पूरो बेटा कहे।

यह कुंभनदासजी के बचन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके कहे, जो–कुंभनदास! तुम सांची बात कही। जो भगवदीय है सोई बेटा है। और बहोत भये तो कौन काम के?

सो चत्रभुजदासजी की वार्ता तो श्रीगुसांईजी के सेवकन में लिखी है, और अब कृष्णदास की वार्ता कहत हैं–

वार्ताप्रसंग–८

कृष्णदास ग्वाल की वार्ता

सो ये कृष्णदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के गायन की सेवा करते, सो गायन के ग्वाल हते। सो श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास कों गायन की सेवा दीनी हती। सो सगरे खिरक की सेवा करिकें आछें झारि बुहारिके ता पाछे गायन के संग बन में जाते, सो सगरे दिन गाय चरावते। सो संध्या समय गायन को घेरिके ले आवते

एक दिन कृष्णदास गाय चरायके घर आवत हते स
पूंछरी के पास आये। सो सगरी गाय तो खिरक में ग
और एक गाय बहुत बडी हती, ताको एन बहोत भा
हतो। सो दूध हू बहोत देती, और थन हू बडे हते। सो व
गाय हरुवे हरुवे चलती। वा गाय के पाछे कृष्णदा
आवत हते सो पूंछरी के पास श्रीगिरिराज की कंदरा में त
एक नाहर निकस्यो। सो वे सगरी गाय तो भाजिके खिरव
में आई। और वह गाय धीरे चलती, सो वा गाय के ऊपर
नाहर दोरयो। तब कृष्णदासने नाहर सों ललकारिके कह्यो
जो- अरे अधर्मी! यह श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय है, और
तू भूख्यो होय तो मेरे ऊपर आव।

सो नाहर की यह रीति है जो—ललकारे सो ताही पे आवे।
तब नाहर निकट आयो। सो जब कृष्णदासने वा गाय को
हांकी सो वह गाय डरपिके भाजी सो खिरक में आई, और
कृष्णदास कों नाहरनें मारयो। और सब गाय भाजिके खिरक में
आई हती सो गायन कों गोपीनाथ आदि सब ग्वाल दुहन लागे।

गोपीनाथ ग्वाल बडे कृपापात्र भगवदीय हते। सो
देखे तो—श्रीगोवर्द्धननाथजी वा बडी गाय को दुहत हैं। और
कृष्णदास वा गाय को बछरा पकरें ठाड़े हैं, सो कुंभनदासजी
हू वहां ठाड़े हते। सो गाय बछराकों कों चाटत है। सो कुंभ-
नदासजी कों खिरिक में एसो दर्शन भयो।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी वा बडी गाय कों दुहिके आपु तो मंदिर में पधारे।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सेन भोग धरे। सो कुंभनदास हू खिरक में ते मंदिर में चले, सो दंडोती सिला के पास आये। इतने में सब समाचार आये, जो कृष्णदास ग्वाल कों नाहरने मार्यो।

तब कृष्णदास की बात काहूने कुंभनदास सों कही, जो- तिहारे बेटा कृष्णदास कों नाहरने मार्यो है। यह बात सुनिके कुंभनदासजी मूर्च्छा खाइके गिर पडे। सो एसे गिरे जो कछू देहानुसंधान न रह्यो। सो कुंभनदास कों व्रजवासी वैष्णव बहोतेरो बुलावें सो कुंभनदासजी बोले नांही।

तब ये समाचार काहूने श्रीगुसांईजी सों जायके कहे जो-महाराज! कुंभनदास को बेटा कृष्णदास ग्वाल नाहरने मार्यो है, और कृष्णदासने गाय बचाई। आपु नाहर के आडे परि देह छोडी, सो कृष्णदास पूंछरी की और परे हैं।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो-एसे मति कहो। क्यों? जो गाय कृष्णदास को कबहू छोडि आवे नांही। सो काहेतें जो-अंत समय गाय संकल्प करत है, सो ताकों गाय उत्तम लोक में ले जात है। और कृष्णदासने तो श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय बचाई है, सो श्री गोवर्द्धननाथजी की गाय कृष्णदास कों कबहू न छोड़ेगी।

तब श्रीगुसांईजी आप पूछे जो–कुंभनदासजी क
है ? तब काहू वैष्णवने विनती कीनी जो–महाराज
कुंभनदास कों तो पुत्र को सोक बहोत व्याप्यो है, सो दंडोत
सिला के पास मूर्च्छा खायके गिरपरे हैं। सो कितने
लोग पुकारत हैं, परि कुंभनदासजी काहू सों बोलत नांही। ज
अचेत परे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की सेवासों पहोंचि
अनोसर कराय परवत तें नीचे पधारि दंडोती सिला के पा
कुंभनदासजी परे हते तहां पधारे। ता समय वैष्णवनने
सब समाचार कहे। सो श्रीगुसांईजी आपु देखें तो कुंभन
दासजी की पास सब लोग ठाड़े हैं। ता समय लोगननें कही
जो– महाराज! कुंभनदासजी बडे भगवदीय हैं, परंतु पु
को शोक महा बुरो होत है, सो या पीडा सों कोई बच्य
नांही है।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–इनकों पुत्र को शोक नांही
है, जो इनको और दुःख है। सो तुम कहा जानो ? इनके
यह दुख है जो–मृतक में श्रीनाथजी के दरशन केसें होयगे।*
सो या दुःख सों गिरे है। सो अब तुमारो संदेह दूर होयगो

* एसे महानुभाव भी संप्रदाय की मर्यादा रखते थे इसके दो कारण हैं। एक तो देखादेखी अन्य साधारण जीव मर्यादा का अतिक्रम न करे, दूसरा सूतक के मिष विप्रयोग की सिद्धि। आजकल जो लोग सूतक में भी सेवा करते हैं, सो मर्यादा का अतिक्रम करते हैं, और विप्रयोग के परमोत्कृष्ट फल से भी विमुख होते हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु भगवदीयन को स्वरूप प्रकट करिवेके लिये कुंभनदासजी कों पुकारिके कहे जो-कुंभनदास! सवारे श्रीनाथजी के दर्शन कों आइयो, जो तुमकों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करवावेंगे ।

तब श्रीगुसांईजी के यह वचन सुनिके कुंभनदासजीने तत्काल उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत कीनी, और विनती कीनी । जो-महाराज! आपु विना मेरे अंतःकरण की कोन जाने? तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-हम जानत हैं, तुमकों संसार संवंधी दुःख लगे नांही। जो कोई वैष्णव तिहारो एक क्षण संग करे तो वाकों लौकिक दुःख न लागे। तो तुम कों कहा? तासों जावो, जो कृष्णदास के शरीर को संस्कार करो। पाछे सवारे दरशन कों आइयो। तब कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी को दंडवत करिके जायकें कृष्णदास के सरीर को क्रियाकर्म किये ।

और श्रीगुसांईजी आप वेठक में जायके विराजे, तब सगरे वैष्णव बैठक में आयके बैठे। सो इतने में गोपीनाथदास ग्वाल (नें) आयके कह्यो जो-महाराज! कृष्णदास कों तो पूछरी पास नाहरने मारचो, और मैं खिरक में गोदोहन करत हतो, सो ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वा बडी गाय कों दुहत हते, और कृष्णदास वा गाय को वछरा थांभे हते। सो गाय बछरा कों चाटत हती। सो एसो दरशन खिरक में मोकों भयो।

तब श्रीगुसांईजी श्रीमुख सों कहे जो– यामें आश्चर्य कहा? ये कृष्णदास एसे भगवदीय हैं जो आपु नाहर के आडे परे और श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय कों बचाई। से कृष्णदास के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु प्रसन्न होयके अपनी लीला में कृष्णदास कों प्राप्त किये। सो तुम भगवदीय हो, तासों तुमकों दर्शन भयो। ओर कों तो लीला के दर्शन दुर्लभ हैं।

यह वात सुनिके सगरे वैष्णव व्रजवासी बहोत प्रसन्न भये, जो सेवा पदार्थ एसो है।

ता पाछें प्रातःकाल कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों आये। तब श्रीगुसांईजीने सेवकन सों आज्ञा कीनी, जो–सबतें पहले कुंभनदासजी कों दरसन करवाय देउ, ता पाछे और सगरे लोग दरसन करेंगे। पाछें श्री-गुसांईजीने सबतें पहले कुंभनदासजी को दरसन करवाय दियो। सो या प्रकार कुंभनदासजी के ऊपर श्रीगुसांईजी आपु अनुग्रह किये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश. सो काहेतें? जो सूतकी को भगवत्–मंदिर में कोन आयवे देतो! सो कुंभनदास कों सूतक में दरसन कराये। सो यह रीति वा दिन तें राखी। जो सूतक जाको होय सोहू दरशन पावे. ×

× आज भी प्रायः ग्वाल के समय श्रीनाथद्वार आदि स्थानो में सूतकियों कों दर्शन मिलते हैं।

सो या प्रकार कुंभनदासजी की कृपातें सूतकीनको दरसन होंन लागे। सो यह रीति श्रीगुसांईजी आपु यासों किये जो–वैष्णव के हृदय में स्नेह है, सो आगे कोई जानेगो नांही। तासों आगे के वैष्णवन कों दरसन की छुट्टी रहे। तब वैष्णव हू सुख पावें, और श्रीगोवर्द्धननाथजी हू सुख पावें। तासों आगे दरसन की छुट्टी राखे।

सो कुंभनदासजी भोग पर्यंत दरसन करि पाछे परासोली में जायके विरह के पद गावते। सो पद–

राग विहागरो–१ 'तिहारे मिलन बिनु दुखित गोपाल'०। २–'अब दिन रात पहार से भये।'

राग केदारो–३ 'औरन के समीप बिछुरनो आयो एक मेरे ही हीसा।'

सो या प्रकार विरह के पद गायके कुंभनदासजीनें सूतक के दिन व्यतीत किये। ता पाछे शुद्ध होयके कुंभनदासजी अपनी सेवा में आये, सो जैसे नित्य नेम सों सेवा करते ताही प्रकार सों करन लागे। सो या प्रकार को स्नेह कुंभनदासजी को श्रीगोवर्द्धननाथजी में हतो।

वार्ताप्रसंग–९

और एक दिन श्रीगोकुलनाथजी और श्रीबालकृष्णजी ये दोउ भाई मिलिके श्रीगुसांईजी सों कहे जो–कुंभनदासजी कबहू श्रीगोकुल नांही गये हैं। सो ये कोई प्रकार श्रीगोकुल तांई जांय तब श्रीनवनीतप्रियजी के दरसन कुंभनदासजी करें।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–कुंभनदासजी तो श्री-गोवर्द्धननाथजी की रहस्य लीला में मगन हैं, सो इनकों श्रीगोवर्द्धननाथजी किये हैं। तब श्रीगोकुलनाथजी कहे जो–इनको ले जायवे को उपाय तो करिये। पाछे न आवें तो भगवद् इच्छा। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–उपाय करो, परंतु कुंभनदासजी श्रीयमुनाजी पार कबहू न उतरेंगे।

पाछे कछूक दिन में श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल पधारे हते, और श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी श्रीनाथजी-द्वार में हते। सो वैशाख सुदि ११ के दिन श्रीगोकुलनाथजी श्रीबालकृष्णजी सों कहे जो–श्रीगोकुल में श्रीगुसांईजी हैं और आपुन दोउ जने यहां है। तासों कुंभनदासजी कों श्रीगोकुल ले चलिये।

तब श्रीबालकृष्णजीने कह्यो जो–कैसे ले चलोगे? जो कुंभनदासजी तो असवारी पर बैठत नांही हैं। सो तब श्रीगोकुल-नाथजीने कह्यो जो–कुंभनदासजी असवारी पें तो बैठेगें नांही, और दिन में श्रीगोवर्द्धनाथजी के दरशन छोडिके कहूं जांयगे नांही। तासों रात्रि उजियारी है, सो हमहू पावन सों चलेंगे सो या प्रकार सों चले चलेंगे। सो देखें कहा कौतुक होत है? जो कुंभनदासजी सरिखे भगवदीय को संग तो या मिष तें होयगो, सो यही बडो लाभ होयगो।

पाछे दोनो भाई श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती तांई

सेवा सों पहोंचिके श्रीनाथजी कों पोंढाय अनोसर करवाय बाहिर आये और कुंभनदासजी को हाथ जोडिके भगवद् वार्ता लीला को भाव कहन लागे। सो कुंभनदासजी लीलारस में मगन होय गये, सो कछू सुधि न रही जो- हम कहां हैं?

तब श्रीगोकुलनाथजी भगवद्वार्ता करत कुंभनदासजी को हाथ पकरिके अन्योर की ओर परवत सों उतरिकें श्रीगोकुल कों चले। सो रहस्य वार्ता में मगन हैं। और श्रीबालकृष्णजी दोय चारि वैष्णव संग चुपचाप होयके कुंभनदासजी की और श्रीगोकुलनाथजी की वार्ता सुनत श्रीगोकुल कों चले। तब मारग में श्रीगोकुलनाथजी वार्ता करिके कुंभनदासजी सों पूछे। जो-श्रीस्वामिनीजी को शृंगार कबहू श्रीगोवर्द्धनधर हू करत हैं? तब कुंभनदासजी प्रेम में मगन होयके कहे जो-हां, हां, करत हैं।

जो-"एक दिन आश्विन महिना में श्रीनाथजी और श्रीस्वामिनीजी ललितादिक सखी संग रात्रि कों वन में फूल बीने। ता पाछे समाज सहित रासमंडल के पास सिंगार को चोतरा हैं सों ता ऊपर आपु विराजे। तब विसाखाजी सिंगार करन लागी। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो-आजु सिंगार मैं करूंगो।"

"सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीस्वामिनीजी के पास ठाडे भये। सो मुखादिक के दरशन विना रह्यो न जाय दोउन

सों। तब विसाखाजी परम चतुर दोउन के हृदय को अभिप्र
जानि श्रीस्वामिनीजी के आगे एक दर्पन धर्यो। तब वा द
में दोउन के श्रीमुख सन्मुख भये, सो अवलोकन लागे।
श्रीठाकुरजी बडे लंबे बार स्याम सचिकन श्रीहस्त में कांक
सों सम्हारि, एक एक बार में झीने मोती परम चतुराई
पिरोयके श्रीस्वामिनिजी के मुखचंद-शोभा दर्पन में देखि
प्रसन्न होय गये, सो हाथ सों केश छुटि गये। तब सग
मोती वार में सो निकसि श्रृंगार को चोतरा हैं रतन खचि
तहां फेलि गये। तब बडो हास्य भयो। जो इत
वारलों श्रृंगार किये सो एक छिन में बडो होय गयो। सो र
सखीनने कही। ”

“ तब श्रीठाकुरजीने विसाखाजी सों कह्यो जो-तुम बेन
पकरे रहो, मैं मोती पिरोऊं। तब श्रीविसाखाजीने बेन
पकरी। सो तब फेरि बेनी मोतीन सों श्रृंगार करि मोती
सों मांग संवारी। पाछे फूलन के आभूषन सखीजनने बनाय
के श्रीठाकुरजी कों दिये। सो श्रीठाकुरजी पहरावत जांय
और छिन छिन में मुखचंद की शोभा देखिके रोम रोम
आनंद पावें। सो या प्रकार सब शृंगार श्रीगोवर्द्धननाथजी
करिके काजर, बेंदी, तिलक और चरणमें महावर किये। पाछे
श्रीस्वामिनीजी श्रीगोवर्द्धनधर को शृंगार किये। ता पाछे
रासविलास आदि अनेक लीला करी ”।

सो या प्रकार वार्ता करत २ श्रीगोकुल साम्हे श्रीयमुनाजी के तीरलों कुंभनदासजी आये। पाछे पार श्रीगोकुल तें नांव पर चढिके श्रीगुसांईजी आपु या पार आये*। सवारो हू भयो। सो कुंभनदासजी कों शरीर की सुधि नांही, लीलारस में मगन हते।

तब कुंभनदासजी सावधान होयके देखे तो सवारो भयो है। सो इतने में श्रीगुसांईजी कों देखिके श्रीगोकुलनाथजी सों हाथहू छूटि गयो। सो कुंभनदासजी महा उतावल सों भाजे जो श्रीगोवर्द्धननाथजी के यहां कीर्तन कोन करेगो? जो—हाय हाय मेरी सेवा गई।

सो या प्रकार मनमें कहत दोरे, सो अति बेगि दोरे। तब श्रीगोकुलनाथजी और श्रीबालकृष्णजी और सब वैष्णव कुंभनदासजी कों पकरिवे कों पीछे ते दौरे। सो कुंभनदास तो भाजे दोड़ेई गये। इन कोई कों पाये नांही। पाछे श्रीगुसांईजी की पास आये। तब श्रीगुसांईजी कहे जो—अब कहा कुंभनदास कों पावोगे? जो इनको यहां काहेकों ले आये हों? जो ये श्रीजमुना के पार कबहू न उतरेंगे। सो हमने तुमसों पहलेही कह्यो हतो।

तब श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी सों कहे जो—पार न उतरे तो कहा भयो? परंतु सगरी रात्रि भगवद्वार्ता के भावमें

---

* श्रीबालकृष्णजीने पहिले से वैष्णव द्वारा समाचार भेजाथा, उसे सुनकर।

महा अलौकिक सिद्धि मिले तें भई । सो वह बडो लाभ भ
है, जो भगवदीयन को सत्संग एक क्षण हू दुर्लभ हैं ।

यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—यह तो तुम ठ
कहे, परंतु अब या समय तो कुंभनदास को दोरनो परचो
और जहां तांई कुंभनदास श्रीगिरिराज ऊपर न जायंगे, त
तांई श्रीगोवर्द्धननाथजी जागेंगे नांही । जो कुंभनदास जगाय
के कीर्तन गावेंगे तब जागेंगे । सो एसे, भक्त के आधी
श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं । तासों तुमकों भगवद्वार्ता सुनन
होय तो परासोली में जमुनावता में जायके कुंभनदास स
पूछियो । सो तहां कुंभनदासजी तुम सों कहेंगे ।

ता पाछे श्रीगोकुलनाथजी श्रीबालकृष्णजी सब वैष्ण
सहित श्रीगोकुल पधारे । सो श्रीगुसांईजीको घोड़ा जीन सहि
पार बंध्यो हतो, सो ता पर आप श्रीगुसांईजी बेगि ही असवा
होयके घोड़ा दोरायके चले । और कुंभनदासजी तो दोरे जा
हते, सो तहां आयके श्रीगुसांईजी कुंभनदासजी सों कहे जो-
तुमने कबहू यह मारग देख्यो नांही, सो तुम भूलि जाओगे
तासों घोड़ा के पीछे पीछे दोरे आवो ।

तब कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी के पीछे दोरे चले
जांय । सो यहां रामदास भीतरिया आदि जो न्हायके पर्व
ऊपर आवें सो (ये) छुप जांय । सो एसें करत चार घड़ी दिन
चढ्यो । तब श्रीगुसांईजी आपु गिरिराज पधारिके घोड़ा पर

तें उतरिके तत्काल स्नान करि पर्वत ऊपर मंदिरमें पधारे। तब देखे तो सगरे भीतरिया रामदास सहित न्हायके मंदिर में आये हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो–रामदास! आज इतनी अवार क्यों भई है? तब रामदासने वीनती कीनी जो–महाराज! आज न जानिये कहा भयो है? जो चारि बेर न्हाये और चारयों बेर सगरे भीतरिया छुवाने। सो अब पांचमी वार न्हायके आये हैं, सो कारन जान्यो न परयो।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–यह कुंभनदासजी के लिये श्रीगोवर्द्धननाथजी कौतुक किये हैं।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु शंखनाद करवायके श्रीगोवर्द्धननाथजी को जगाये। ता समय कुंभनदासजीने जगायवे के पद गाये। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी उठे। तब कुंभनदासजीने अपने मन में बहोत हरष मान्यो। जो–मेरी कीर्तन की सेवा मिली। ता पाछें राजभोग पर्यंत श्रीगुसांईजी सेवा सों पहोंचे। सवारे नृसिंह चतुर्दशी हती। सो केसरी पिछोडा कुलह सिद्ध कियो। ता पाछें सेन पर्यंत सेवा सों पहोंचे।

सो या प्रकार कुंभनदासजी कबहू श्रीगोकुल कों न गये। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीलारस में मगन रहते। सो वे कुंभनदासजी एसे परम कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–१०

और एक समय परासोली में कुंभनदासजी खेत ऊ
बैठे हते,–और श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदास के आगे खेत
खेलत हते। इतने में उत्थापन को समय भयो तब कुंभनदास
उठिके श्रीगिरिराज चलिवे को कियो। तब श्रीनाथजी
कुंभनदासजी सों कही जो–तू कहां जात है? सो त
इन (नें) कही जो–उत्थापन को समय भयो है, सो गिरिरा
ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कों जात हों। तब श्रीगोवर्द्ध
नाथजी कहे जो– मैं तो तिहारे पास खेलत हों, तासों तू उ
क्यों जात है?

तब कुंभनदासजी ने कही जो– महाराज! यहां तु
खेलत हो और दर्शन देत हो सो तो अपनी ओर तें कृपा क
के, और अबही तुम भाजि जाव तो मेरी तुमसों कछू च
नांही। और मंदिर में तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के पधरा
हो सो उहां सों कहूं जावो नांही, और उहां सब को दर्शन दे
हो। और मंदिर में दर्शन की आसक्ति जो मोकों है, स
तासों तुम घर बेठेहू मोकों कृपा करि दर्शन देत हो। य
समय तुम कृपा करि दर्शन दे अनुभव जतावत हो सो मंदि
की सेवा दर्शन के प्रताप सों। तासों उहां गये बिन
न चले।*

---

* श्रीआचायजी के सेवक अलौकिकतामें भी कैसे अडग, निर्लोभी,
स्वतंत्र और श्रीआचार्यजी के संबंध को दृढता। पूर्वक धारण करने वाले थे सो

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी हसिके कहे जो- कुंभनदास! तेरो भाव महा अलौकिक है, तासों मैं तोकों एक छिन नांही छोडत हों।

ता पाछे श्रीनाथजी और कुंभनदासजी परासोली सों संग चले। सो गोविंदकुंड ऊपर आये तब शंखनाद भये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिर में आये, और कुंभनदासजी आन्योर तांई संग आये। सो तहां तें पर्वत ऊपर आप चढि मंदिर में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। सो कुंभनदासजी एसे भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-११

और एक दिन माली दोयसे आम बडे बडे महा सुंदर टोकरा में लेके परासोली चंद्रसरोवर है तहां आयो, पाछें टोकरा उतारि के कुंड के पास सगरे आम भूमि में धरि कें कपडा तें पोंछि पोंछि मेल छुडावन लाग्यो। ता समय कुंभनदासजी राजभोग आरती के दरशन करिके श्रीगिरिराज तें चले, सो चंद्रसरोवर ऊपर जल पीवन कों आये। सो आम बहुत सुंदर श्रीगोवर्द्धननाथजी के लायक देखिके कुंभनदासजी वा माली सों पूछे

यहां प्रत्यक्ष है, एसे ही अन्यत्रभी यह पाठक प्रत्येक शब्दों के तलस्पर्शी ज्ञान से जान सकते हैं। मर्यादा और पुष्टिभक्तों में इतनाही तारतम्य है। मर्यादाभक्त भगवत् प्राप्ति से बिव्हल हो जाते हैं। और पुष्टिस्थ भक्त भगवत्प्राप्ति होने पर भी उस आनंद को हृदय में सावधानता पूर्वक स्थापित कर आचार्य के कृपाबल का बिचार करते हैं।

जो–ये आम तूं कहां ले जायगो ? वा माली ने कह्यो जं
मथुरा ले जाऊंगो, वहां इनके दस रुपैया लेऊंगो।

सो कुंमनदास के पास तो कछू पैसाहू न हते। सो व
करें ? तब मनमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्मरण करिकें व
जो–महाराज ! यह सामग्री परम सुंदर है, और आपु ला
है, (क्यों?) जो उत्तम वस्तु के भोक्ता आपुही हो
तासों ये आम आपु आरोगो।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी सगरे आम आयकें आरोगे
सो वा माली कों खबरी नांहीं। सो यह माली टोकरामे उ
भरिके मथुरा गयो। सो सांझ होय गई।

सो एक रजपूत मांट गाम में ते मथुरा कछू कार्यार्थ आ
हतो, सो वाने आम देखिके कह्यो जो–कहा लेयगो ? तब माली
कही जो–दस रुपैया तें घाट न लेउंगो। तब वह रजपूत दस रुपै
देके आम सगरे लेके श्रीयमुनाजी के तट पर आयो।
वा रजपूत के संग एक सनोडीया ब्राह्मण हतो सो वाकों सौ आ
दिये। सो दोऊ जनेन ने पचास२ आम घर के लिये धरि
पचास २ आम दोउनने श्रीयमुनाजी के किनारे बैठिके चूसे
ता पाछे श्रीमथुरा में एक हाट ऊपर दोऊ जने सोये।
दोऊन को स्वप्न में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन भये।
सो ये जागे

× महानुभाव भक्त के द्वारा अरोगाई हुई वस्तु कोई आदमी भूल से भ
ले तो उसमें इसी प्रकार की कृपा होती है।

तब वा रजपूत ने कही जो– ब्राह्मणदेव ? तुमने कछू देख्यो । तब वा ब्राह्मणने कह्यो जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाकुर को दर्शन भयो है । तब वा रजपूतने वा ब्रह्मण सों पूछी जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कहां बिराजत हैं ? तब वा ब्राह्मण ने कही जो– यहां तें सात कोस ऊपर श्रीगोवर्द्धन पर्वत है, तहां बिराजत हैं ।

तब वा रजपूतने ब्राह्मण सों कही जो– तू महा मूरख है, जो– एसे स्वरूप कों साक्षात दर्शन करि पाछें ओर ठोर क्यों भटकत है ? सो मैने स्वरूप के दर्शन स्वप्न में पाये । सो मोसों रह्यो नांही जात है । जो सवारे तू सगरे आम ले और मैं तोकों रुपैया पांच देऊंगो जो मोकों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कराय दे । तब वा ब्राह्मण ने कही जो–आछो ।

ता पाछें सवेरो भयो । तब वा रजपूतने पचास आम वा ब्राह्मण कों दीने । तब वह ब्राह्मण मथुराजी में अपने घर आयके अपने पास के हू आम सौ देके वा रजपूत के पास आय-के दोउ जने चले । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती के दर्शन दोउ जनेन ने किये । सो श्रीनाथजीने वा रजपूत को मन हरलीनो ।

ता पाछे दर्शन होय चुके । तब रजपूत ने अपने हथियार कपडा पांच रुपैया वा ब्राह्मणको दिये, और दस रुपया और हते सो पास राखे । तब वह ब्राह्मणने कही जो–मैं घर जाऊंगो । सो वह ब्राह्मण तो मथुरा अपने घर आयो ।

पाछे वह रजपूत एक धोवती पहरे दंडोती सिला के प
ठाड़ो होय रह्यो। सो इतने ही में श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनो
करायके श्रीगुसांईजी आपु पर्वत तें नीचे पधारे। तब रज
नें दंडवत करिके कही जो-महाराज! मैं बहोत दिनन तें भ
कत हतो, सो मेरो अंगिकार करि मोकों अपने चरण प
राखिये। तब श्रीगुसांईजी कहे जो-तुम पर कुंभनदासजी
कृपा भई है, तासों तिहारी यह दशा है। जो तेरे
भाग्य हैं।

सो तब श्रीगुसांईजी आपु अपनी बेठकमें पधारि
रजपूत कों नाम सुनायो। तब वा रजपूत ने दस रुपैया श्री
गुसांईजीकी भेट किये। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-तू अप
पास रहन दे। क्यों जो-तेरें पास खरची नांही हैं, (तेंने
सब वा ब्राह्मण को दीनी। तब वा रजपूतने दंडवत् करि
वीनती कीनी जो-महाराज! अब मेरे रुपैयान सों कहा का
है? मैं तो अब आपुकी शरण हूं, जो टहल बतावोगे सो
करूंगो। पाछे वा रजपूतने विनती कीनी जो-महाराज! पू
जन्म को मैं कोन हूं, और कोन पुन्य तें मोकों आप को दर्शन
भयो है।

तब श्रीगुसांईजी आपु कृपा करि वासों कहे जो-तुम पहले
राजपूत का व्रजमें गोप हते। सो तुम शस्त्र बांधिके
मूलस्वरूप श्रीनंदरायजीकी गायन के संग जाते, सो
एक दिन तुमने सर्प मार्यो, सो अपराध तें तुमने या संसारमें
बहोत जन्म पाये।

पाछे ये आम कुंभनदासजीने देखे सो मन करिके श्री-गोवर्द्धननाथजी को समर्पन किये। सो वा माली के सगरे आम कुंभनदासजीने श्रीनाथजी को अंगीकार करवाये। ता पाछे वा माली के पासतें दस रुपैया देके तुमने आम लिये, सो पचास तुमने राखे। तुमने वे महाप्रसादी आम लिये, और तुम दैवी जीव हते, सो तिहारो मन फेरिके श्रीनाथजीने स्वप्न में दर्शन दियो। और वह ब्राह्मण दैवी जीव न हतो, सो वाकों स्वप्नमें श्रीनाथजीने दर्शन दियो, परंतु तो हू वाको ज्ञान न भयो। सो लीला में तेरो नाम 'नेना' हतो।

अब तुम श्रीनाथजीकी गायन के संग शस्त्र बांधिके जायो करो। और श्रीनाथजीकी रसोई में महाप्रसाद लेऊ। जो शस्त्र कपड़ा हम तुमकों देंयगे। और आज तुम व्रत करो, जो कालि तुमकों समर्पन करवावेंगे। तब वा रजपूतने दंडवत कीनी।

ता पाछे दूसरे दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी को श्रृंगार करि वा रजपूत को न्हवायके श्रीनाथजी के साम्हे ब्रह्मसंबंध करवाये। तब वा रजपूतकी बुद्धि निर्मल होय गई। ता पाछे वा रजपूत कों जूठनि की पातरि धरी पाछे शस्त्र दे के श्रीगुसांईजी आपु वाकों प्रसादी कपडा दिये, सो लेकें घोड़ा ऊपर चढिके गायन के संग गयो। सो वाको मन श्री-गोवर्द्धननाथजी के स्वरूप में लग्यो, सो कछूक दिन में श्री-नाथजी गायन में वा रजपूत कों दर्शन देन लागे। ता पाछे वह रजपूत बडो कृपापात्र भगवदीय भयो।

सो यामें यह जताये जो–कुंभनदासजी मानसी सेवा में भोग
श्रीहरिरायजीकृत सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगे। सो महाप्र
भावप्रकाश. आम लियेतें वा रजपूत के ऊपर भगवद्अ
भयो। तासों जो भगवदीय अपने हाथसों भोग धरत हैं, सो
सर्वथा ही श्रीठाकुरजी प्रीति सों आरोगत हैं। सो महाप्र
अलौकिक होय तामें कहा कहनो?

ता पाछे वा रजपूत के दोय बेटा हते, सो वा रज
के पास आये। तब वा रजपूतने अपने दोय बेटानसों क
जो–बेटा! आपुन तो सिपाई हैं। सो कहुं लराई में वृथा प्र
जाते, तासों मो पर प्रभु कृपा करी है, तासों अब
यह जानियो जो–मेरो पिता मरि गयो। तासों अब तुम ज
के अपनो घर सम्हारो, हमारी वाट मति देखियो। हम
नांही आवेंगे.

पाछे वा रजपूत के दोऊ बेटा अपने घर आये, अ
सब समाचार कहे जो–हमारो पिता वेरागी भयो है
तासों अब हमारो कहा काम है? पाछे सब घर के मो
छांड़िके बेठि रहे।

या प्रकार महाप्रसाद तथा भगवदीयन को दर्शन (जे
दैवी जीव होंय तिनकों फलित होय। सो यह सिद्धांत जताये
सो वे कुंभनदासजी एसे भगवदीय हैं जो सहज में आंबा
द्वारा रजपूत ऊपर कृपा किये। तासों भगवदीय जो कृत

करत हैं सो अलौकिक जानिये । क्यों ? जो श्रीगोवर्द्धननाथजी भगवदीय के वश हैं ।

और कुंभनदासजी की स्त्री और पांचो बेटा नाममात्र पाये । सो कुंभनदासजी के संग तें उद्धार भयो । और कुंभनदास की भतीजी, (जो) भाई की बेटी हती सो ब्याह होत ही विधवा भई । सो लौकिक संबंध यासों न भयो ।

क्यों ? जो मूल में दैवी जीव है । सो श्रीविशाखाजी की सखी श्रीहरिरायजी कृत है । सो लीला में याको नाम 'सरोवरि' है ।

भावप्रकाश. याके मातापिता मरि गये यासों ये कुंभनदास के घर में रहती । लीला में बिशाखाजी की सखी है । सो यहां (हू) कुंभनदासजी की आज्ञा में तत्पर । सो श्रीआचार्यजी की कृपापात्र और कुंभनदासजी (जैसे) भगवदीय को संग । तातें भतीजी को हू श्रीगोवर्द्धननाथजी दर्शन देते, और सानुभाव जनावते ।

वार्ता प्रसंग–१२

और एक समय श्रीगुसांईजी को जन्म दिवस आयो । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने मनमें बिचारे जो–मेरो जनम-दिवस श्रीगुसांईजी सब वैष्णवन सहित जगतमें प्रकट किये । तासों मैं हू अब श्रीगुसांईजी को जन्म दिवस प्रकट करूं ।

सो यह बिचारिके जब पूस वदी ८ कूं रामदासजी श्रीनाथजी को शृंगार करत हते, ता समय कुंभनदासजी शृंगार के कीर्तन करत हते । और श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में हते । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी रामदासजी सों कहे जो–मेरे

जनम–दिवस कों श्रीगुसांईजी आपु बडो उत्साह करतें
तासों मोकों श्रीगुसांईजी को जनम–दिवस माननो है। सो
सगरे मिलिके श्रीगुसांईजी के जनम–दिन को मंडान क
जो मोकों सामग्री आरोगावो। सो कालि जनम–दिन है

तब रामदास ने विनती कीनी जो– महाराज ! क
सामग्री करें ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो–जलेबी रस
करो। तब रामदास, कुंभनदासजी ने कह्यो जो–बहुत आछ

पाछे रामदासजी सेवा सों पहोंचिके सगरे सेवकन
भेले करिके कह्यो जो– सवारे श्रीगुसांईजीको जनम–दि
है, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सामग्री करनी। तब सदू
ने कही जो– घी चून चहिये इतनो मेरे घरसों लीजिये
पाछे कुंभनदासजी तत्काल घर आये। तब घरतो
हतो नांही, सो दोय पाडा और दोय पडिया एक व्र
वासी के पास बेचिके पांच रुपैया लायके कुंभनदासजी
रामदासजी कों दिये। और सब सेवकनने एक रुपैया, कोई
दोय रुपैया एसे दिये, सो ताकी खांड मंगाये। और घी में
सदूपांडे लाये। सो सगरी रात्रि जलेबी किये।

ता पाछे प्रातःकाल भयो। तब रामदास
अभ्यंग करायके केसरी पाग, केसरी वस्त्र, वा
कुल्हे, श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुलसों अपने श्रीहस्तसों सि
करिके पठाये हते सो धराये। पाछे भोग धरे।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदासजी सों कहे जो–तुम श्रीगुसांईजीकी बधाई गावो। तब कुंभनदासजी वधाई गाये। सो पद—

राग देवगंधार–१ 'आजु बधाई श्रीवल्लभद्वार०'।

राग सारंग–२ प्रकट भये श्रीवल्लभ आय०'।

सो या भांति सों कुंभनदासजीने बहोत बधाई गाई, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी बहोत प्रसन्न भये। और यहां श्री-गुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराय, केसरी बागा कुलह× धराय, राजभोग धरिके श्रीनाथजीद्वार पधारे[1]।

तब रामदास कहे जो– राजभोग आये हैं। तब श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके परवत के ऊपर मंदिरमें पधारे। तब समय भये भोग सरायवे जायके देखे तो जलेबी के अनेक टोकरा धरे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु रामदासजी सों पूछे जो– आज कहा उत्सव है, जो यह सामग्री इतनी अरोगाये हो? तब रामदा-सजीने कही जो–आज आपु को जनम–दिन श्रीगोवर्द्धनधर माने हैं, और सब सेवकन सों सामग्री कराइ हैं। तब श्रीगुसां-

---

× कुलह का शृंगार श्रीगुसांईजीने प्रकट किया है। (देखो भावभावना).

१ श्रीगसांईजी खास भगवदुपयोगी कार्य बिना श्रीगिरिराज या गोकुल में लगातार तीन रात्रि उपरांत निवास नहीं करते थे। इसी लिये आप नित्य प्रति गोकुल से गोवर्द्धन और गोवर्द्धन से गोकुल सेवार्थ एक एक रात्रि व्यतीत कर पधारते थे।

ईजी आपु भोग सराय आरती किये । ता पाछें अनोसर कराय के आपु अपनी बेठकमें पधारे और बिराजे । तहां रामदासजी सों बुलायके श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो-सामग्री बहोत है, और सेवक (मंदिर के) तो थोरे हैं और निष्कंचन हैं, सो सामग्री कौन प्रकार सों भई है ?

तब रामदासजी कहे जो-महाराज! घी मेंदा तो सदू- पांडे दिये, और पांच रुपैया कुंभनदासजी दिये हैं । और ये वैष्णव कोई एक, कोई दोय, जो जासों बनि आयो सो दियो। सो एसे रुपैया २१) भये । ताकी खांड आई । सो श्री- प्रभुजीने अंगीकार कीनी ।

इतने में कुंभनदासजीने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत कीनी । तब कुंभनदासजी सों श्रीगुसांईजी पूछे जो- कुंभन- दास! तुम पांच रुपैया कहां सों लाये ? जो-तिहारे घरकी बात तो हम सब जानत हैं । तब कुंभनदासजी कहे जो-महाराज ! मेरो घर कहां है ? मेरो घर तो आप के चरणारविंद में है, जो यह तो आप को है । दोय पाडा और दोय पडिया अधिक हती सो बेचि दीनी है । अपनो शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचिके आपके अर्थ लागे, तब वैष्णवधर्म सिद्ध होय। जो महाराज ! हम संसारी गृहस्थ हैं, सो हमसों वैष्णवधर्म कहा बने ? यह तो आपकी कृपा, दीन जानके करत हो ।

सो यह कुंभनदासजी के वचन सुनिके श्रीगुसांईजी को हृदो भरि आयो । तब आपु कहे जो-श्रीआचार्यजी आप

जाकों कृपा करिके एसी दैन्यता देंय सो पावे। सो तब श्री-गोवर्द्धननाथजी सदा इनके वस रहें।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी की वहोत सराहना करे। सो वे कुंभनदासजी एसे कृपापात्र हते।

वार्ता प्रसंग–१३.

और एक समय कुंभनदासजीने श्रीआचार्यजी सों पुष्टि-मारग को सिद्धान्त पूछ्यो। तब श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके चोरासी अपराध, राजसी, तामसी, सात्त्विकी भक्तनके लक्षण और प्रातःकालतें सेन पर्यंतकी सेवा को प्रकार कहे, बाल-लीला किशोरलीला को भाव कहे। पाछे कहे जो– जा पर श्रीगोवर्द्धननाथजी की कृपा होयगी सो या काल में पूछेंगे और करेंगे। जो तुम सरिखे भगवदीय पूछेंगे और करेंगे। आगे काल महाकठिन आवेगो, और न कोई पूछेगो और न कोई कहेगो। सो या प्रकार सों श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदासजी सों कहे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश. — सो काहेतें ? जो सिंघिनी को दूध सोने के पात्र विना रहे नांही। तैसे ही भगवद्लीला को भाव और भगवद्धर्म भगवदीय विना और के हृदय में रहे नांही।

वार्ता प्रसंग–१४

और एक दिन कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी सों विनती कीनी जो–महाराज ! मेरे घरमें स्त्री है और सात में तें पांच बेटा हैं, और सात बेटानकी वहू हैं। परंतु भगवद्भाव काहूको

दृढ़ नांही है। और एक भतीजी है सो ताको भगवद्भाव दृढ़, ताको कारन कहा?

तब श्रीगुसांईजी आपु सगरे वैष्णवन कों सुनायके कुंभनदासजी सों कहे जो– कुंभनदास! तुम मन लगायके सुनियो, जो सावधान होउ। मैं एक पुरान को इतिहास कहत हों। तब सगरे वैष्णव सावधान भये।

पाछे श्रीगुसांईजी कहे। जो–एक ब्राह्मण हतो ताके एक कन्या हती। सो जब वह कन्या ब्याह लायक भई तब ब्राह्मणने एक और ब्राह्मण कों बुलायके कह्यो जो–मेरी कन्या को वर ठीक करिके आछो ठिकानो देखिके सगाई करि आवो। तब वह ब्राह्मण तो सगाई करिवे कों गयो। ता पाछे दूसरो ब्राह्मण आयो, सो वाहूसों एसेही कह्यो। तब दूसरो ब्राह्मण हू सगाई करिवे कों गयो। पाछे तीसरो ब्राह्मण आयो, सो वाहूसों एसेही कह्यो। सो तीसरो हू ब्राह्मण सगाई करिवे गयो। पाछें चोथो ब्राह्मण आयो, सो वाहूसों एसेही कह्यो। सो तब चारों ब्राह्मण चार दिशान में भगवद् इच्छातें गये। सो दोय २ तीन २ कोस ऊपर एक गाम हतो, तहां न्यारे २ गामन में चारों ब्राह्मणने सगाई करी। सो एक महीना पीछे सगाई ठेराई। पाछे वरन कों तिलक करि के चारों ब्राह्मण या ब्राह्मण की आगे आयके कह्यो जो– सगाई करि तिलक करि आये हैं। सो एक महिना पीछे प्रातः-काल की लगन है। या प्रकार चारों ब्राह्मणनने कही।

तब बेटी के पिताने कह्यो जो- यह तुमने कहा कियो। जो बेटी तो मेरी एक है। सो तुम चारों जने चार वर करि आये सो कैसे बनेगी ? तब उन चारों ब्राह्मणनने कही जो- तेनें कह्यो तब हमनें सगाई करी है। जो महीना पीछे बेटी को ब्याह न करेगो तो हम तेरे ऊपर जीव देंयगे। जो- हम तिलक करि सगाई करी सो कबहू छूटे नांही।

तब वा ब्राह्मणनें कह्यो, जो- भलो, महीना है सो ता वखत की दीखेगी, जो कहा होनहार है। तब चारों ब्राह्मणने कही जो- जब एक दिन ब्याह को रहेगो, सो तब हम ब्याह करावन आवेंगे। सो यह कहिके चारों ब्राह्मण अपने घरकों गये। पाछे या बेटी के पिता कों महा चिंता भई। जो-अब मैं कहां निकसि जाऊं ? जो प्रान छूटे तोऊ कन्या की खराबी है। तासों अब मैं कहा करूं ?

सो मारे चिंता के खानपान सब छूटि गयो, सो एसे चारि दिन भूखे गये। ता पाछे पांचमे दिन नदी ऊपर यह ब्राह्मण संध्यावंदन करत हतो सो एक भगवदीय फिरत २ आय निकस्यो, सो नदी में न्हायो। इतने ही में यह ब्राह्मण महादुःख सों पुकारिके रोयो। सो भगवद् भक्त को हृदय कोमल, सो वा ब्राह्मण को दुःख सही नांही सके। तब उन भगवद्-भक्तनने वा ब्राह्मण सों पूछी जो- ब्राह्मण ! तुमकों एसो कहा दुःख है ? जो तेने पुकारिके रुदन कियो है।

तब वा ब्राह्मणने अपनी सब बात कही। यह सुनिके वा भगवद्भक्तने कही जो– मैं तो एक ठिकाने रहत नांही हों, परंतु तेरे लिये या नदी पे बैठ्यो हूं। जो मोकों प्रकट मति करियो। और जा दिन को ब्याह होय तासों एक दिन पहलें मोकों आयके कहियो, जो ठाकुरजी भली करेंगे। और अब तुम घर जायके खानपान करो। तब वा ब्राह्मणने कह्यो जो– भलो।

पाछे जब ब्याह को एक दिन रह्यो, सो प्रातःकाल को समय हतो। तब वा ब्राह्मण वा भगवद्भक्त के पास आयो, और विनती कीनी जो– प्रातःकाल को ब्याह है, तातें अब कछू उपाय बतावो।

तब वा वैष्णवनें कही जो– संध्या कों आइयो। पाछे सांझकों ब्राह्मण वा भगवद्भक्त की पास गयो। तब वा भक्तने कही जो– तिहारे आगे जो पशु पक्षी आवें सों तिनको तुम पकरि लीजो। तब वह ब्राह्मण नदी के ऊपर बैठ्यो। सो बिलाड़ी आई सो पकरी। ता पाछे एक कुत्ती आई सो पकरी। पाछे एक गदही आई, सो पकरी। सो तब वा भक्तने कही जो–इन तीन्योंन को एक कोठामें मूंदि देऊ। सो कोठा में मूंदि दिये। तब वा भक्तने कही जो– तेरी बेटी सोय जाय तब वाहू कों यामें मूदी दीजियो। ता पाछे बेटी सोई, तब वा बेटी कों खाट सहित कोठा में मूंदिके ताला लगायके कहे जो– ब्याह की तैयारी करो।

सो तब महर रात्रि गये चारों वर आये। पाछे सगाई करिवे वारे चारों ब्राह्मणने समाधान करिके उनकों बैठाए। इतने में ब्याह को समय भयो तब ब्राह्मणने भगवद्भक्त सों कही जो- अब ब्याह को समय भयो है। तब भक्तने कह्यो जो- कोठरी खोलिके चारों वरन कों चारों कन्या देऊ, और ब्याह करि देउ।

पाछे वह ब्राह्मण तालो खोलिके देखे तो चारों कन्या एक रूप, एक बय, बराबरी पहिचानि न परे। सो चारों कन्या चारों वरन कों ब्याह, बिदा करि दीनी।

पाछे चारों ब्राह्मण कों दक्षिणा दे बिदा किये। पाछे भगवद्भक्तने कही जो-हम चलेंगे। तब ब्राह्मणने पायन परि के कह्यो जो- तुमने मोकों जीवदान दियो है, सो यह घर तिहारो है। तातें आपकों जो चहिये सो लेउ। तब भक्तने कही जो-हम कों कछू चहियत नांही है। तेरो दुख श्री-ठाकुरजीने दूरि कियो है, सो यही बड़ी बात भई है।

तब वा ब्राह्मणने पूछी जो-चारों कन्या एक सरखी भई हैं, सो अब मोकों खबरि कैसे परे जो-मेरी बेटी कोनसे वरकों ब्याही है? सो वा बेटी को बुलावनी होय तो कैसें खबरि परेगी? तब वा भक्तने कही जो-तेरे चारों जमाई हैं सो उनही सों बेटीन के लक्षन पूछि लीजियो। तब तोकों खबरि परेगी। जो मनुष्य के लक्षन होय सोई तेरी बेटी जानियो। सो यह कहिके दूभगवभक्त तो चले गये।

तब ब्राह्मणने कछुक दिन पीछे चारों जमाईन को घर बुलाये, और चारों जमाईन कों रसोई करवाई। सो एक जने को भोजन कों बैठायो तब भोजन करत में वासों पूछी जो–मेरी बेटी अनुकूल है के नांही ? वामें कैसे लक्षण हैं ? तब उनने कही जो–सब गुन हैं परि कुत्ती की नांइ भूसत है। जो जीभ ठिकाने नांही, और आचार क्रिया नांही है, सो तासो प्रिय नांही है।

ता पाछे दूसरे जमाई कों बुलायो। वासो पूछी, जो–कहो, मेरी बेटी के लक्षन कैसें है ? तब वाने कही जो–तिहारी बेटी में आछे लक्षण है परंतु चटोरी है, जो ठाकुर के लिये जो वस्तु लावे सोइ वह चोरिके खाय जाय। बिलाई की दशा है, जो–पांच घर को खाये बिना चेन नांही परे।

ता पाछे तीसरे जमाई कों बुलायके पूछी जो–मेरी बेटी के लक्षण कैसे हैं ? तब वाने कही जो–तिहारी बेटी में सब लक्षन आछे हैं, परंतु घर में आवे जाय, तब गदही की नांई भूसे, सदा मलीन रहे। और जाकों ताकों तथा मोहू कों गदही की नांइ दोउ पावन सों लात मारे है।

पाछे चोथे जमाई को बुलायके पूछी जो–मेरी बेटीके लक्षण कहो। तब उनने कही जो–तिहारी बेटी की कहा बात है ? जो मानो लक्ष्मी है, कोऊ देवता है। जो सब को प्रिय वचन, मीठो बोलनो, उत्तम क्रिया, आचार विचार, पति, गुरु, ठाकुर

और वैष्णव में प्रीति। सो तब ब्राह्मणनें जानी जो– यही मेरी बेटी है। ता पाछे वाही बेटी जमाई कों बुलावतो।*

सो तासों कुंभनदास! जा मनुष्य में वैष्णव के लक्षण हैं सोई मनुष्य है×। और कहा भयो जो मनुष्य देह भई? जो– रावण कुंभकरण खोटी क्रियातें राक्षस कहाये। यासों जाकी जैसी क्रिया, सो वाको तैसो ही रूप जाननो। जो भतीजी बड़ी भगवदीय है सोई मनुष्य है। तासों तिहारे संगतें कृतार्थ होयगी।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी आदि सब वैष्णवन कों समुझाये। सो ये कुंभनदासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ताप्रसंग–१९

पाछे कुंभनदासजी की देह बहोत अशक्त भई। सो तहां आन्योर की पास संकर्षणकुंड ऊपर कुंभनदासजी आयके बैठि रहे। तब चत्रभुजदासने कही जो–गोदमें करिके तुम कों जमुनावता गाममें ले चलें। तब कुंभनदासजी कहे जो–अब तो दोय चार घड़ी में देह छूटेगी। तासों अब तो मैं इहांई रहूंगो।

---

* एसी कितनीही प्राचीन गाथाओंके द्वारा श्रीआचार्यचरण, प्रभुचरण और श्रीगोपीनाथजी अपने सेवकोंको चारित्र्य संबंधी उपदेश देते थे। श्रीगोपीनाथजीकी ८ वार्ता विद्याविभाग में विद्यमान हैं।

× देखो एक ब्राह्मण की वार्ता–जिनकों चाचाजीने उपरणा दिया था। (२५२ वै. की वार्ता।)

तब चत्रभुजदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग आर्ति के दर्शन किये। तब श्रीगुसांईजी आपु चत्रभुजदास सों पूछे जो-कुंभनदास कैसे हैं? और कहां है? तब चत्रभुजदासने कही जो- संकर्षण कुंड ऊपर बैठे हैं। तब श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी के पास पधारे।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु पधारिके कुंभनदासजी सों कहे जो-कुंभनदास! या समय कौन लीला में मन है? सो कहो।

ता समय कुंभनदासजी सों उठ्यो तो गयो नांही, सो माथो नवाय मनसों दंडवत करि यह कीर्तन गाये। सो पद -

राग सारंग-१ 'बिसरि गयो लाल करत गो-दोहन।' २ 'लाल! तेरी चितवन चितही चुरावत'।

सो ये पद कुंभनदासजीने गाये। तब श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो-कुंभनदास! यह लीला तुम सुनाये परि अंतःकरण को मन जहां है सो बतावो।

तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी के आगे यह पद गायो। सो पद-

राग बिहागरो-१ 'तोय मिलन कों बहोत करत है मोहन-लाल गोवर्द्धनधारी'। २ 'रसिकनी रस में रहत गड़ी'।

यह पद गायके कुंभनदासजी देह छोडि निकुंज लीलामें जायके प्राप्त भये।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु गोपालपुर में पधारे। सो चत्र-भुजदासजी आदि सब बेटानने कुंभनदासजीको संस्कार कियो। सो कुंभनदासजी लीलामें आन्योर के पास गाम है, तहां द्वार पर प्राप्त भये। पाछे श्रीगुसांईजी उत्थापन तें सेन पर्यंत की सेवा सों पोहोंचे। परंतु काहू वैष्णवसों बोले नांही, उदास रहे। तब रामदासजीने श्रीगुसांइजीसों कह्यो जो– महाराज! एसे क्यों हो? तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों कहे जो– एसे भगवदीय अंतर्ध्यान भये। अब भूमि में भक्तन को तिरोधान भयो।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी अपने श्रीमुखसों कुंभनदासजीकी सराहना किये। सो वे कुंभनदासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते, जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी तथा श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नांही। इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है, सो कहां तांई लिखिये।

(४) श्रीकृष्णदासजी

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक कृष्णदास अधिकारी, सो ये अष्टछाप में हैं, जिनके पद गाईयत हैं। तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

सो ये कृष्णदासजी लीलामें ऋषभसखा श्रीठाकुरजी के अंतरंग, **आधिदैविक** तिनको ये प्राकट्य हैं। सो दिनकी लीला में तो **मूल स्वरूप** ऋषभ सखा हैं, और रात्रि की लीला में श्रीललिताजी अंतरंग सखी हैं। सो ललिता हू चारि रूप, आपु तो मध्या और श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीस्वामिनीजी की लीलानिकुंज संबंधी अनुभव करें। और श्रीललिताजी को दूसरो स्वरूप ऋषभ सखा होयके बन में संग जांय, दिवस की लीला रस को अनुभव करें। और तीसरो स्वरूप दामोदरदास हरसानी होयके श्रीआचार्यजी के संग सदा रहते। तिनसों श्रीआचार्यजी आपु दमला कहते। सो तो दामोदरदासजी की वार्ता में भाव विस्तार करिके लिख्यो है। और ललिताजी को चोथो स्वरूप कृष्णदास। सो श्रीगोवर्द्धनधर के पास रहिके अधिकार किये। सो श्रीगिरिराज के आठ द्वार हैं तामें 'बिलछू' बरसाने सन्मुख द्वार एक बारी है। सो ता मारग होयके श्रीगोवर्द्धननाथजी रास करन कों पधारते। सो ता द्वार के मुखिया हैं।

कृष्णदास का भौतिक इतिहास

सो ये कृष्णदास गुजरात में एक 'चिलोतरा' गांव है। तहां एक कुनबी के घर जन्मे। सो वह कुनबो वा गाम को मुखी हतो। सो वा गाम में हाकिमी करतो।

जा समय कृष्णदास या कुनबी पटेल के घर जन्मे, सो ता समय या कुनबीने अनेक पंडित ब्राह्मण गाम गाम मे तें बुलायके मेले करि उनसों पूछ्यो, जो— मेरे यह बेटा भयो है, सो याके सगरे लक्षण कहो। और या बेटा की आरबल कहो, सो मैं वाकों जनम भरि में जीवों तहां तांई खरची देऊं.

तब सगरे ब्राह्मणन ने या कुनबी सों कह्यो जो—हमकों चाहे तू कछू देय, चाहे मति देय। जो यह तेरो बेटा तो श्रीभगवान को भक्त होयगो। जो कृष्णदास याको नाम होयगो और यह तिहारे घरमें न रहेगो।

यह सुनिके वह पटेल कुनबी बहोत उदास भयो। और दान पुन्य बहोत कियो और कृष्णदास नाम धर्यो।

पाछे कृष्णदास पांच बरस के भये तबही तें भगवद्वार्ता कथा में जान लागे। सो मातापिता न जान देंय तो रोवें, खानपान नांहीं करें। तब माता पिताने कहो जो— याको जान देऊ। जो यह अबही तें वेरागीन सों प्रीति करत है, सो यह वेरागी होयगो। जो मोसों ब्राह्मणननें आगे कह्यो हतो। तासों या बेटामें प्रीति करि मोह मति लगावो। सो यह सबकों दुःख देयगो। पाछे कृष्णदास जहां तहां कथा सुनते।

एसे करत कृष्णदास वरस बारह तेरह के भये। तब एक वनजारा एक दिन गाम के बाहिर आयके उतर्यो, सो किनारो माल सब

'चिलोतरा' गाममें बेचिके रुपैया चौदह हजार किये। सो रात्रि को चोर(ने) कृष्णदास के पिता के भेद में, वनजारा के सब चौदह हजार रुपैया छूटे। सो चौदह हजार रुपैयान में ते तेरह हजार रुपैया कृष्णदास के पिताने राखें। सो यह बात कृष्णदासनें जानी.

तब कृष्णदासने अपने पितासों कह्यो जो— तुमने बुरो काम कियो है। क्यों? जो— तुमने रुपैया पराये वनजारा के लुटायके लिये। सो तुम वाकों दे डारोगे तब तिहारो कल्याण होयगो। तब पिताने कृष्णदास कों मारयो, और कह्यो जो— तू काहू के आगे मति कहियो। जो— हम गाम के हाकिम है, सो हाकिम को यही काम है। तब कृष्णदासनें कह्यो जों— अब तुम खराब होउगे। सो यह कहिके चुप होय रहे।

जब सवारो भयो, तब वह वनजारा चोंतरा ऊपर रोवत आयो। सो आयके कृष्णदास के पिता सों कह्यो जो— हमकों चोरननें लूटयो है। तब कृष्णदास के पिताने कह्यो जो— तू गाम में क्यों न रह्यो? जो अब हमसों कहा कहत है? सो एसे कहिके वा हाकिमनें अपने मनुष्यन सों कही जो— या वनजारा कों गामतें बाहिर काढ़ि देउ, जो सवारे ही रोवत आयो है।

तब मनुष्यननें काढ़ि दियो। सगरी पूंजी गई, सो यह महा-विलाप करे। सो कृष्णदास दूरितें दोरिके वाके पास आये। तब कृष्णदास कों दया आय गई। तब कृष्णदास मनमें विचारे जो— पिता को बुरो होय तो सुखेन होउ, परन्तु या वनजारा परदेशी को भलो करनो।

पाछे कृष्णदास वा वनजारा के पास आयके कहे जो— तू एकांत में चलिके बैठ, जो— मैं तोसों एक बात कहूं। पाछे एकांतमें वनजारा

को ले जायके कृष्णदासने कह्यो, जो– तेरो माल रुपैया सब गयो, मेरे पिता यहां को हाकिम है, सो ताने चोरी कराई है। सो हजार रुपैया चोरन कों देके सगरो माल मेरे पिताने राख्यो है। तासों या गाम में तेरी न चलेगी। तासों तू जायके राजनगर (अहमदाबाद) राजा के यहां फरियाद करियो। सो मोकुं तू साक्षी में बुलाय लीजियो। परन्तु मेरे पिता के प्रान हू न जाय, और चोरन के हू प्रान न जाय, और तेरो भलो होय जाय सो एसो तू करियो। सो या भांति राजा पास मोकों बुलाइयो, मैं सब बताय देउंगो। तासों तेरो माल रुपैया सब या भांति सों मिलेंगे।

पाछे वा वनजारा राजनगर में आइके राजा के पास सब बात कही। और कह्यो जो– पिताने तो चोरी कराई और वेटानें बतायो। परन्तु कोइ के प्राण न जांय, और मेरी वस्तु मिले, एसो उपाय करो।

तब राजाने कह्यो– धन्य वह वेटा जो– पिताकी चोरी बताई। सो वाकूं तो मैं राखूंगो। सो यह कहिके पचास मनुष्य और सिपाई बुलायके कह्यो जो– तुम 'चलोतरा' में जायके उहां के हाकिम कों बेटा सहित पकरि लावो। सो या भांति सों जावो जो–कोई जानें नांही। सो वे पचास मनुष्य आये, सो लगे रहे।

एक दिन संध्या समय वह हाकिम घर के द्वार पर ठाड़ो हतो और वाको वेटाहू ठाड़ो हतो। सो राजा के मनुष्य वा हाकिम कों पकरि के राजनगर में लाये। तब राजानें यासों पूछी जो– तू हाकिम होय परदेसी को लूटत है? जो या वनजारे को माल रुपैया देउ।

तब वा हाकिमने कही जो– तुमसों कोईने झूठेही लगाई होयगी।

मैं तो या बात में जानत ही नांही हूं। तब वा राजाने कह्यो जो- तेरो बेटा सोंह खायके कहे सो सांचो। तब पिताने कही जो- बेटा कहि देय तो सांच है। तब राजाने कृष्णदास सों पूछी जो- तू सांच बोलियो। तब कृष्णदासने वा राजा सों कही जो जीव है, तासों पूछ्यो तो सही। जो हजार रुपैया चोरन कों दिये और तेरह हजार रुपैया मेरे पिताने राखे हैं। तासों मैंने वाही समय पिता कों समुझायो, परन्तु मान्यो नांही, सो ताको फल पायो। परन्तु यासों माल रुपैया ले लेहु और यासों कछु कहो मति।

तब कृष्णदास के पिता सों राजाने कही जो- अजहू चेत, नातर तेरे प्राण जायगें।

तब कृष्णदास को पिता बोल्यो जो- काम तो बुरो भयो है। परन्तु या वनजारा कों मेरे संग करि देउ। सो याकों सब रुपैया घरतें दे देउंगो। तब राजाने दोइसे मनुष्य संग करिके वनजारा कों और कृष्णदास के पिता कों घर पठायो। और कृष्णदास सों वा राजाने कह्यो जो- तुम मेरे पास रहो, जो तुम सतवादी हो।

तब कृष्णदास कहे जो- मोकों राखिके तुम कहा करोगे? मैं सांच कहूंगो, सो सबको बुरो लगूंगो। जो आजु को समय तो ऐसो है, तासों मैं तो वेरागी होउंगो। जो मैं पिता के काम को नांही रह्यो।

सो या प्रकार वा राजाने कृष्णदास के राखिवे को बहोत जतन कियो। परि कृष्णदास रहे नांही, पाछे पिताके संग घर आये।

तब पिताने चोरन कों बुलायके सब पुत्र के समाचार कहे, जो-

या पुत्रने हमारी खराबी करी है, तासों हजार रुपैया लावो। नातर तिहारे और हमारे प्राण जायगें। तब उन चोरनने हजार रुपैया लाय दिये। सो तेरह हजार घर में सों लेके वा वनजारा कों चौदह हजार रुपैया दिये और माल लूटि को देके वा वनजारा कों विदा कियो।

ता पाछे वा राजाने दूसरो हाकिम 'चिलोतरा' गाम में पठायो। तब कृष्णदास के पिताने कह्यो जो–पुत्र! तेरो एसो बुरो कर्म भयो सो हाकिमी हू गई, और आयो करचो द्रव्यहू गयो। तब कृष्णदासने पितासों कही जो– पिता! तैनें एसो बुरो कर्म कियो हतो जो–येहू लोक जातो और परलोक हू बिगरतो, जो जीव तो बच्यो। सो हाकिमी छूटी सो तो आछो भयो। जो हाकिमी होती तो और पाप कमावते।

तब पिताने कह्यो जो– तू वा जन्म को फकीर है। तासों तेंने हमको हू फकीर कियो है। अब तेरे मन में कहा है? तब कृष्णदासने कही जो– अब तुम मोकों घर में राखोगे तो फकीर होउगे, यातें मोकों विदा ही करो। तब पिताने कही जो– तू कछू खरचि ले घरमें ते कहूं दूरि चल्यो जा। न तोकों देखेंगे न दुख होयगो।

तब कृष्णदास पिता कूं नमस्कार करिके उठि चले। पाछे मनमें विचारे जो–व्रज होय सगरे तीरथ करनो। तब कछूक दिनमें कृष्णदास श्रीमथुराजी में आयके विश्रांत घाट न्हायके व्रज में निकसे तब फिरते २ श्रीगोवर्द्धन आये। सो तहां सुनी जो– देवदमन को मंदिर बन्यो है जो– अब दोय चारि दिन में बिराजेंगे तो व्रजवासीन को बडो आनंद होयगो। देवदमन जब तें बाहिर प्रकटे जो श्री-

गिरिराज श्रीगोवर्द्धन में ते, तब तें सबन कों सुख दियो है। और सबन के मनोरथ पूरन करत हैं।

तब यह सुनिके कृष्णदासजी अपने मनमें विचारे जों—मैं हू देवदमनको दरशन करूं। सो तब आयके कृष्णदासने देवदमन के दर्शन किये। सो श्रीआचार्यजी आपु राजभोग आरती किये। सो दर्शन करत ही कृष्णदास को मन श्रीगोवर्द्धनधर ने हरि लियो। सो कृष्णदास की ओर श्रीगोवर्द्धनधर देखि रहे.

पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों कहे जो—यह कृष्णदास आयो है। सो बहोत दिन को बिछुरयो है, सों मैं याकों देखत हों।

तब कृष्णदास के पास आयके श्रीआचार्यजी कहे जो—कृष्णदास! तू आयो! तब कृष्णदास नें दंडवत करिके बिनती कीनी जो—महाराज! आपु की कृपा तें आयो हूं। तासों अब मोकों शरण राखो।

तब श्रीआचार्यजी कहे जो— जाव, बेगि न्हाय। आवो जो तेरे साम्हें श्रीगोवर्द्धननाथजी देखि रहे हैं। तासों बेगि आय जावो।

तब कृष्णदास दोरिके रुद्रकुंड में न्हाय आये। पाछे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के पास मंदिर में आये। तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्निधान बैठायके नाम समर्पन करायो। सो कृष्णदास दैवीजीव हैं, सो तत्काल सगरी लीला को अनुभव भयो। सो ताही समय कृष्णदास ने यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग सारंग—। 'वल्लभ पतित उधारन जानो०'।

सो यह पद कृष्णदासने गायो, सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी को अनोसर करायो।

ता पाछे मंदिर सिद्ध भयो। सो तब सुंदर अक्षयतृतीया को दिन देखिके श्रीगोवर्द्धननाथजी कों नये मंदिर में पाट बेठाये। तब पूरनमल्ल के सब मनोरथ सिद्ध किये। तब श्रीआचार्यजी आपु सदूपांडे को बुलायके कहे जो—मंदिर तो बडो भयो, जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी बिराजे। परंतु अब इनकी सेवा को मनुष्य ठीक कर्‌यो चाहिये, तातें तुम सेवा करो। तब सदूपांडे ने विनती कीनी जो—महाराज! हम तो व्रजवासी हैं, जो—आचार विचार सेवा की रीति कछू समुझत नांही हैं। और घर के अनेक काम हैं, तासों आपु आज्ञा देउ तो राधाकुंड ऊपर बंगाली रहत हैं, सो अष्ट प्रहर भजन करत हैं। तासों उनकों राखो तो बुलाय लाऊं। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे, जो—बुलाय लावो। सो सदूपांडे बंगाली वीस पचीस बुलाय लाये। तब उनकों रुद्रकुंड ऊपर झोंपरी बनवाय दीनी, और श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा दीनी। और कृष्णदास कों भेटिया किये। जो— तुम परदेस तें भेट लायके बंगालीन कों दीजो। सो या भांति सो सेवा करोगे।

या प्रकार सब बंगालीन कों रीति भांति वतायके सेवा सोंपी। और कृष्णदास परदेस तें भेट ले आवते सो बंगालीन कों देते। सो रामदास चोहान रजपुत जब नयो मंदिर बन्यो, तब देह छोडिके लीला में जायके प्राप्त भये। तब सगरी सेवा बंगाली करते।

वार्ता प्रसंग–१

पाछे एक समय कृष्णदास श्रीद्वारिकाजी की ओर भेट लेन को गये। सो श्रीद्वारिका श्रीरणछोडजी के दरशन करि के वैष्णवन सों भेट लेके आवत हते। सो एक बैष्णव कृष्णदास के संग हतो। मारग में मीरांबाई को गाम आयो, सो कृष्णदासजी मीरांबाई के घर गये। तहां संत, महंत अनेक स्वामी और मारग के बैठे हते। सो काहूको आये दस दिन, काहूको आये बीस दिन भये हते, परंतु काहूकी बिदा न भई हती। और भेट के लिये बैठे हते। और कृष्णदास तो आवत ही कह्यो जो–मैं तो चलूंगो। तब मीरांबाईने कह्यो जो–कछुक दिन कृपा करिके रहो।

तब कृष्णदासने कही जो–हमारे तो जहां हमारे वैष्णव श्रीआचार्यजी के सेवक होयंगे सो तहां रहेंगे। और अन्यमार्गीय के पास हम नांही रहत हैं। तब मीरांबाई ११ मोहोर श्रीनाथजी की भेट देन लागी सो कृष्णदास नांही लिये। और कृष्णदासने मीरांबाई सों कह्यो जो–तू श्रीआचार्यजी के सेवक नांही है, सो हम तेरी मोहोर हाथ तें न छुवंगे।

सो एसे कहिके उठि चले। तब संग के वैष्णवने कृष्णदास सों कही जो– तुमने श्रीगोवर्द्धननाथजी की भेट क्यों फेरि दीनी ? तब कृष्णदासने वा वैष्णव सों कही जो– भेट की कहा है ? जो बहोतेरी भेट वैष्णवन सों लेंयगे। श्री-

गोवर्द्धननाथजी के यहां कोई बात को टोटा नांही है। परंतु सगरे मारग के स्वामी महंत इतने इकठोरे कहां मिलते? तासों सब की नाक नीची तो करी, जानेंगे जो–हम भेट के लिये इतने दिन सों बैठे हैं, और श्रीआचार्यजी को एक सेवक शूद्र इतनी मोहोर भेट न लीनी। सो जिन के सेवक एसे टेकी हैं, तिनके गुरुकी कहा बात होयगी? सो ये सब या भांति सों जानेंगे। और आपुन अन्यमार्गीय की भेट काहे कों लेय?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तातें शिक्षापत्र में कह्यो है–'तदीयानां महद्दुखं विजातीयेन संगमः" तदीय जो भगवदीय है, तिनको और दुख कछु नांही है। सो जेसो अन्यमारगीय विजातीय को संग को दुख होय। तासों श्रीठाकुरजी तो निवाहें। जो विजातीय सों बोलनो नांही तब ही सुख है। और जो वार्ता करे तो रस को तिरोधान रसाभास निश्चय होय। तासों कृष्णदासजी मीरांबाई के घर गये, इतनो कहनो पर्‍यो।

तासों मुख्य सिद्धान्त यह जतायो जो–स्वमार्गीय बिना काहू तें मिलनो नांही। और कदाचित् मिलनो परे तो अपने धर्म कों गोप्य राखे।

सो श्रीगुसांईजी आपु चतुःश्लोकी में कहे हैं–

'विजातीयजनात् कृष्णे निजधर्मस्य गोपनं।
देशे विधाय सततं स्थेयमित्येव मे मतिः' ॥ १ ॥

सो एसे देश में जाय जहां कोई वैष्णव नांहो होय, तहां

अपने धर्म कों प्रकट न करे, तब अपनो धर्म रहे। सो काहेते ? जो-लौकिक हू में पनारो है। सो तासों, न्हायो होइ सो बचिके चले तासों उत्तम जन कों सब प्रकारसों बचनो परे। जैसे उत्त सामग्री है ताकों अनेक जतनसों बचावे, तब श्रीठाकुरजी के भो जोग रहै। तैसेही वैष्णव धर्म है। तासों या धर्म की रक्षा रा तो रहै। यह सिद्धान्त प्रकट कियो.

सो वे कृष्णदास एसे टेकी परम कृपापात्र भगवदीय हते

वार्ता प्रसंग-२

और श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार बंगाली करते। सं श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों मीना के सब आभरन संभराय दिये हते। और मोरपक्ष को मुकुट, काछिनी, बाग सब बनवाय दिये हते। बंगाली श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेव करते। जो भेट श्रीगोवर्द्धननाथजी के आवती सो बंगाल जोरिके सब अपने गुरुन के यहां पठावन लागे। सो जब श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में कृष्णदास कों अधिकारी किये, तब कृष्णदास मथुरा आगरे तें सामग्र लाय देते।

और एक अवधूतदास श्रीआचार्यजी के सेवक हते। सो व्रज मे **अवधूतदासजी की** फिरचो करते, सो वे बडे कृपापात्र भगवदीय हते

वार्ता सो अडींग के वासी हते।

सो अवधूतदासजी कुमारिका के जूथ में है। सो रासपंचध्या में जब श्रीअक्रूरजी प्रकट भये, तब ये भक्त सगरे स्वरूप को

दर्शन करिके नेत्र मूंदिके योगी की नांई मगन होय गये। सो ये भक्त को प्राकट्य अवधूतदासजी को है। सो लीला में इन को नाम 'केतिनी' है।

सो अर्डींग में एक सनोढ़िया ब्राह्मण के घर जन्मे। जब व्रज में अकाल पर्यो, तब मा बाप बनिया कों बेटा देके आपु तो पूरव कों गये। पाछें अवधूतदास वरस पंद्रह के भये। तब वह बनिया को घर छोड़िके मथुरा में आयके श्रीआचार्यजी के दर्शन करि विनती कीनी। जो—महाराज ! मोकों शरण लीजिये। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—हमारे संग श्रीगोवर्द्धन कों चलो जो—श्री नाथजी के सान्निध्य शरण लेयंगे।

तब अवधूतदास श्रीआचार्यजी के संग श्रीगिरिराज आये। पाछे श्रीआचार्यजी आपु अवधूतदास तें कहे जो—तुम गोविंदकुंड न्हाय लेहु। तब अवधूतदास गोविंदकुंड में न्हाय आये। पाछे श्रीआचार्यजी आपु गोविंदकुंड में स्नान करिके मंदिर में पधारे।

ता समय श्रीगोवर्द्धनधर को राजभोग आयो हतो। तव समय भये भोग सराय, अवधूतदास को बुलाइकें श्रीगोवर्द्धनधर के सान्निध्य बेठाय नामनिवेदन करवायो। तब अवधूतदासने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो—महाराज ! मेर मन में तो यह है जो—मैं श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों हृदय में धरिके व्रज में फिरों। तब श्रीआचार्यजी आपु हाथ में जल लेके अवधूतदास के ऊपर छिरके। तब अवधूतदासजी की अलौकि कदेह होय गई। सो भूख प्यास कछू देहाध्यास बाधा नांही करे, सो मानसी सेवा में मगन होय गये। पाछे श्रीआचार्यजीने राजभोग

आरती कीनी। सो श्रीगोवर्द्धनधर को स्वरूप अपने हृदय में नख शिख पर्यंत धरिके व्रज में सदा फिरते। सो स्वरूपानंद में सद मगन रहते।

सो एसे करत बहोत दिन बीते। तब एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने अवधूतदासकों जताई जो–तुम कृष्णदास अधिकारी सों कही जो–इन बंगालीन कों निकासो। जो मोकें अपनो वैभव बढ़ावनो है। और ये बंगाली मोकों भोग धरत हैं। सो इनकी चुटिया में एक देवी को स्वरूप है, सो मेरे पास बैठावत हैं। तासो इन बंगालीन कों बेगि काढ़ो।

तब अवधूतदासने यह बात अपने मनमें राखी। सो एक दिन कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन सों मथुरा कों जात हते, सो मारग में अवधूतदास मिले। तब अवधूतदासनें कृष्णदास सों पूछी जो– तुम कहां जात हो? तब कृष्णदासने अवधूतदास सों कह्यो जो–मथुरा जात हों, जो कछू सामग्री चहियत है।

तब अवधूतदासने पूछी जो– श्रीनाथजी की सेवा कोन करत है? तब कृष्णदासने कही जो– बंगाली सेवा करत हैं। तब अवधूतदासनें कृष्णदास सों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा बंगालीन कों काढ़िवे की है। सो तुम बंगालीन कों काढ़ो। जो बंगालीन की चुटिया में एक देवी को स्वरूप है। सो जब बंगाली श्रीनाथजी को भोग धरत हैं, तब चुटिया में ते निकासिके देवी कों पास बैठावत हैं। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी

कों सुहात नांही है। तासों बंगालीन को बेगि काढ़ो। जो मोसों आपुने आज्ञा करी है। तब मैं तुमसों कह्यो है।

तब कृष्णदासने कह्यो जो–ये बंगाली श्रीआचार्यजीने राखे हैं। तातें श्रीगुसांईजी आज्ञा करें, तब काढ़े जांय। तब अवधूतदास कहें जो–तुम अड़ेल में जायके गुसांईजीकी आज्ञा ले आवो। तासों जैसे बने तैसे इन बंगालीन कों काढ़ो।

तब कृष्णदास मथुरा जात हते सो अडींग ते फिरि के श्रीगोवर्द्धन आये। सो आयके सगरे बंगालीन सों कही जो– मैं अड़ेल में श्रीगुसांईजी के पास जात हों, सो कछू काम है। पाछे सगरे सेवक, पोरिया, व्रजवासिन सों कहे जो– तुम सावधान रहियो। मैं श्रीगुसांईजी के पास अड़ेल जात हों।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिदा होयके कृष्णदास अड़ेल कों चले। सो दिन पंद्रह में कृष्णदास अड़ेल में श्री-गुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजी कों दंडवत किये।

पाछे श्रीगुसांईजी पूछे जो– कृष्णदास! तुम श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके क्यों आये? तब कृष्णदासने कही जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अपनो वैभव बढ़ावनो है, और बंगालीन की चुटिया में एक देवी है, सो राजभोग के समे बैठावत हैं। और जो भेट आवत है सो सब वृंदावन में अपने गुरून कों पठाय देत हैं। सो अबहीतें काहूकों मानत नांही हैं। सो आगे बहोत दिन तांई बंगाली रहेंगे तो झगड़ो बढ़ेगो। तासों

बंगालीन कों आपु काढ़िवे की आज्ञा दीजिये, सो मैं जा के काढ़ूंगो ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास सों कहे जो–श्रीगोपीनाथजीनें पहेलो परदेश पूरवको कियो हतो, सो एक लक्ष रुपैय पूरव सों भेट आई हती । सो श्रीगोपीनाथजी प्रथम अड़ेल में आयके कहे जो– यह पहले परदेश की भेट श्रीगोवर्द्धननाथजी की है । सो यह कहिके लक्ष रुपैया लेके श्रीगोपीनाथजी श्रीजीद्वार पधारे, सो तहां रूपे सोने के थार, कटोरा श्रीनाथजी कों कराये । ता पाछे सेवा शृंगार करि श्रीगोपीनाथजी अड़ेल में आये । तब बंगाली सब मिलिकें सगरे थार कटोरा द्रव्य वृंदावन में अपने गुरून के यहां पठाय दिये । सो सब समाचार हमारे पास आये परि हम कहा करें ? जो बंगालीन कों श्रीआचार्यजीने राखे हैं । सो तासों बंगाली कैसे निकसेंगे ।

तब कृष्णदासनें कह्यो जो–महाराज ! श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा एसी है जो–बंगालीन कों निकासिवे की । तासों आपु या बात में बोलो मति । तासों मैं जैसे बनेगी वैसे बंगालीन कों काढ़ूंगो ।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो–अवश्य बंगालीन कों निकास्यो चहिये । जो–बहुत दिन रहेंगे तब झगरो करेंगे । तब कृष्णदासने कही जो–महाराज ! मोकों दोय पत्र लिखि दीजिये । सो एक तो राजा टोडरमल्ल के नाम को, और एक राजा बीरबल के नाम को ।

तब श्रीगुसांईजी आपु दोय पत्र लिखि दिये। जो कृष्ण-दास श्रीगोवर्द्धन में है सो ये तुमसों कहे, सो करि दीजो। जो हमकों बंगाली काढ़ने हैं, और सेवक राखने हैं। और कृष्ण-दास श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी हैं, तासों ये करें सो हमकों प्रमाण है।

सो यह लिखिके कृष्णदास कों दोऊ पत्र दिये। तब कृष्णदास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके चले, सो कछुक दिन में आगरे में आये। तब राजा टोडरमल्ल कों और बीरबल कों दोऊ पत्र श्रीगुसांईजी के हस्ताक्षर के दिखाये, तब उन कह्यो जो—तुम कहो सो हम करें।

तब कृष्णदासनें कही जो—अब तो मैं श्रीनाथजीद्वार बंगालीनकों काढ़िवे कों जात हूं। जो कदाचित् बंगालीन के गुरु श्रीवृंदावन में है सो देशाधिपति के आगे पुकारें तब उन-की ठीक राखियो।

तब उन दोऊ जननने कही जो—तुम जाउ। तुमकों श्रीगुसांईजी की आज्ञा होय सो करो। जो हम ठीक राखेंगे।

पाछे कृष्णदास आगरे तें चले सो मथुरा आये। पाछे मथुरा तें श्रीगोवर्द्धन आये। तहां मारगमें अवधूतदास मिले। तब अवधूतदासने कही जो—कृष्णदास! ढील क्यों करि राखी है? जो— श्रीनाथजी कों अपनो वैभव वढ़ावनो है। तासों बंगालीन कों बेगि काढो। जो श्रीगोवर्द्धनधर की इच्छा है।

तब कृष्णदासने कही जो—मैं श्रीगुसांईजी की आज्ञा ले

आयो हूं। और अब जातही बंगालीन कों काढत हूं । सो यह कहिके कृष्णदास चले, सो श्रीनाथजीद्वार आये ।

सो रुद्रकुंड ऊपर आय बंगालीन की झोंपरी में आंच लगवाय दीनी । तब सोर भयो सो सगरे बंगाली श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके परवत तें नीचे उतरिके अपनी २ झोंपरी में आये, सो अग्नि बुझावन लागे।

तब कृष्णदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में सब ठौर अपने मनुष्य व्रजवासी दोयसे राखे (हते) सो बेठारि दिये। और कह्यो जो–कोई बंगाली पर्वत ऊपर चढ़ें ताकों तुम चढ़न मत दीजो । और ब्राह्मण सेवक भीतरियान सों कहे जो– तुम श्रीनाथजी की सेवामें सावधान रहियो। तब यह कहिके कृष्ण-दास परवत तें नीचे हाथ में लकुटी लेके ठाड़े भये ।

पाछे बंगाली अग्नि बुझाय के सगरे आये सो पर्वत उपर मंदिरमें चढ़न लागे। तब कृष्णदासने उन बंगालीन सों कह्यो जो–अब तिहारो काम सेवा में नांही है। जो हमने और चाकर राखे हैं, सो सेवा करन कों गये हैं।

तब बंगालीनने लरिवे की तैयारी करी, ओर कह्यो जो–हमारे ठाकुर हैं जो हमकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें राखे हैं। सो तब लराई भई । पाछे कृष्णदासने बंगालीन कों भजाय दिये । तब सगरे बंगाली भाजे । तब मथुराजी में आय के रूपसनातन सों सगरी बात कही। जो– कृष्णदास जाति को

शूद्र, सो सगरेनकी झोपरी जराय दीनी। और सबनकों मारि के सेवा में ते बाहिर काढ़ि दिये हैं।

सो या प्रकार बात करत हते, इतने में कृष्णदास हू रथ पर चढ़िके पचास व्रजवासी हथियारबंध संग ले श्रीमथुराजी में आये; सो पहले रूपसनातन के पास आये।

तब रूपसनातनने कृष्णदास सों खीजिके कह्यो जो–क्योंरे! शूद्र! तेने इन ब्राह्मणन कों क्यों मारयो है? जो–यह बात देशाधिपति सुनेगो, तब तू कहा जुवाप देयगो?

तब कृष्णदासनें कह्यो जो– हूं तो शूद्र हौं। परि मैं ब्राह्मणन कों सेवक तो नांही करत हों। तुमहू तो अग्निहोत्री ब्राह्मण नांही हो। तुमहू तो कायस्थ हो, कायस्थ होयके इन ब्राह्मणन कों दंडवत कराय सेवक करत हो, सो तुमहू जवाब देत में बहोत दुःख पावोगे। जो– तुम सों जुवाब न बनेगो। और मैं तो जुवाब दे लेऊंगो, जो– तिहारो मन होय तो चलो। देखो तो सही जो तुम सों जुवाब होत है? जो कैसे करत हों।

सो यह कृष्णदास के वचन सुनिके रूपसनातनने कही, जो– तुम जानो और ये जाने। जो हमतो कछु जानत नांही है।

सो या प्रकार रूपसनातन सगरे बंगालीन के गुरु हते, सो तिनने यह बात कही। तब सगरे बंगाली निरास होय के मथुरा के हाकिम के पास जायके यह बात कही। जो– कृष्णदासने हमकों श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवामें ते काढ़ि दिये हैं। तासों तुम कोई प्रकार सों हमकों रखाय देउ।

यह बात करत हते, इतनेही में कृष्णदास हाकिम के पास आये। सो कृष्णदास को तेज देखतही वह हाकिम उठि के कृष्णदास कों पूछि, पास बेठायके कही जो– तुम बडे हो, और श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी हो। तासों तुम इन बंगालीन को गुन्हा माफ करो। अब भई सो तो भई। परि अब इन को फेरि राखो जो– सेवा करें।

तब कृष्णदासने कही जो–अब तो हम इनको नांही राखेंगे, अब ये हमारे चाकर नांही। ये चाकर होय लरिवे कों तैयार भये। इनकी झोपरी जरि गई, तो हम इनकी झोपरी और बनवाय देते। परंतु ये सगरे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा छांड़ि पर्वत ते नीचे क्यों उतरि आये? तासों अब इनकों सेवा में काम नांही है। और आपु कहत हो, जो–इन को राखो। सो अब हम या बात को पत्र श्रीगुसांईजी कों लिखेंगे। सो वे कहेंगे, तेसो करेंगे।

तब वा हाकिमने कही जो– आछी बात है, जो तुम श्रीगुसांईजी कों लिखो, तब कृष्णदास श्रीनाथजीद्वार आये।

ता पाछे वे बंगाली वृंदावन में रहे। सो ता पाछे फेरि एक दिन सगरे बंगाली भेले होय देशाधिपति के पास आगरे में आयके कृष्णदास की चुगली करी। तब देशाधिपति अकबर पात्साहने कही जो– कृष्णदास कोन है? जो– इन ब्राह्मणन कों पूजामेंते काढ़े। सो उनकों बुलावो।

तब राजा टोडरमल्लनें और बीरबलने अकबर पात्साह

सों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाकुर श्रीविठ्ठलनाथजी श्री-गुसांईजी के हैं। सो पहले ये बंगाली सेवा में राखे हते सो इनकों खरची देते। जो अब इन कों काढ़ि दिये है।

तब देशाधिपति ने कही जो– बंगाली झूठि चुगली करत हैं। जो चाकर को कहा है? तासों कृष्णदास कों बुलायके कहो जो– उनकों मन होय तो राखो।

तब देशाधिपति के मनुष्य कृष्णदास को लेवे कों श्रीगिरिराज आये। सो कृष्णदासने तो पहले ही सुनी हती, सो रथ ऊपर चढ़िके दस बीस आदमी लेकें देशाधिपति के मनुष्यन के संग आगरे में आये। तब कृष्णदास राजा टोडर-मल्ल और बीरबल सों मिले। तब राजा टोडरमल्ल और बीर-बलने कह्यो जो– बंगालीनने चुगली करी हती, सो हमने कहि दीनी है। और फेरि हू आज कहि देंयगे, जो– आजु को दिन तुम यहां रहो।

तब कृष्णदास उहां रहे। तब राजा टोडरमल्ल और बीरबल दरबार के समय देशाधिपति के पास आय अकबर सों कहे जो– कृष्णदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी आये हैं, और उनको मन बंगालीन कों राखिवे को नांही है। जो और चाकर राखे है, और ये तो काढ़े हैं।

तब देशाधिपतिने कही, जो– आछो उनको मन होय सो ताकों चाकर राखें। यामें झूठो झगरो कहा है? तासों बंगालीन कों काढ़ि देऊ।

तब राजा टोडरमल्ल और बीरबलने आयके बंगालीन सों कही जो– देशाधिपति को हुकम तुमकों काढ़ि देवे को भयो है, तासों तुम चुप होयके चले जाउ। जो– झगरो करोगे तो दुख पावोगे। तासों हमने तुमकों समुझाय दियो है।

तब सगरे बंगाली निरास होयके चले आये। सो श्रीवृंदावन में रहे। और कृष्णदास राजा टोडरमल्ल और बीरबल सों बिदा होयके चले आये, सो श्रीगिरिराज ऊपर आये×।

ता पाछे दोय कासिद बुलायके श्रीगुसांईजी कों बिनती पत्र लिख्यो, तामें यह लिख्यो जो– बंगालिन कों आपु की आज्ञातें काढ़े, ताको देशाधिपति सों जुवाब होय चुक्यो है, जो अब झगरो मिटि गयो है। और बंगाली झूठे राजद्वार तें परि चुके हैं। तासों अब आपु कृपा करिके पधारिये।

सो दोय जोडी कासिद की श्रीगुसांईजी के पास गई। तब श्रीगुसांईजी आपु पत्र बांचि अड़ेल तें बेगि ही पधारे, सो श्रीनाथजीद्वार आयके कृष्णदास कों बुलाय श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्मुख अधिकारी को दुसालो उढ़ायो। और श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखतें कहे जो– कृष्णदास! तुमने बड़ी सेवा करी है, जो–यह काम तुमहींतें बने जो बंगालीन कों काढ़े। तासों अब सगरो अधिकार श्रीगोवर्द्धननाथजी को तुमही करो।

× यह प्रसंग सं. १६३० के लगभग का है। वार्ता की प्राचीन कथात्मक शैली के कारण इस में समय का सम्मिश्रण होगया है। (विशेष देखिये श्रीविट्ठलेश चरितामृत).

हमहू चूकें तो कहियो जो– कोई बात को संकोच मति राखियो। जो सगरे सेवक टहलुवान के ऊपर तिहारो हुकम, और की कहा है? जो एसी सेवा तुम ही करी, जो तुम श्रीगोवर्द्धन-नाथजी सों कहोगे सोई करेंगे। तुम श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हो, सो तिहारी आज्ञामें (जो) चलेंगे तिन सबन को भलो होयगो। तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धननाथजीकी सेवा भली भांति सों करियो। सो सावधान रहियो।

पाछे कृष्णदास श्रीगुसांईजी (और) श्रीगोवर्द्धननाथजी कों साष्टांग दंडवत करिके अधिकार की सगरी सेवा करन लागे। ता दिनतें श्रीनाथजी के अधिकार की गादी बिछवे लगी। श्रीगुसांईजी की आज्ञा तें कृष्णदास गादी उपर बैठते।×

ता पाछे बंगालीनने सुनी जो–श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धन पधारे हैं, और सिंगार करत हैं। सो सगरे बंगाली मिलके श्रीगुसांईजी के पास आये। पाछे विनती करिके कहे जो– हमकों श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में राखे हते, सो कृष्णदासनें काढ़े हैं, तासों आपु फेरि हमकों सेवा में राखो।

× आज भी निस्वार्थ तथा शुद्ध हृदयसे श्रीनाथजी के अधिकार की सेवा करनेवाले को ही इस गादी पर बेठनेका सौभाग्य महाराजश्री तिलकायत की आज्ञासे ही प्राप्त होता है। कृष्णदास का उस समय एसा प्रभाव था कि–उन्ही के नामसे आज तक भंडार का नाम भी 'श्रीकृष्ण भंडार' चला आ रहा है और नामा इत्यादि में भी गुजराती भाषा का प्रयोग किया जाता है।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो– तुम सगरे श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके परवततें नीचे उतरि आये, सो दोष तिहारो है। और अब श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा तुमकों राखिवे की नांही है, तासों अब तुमकों राखे न जाय।

पाछें सगरे बंगाली बहोत बिनती करन लागे जो– तुम हमसों सेवा मति करावो, परंतु अब हम खांय कहा ? जो– श्रीनाथजी की सेवा पीछे हमारो खानपान को सब सुख हतो, तासों हमकों कछू और सेवा टहल बतावो। तथा कोई और श्रीठाकुरजी बतावो, जासों हमारो निर्वाह चल्यो जाय।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोपीनाथजी के सेव्य श्रीमदनमोहनजी कों देके कहे जो–इनकी सेवा तुम करो। सो तब बंगाली श्रीमदनमोहनजी कों* लेके श्रीवृंदावन में आयके सेवा करन लागे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहेतें ? जो– बल्देवजी मर्यादारूप। सो तिनके सेव्य ठाकुर हू मर्यादारूप। सो बंगालीन कों मर्यादा की पूजा है, तासों दिये। और श्रीगुसांईजीने झगरो हू मिटाय दियो।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने सांचोरा गुजराती ब्राह्मण भीतरिया सेवामें राखे। सो मुखिया भीतरीया रामदास कों किये।

---

* मथुरा के नारायण भाट के ठाकुरजी, जो–श्रीवृंदावन के राधाबाग में से उनको प्राप्त हुए थे–सम्प्रति करोली राज्य में विराजमान हैं–

बड़े रामदासजी की वार्ता

सो रामदास ब्राह्मण सांचोरा गुजरात में रहते। ये लीलामें श्री-चंद्रावलीजी की सखी हैं। सो लीलामें इनको नाम 'मनोरमा' है। सो सात्त्विक भाव। श्रीचंद्रावलीजी की आज्ञाकारी। जैसे श्रीस्वामिनीजी श्रीठाकुरजी की लीला में ललिता मध्याजी परम चतुर। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के कृपापात्र ललितारूप कृष्णदास सब ठोर हुकम करें, तैसे मनोरमा रूपसों रामदास मुखिया भीतरिया श्रीगुसांईजी के आगे सब टहल करें।

सो (मनोरमा) रामदास गुजरात में एक सांचोरा ब्राह्मण के यहां जनमे। सो वरस वीस के भये। तब माता पिताने देह छोड़ी।

ता पाछें रामदासजी श्रीरणछोडजी के दर्शन कों गये। सो श्री-आचार्यजी के दर्शन भये, ता समय श्रीआचार्यजी कथा कहत हते। सो कथा श्रीआचार्यजीके श्रीमुखतें सुनिके रामदास को ज्ञान भयो, जो—श्रीआचार्यजी आपु साक्षात ईश्वर हैं, इनकी शरण रहिये तो कृतारथ होय। सो यह मनमें निश्चय कियो।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु कथा कहि चुके। तब रामदासने दंडवत करिके विनती कीनी जो—महाराज! मोकों शरण लीजे। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—जाओ न्हाय आवो। तब रामदास न्हाय आये। तब श्रीआचार्यजीने रामदास कों नामनिवेदन करवायो।

ता पाछे रामदास सों कहे जो—अब तुम भगवत्सेवा करो। तब रामदासने कही जो— मेरे पिता के ठाकुर मेरे पास है, सो आपु आज्ञा देऊ तेसें मैं सेवा करूं। तब श्रीआचार्यजी आपु रामदास के श्री-

ठाकुरजी कों पंचामृतस्नान कराय दिये। ता पाछे रामदास कछूक दिन श्रीआचार्यजी की पास रहे, सो सेवा की रीति भांति सीखे।

ता पाछे रामदासने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो—महाराज! शास्त्र तो मैं कछु पढ्यो नांही हों, परंतु आप के ग्रन्थ पढ़िवे की इच्छा अभिलाषा है। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें रामदास कों अपने ग्रन्थ पढ़ाये। तब रामदासजी के हृदय में व्रज की लीला स्फुरी, सो रामदास ने यह कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो। सो पद—

राग गोरी—'चलि सखी चलि अहो व्रज पेंठ लगी है, जहां बिकत हरिरस प्रेम'

या प्रकार के रसरूप पद रामदासने बहुत गाये, सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। तब रामदास श्रीआचार्य-जीसों विदा होयके दंडवत करि गुजरात में अपने घर आयके बहोत दिन तांई सेवा कीनी।

ता पाछे एक दिन एक वैष्णव रामदास के घर आयो। तब रामदासने प्रीतिसों वैंष्णवकों अपने घरमें राख्यो। पाछे रामदासने कही जो—वैष्णव को संग दुर्लभ है। सो तुमने बड़ी कृपा करी जो—तुम मेरे घर पधारे। सो तब वैष्णवनें कही जो—संग करिवे लायक तो पद्म-नाभदासजी हैं, जो एक क्षण हू संग होय तो भगवत्कृपा होय।

सो सुनत ही रामदासजी के मन में यह आई जो—पद्मनाभदास को संग करूं। ता पाछे चारि दिन रहिके वह वैष्णव तो गयो। तब रामदासजी श्रीठाकुरजी कों पधरायके पद्मनाभदास के घर कनोज में

आये। सो पद्मनाभदास प्रीति सों रामदास कों महीना एक राखे, सो भगवद्वार्ता में मगन होय गये।

तब रामदासजीने कही जो—जेसी तिहारी बड़ाइ सुनी हती, तेसेही तिहारे संगतें सुख पायो। सो अब मैं श्रीगोवर्द्धननाथजीके दर्शन करि आऊं। तासों मेरे ठाकुर कों तुम राखो। तब पद्मनाभदासजीने रामदास के ठाकुर श्रीमथुरेशजी के सय्याजी के पास बेठारे। और इहां श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके रामदासको मुखिया किये, सो जनमभरि श्रीनाथजीकी सेवा रामदासने मन लगायके कीनी। सों या प्रकार रामदासजी रहे।

ता पाछे (जब) पद्मनाभदासजी की देह छूटी तब श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के पास श्रीठाकुरजी× को बेठारे। सो सदा श्रीनाथजी की पास रहे।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा को विस्तार बढ़ायो। सो राजसेवा करन लागे, जो– भोग सामग्री को नेग कियो, सेवक बहोत राखे, सो दरजी, सुनार, खाती सगरेन को नेग करि दियो। और भंडारी (अधिकारी) राखे, सो भंडारी को गादी तकिया।

या प्रकार श्रीगोवर्द्धननाथजी की ईश्वरता बढ़ाये। और सगरे सेवकन की ऊपर कृष्णदास अधिकारी कों मुखिया

× श्रीमुकुन्दरायजी।

किये, सो जो काम होय सो पूछनो। सो श्रीगुसांईजी
सेवा श्रृंगार करि जांय, और काहूसों कछु कहें नाहीं
कोई बात कोई सेवक श्रीगुसांईजी सों पूछे तब श्रीगुसांई
आपु कहें जो– कृष्णदास अधिकारी के पास जावो। जो
जांने नाहीं। सो या प्रकार मर्यादा राखी।

या भांति सों कृष्णदास को वैभव भारी और हु
भारी। सो जहां चलें तहां रथ, घोडा, बैल, ऊंट, गाडी,
पचास मनुष्य संग। सो कृष्णदास अधिकारी सब देसन
प्रसिद्ध भये।

सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्रीगोवर्द्धनधर
सुनावते। सो एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–३

और एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने कृष्णदास कों आ
दीनी, जो– स्यामकुंभार को मृदंग समेत संग लेके परासो
सेन आरती पीछे जैयो, तहां रासलीला करेंगे।
श्रीगोवर्द्धननाथजी को दंडवत करिके कृष्णदास परवत तें नी
आये। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी स्यामकुंभार सों कहे जो
तुमकों जहां कृष्णदास कहें, तहां मृदंग लेके जैयो।
या प्रकार स्यामकुंभार कों श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो या प्रकार स्यामकुमार कों श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये सो यातें, जो लीलामें स्यामकुंभार विशाखाजी की सखी है। तहां लीलामें इनको नाम 'रसतरंगीनी' है। सो इनकी मृदंग की सेवा है।

एक समय रसतरंगनी सेन किये हते, सो विसाखाजी को मन गान करिवे को भयो। तब रसतरंगनी कों जगायके कहे जो—तू मृदंग बजाव, सो तब मृदंग वजायो। तब विशाखाजी गान करन लागी। सो अलसातें रसतरंगिनी चूकि जाय। तब विशाखाजी क्रोध करिके कहे जो—आज कैसें वजावत है? तब रसतरंगिनीने कह्यो जो—मोकों नींद आवत है। और तिहारो मन तो गान करिवे को है, और मोकों नींद आवत है सो कैसे बने? तब विशाखाजी मृदंग आपुही लिये और क्रोध करिके विशाखाजीने रसतरंगनी सों कह्यो जो—तू मेरी सखी नांही है। सो जायके तू भूमिमें जनम लेउ। अहंकार करिके बोली सो ताकों यही दंड है।

तब ये महावन में एक कुम्हार के घर जन्मे। सो स्यामकुंभार नाम पर्‌यो। सो सगरे समाज में चतुर हते। श्रीगुसांईजी आपु इनकों बुलायके श्रीनवनीतप्रियाजी के पास राखे। तब इन स्यामकुंभार को नामनिवेदन करवायो।

जब श्रीगोवर्द्धननाथजी को वैभव बढ्यो, तब कृष्णदास के मनमें आई जो मृदंगी चहिये। तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे जो—श्रीगोकुल में स्यामकुंभार है, सो मृदंग आछी बजावत है। ताकों श्रीगुसांईजी कों कहिके यहां राखो। तब कृष्णदासने श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो—स्याम-

कुंभार कों श्रीगोवर्द्धनधर की सेवा में राखो । जो–यह इच्छा प्रभुन
है । तब श्रीगुसांईजी आपु स्यामकुंभार कों श्रीगोकुल तें बुलायके
नाथजी की सेवामें राखे । सो ता दिन तें स्यामकुंभार श्रीनाथजी
आगे मृदंग बजावतो । सो या प्रकार स्यामकुंभार श्रीगिरिराज में रह

तब कृष्णदासने स्यामकुंभार कों बुलायके कह्यो जो
श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा आजु परासोली में रास करि
की है, सो मृदंग ले आवो, सेन आरती पीछे चलेंगे । त
स्यामकुंभारने कह्यो जो–मोहूकों आज्ञा दीनी है, तासों मृ
लेके तिहारे पास आयोहूं । सो जब सेन आरती श्रीगोव
ननाथजीकी होय चुकी, तब कृष्णदास स्यामकुंभार को ले
परासोली में चंद्रसरोवर है, तहां आये । तहां देखे
श्रीगोवर्द्धनधर और श्रीस्वामिनीजी सगरी सखीन सहि
विराजे हैं ।

तब श्रीगोवर्द्धनधरने स्यामकुंभार सों कही जो–तू तो मृदं
बजाव, और कृष्णदास सों कह्यो जो–तू कीर्तन गाव । सो चै
सुद १५ * पून्यो के दिन रात्रि प्रहर डेढ गई, उजिया
फैल गई सो अलौकिक रात्रि भई । तब स्यामकुंभार
मृदंग बजायो । सो वसंत ऋतु के सुन्दर फूल लतानसों फू
रहे हैं । सो श्रीगोवर्द्धनधर श्रीस्वामिनीजी सहित नृत्य कर
लागे । ता समय कृष्णदासने यह पद गायो । सो पद–

---

* श्रीनटवरलालजीके यहां इसीदिन रात्रि कों रास के दर्शन होते हैं

राग केदारो–१ 'श्रीवृषभाननंदनी नाचत लाल गिरिधरन संग, लाग डाट उरप तिरप रास रंग राच्यो'।

सो यह पद सुनिके श्रीगोवर्द्धनधर प्रसन्न होयके अपने श्रीकंठ की प्रसादी कुंदकुसुमन की माला दीनी। सो कृष्णदास अपनो परम भाग्य माने सो रोमरोम में आनंद भरि गयो। सो तब रस में मगन होयके यह पद गायो। सो पद–

राग मालव–१ 'अलाग लागिन उरप तिरप गति नटवत व्रजललना रासें × × × × अपने कंठ की श्रमजलदलमलि माला देत कृष्णदासें'। २ 'तताथेई रास मंडल में'। ३ 'चंद गोविंद गोपी तारागन'। ४ 'सिखवत पिय को मुरली बजावत'।

सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदासजीने गाये। तब स्यामकुंभार मृदंग बहोत सुंदर बजायो। सो श्रीगोवर्द्धनधर, श्रीस्वामीनीजी सगरे व्रजभक्तन सहित परम अद्भुत नृत्य किये। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की कानि तें कृष्णदास पर श्रीगोवर्द्धनधर एसी कृपा करते।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धनधर श्रीस्वामिनीजी सहित सगरे व्रजभक्त अंतर्ध्यान भये। तब कृष्णदास और स्यामकुंभार मृदंग लेके गोपालपुर आये, सो कृष्णदासने समे २ के कीर्तन बहुत किये।

वार्ता प्रसंग–४

और एक दिन सूरदासजीनें कृष्णदास सों कही जो–

कृष्णदास! तुमने जितने कीर्तन किये तामें मेरी छाया आ
है। तब कृष्णदासने कही जो—अब के एसो पद करूं सो त
तिहारी छाया न आवे।

पाछे कृष्णदास एकांत में बेठिके विचार किये एक
मन करिके, जो—सूरदास जो वस्तु न गाये होंय सो गावन
यह विचार किये। सो जा लीला को विचार कि
ताही लीला के पद सूरदासजी (नें) गाये हैं। सो दान, मान
और गायन को वर्णन सब लीलाके पद सूरदासजीने गाये हते
सो कृष्णदासजी विचार करत हारे। मनमें महाचिंत भई
सो कृष्णदासजी कों प्रहर एक गयो, सो हारिके उठि बैठे
जो कागद लेखनी द्वात कलम धरिके महाप्रसाद लेन गये
तब श्रीगोवर्द्धनधर आयके पद पूरो करि गये। सो पद—

राग गोरी—१ 'आवत बने कान्ह गोप बालक सं
नेचुकी—खुर—रेनु छुरित अलकावली'।

यह पद लिखिके आपु तो पधारे। सो 'नेचुकी
गायन को वर्णन सूरदासजीने नांही कियो हतो। जो 'नेचुकी
गाय सों कहिये जो— पहले ब्यांत होय, ताको स्नेह बछर
ऊपर बहोत होय। सो एसी नेचुकी गाय काहू सखा ग्वा
सों घिरत नांही हैं, सो वारंवार अपने बछरा के तांई घ
कों ही भाजत है। जो एसी नेचुकी के जूथ में श्रीठाकुरज
आपु पधारे हैं। तब नेचुकी गाय की खुर रेनु मुख प

अलकन पर लगी है । सो यह श्रीठाकुरजी आपु एक तुक करि कागद के ऊपर लिखिके पधारे ।

ता पाछे कृष्णदास महाप्रसाद आनंद सो लेके आये सो कीर्तन पूरो किये । सो पद—

राग गोरी—१ 'आवत बने॰' ।

सो या प्रकार कीर्तन पूरो करिके कृष्णदासजी प्रसन्न होयके सूरदासजी की पास आये, हसत २ । तब सूरदासजीने पूछी जो— आज बहोत प्रसन्न हसत आवत हो, सो कहा नौतन पद किये ? तब कृष्णदास नें कह्यो जो— आजु एसो पद कियो है, तामें तिहारे पदन की छाया नांही है । जो वस्तु तुमने गाई नहीं है ।

तब सूरदासजी कहे जो— तुम मोकों बांचिके सुनावो तो सुनों । तब कृष्णदास (ने) पहली ही तुक कही जो— ताही कों सुनिके कृष्णदास सों सूरदासजी बोले जो— कृष्णदास ! मेरे तिहारे वाद है । कछू तिहारे बापसों विवाद नांही है । सो यामें तिहारो कहा है ? जो मैंने नेचुकी नांही गाई सो प्रभु कहि दिये । और तो श्रीअंगके वरनन के मेरे हजारन पद हैं, सोई तुमने गायके पूरन किये हैं । यह सूरदासजी के बचन सुनि के कृष्णदासजी चुप होय रहे ।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो तहां यह संदेह होय जो— कृष्णदासजी तो ललिताजी को स्वरूप हैं, और श्रीगोवर्द्धननाथजी कृष्णदास की पक्ष किये, सो पद बनाये । तोहू सूरदासजी सों न जीते । ताको कारण कहा है ?

तहां कहत हैं जो—कृष्णदासजी ललितारूप हैं। सो तैसेही सूरदासजी चंपकलतारूप हैं। परंतु आपुनो अधिकार—भेद है। सो लीलाहू में श्रीललिताजी की सेवा श्रेष्ठ है। तैसेही यहां सेवा की भात ते' कृष्णदास श्रेष्ठ। सो सगरे सेवकन की सेवा में चोकसी, सगरी वस्तु समारनी, सेवा को मंडान विस्तार करनो। यामें कृष्णदास परम चतुर। जैसे सुनार सों दरजी की सेवा न होय और दरजी सों सुनारके आभूषन को काम न होय। सो सब अपनी २ सेवा में चतुर हैं। और श्रीस्वामिनीजी की सखी दोऊ प्रिय हैं। तासों श्रीगोवर्द्धन-नाथजी की प्रीति तो दोउन के ऊपर है। परंतु कृष्णदास के मन में रंचक अहंकार आयो, जो—मैं हू कीर्तन बहोत किये हैं।

सो वे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगव-दीय हते।

वार्ता प्रसंग—९

और एक समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में सामग्री चहियत हती, सो तब कृष्णदास गाड़ा लिवाय आपु रथ पर असवार होयके श्रीगोवर्द्धन सों, आगरे आये। सो जब आगरे के बजार में गये, तहां एक वेश्या अपनी छोरी कों नृत्य सिखावत हती। सो वह छोरी परम सुंदर बरस बारह की हती, कंठहू परम सुंदर हतो। सो गाननृत्यमें चतुर बहोत हती। सो वह वेश्या ताल टप्पा गावत हती। सो वह छोरी को गान कृष्णदास के कानपें पर्यो हतो सो कृष्णदास के मनमें बैठि गयो, सो प्रसन्न होय गये। तब कृष्णदासने तहां अपनो रथ

ठाढ़ो कियो। सो मीड़ सरकायके वा छोरी को रूप देखे, सो तहां गान सुनिके मोहित होय गये।

तहां यह संदेह होय जो—कृष्णदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के

श्रीहरिरायजी कृत कृपापात्र सेवक वेस्या के गान पर मोहित क्यों भये?

भावप्रकाश. जो ये तो श्रीठाकुरजी के ऊपर मोहित हैं। सो इनकों अप्सरा देवांगना तुच्छ दीसत हैं। और श्रीआचार्यजी आपु जलभेद ग्रन्थ में कहे हैं जो—

'वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्त्तसंज्ञिताः।
जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः॥'

वेश्यादि सहित गायक भाट, डोम, नीच को गान सूकर के गड़ेलाके जलवत है। सो वामें न्हाय, पीवे सो जैसें नीचको गानरस पीवे। या प्रकार के दोष श्रीआचार्यजी कहे हैं।

सो कृष्णदास परमज्ञानवान मर्यादा के रक्षक। सो ये वेश्या के गान पर रीझे? **सो इनकी देखादेखी करे सो बहिर्मुख होय।** ये तो सब कों शिक्षा देवे कों उद्धार करन कों प्रकटे हैं, तासों ये कृष्णदास वेश्या के ऊपर क्यों रीझे?

यह संदेह होय तहां कहत हैं जो—यहां कारन और है। जो—यह वेश्या की छोरी लीला संबंधी दैवी जीव ललिताजी की सखी है, सो लीला में इनको नाम 'बहुभाषिनी' है।

सो एक दिन ललिताजी श्रीठाकुरजी के लिये सामग्री करत हती, तब ललिताजी ने बहुभाषिनी सों कही जो—तू मिश्री पीसिके ले आउ। सो बहुभाषिनी मिश्री को डबरा भरिके ले चली। सो दूसरी सखी

सों बात करते करते छांटा उड्यो, सो मिश्री में पर्यो । सो बहुभाषिनी को खबरि नांही ।

पाछे मिश्री को डबरा लेके ललिताजी के पास आई, तब ललिताजी परम चतुर हती सो जानि गई । पाछे बहुभाषिनी सों कही जो— यह सामग्री छुइ गई । जो— तेरे मुख तें छांटा पर्यो है । सो भगवद् इच्छा होनहार । तब बहुभाषिनी ने कही जो— तुम झूंठ कहत हो, छींटा तो नांही पर्यो । और श्रीठाकुरजी सखामंडली में सब की जूंठनि हू लेत हैं ।

सो तब ललिताजी ने कह्यो जो— प्रभुन की लीला तू कहा जाने? प्रभु प्रसन्न होय चाहे सो करें, सोई छाजे । **जो अपने मन तें कछु हीन क्रिया करे सोई भ्रष्ट।** तासों तू हीन ठिकाने जनमेगी । तब बहुभाषिनी ने कही जो— तुमहू शूद्र के घर जनम लेके मेरो उद्धार करो । जो तुमकों छोड़िके मैं कहां जाउं ?

सो या प्रकार परस्पर श्राप भयो । तब कृष्णदास शूद्र के घर जन्मे, और बहुभाषिनी को जनम वेश्या के घर मात्र भयो, सो लौकिक पुरुष को मुख नांही देख्यो । सो कृष्णदास कों श्रीगोवर्द्धनधर प्रेरिके आगरे में वा वेश्या के अंगीकार के लिये पठाये । तासों कृष्णदास के हृदय में वेश्या को गान प्रिय लग्यो ।

सो ठाड़े होयके गान नृत्य सुनिके मनमें विचारे जो— यह सामग्री तो अति उत्तम है, और दैवी जीव हैं, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के लायक है । तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वाको अंगीकार करें तो आछो है ।

सो यह कृष्णदासजी अपने मनमें विचार करिके दस रुपैया वा वेश्या कों देके कहे जो- हमारे डेरान पर रात्रिकों आइयो। यह कहिके कृष्णदासजी जहां हवेलीमें हमेस उतरते ताही हवेलीमें उतरे, और सामग्री जो लेनी हती सो गाड़ा लदाय दिये।

ता पाछे रात्रि प्रहर एक गई, तब वह वेश्या समाज सहित आई, सो तब नृत्य गान कियो। सो कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये। तब वा वेश्या कों रुपैया १००) सो दिये। और वा वेश्या सों कहे जो- तेरो रूप, गान, नृत्य सब आछे हैं। तासों-सवारे हम श्रीगोवर्द्धन जायगें, और हमारो सेठ तो उहां हैं जो- तेरो मन होय तो तू चलियो। तब वा वेश्याने कही जो- हमको तो यही चहिये। पाछे वह वेश्या अपने मनमें बहोत प्रसन्न भई, जो- ये इतने रुपैया दिये तो सेठ न जाने कहा देयगो?

सो तब वेश्याने घर आयके अपनी गाड़ी सिद्ध कराई, सो गायवेको साज सब आछे बनाय गाड़ी ऊपर धरि राख्यो। तब सवारे भये कृष्णदास के पास आई। पाछे कृष्णदास वा वेश्याकों लिवायके ले चले, सो मथुरा आय रहे। तब दूसरे दिन मथुरा तें चले सो मध्यान्ह समय गोपालपुर में आये। पाछे वा वेश्याकों न्हवायके नवीन वस्त्र पहेरवेकों दियो, सो वाने पहर्‍यो। तब कृष्णदास अपने मनमें विचारे जो- यह ख्याल टप्पा गायगी सो श्रीगोवर्द्धनधर सुनेंगे।

तासों मैं याकों एक पद सिखाऊं। तब कृष्णदासने वा वेश्या कों एक पद सिखायो। और कह्यो जो–ये पद तू पूरवी राग में गाइयो। सो पद–

राग पूरवी–'मेरो मन गिरधर छवि पर अटक्यो०'। यह पद कृष्णदासने वा वेश्या कों सिखायो।

ता पाछे उत्थापन के दर्शन होय चुके, तब भोग के दर्शन के समय वा वेश्या कों समाज सहित कृष्णदास पर्वत के ऊपर ले गये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो भोग के समय यातें ले गये, जो– उत्थापन के समय निकुंज में जागिके (श्रीठाकुरजी) उठत हैं। तातें उत्थापन भोग बेगि आयो चहिये। और भोग के दरशन–व्रजके मारग में पधारत हैं, सो अनेक भक्तन को अंगीकार करत हैं। तासों याहू कों अंगीकार करनो है। तासों भोग के समय कृष्णदास वेश्या को परवत ऊपर ले गये।

पाछे भोग के किवाड़ खुले। तब वह वेश्याने पहले नृत्य कियो, ता पाछे गान करन लागी। सो कृष्णदासने पद करिके सिखायो हतो सो गायो। सो गावत २ जब छेली तुक आई जो–'कृष्णदास कियो प्रान न्योछावरि यह तन जग सिर पटक्यो'

या पद को गान करत ही वा वेश्या की देह छूटि गई, सो दिव्य देह होय लीलामें प्राप्त भई।

सो तब सगरे समाजी तथा वा वेश्या की माता रोवन लागी। जो–हम यासों कमाय खाते, अब हम कहा

करेंगे ? तब कृष्णदासने उनकों नीचे ले जायके कह्यो जो– अब तो भई सो भई, जो याकी इतनी आरबल हती। सो– या बात को कोऊ कहा करे ? अब तुम कहो सो तुमकों देऊं। तब उन कही जो– हजार रुपैया देऊ जो– कछूक दिन खांय। पाछे जो– होनहार होयगी सो सही। तब कृष्णदासनें हजार रुपैया देके उन सबनकों विदा किये।

सो या प्रकार वा वेश्या की छोरी कों श्रीगोवर्द्धननाथजी कृष्णदास की कानि तें आपु अंगीकार किये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तहां यह संदेह होय, जो– श्रीआचार्यजी के संबंध बिना लीला की प्राप्ति कैसे भई ? तहां कहत है जो– कृष्णदास के हृदयमें श्रीआचार्यजी विराजत हैं। सो कृष्णदासने पद वेश्या की छोरी कों सिखायो, सो देखिबे मात्र है। या पद द्वारा श्रीआचार्यजी को संबंध कराये। तासों यह पहिली तुक में कहे जो– 'मेरो मन गिरधर–छवि पर अटक्यो' सो सगरो धरम, मन लगायवे की रीत करी है। जीव अपनी सत्ता मानि स्त्री, पुत्र, देह में मन लगायो (है) तासों समर्पन करावत हैं।

तहां कोऊ कहे, जो– जीव सब दे चुक्यो है, जो अपनी सत्ता छोडिके प्रभुनकी सत्ता सब है। तासों मोकों तो एक श्रीकृष्ण ही गति हैं। तासों या पद में कहे जो–मेरो मन श्रीगोवर्द्धनधर की छबि पर अटक्यो,सो सब छोडिके, या प्रकार कृष्णदास द्वारा श्रीआचार्यजी आपु संबंध कराये, यह जाननो।

तोहू संदेह होय, जो–गुरु बिना लीला में कैसे प्राप्ति भई ? सो अलीखान कों प्रभु दरसन दिये। ता पाछे अलीखान कों और अलीखान की बेटी को सेवक होयवे की कही, सो सेवक कराये।

यहां नांही कराये, यह संदेह होय, सो काहेते ? जो ब्रह्मसंबंध में श्रीगोवर्द्धनधर की हू यही आज्ञा है जो–जाको तुम ब्रह्मसंबंध करवावोगे, ताकूं मैं अंगीकार करूंगो। तासों इन कों श्रीआचार्यजी महाप्रभु, श्रीगुसांईजी द्वारा ब्रह्मसंबंध न भयो और लीला की प्राप्ति कैसे भई ? उद्धार होय, परंतु लीला की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ। सो ब्रह्मसंबंध को दान करिवे के लिये श्रीआचार्यजी के कुल को विस्तार भयो।

सो काहे तें ? जो–सेवकन कों श्रीआचार्यजी आपु नाम सुनायवेकी आज्ञा दीनी, परि ब्रह्मसंबंध की नांही। तासों ब्रह्मसंबंध को दान वल्लभकुलही तें होय। **सो औरतं फलित नांही है।**

यह संदेह होय, तहां कहत है, जो– वेश्याको छोरी देह तजिके लीला में गई। तहां लीला में ललिता, श्रीगुसांईजी सदा बिराजत हैं। सो कृष्णदासजी लीला में ललितारूप होय जगत तें काढ़िके लीला में पठाये, सो लीला में श्रीललिताजी ने श्रीस्वामिनीजी द्वारा ब्रह्मसंबंध कराय अपनी सेवा में राखे। सो काहेतें ? जो–ललिताजी की सखी है।

या प्रकार ब्रह्मसंबंध भयो। सो जैसे मथुरा में नागर की बेटी को लीला में ब्रह्मसंबंध श्रीगुसांईजी कराये, यह भाव जाननो।

सो वे कृष्णदास एसे भगवदीय हते। जो वेश्या कों अंगीकार करायो।

वार्ता प्रसंग-६

और एक समय सगरे वैष्णव मिलिके कुंभनदासजी के पास आये। सो उनकों प्रीति सों बैठारिके पूछे जो–आजु बड़ी कृपा करी, जो–कछु आज्ञा करिये।

तब वैष्णवनने कही जो– तुमसों कछु मारग की रीति सुनिवे कों आये हैं। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो– मारग की रीतिमें तो कृष्णदास अधिकारी निपुण हैं, सो उनसों पूछो।

तब उन वैष्णवनने कही जो– हमारी सामर्थ्य नांही है, जो–कृष्णदास सों पूछि सकें। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो– तुम मेरे संग चलो, जो तिहारी ओरतें हम पूछेंगे। तब सगरे वैष्णव कुंभनदासजी के संग गये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो कुंभनदासजी यातें नांहीं कहे, जो– कुंभनदासजी को मन रहस्य लीला में मगन है। सो कहा जानिये जो प्रेममें कहा वस्तु निकसि पडे ? और कीर्तन में गूढ रीति सों लीला वरणन करत हैं। तासों जाको जैसे अधिकार है, ताकों तैसो कीर्तन में भासत है। और वैष्णवन सों कहनो परे सो खोलिके समुझावनो परे। तासों कुंभनदासजी कृष्णदास के पास सारे वैष्णवन को संग लेके आये।

सो तब सब वैष्णवन कों देखिके कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये, और सबन कों आदर करिके बैठारे। ता समय कृष्णदासनें यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग सारंग–१ 'गिरधर जब अपुनो करि जानें०'।

यह पद कृष्णदासने कह्यो। पाछे कृष्णदासने पूछी जो–आज मो पर सगरे भगवदीय कृपा करे सो–मेरे पास पधारे। तासों अब जो प्रसन्न होयके आज्ञा करो सो मैं करूं। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो– सगरे वैष्णवन को मन पुष्टिमारग की रीति सुनिवे को है। सो कहा कहिये? कहा सुमिरन करिये, सो एसे पुष्टिमारग को अनुभव होय सो कृपा करिके सुनावो।

तब कृष्णदासने कह्यो जो–कुंभनदासजी! तुम सगरे प्रकार करिके योग्य हो, जो–श्रीआचार्यजी के कृपापात्र भगवदीय हो, सो उचित है। तुम बड़े हो, जो तिहारे आगे में कहा कहूं? तुमसों कछू छानी नांही है। तब कुंभनदासजी कृष्णदाससों कहे जो–तुम कहो, हमारी आज्ञा है। जो–सगरे सेवकन में तुम मुख्य हो। सेवकन को कार्य तिहारे हाथ है, जो–यह पुष्टिमारग के अधिकारी तुम हो, तातें तुम कहो।

तब कृष्णदासने पहले अष्टाक्षर को भाव कीर्तन में कह्यो, सो पद–

राग सारंग–' कृष्ण श्रीकृष्ण शरणं मम उच्चरे० '।

सो यह अष्टाक्षर को भाव कहिके अब पंचाक्षर को भाव कीर्तन में गाये। सो पद–

राग सारंग–'कृष्ण ये कृष्ण मन मांह गति जानिये०'।

सो ये दोय कीर्तन कृष्णदासने गाय सुनाये। तब सगरे

वैष्णव प्रसन्न होयके कहे जो–कृष्णदास! तुम धन्य हो। जो–दोय कीर्तन में संदेह दूरि कियो। और मारग को सब सिद्धांत बतायो।

ता पाछे कृष्णदास सों विदा होयके सगरे वैष्णव अपने घर कों गये। सो वे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के एसे कृपा-पात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और कृष्णदास को गंगाबाइ क्षत्रानी सों बहोत स्नेह हतो।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहेतें? जो लीला में गंगाबाई श्रुतिरूपा के जूथ में तामसी भक्त हैं। सो मथुरा के एक क्षत्री के घर जन्मी। पाछे वरस ११की भई। तब गंगाबाई कों मथुरा में एक क्षत्री के बेटा सों ब्याह भयो। पाछे गंगाबाई क्षत्राणी के जो वेटा होय सो मरि जाय, सो नो बेटा भये। ता पाछे एक वेटी भई। सो वेटी को विवाह गंगाबाई क्षत्राणीने कियो। गंगाबाई की बेटी के गहनो बहोत हतो। सो वह बेटी मरी। सो वेटी को गहनो लाख रुपैया को दाबि राख्यो, सो कछू मथुरा के हाकिम को देके गहनो सब राख्यो।

ता पाछे वरस ५५ की भई तब झगडा के लिये श्रीनाथजीद्वार आयके रही। सो कृष्णदास सों मिलिके श्रीआचार्यजी सों सेवक होय को कही। तब कृष्णदासने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी, जो–महाराज! गंगाबाई क्षत्राणी कों शरण लीजिये। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–जीव तो दैवी है, परन्तु अभी मन श्रीठाकुरजी में नांही है।

तब कृष्णदासने बिनती कीनी जो– महाराज ! आपकी कृपा तें श्रीगोवर्द्धननाथजी कृपा करेंगे । पाछे श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास के आग्रह सों गंगाबाईकों नामनिवेदन करवायो ।

सो कृष्णदास पहले श्रीगोवर्द्धननाथजी के भेटिया होयके परदेस कों जाते, तब गंगाबाई क्षत्राणी मथुरा कों आवती । पाछे कृष्णदास श्रीनाथजीद्वार आवते तब गंगा क्षत्राणी हू मथुरा सों सगरी वस्तु ले श्रीजीद्वार आवती । सो कृष्णदास गंगाबाई को मन भगवद्धर्म में लगायवेके तांई दोऊ समे को महाप्रसाद श्रीनाथजी को वाके घर पठावते । क्यों ? जो गंगाबाई की खानपान में प्रीति बहोत हती । सो कृष्णदास बहोत सुन्दर सामग्री श्रीनाथजी को आरोगावते, और गंगाबाई कों भगवद्धर्म समुझावते । पाछे कृष्णदास गंगाबाई कों श्रीनाथजी के सगरे दरशन हू करावते । सो कृष्णदास के संग तें गंगाक्षत्राणी को मन अलौकिक भयो ।

सो एक दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राजभोग समर्पत हते, सो सामग्री के ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी* । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु राजभोग आरोगे नांही। ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु भोग सरायो । पाछे राजभोग आरती करि अनोसर करि आपु परवत तें नीचे पधारे । सो सेवक भीतरिया महाप्रसाद लिये। और श्रीगुसांईजी आपहू महाप्रसाद लेके पोढे ।

---

* श्रीगुसांईजी के समयमें श्रीनाथजीकी सामग्री आदि की सब सेवा मंदिर के नीचे जो बारह कोठा थे, उसमें होतीथी. और सिद्ध होने के बाद ऊपर लाकर निजमंदिर में भोग आती थी ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी आय रामदास भीतरिया कों लात मारिके जगाये। तब रामदासजी जागे। सो देखे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं। सो रामदासजी दंडवत करिके हाथ जोड़िके ठाड़े भये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु रामदास सों कहे जो–मैं तो भूख्यो हूं।

पाछे रामदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों विनती कीनी जो–महाराज! श्रीगुसांईजीने राजभोग समर्प्यो हतो, और तुम भूखे क्यों रहे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने कही जो–राजभोग में तो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी, तासों मैं नांही आरोग्यो हूं।

तब रामदासजी भीतरिया श्रीगुसांईजी के पास जाय चरणारविंद दाबिके जगाये, और विनती कीनी जो–महाराज! श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भूखे हैं। सो राजभोग में गंगाबाई की दृष्टि परी है, तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु राजभोग नांही आरोगे हैं।

सो यह सुनत ही श्रीगुसांईजी आपु तत्काल उठिके स्नान करिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में पधारे। पाछे रामदासजी न्हायके आये, इतने में सब भीतरिया हू स्नान करिके आये। तब श्रीगुसांईजी आपु सीतकाल देखिके भीतरियान सों कहे जो–बड़ी और भात करो। सो वेगि सिद्ध होय जायगो, तातें तैयार करो।

तब भीतरियानने बड़ी और भात कियो। सो श्री-गुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भोग धरे। ता पाछे राजभोग की सगरी सामग्री सिद्ध भई, और सेनभोग की हू सगरी सामग्री सिद्ध भई। सो राजभोग, सेनभोग दोउ भोग संग ही श्रीगुसांईजीने धरे।

पाछे समय भये भोग सरायो। ता पाछे श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों पोढ़ायके अनोसर करवायके बाहिर पधारे। सो एक डबरा में बड़ीभात श्रीगुसांईजी अपुने श्रीहस्त में लेके परवत तें नीचे पधारे। पाछे सगरे सेवकन कों बड़ीभात अपने हाथ सों रंच रंच दियो, और रंचक श्रीगुसांईजी आपु आरोगे। बड़ीभात महाप्रसाद बहुत स्वाद भयो, सो श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों बहोत सरहायो।

पाछे रामदास आदि सब सेवकनने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो- महाराज! यह सामग्री तो सीतकाल में कितनीक बार करी है, परंतु आजु बहोत स्वाद भयो। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो- श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भूखे हते सो प्रीति सों आरोगे, तासों स्वाद अद्भुत भयो।

ता समय कृष्णदास पास ठाड़े हते। सो कृष्णदासने कही जो- महाराज! आपुही करनहारे और आपुही आरोगन-हारे, सो स्वाद क्यों न होय? तब श्रीगुसांईजी आपु वा समय श्रीमुख सों कहे जो- ये तिहारे ही किये भोग भोगत हैं।

तहां यह संदेह होय जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगे नांही।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो श्रीगुसांईजी आपु भोग सराये, आचमन मुख वस्त्र करायो पाछे श्रीगोवर्द्धनधर कों बीरी आरो-गाये। सो भूखे श्रीगुसांईजीने न जानें? और बीरी आरोगत श्रीगोव-र्द्धनधर श्रीगुसांईजी सों न कहे, जो– मैं राजभोग नांही आरोग्यो। ताको कारण कहा? जों रामदास भीतरिया सों क्यों कहे?

सो यह संदेह होय तहां कहत हैं, जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी वा दिना श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी के यहां श्रीगिरधरजीने वड़ीभात करायो हतो, श्रीशोभाबेटीजी किये। सो तब श्रीगिरधरजी और श्रीशोभाबेटीजी के मन में आई, जो– श्रीगोवर्द्धनधर आपु पधारें और नौतन सामग्री आरोगें। तासों उहां वह दूसरो स्वरूप (भक्तोद्धारक) श्री-गिरिराजतें पधारिके श्रीगोवर्द्धनधर बड़ीभात आरोगे। और श्रीगिरिधरजी, श्रीशोभाबेटीजी को तो मनोरथ, सो भक्तन कों अनुभव करत हैं। सो स्वरूप तो आरोगि पाछें श्रीगिरिराज पर्वत के ऊपर पधारे। सो उहां (गिरिराजपें) सगरे सेवक महाप्रसाद ले चुके। और श्रीगुसांईजी आपु पोढ़े। ता समय मंदिर में श्रीस्वामिनीजीने पूछी जो– कहो, कहां होय आये हो? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो– बड़ीभात श्रीगोकुल में श्रीगिरिधरजी श्रीशोभाबेटीजी को मनोरथ (हतो) सो आरोगके आयो हूं। यह सुनिके श्रीस्वामिनीजीने हू बड़ीभात आरोगवे को मनोरथ कियो, जो– बड़ीभात आरोगें तो आछो। सो यहां (तो) (राजभोग) होय चुके।

तब श्रीस्वामिनीजीने श्रीनाथजी सों कह्यो, जो– जायके रामदास सों कहो जो– सामग्रीपे गंगाबाई क्षत्राणी की दृष्टि परी है। सो काहेतें?

जो—लीलासृष्टि के वचन हू सिद्ध करने हैं। जो— श्रीगुसांईजी को छे महिना को विप्रयोग है।

यातें जो—लीला में एक समय श्रीठाकुरजी ललिताजी सों कहे जो— मैं तेरी निकुंज में पधारूंगो। यह बात श्रीचंद्रावलीजीने सुनी। सो श्रीचंद्रावलीजीने श्रीठाकुरजी कों विविध चतुराई करि सेवा द्वारा ललिताजी के यहां छ मास तक पधारवे सों बरजे। सो ललिताजी विरह करि महा कृस होय गईं। पाछें यह बात श्री स्वामिनीजीने जानी, सो श्रीस्वामिनीजी ललिताजी कों संग लेके श्रीठाकुरजी की पास वाही समय आईं। और श्रीठाकुरजी सों कह्यो जो— तुम (नें) छे महिना लों मेरी सखी कों विरह दियो, अब तुम छे महिना लों ललितासखी के बस में रहोगे। और जाने मेरी सखी कों दुख दियो हैं, सो छ महिना लों दुःख पावो, और वाकों तिहारो दरसन हू न होय। सो यह बात सुनिके श्रीठाकुरजी आपु चुप होय रहे।

यह बात एक सखीने श्रीचंद्रावलीजी सों कही। सो सुनिके श्रीचंद्रावलीजी कहे जो— श्रीस्वामिनीजी श्रीठाकुरजी तो बड़े हैं। तासों इनसों तो कछू कही जाय नांही। परंतु ललिता सखी होय एसो खोटो कियो, जो श्रीस्वामिनीजी की सखी, सो मेरी सखी बराबरी है। सो इन (नें) मोको श्राप दिवायो जो छे महीना लों मोकों प्रभुन को दरसन हू नांही? सो ललिताने स्वामिनी—द्रोह कियो।

सो काहेते? जो श्रीठाकुरजीतें श्रीस्वामिनीजी प्रकटी हैं। और स्वामिनीजी के मुखचंद्रतें श्रीचंद्रावली प्रकटी। श्रीचंद्रावलीजीतें सगरी स्वामिनी सखी प्रकटी हैं। तासों श्रीठाकुरजी के दक्षिण भाग श्रीचंद्रावलीजी

बिराजत हैं। याते जो– सगरी सखीन के स्वामिनीरूप, श्रीचंद्रावलीजी (सो सर्व में) श्रेष्ठ हैं। तासों श्रीचंद्रावलीजीने कही जो ललिताने स्वामिनी–द्रोह कियो है। तासों ललिता की अकाल मृत्यु होऊ, और प्रेतयोनिकूं पावो। सो श्रीठाकुरजीहू, श्रीस्वामिनीजीहू रक्षा न करि सके। और काहूतें प्रेतयोनि निवृत्त न होय। जो मोकों श्राप दिवायो ताको यह फल भोगो।

यह बात काहू सखीने ललिता सों कही। सो सुनत ही ललिता महा कंपायमान होयके तत्काल दोरिके श्रीस्वामिनीजी के चरणन में आयके गिरि परी। पाछे अपनी सब बात ललिताने कही।

तब श्रीस्वामिनीजीने श्रीठाकुरजी कों बुलायके कह्यो जो–ललिता अपने हाथ सों गई, तासों अब कछू उपाय करो। पाछें श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को संग ले ललितादि समाज सहित श्रीचंद्रावलीजी के यहां पधारे। सो श्रीचंद्रावलीजी तत्काल उठिके श्रीठाकुरजी कों स्वामिनीजी कों नमस्कार करिके ऊंचे आसन पधराये। पाछे परम प्रीति सों दोउ स्वरूपन की पूजा करिकें सुन्दर सामग्री आरोगाये। ता पाछे बीरी आरोगाय श्रीचंद्रावलीजी हाथ जोरि के ठाड़ी भई। सो तब दोऊ स्वरूपनने प्रसन्न होयके श्रीचंद्रावलीजी को हाथ पकरिके पास बैठारी।

ता पाछे श्रीस्वामिनीजी कहे जो– सुनो श्रीचंद्रावलीजी ! तिहारी प्रीति तो महा अलौकिक है, और हमारे तिहारे में कछू भेद नांही है। और यह ललिता अपनो सखी है, सो यह तिहारी है। तासों अब याको श्राप भयो है, सो ताको छुटकारो करो।

तब श्रीचंद्रावलीजी कहे जो– ललिता अपनी है। तासों यह कछू भयो है सो यह जगत पर लीला करन अर्थ भयो है। सो यह ललिता प्रेत होयगी ताको मैं ही उद्धार करूंगी। जो यह मेरो निश्चय बचन है।

तब ललिता श्रीचंद्रावलीजी के चरणन में गिरिके कह्यो, जो– मैं तिहारो अपराध कियो सो पायो है। तब श्रीस्वामिनीजीने कही जो– यह सगरो परिकर, कलियुग में श्रीगिरिराज ऊपर लीला करनी है, तहां सब प्रकट होयगो। सो श्रीस्वामिनीजी के यह बचन सुनिके श्रीठाकुरजी, श्रीचंद्रावलीजी ललिता आदि सब प्रसन्न भये।

सो **लीलासृष्टि मैं अलौकिक स्नेह है, और अलौकिक श्राप है, और अलौकिक ही ईर्षा है, जो माया कृत तहां नांही है।** सो उहां ही करिके है। **सो भूमि पर जस प्रकट करन के अर्थ ईर्षा श्राप को मिष मात्र। भूमि के जीव लीलागान करि प्रभुन को पावें, सो यही अलौकिक करनो। सो लौकिक ईर्षा श्राप जाने ताको बुरो होय, और अपराधी होय। सो लीला सृष्टि में सब अलौकिक क्रिया है।** यह जाननो।

या प्रकार श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी की इच्छातें श्रीगोवर्द्धन गिरिराज में प्रकट भये, और श्रीस्वामिनीजीरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीगोवर्द्धनधर कों प्रकट किये। सो लीला में श्रीस्वामीनीजीतें चंद्रावलीजी को प्राकट्य। ताही भांति सो यहां श्रीआचार्यजी सों श्रीगुसांईजी को प्राकट्य, और ललिता सो कृष्णदास अधिकारी भये।

और श्रीगोवर्द्धनधर के अनेक स्वरूप हैं, परन्तु दोय रूप सदा रहत हैं। सो एक तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुनने उहां पधराये सो तहां बिराजमान हैं, और एक स्वरूप (भक्तोद्धारक) सों सगरे भक्तन कों सुख देत हैं। जो कुंभनदास, गोविंदस्वामी, के संग खेलते। सो जहां जहां भगवदीय हैं, तिनको अनुभव करावत हैं।

तातें जा समय श्रीगुसांईजी आपु भोग समर्पते हते और गंगाबाई क्षत्राणी की दृष्टि परी, ता समय श्रीगुसांईजी राजभोग धरे हैं सो आरोगे। (क्यों ?) जो श्रीगोवर्द्धनधर आरोगे नांही, तो असमर्पित खाय के सगरे सेवक भ्रष्ट होय जाय ? तातें श्रीआचार्यजी के मंदिरमें पधराये सो स्वरूप ने आरोग्यो।

यातें श्रीस्वामिनीजीने श्रीगोवर्द्धनधर सों कह्यो जो—श्रीगुसांईजी को छ महीना को वियोग है, तासों गंगाबाई को नाम लीजियो। सो कृष्णदास की और गंगाबाई की प्रीति है, सो गंगाबाई सों श्रीगुसांईजी कहेंगे। और कृष्णदासको बोली मारेंगे। तब कृष्णदास को बुरी लगेगी।

सो काहेते ? जो यह कार्य करनो जो— कृष्णदास के मनमें बुरी लगे, तब श्रीगुसांईजी को वियोग होय। तासों तुम जाय के कहो जो मैं भूल्यो हूं। सो तब श्रीनाथजीने रामदास सों जाय कही। परि रामदास यह भेद जाने नांही। सो रामदासने श्रीगुसांईजी सों जाय कह्यो, तब श्रीगुसांईजी मनमें जाने जो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी। अब हमसों और कृष्णदास सों लीला में बात भई हती सो पूरन करिवे की श्रीनाथजी की इच्छा है सो निश्चय होयगो, यह जानि

परत है। सो तासों अब जो सेवा बने, सो प्रीति सों करना। क्यों? जो– सेवा अब दुर्लभ है।

यह बिचारके तत्काल न्हाय बड़ीभात यहां नांही भयो हतो और श्रीगोकुल तें आरोगिके आये, तासों गिरिराज के ठाकुर को हू धरनो, सो बेगि सिद्ध करि धरे। ता पाछे सेनभोग की संग राजभोग धरे। ता पाछे सेन आरती करि अनोसर करायके मनमें बिचारे, जो– अब श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरसन महाप्रसाद सबही दुर्लभ भयो। सो बड़ीभात को डबरा उठाय मृतिका के पात्र ही में ठलायके परवत तें उतरि रंचक रंचक सबनकों दिये, सो आपुही लिये। सो बहोत सराहे।

तब कृष्णदासने भगवद् इच्छा तें बोली मारी (व्यंग) जो आपुही करनहारे, और आपुही आरोगनहारे। सो क्यों न स्वाद होय?

सो यामें यह जताये जो–हमसों न पूछे, जो– तुम ही जाय सामग्री किये, और तुमही जायके आरोगे। एसो सौभाग्य तिहारो ही है, सो बड़ाई करत हो। सो सब प्रकार सों तिहारी ही बनी है। यह बोली कृष्णदास मारे।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–यह तिहारो ही कियो भोग भोगत हैं। सों यह कहिके दोऊ बात जताये, जो–गंगाबाई क्षत्राणी सों प्रीति करि वाको बैठारि राखे, सो वाकी राजभोग की सामग्री पे दृष्टि परी। सो यह तिहारो कार्य है। नाहो तो गंगाबाई कहां तांई कैसे जाय? और तुमने लीला में श्रीस्वामिनीजी सों श्राप दिवायो, सो तिहारो कार्य है। सो तिहारे ही किये भोग भोगत हैं।

यामें यह जताये जो हमकों खबरि परि गई जो– अब तिहारो भाग्य खुल्यो, सो तुम करो सो भोगोगे। जो मनमें तो आय चुकी है। अब उपर तें करनो है, सो करोगे।

सो यह बात सुनिके कृष्णदास के मन में बहोत बुरी लगी। तब कृष्णदास मनमें विचारे जो– श्रीगुसांईजी के दर्शन बंद करने। सो या बातको कोन प्रकार सों उपाय करनो।

तब श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांईजी के बड़े भाई तिनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी हते। सो तिनसों कृष्णदास मिलि के कहे जो– तुम श्रीआचार्यजी के बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी हैं, तिनके पुत्र हो। सो तुम क्यों चुप बैठि रहे हो? जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी को सेवा शृंगार सब करो। जो–श्रीगुसांईजीने अपनो सब हुकम करि राख्यो है। टीकेत तो तुम हो।

तब श्रीपुरुषोत्तमजीने कही जो– हमारी सामर्थ्य नाही है जो– श्रीगुसांईजी सों बिगारें। तब कृष्णदासनें कह्यो, जो– हमारे संग न्हायके चलो, जो– परवत के ऊपर मंदिर में जायके श्रीनाथजी को सेवा शृंगार करो, जो– हम सब करि लेंइगे।

पाछे श्रीपुरुषोत्तमजी उत्थापन तें दोय घडी पहले न्हाये, सो कृष्णदास के संग परवत ऊपर जायके मंदिर में बैठि रहे। और कृष्णदास दंडोती शिला पे जायके बैठि रहे। इतने में श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिकें दंडोती सिला के पास आये।

तब कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों कही जो- श्रीपुरुषोत्तमजी न्हायके मंदिर में पधारे हैं। टीकेत तो वे हैं, तासों जब वे आप को बुलावेंगे, तब आपु परवत ऊपर आइयो। तासों अब आपु परवत ऊपर मति चढो, जो- श्रीगोवर्द्धनधर के दरशन न होंयगे।

तब श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की ध्वजा कों दंडवत करि लीला की बात सुमरन करिके परासोली कूं पधारे, तहां रहे। सो तहां विप्रयोग को अनुभव करन लागे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो श्रीगोकुल हू श्रीनवनीतप्रियजी के यहां याते नहिं पधारे जो- श्रीस्वामिनीजी के वचन हैं। जो हमहूं को और श्रीठाकुरजी को हू विप्रयोग होयगो। तासों श्रीगोकुल जायेंगे तो कहा जानिये केसी होय ? तासों अब छे महिना लों मिलाप श्रीठाकुरजी सों दुर्लभ हैं, तासों परासोली में बैठि रहैं।

और श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में परासोली की और एक बारी हती, सो जा पर श्रीगोवर्द्धननाथजी आयके श्री-गुसांईजी कों दरसन देते। सो श्रीगुसांईजी आपु सगरे दिन परासोलीतें बारी कों देखते। कृष्णदास मंदिर में ते नीचे जांय तब श्रीगोवर्द्धननाथजी बारी पर आय बैठते।

सो कृष्णदास एक दिन आन्योर में आये, तब बारी पर श्रीगोवर्द्धननाथजी कों बैठे देखे। तब कृष्णदास प्रातःकाल मंदिर में आयके बारी चिनवायके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो

जो– मैं तो श्रीगुसांईजी के दरशन की मने कियो हूं, सो तुम बारी पर क्यों बैठे ? और अब उतकी ओर मति जैयो। सो कृष्णदास परासोली की ओर श्रीनाथजी को खेलिवेको हू न जान देते।

सो श्रीगोवर्द्धनधर को श्रीगुसांईजी वैठि वैठिके विज्ञप्ति करते। सो रामदास मुखिया भीतरिया जब श्रीगुसांईजी के पास राजभोग आरती सो पहिची के जाते सो आपु कों श्रीनाथजी को चरणोदक देते। तब श्रीगुसांईजी आपु फूल की माला करि राखते सो माला के भीतर विज्ञप्ति को श्लोक लिखि देते। सो रामदासजी ले जाते। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी को माला पहिरावते, तब माला में ते विज्ञप्ति को कागद निकासिके श्रीनाथजी बांचते। पाछे वाको प्रति उत्तर श्रीनाथजी बीड़ा के पान की ऊपर अपनी पीक सों सींकतें लिखि देते। सो रामदास कों देते।

सो रामदास दूसरे दिन राजभोग सों पहोंचिके जाते, तब श्रीनाथजी को लिख्यो पत्र श्रीगुसांईजी कों देते। सो श्रीगुसांईजी आपु बांचिके पाछे जल में घोरिके पान करते। यातें श्रीनाथजी के किये श्लोक जगत में प्रकट न भये। श्रीगुसांईजी आपु विज्ञप्ति किये सो श्रीनाथजी आपु बांचिके रामदासजी कों देते, तासों विज्ञप्ति प्रकटी है।

एक दिन श्रीगुसांईजी को वहोत विरह भयो, सो यह लिखे। श्लोक–' त्वद्दर्शन विहीनस्य०

सो यह श्लोक लिखिके पठाये, जो- तिहारे भक्त हैं सो तिहारे विना जीवत हैं सो वृथा ही जीवत हैं। सो दुर्भगावत्। सो यह श्रीगोवर्द्धननाथजी बांचिके यह लिखे जो- मेघ को लक्षण यह है, जो- समय होय वर्षा को, तब आयके वर्षे। सो सबरो जगत जानत है। सो एसें अबही कृष्णदास को समय होय चुकेगो तब मिलाप होयगो। सो यह तुमहू जानत हो, और हमहू जानत हैं। तासों धीरज धरि समय होन देउ, जो इतनो विरह क्यों करत हो ?

सो यह पत्र रामदासजी लेके आये। तब श्रीगुसांईजी आपु बांचिके यह लिखे जो-

'अंबुदस्य स्वभावोयं समये वारि मुञ्चति,
तथापि चातकः खिन्नं रटत्येव न संशयः'।

सो मेघ को यह स्वभाव है जो- समय होयगो, तब ही वरसेगो (मिलाप होयगो) परंतु चातकने मेघ सों प्रीति करी है। सो एसे भक्त हैं सो तो तिनको (मेघरूप श्रीकृष्ण को) रटत है, सो चेन नाही है। सो (आपु) चाहो तब समय होय। तुम बिना धीरज हम कों नांही है। सो भक्तन को यही धर्म है, जो- चातक की नाई सदा तिहारी चाह करिवो करें। सो यह लिखि पठाये।

या प्रकार रामदासजी नित्य आवते, सो श्रीगुसांईजी के पास सब सेवक आवते, सो कृष्णदासजी जानते। परंतु सेवकन सों कछु चलती नांही। रामदासजी कों वरजे हू

सही, जो- तुम श्रीगुसांईजी के पास पत्र ले जात हो, और पत्र ले आवत हो, सो यह बात ठीक नांही है।

तब रामदासजी कहे, जो- हम तो नित्य श्रीगुसांईजी के दर्शन को जांयगे, चाहे हम कों सेवा में राखो चाहे मति राखो। तब कृष्णदास चुप होय रहे। सो काहेतें ? जो- एसो सेवक फेरि कहां मिले ? तासों कृष्णदास कछू बोले नांही।

सो पौष सुदी ६ तें आषाढ़ सुदी ५ तांई श्रीगुसांईजी ने विप्रयोग कियो। पाछे अषाढ़ सुदी ५ आई, ता दिन राजा बीरबल श्रीगोकुल आयो। सो श्रीगुसांईजी तो परासोली हते, और श्रीगिरधरजी घर हते।

तब बीरबल श्रीगिरधरजी के पास आयके दंडवत करि के पूछे जो- श्रीगुसांईजी कहां है ? हमकों दरशन किये बहोत दिन भये। हमने उनके दरशन पाये नांही।

तब श्रीगिरधरजी बीरबल सों कहे जो-श्रीगुसांईजी तो परासोली में बैठि रहे हैं, जो-कृष्णदास अधिकारीने श्रीगुसांई-जी के दरशन बंद किये हैं। सो श्रीगुसांईजी छे महिना तें बड़ो खेद करत हैं।

तब बीरबलने कह्यो जो- अबही मैं जायके कृष्णदास कों निकासत हों। सो यह कहिके बीरबल श्रीमथुराजी आयो। सो मथुरा की फोजदारी बीरबल की हती, सो मथुरातें पांचसे मनुष्य बीरबलने पठाये और बीरबलने उनसों कह्यो जो-श्रीगोवर्द्धन में जायके कृष्णदास कों पकरि लावो।

तब मनुष्य गये, सो सांझ के समय श्रीगोवर्द्धनमें आये। पाछे कृष्णदास कों पकरिके वे मनुष्य मथुरा ले आये। तब बीरबलने अर्द्धरात्रि ही कों मनुष्य श्रीगोकुल पठायके कह्यो जो–कृष्णदास कों पकरिके बंदीखाने में दिये हैं, जो–तुम श्रीगुसांईजी कों लेके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में जावो।

तब ये समाचार मनुष्यननें श्रीगिरधरजी सों कहे। सो रात्रिही कों श्रीगिरधरजी घोड़ा ऊपर असवार होयके परासोली कूं पधारे, सो प्रातःकाल ही अषाढ़ सुद ६ आई। सो श्रीगिरधरजीने जायके श्रीगुसांईजी कों नमस्कार करिके कही जो–आपु श्रीगोवर्द्धनधर के मंदिर में पधारो, और सेवा श्रृंगार करो।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरधरजी सों कहे जो–कृष्णदास की आज्ञा होय तो चलें। तब श्रीगुसांईजी सों श्रीगिरधरजीने कही जो–कृष्णदास कूं तो मथुरा में बंदीखाने में दियो है।

यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–हाय हाय! श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के कृपापात्र सेवक भगवदीय कृष्णदास को इतनो दुःख, और इतनो कष्ट। श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजी सों कही जो–तुमने बीरबल सों कह्यो होयगो। तब श्रीगिरधरजीने कही जो–हम तो सहज ही बीरबल सों कह्यो हतो जो–श्रीगुसांईजी के दर्शन कृष्णदासने बंद किये हैं, इतनो कह्यो हतो। और तो कछु नाही कह्यो।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–कृष्णदास आवेगो, तब ही भोजन करूंगो। सो इतनो सुनतही श्रीगिरधरजी तत्काल घोडा ऊपर असवार होयकें श्रीमथुराजी आये। तब बीरवल तें जायके श्रीगिरधरजीने कह्यो जो–काकाजी तो भोजन तब करेंगे जब कृष्णदास वहां जायंगे। तासों कृष्णदास को छोडि देउ।

तब बीरवलने कृष्णदास कों बंदीखानेमें तें बुलायके कह्यो जो–देखि श्रीगुसांईजी की कृपा, जो–तेरे बिना भोजन नांही करत हैं और तैनें उनसों एसी करी। तासों अब तोकूं छोडत हूं, और आजु पाछे जो तू श्रीगुसांईजी सों बिगारेगो, तब मैं तोकों फेरि कबहू नांही छोडूंगो। सो या प्रकार बीरवलने कहिके कृष्णदास कों श्रीगिरधरजी के हवाले करि दिये।

तब श्रीगिरधरजी कृष्णदास कों लेके परासोली में पधारे। तब श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास कों देखिके श्री-गोवर्द्धननाथजी को अधिकारी जानिके उठि ठाडे भये। तब कृष्णदास दीन होयके श्रीगुसांईजीको दंडवत करि चरण-परस करिके यह पद गायो। सो पद–

राग सारंग।–‘ताहीको सिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पद रज रति होय’। ×××× ‘कृष्णदास सुर तें असुर भये, असुर तें सुर भये चरणन छोय’।

यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आपु बहोत प्रसन्न भये। तब कृष्णदासने बिनती कीनी जो–महाराज! मेरो अपराध क्षमा करिये, और अब आप श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में पधारिये।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–तिहारी आज्ञा भई है, सो अब चलेंगे। तब कृष्णदास को संग लेके श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में पधारे। और श्रीगोवर्द्धनधर को दंडोत करि। पाछें शृंगार को समय हतो और आषाढ़ सुद ६ को दिन हतो सो कसूमल कुलह पिछोडा धराये। तब राजभोग सों पहोंचे। पाछे उत्थापन तें सेन पर्यन्त की सेवा सों पहोंचिके सेन आरती करि श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी के सन्मुख कृष्णदास कों दुसाला उढ़ाये। और कहे जो–श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार करो। तुम धन्य हो। तब वा समय कृष्णदासने यह पद गायो। सो पद–

राग कान्हरो–'परम कृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दे माथे०'।

सो यह पद कृष्णदासने गायो, और विनती कीनी जो–महाराज! मेरो अपराध क्षमा करिये। तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखसों कहे जो–तिहारो अपराध श्रीनाथजी क्षमा करेंगे।

ता पाछें श्रीगुसांईजी अनोसर करायके सबन को समाधान कियो, तब सगरे वैष्णव सेवक प्रसन्न भये। पाछें

जैसें नित्य सेवा शृंगार आप श्रीगोवर्द्धनधर को करते, तैसेही करन लागे। और कृष्णदास श्रीगुसांईजी की आज्ञा तें अधिकार की सेवा करन लागे।

सो वे कृष्णदास एसे कृपापात्रभगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-८

और एक समय श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में हते, सो कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन तें श्रीगोकुल आये। तब श्रीगुसांईजी उठिके श्रीगोवर्द्धननाथजी को अधिकारी जानि कृष्णदास कों बहोत प्रसन्नता पूर्वक समाधान कियो, और अपने पास बैठाये। पाछे श्रीगोवर्द्धनधर के कुशल समाचार पूछे और कृष्णदास कों अपने श्रीहस्तसों श्रीनवनीतप्रियजी को महाप्रसाद धरे। ता पाछे सेनभोग को महाप्रसाद लिवाय के रात्रिकों सुंदर सेज पर सेन करायो।

सो जब प्रातःकाल भयो तब कृष्णदास चलन लागे। ता समय कृष्णदासने श्रीगुसांईंजीसों वीनती कीनी जो-महाराज! मेरो मन वृंदावन देखिवे को बहोत है। तब श्री-गुसांईजी आपु कहे जो- आछो, जावो, परंतु दुःख पावोगे।

तब कृष्णदास श्रीयमुनाजी पार गये, जो श्रीगुसांईजीने मने किये तोऊ मन न मान्यो, श्रीवृंदावन कों चले। सो मध्यान्ह समये वृंदावन आये। तब वृंदावन के संत महंत कृष्णदास सों मिलन आये, सो कृष्णदास कों वा समय ज्वर

चढ्यो, सो प्यास लागी। तब कंठ सूखन लाग्यो। सो कृष्णदासनें कही जो– प्यास बहोत लगी है, सो कंठ सूख्यो जात है।

तब संत महंतनने कही जो– बेगि जल लावे। सो कृष्णदास अकेलेही रथ पर बेठिके गये हते। कृष्णदासनें कही जो– श्रीगोकुल को वल्लभी वैष्णव होय सो वासों कहो, जो– वह जल लावे तो मैं पिऊं। तब सगरे संतमहंतनने कृष्णदास सों तर्क करिके कह्यो जो–यहांतो कोई वैष्णव नांही है, जो श्रीगोकुल को भंगी यहां ब्याहो है, सो वह यहां आयो है, सो वाको तुम कहो तो बुलावें।

तब कृष्णदासने कही जो– वह श्रीगोकुल को भंगी सब तें श्रेष्ठ हैं। सो वासों कहियो जो– कुभार के घर तें कोरो वासन लेके श्रीयमुनाजीमें न्हाय के जल भरि लावे। सो तब उनने जायके वा भंगी सों कह्यो जो– कृष्णदास कों ज्वर चढ्यो है, वह प्यासे हैं। सो कहत हैं सो तू उनको जल ले जा। तब वह भंगी उहां सो दोरयो। सो श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियाजी की राजभोग आरती करि श्रीनाथजी-द्वार पधारिवे कूं घाट ऊपर आये हते। सो इतने ही में वा भंगीने कपडा की आड करिके मुख तें कह्यो, जो महाराज! कृष्णदास श्रीवृंदावन में हैं। तहां उनकों ज्वर चढ्यो है, सो प्यासे हैं। जल मोसों मांग्यो है, सो मैं वृंदावन तें यहां दोर्यो आयो हूं।

तब श्रीगुसांईजी खवास सों झारी जल की लेके,

घोडा ऊपर असवार होयके वेगिही आपु वृंदावन पधारे । सो तब कृष्णदास कों रथ उपर तें उठायके जल प्याये। पाछे कृष्णदास सावधान भये । सो ज्वरहू उतरि गयो। तब कृष्णदास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके यह पद गाये । सो पद–

राग कान्हरो—१ 'श्रीविठ्ठलजू के चरणन की बलि, हमसे पतित उद्धारन कारन परम कृपाल आपु आये चलि'।

सो यह पद गायके कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों विनती कीनी जो– महाराज! मैंनें आप को कह्यो न मान्यो तासों इतनो दुख पायो। ता पाछे श्रीगुसांईजी के संग कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन आये, तब सेन आरती को समो भयो, तब श्रीगुसांईजी न्हायके सेन आरती किये । तब कृष्णदासने यह पद गायो। सो पद–

राग कान्हरो–'आजु को दिन धनि २ री माई नैनन भरि देखे नंदनंदन०'।

पाछें श्रीगुसांईजी अनोसर करायके परवत तें नीचे पधारे । सो या प्रकार कृष्णदासने बहोत दिन लों श्रीगोवर्द्धननाथजी को अधिकार कियो ।

वार्ता प्रसंग–९

पाछे एक दिन एक वैष्णवने आयके कृष्णदास सों कही जो– मोकूं यहां एक कुवा बनवावनो है, और मोकों अपुने

देस जानो है, सो मैं तो अपने देशको जाउंगो, तासों तुम या द्रव्य कों राखो।

सो एसे कहिके वह वैष्णव तीनसे रुपैया देके अपुने देशकों गयो। तब कृष्णदास वा वैष्णव के रुपैयान में ते एक सो रुपैया एक कूल्हरा में धरिके बागमे एक आंब के वृक्ष नीचे गाडी राखे।

ता पाछे आछो महूरत देखिके पूछरी के पास बागमें कुवाको आरंभ कियो। तब कितनेक दिन पाछे कुवा बनिके तैयार भयो, और दोय से रुपैया लगे। पाछे कुवा को मोहडो बनवावनो रह्यो, सो कृष्णदासजी मन में बिचारे, जो– सो रुपैया में मोहोडो आछो बनेगो।

ता पाछे श्रीगोबर्द्धनधर के उत्थापन के दरसन करिके कृष्णदास वा कूवा कों देखवे कूं गये, सो बा कुवा को देखन लागे। सो कृष्णदास के हाथ में आसा (लकडी) हतो, सो आसा टेकके कृष्णदास बा कुवा पर ठाडे भये। इतने में आसा सरक्यो, सो कृष्णदास आसा सहित वा कुवा में जाय परे। तब सगरे मनुष्य पास ठाडे हते. सो तिनने सोर कियो। जो– कृष्णदास कुवा में गिरे। पाछे कितेक मनुष्य दोरे, सो रस्सा टोकरा लाये, और दोय मनुष्य कुवा के भीतर उतरे। सो बहोत ढूंढे, परि कृष्णदास को सरीर हू न पायो। तब वे मनुष्य पाछे फिरि आये।

ता समय श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धनधर कों सैनभोग धरिके बाहिर बिराजे हते, सो रामदास भीतरिया श्रीगुसांईजी के पास बैठे हते। ता समय मनुष्यनने जायके कही। जो– महाराज! कृष्णदास कुवा कों देखत हते, सो आसा सरक्यो। सो कुवा में गिरे। पाछे मनुष्य कुवा में ढूढिवे कों उतरे। सो कृष्णदास को सरीर हू पायो नांही है।

ता समय रामदासजी उहां ठाडे हते, सो कहे 'तामसाना मधो गतिः–' तब यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे, जो– रामदासजी! एसे न कहिये। जो कृष्णदास तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के कृपापात्र वैष्णव हते, जो यह लीला है। कूप में गिरे तो कहा भयो? कहा जानिये कहा है?

सो याको कारण श्रीगुसांईजी आपु तो जानत हते, जो प्रेतयोनि श्रीहरिरायजी कृत को श्राप है। तासों आपु प्रकट न किये। सो

भावप्रकाश कृष्णदास या देह सुद्धां प्रेत भये। सो पूछरी के पास एक पीपर को वृक्ष है।* ताके ऊपर जायके बैठे।

वार्ताप्रसंग–१०

और श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों कहे जो– कृष्णदास श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार भलो ही किये और अब एसे सेवक कहां मिले? और अधिकारी बिना काम चलेगो नांही सो विचार करनो। सो या भांति कहे।

---

*सं. १९९० में यह वृक्ष सूख गया। अभी भी उस वृक्ष के अवशेष उसी प्रसिद्ध और विशाल कूप के पास विद्यमान हैं।

तब रामदासजीने विनती कीनी जो– महाराज! जाकों तुम आज्ञा करोगे, सोई करेगो। जो श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा भाग्य सों मिलत है। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो– हम कोनसे जीव कों कहें, जो कोनसे जीव को बिगार करें। सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारवो तो तत्काल है।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो याहीसों श्रीआचार्यजी श्रीसुबोधिनीजी में कहे है। जो– श्रीभागवत नारायनने ब्रह्मा सों कह्यो है, परिब्रह्मा सृष्टि करन को अधिकारी है। तासो श्रीभागवत फलित न भयो। पाछे ब्रह्मा नारदजी सों कही, सो नारद कों सगरे देसन में फिरवे को अधिकार है तासों फलित न भयो। तब नारदने वेदव्यासजी सों कह्यो। सो वेदव्यासजी शास्त्र करन के अधिकारी हैं, तासों व्यासजी कों हू फलित न भयो। पाछे व्यासजीने श्रीशुकदेवजी सों कह्यो। सो शुकदेवजी सर्वत्याग कियो है। सो यही त्याग में लगे। पाछो परीक्षित कों सर्व त्याग भयो। तब अधिकारी श्रीभागवत के भये। (जब) श्रीशुकदेवजी रातदिन तांई कथा कहे। तब सातमें दिन भगवत् प्राप्ति भई।

सो तैसे ही यह श्रीभागवतरूप पुष्टिमार्ग हैं। सो याके अधिकारी निरपेक्ष होय, ताही के माथे यह मारग होय। और जाकों अधिकार पाये अहंकार बढ़े, सो ताकों कछू फल सिद्ध न होय।

तासों श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार हम कौन कों देंय? कौन को बिगार करें। तब रामदासजी सुनिके चुप होय रहे। इतने में सेनभोग को समय भयो, सो सेनभोग श्री-गुसांईजी सराये।

सो सेन आरती करे पाछे श्रीगुसांईजी आपु गोवर्द्धनधर सों पूछे, जो–महाराज! कृष्णदास की तो देह छूटी और अधिकारी विना चलेगी नांही, सो हम कोनकों अधिकार देके विगार करें? तासों आपु कहो ताकों अधिकारी करें।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो–हमहू कौन जीवको बिगार करें? जो–कोई अधिकार लेयगो ताको बिगार होयगो। तासों तुम एक काम करो, जो–अधिकार को दुसाला लेके सब के आगे कहो, जाकों अधिकार करनो होय सो दुसाला ओढ़ो। तब जो आयके कहे ताकों देऊ। सो जाकों गिरनो होयगो सो आपुही आवेगो।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सेन कराये। पाछे दूसरे दिन राजभोग आरती के समय सगरे व्रजवासी वैष्णव भेले करिके श्रीगुसांईजी आपु दुसाला हाथ में लियो। पाछे सवन कों सुनायके कह्यो जो–जाकों श्रीनाथजी के घर को अधिकार करनो होय सो या दुसाला कों ओढ़ो। यह सुनिके कितनेकने कही जो– हम करेंगे। सो पहले एक क्षत्री बोल्यो हतो, सो ताकों दुसाला उढ़ायो। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी की आरती करि अनोसर कराय श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल पधारे।

पाछे कछूक दिन बीते तब एक समय श्रीगोवर्द्धननाथजी की भैंस खोय गई, सो बरहे में निकसि गई। तब भैंसि ढूंढिवे के लिये गोपीनाथदास ग्वाल और पांच सात ग्वाल पूछरी की

और गये। वे सब परमकृपापात्र भगवदीय हते। सो तब देखे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी सखान सहित पूछरी पास एक पीपरके नीचे खेलत हैं। और पीपरके नीचे कृष्णदास अधिकारी प्रेत होयके बैठे हैं। तब कृष्णदास अधिकारीने गोपीनाथदास ग्वाल सों जैश्रीकृष्ण कियो और कह्यो जो–अरे भैया! गोपीनाथदास ग्वाल! तू मेरी विनती श्रीगुसांईजी सों करियो, और कहियो जो–आपके अपराधतें मेरी यह अवस्था भई है। और श्रीगोवर्द्धनधर दरसन देत हैं सो आप की कृपा तें देत हैं।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे अधिकार को दुसाला श्रीगुसांईजीने कृष्णदास कों (दुवारा) उढ़ायो। तब कृष्णदासने यह पद गायो–'परमकृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दे माथे'।

सो यह पद गायके कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों कही जो–महाराज! मैं छ महिना लों आपको विप्रयोग करायो, सो आपु मेरो अपराध क्षमा करिये। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–तिहारो अपराध श्रीनाथजी क्षमा करेंगे।

सो यह श्रीगुसांईजी आपु कहे, तासों श्रीगोवर्द्धनधर दरसन देत हैं, और बोलत हैं, बातें करत हैं। परन्तु श्रीगुसांईजी आपु अपराध क्षमा नांही किये हैं, तासों प्रेतयोनि छूटत नांही है।

और कृष्णदास श्रीगोवर्द्धनधर सों हू कहते जो महाराज! मोको दरसन देत हो, सो प्रेतयोनि क्यों नांही छुड़ावत हो? तब श्री·

गोवर्द्धननाथजी कहे, जो–यह हमारे हाथ है नांही, उद्धार तो तेरो श्रीगुसांईजी के हाथ है ।

सो काहेतें? जो– लीला में श्रीचंद्रावलीजी को श्राप है, जो–प्रेतयोनि होय । सो कौन छुडावे? तासों जद्यपि श्रीस्वामिनीजी की सखी ललितारूप (कृष्णदास) हैं । परन्तु आगे को बचन बिचारि न छुडावत हैं । तासों कृष्णदासने गोपीनाथदास ग्वाल सों कह्यो जो–तू मेरी विनती श्रीगुसांईजी सों करियो, जो– श्रीगुसांईजी की कृपा विना मेरी गति नांही है ।

और बिलछू की ओर बागमें आम के वृक्ष के नीचे रुपैया सौ एक कूलरा में भरिके गाड़े हैं, सो निकासिके कूपके ऊपर को मोहड़ो बनवाय दीजियो । यह श्रीगुसांईजी सों कहियो । और श्रीनाथजी की भैंसि तुम ढूंढ़िवे कों आये हो सो उह घनामें चरत है ।

पाछे गोपीनाथदास ग्वाल घनामें तें भेंस लेके गोपालपुर आये । सो भेंस बांधि गोदोहन गाय भेंस को किये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की सेन आरती करिके अनोसर कराय परवत तें उतरे और अपनी बैठक में आयके बिराजे । तब गोपीनाथदास ग्वालने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके कह्यो जो–महाराज! आज श्रीनाथजी की भैंस खोय गई हती सो ढूंढ़न कों पूछरी की और गये हते । तहां कृष्णदास अधिकारी प्रेत भये देखे हैं । सो कृष्णदास

पीपर के वृक्षके ऊपर बैठे हैं। कृष्णदासने मोकों भगवत्-स्मरण कियो हतो। और कृष्णदासने आपसों यह बिनती करी हैं जो–मैं प्रेत हूं, मैनें आप को अपराध कियो है, तासों मोकों प्रेतयोनि प्राप्त भई है। आपुके हाथ मेरो उद्धार है। और बागमें आमके वृक्ष के नीचे कूलरा में रुपैया सौ गड़े हैं। सो निकासिके कुवा को मोहोड़ो बनवायवे को कह्यो है। और भेंस हू कृष्णदासने बताय दीनी है, सो हम ले आये हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु अपने मनमें बिचारे जो–कृष्णदास कों बड़ो दुख है। सो अब याकों प्रेतयोनिमें सों छुडावनो, यह कहिके तत्काल उठिके बागमें पधारे। तब रुपैया १००) निकासिके नयो अधिकारी कियो हतो, सो वाकों देके कह्यो जो–ये रुपैयानसों कृष्णदासवारे कूवा को मोहड़ो बनवाइयो।

ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु वाही रात्रि कों असवार होयके मथुराजी पधारे। पाछे प्रातःकाल भये श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तसों कृष्णदास को क्रिया–कर्म करि, ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध कियो, और कृष्णदास की प्रेतयोनि छुटायके दिव्य शरीर करिके लीला में प्राप्त किये। सो बिलछू सामें गिरिराज में बारी, ता द्वार के मुखिया कृष्णदास हैं, सो तहां जायके बिराजे। सो या प्रकार कृष्णदास की लीला-प्राप्ति श्रीगुसांईजी आपु किये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तहां यह संदेह होय जो– श्रीगुसांईजी की कृपातें उद्धार न भयो ? सो आपु मथुराजी पधारे और ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध किये ? सो कृपातें (कहा) श्राद्ध अधिक है ?

तहां कहत हैं जो– गोपीनाथदास ग्वाल कृष्णदास कों प्रेत भये देखिके आये। सगरे सेवक व्रजवासीन के आगे गोपीनाथदास ग्वाल नें श्रीगुसांईजीतें कह्यो, जो– कृष्णदास प्रेत भये हैं। सो आपु सो बिनती करी है, जो– आप मोकों प्रेतयोनि सों छुड़ावो। जो श्रीगुसांईजी चाहें तो रंचक मन में बिचारेतें छुटकारो होय। परन्तु पाछे जो सेवक व्रजवासी कोई प्रेत होय सो श्रीगुसांईजी सों कहे, जो– आपु छुड़ावो। सो तब न छुड़ावें तो दोषबुद्धि होय, तब जीव को बिगार होय। तासों श्रीगुसांईजी आपु श्रीमथुराजी में पधारिके ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध कियो, सो या मिष तें छुड़ाये। सो सबनने जानी जो– ध्रुवघाट को श्राद्ध एसो ही है, सो यह महिमा बढ़ाये। सो अपुनो माहात्म्य काल–कठिनता जानि छिपाये। सो याको कारण यह है।

और दूसरो कारण यह है जो–कृष्णदास एसे भगवदीय हते जो इनके कोटानकोटि पुरुषान को उद्धार होय, सो काहेतें ? जो श्री-भागवत में नृसिंहजी तें प्रहलादनें कह्यो है जो– महाराज ! मेरे पिता को उद्धार होय, तब श्रीनृसिंहजी कहे जो– जा कुलमें भगवद्भक्त होइ सो वाके इकीस पुरषा तरें। तासों तुम संदेह क्यों करत हो ?

सो प्रहलादजी तो मर्यादाभक्त भये, और कृष्णदासजी पुष्टिमार्गीय

भगवदीय भये। सो इनके तो कोटानकोटि पुरषान को उद्धार है। परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के संबंध बिना लीला में प्रवेश न होय। तासों कृष्णदास के मिष करि सृष्टि में मुक्त किये। सो काहेतें? जो कृष्णदासजी, श्रीगुसांईजी सगरो श्रीगोवर्द्धनधर को परिकर अलौकिक है। सो इहां ईर्षा नांही है। सो भूमि पर हू भगवद्-लीला जानि कहनो सुननो।

सो या प्रकार कृष्णदास की वार्ता महा अलौकिक है। तासों श्रीगुसांईजी कहे जो-कृष्णदास रासादिक कीर्तन एसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होय। और श्रीआचार्यजी के सेवक होयके सेवा हू एसी करी, जो दूसरे सों न बनेगी। और श्रीनाथजी को अधिकार हू एसो कियो जो दूसरे सों न होयगो।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखसों कृष्णदास की सराहना किये। सो वे कृष्णदास अधिकारी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते। जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धनधर सदा प्रसन्न रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नांही। तातें इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है सो कहां तांई लिखिये।

अष्टछाप —

अष्टछाप संस्थापना सं० १६०२, स्थान "पूंछरी" (गिरिराज)

वामभागमे—श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण,, १ श्रीसूर, २ परमानंद, ३ कुंभन ४ कृष्णदास ५ नंददास, ६ चतुर्भुजदास, ७ छीतस्वामी ८ गोविंदस्वामी।

Raghunath, Paliwal Nathdwara

(५) छीतस्वामी

अब श्रीगुसांईजी के सेवक छीतस्वामी, मथुरिया चोबे, अष्टछाप में जिनके पद गाइयत है, तिनकी वार्ता–

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ये छीतस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'सुबल' सखा, तिनको आधिदैविक मूल प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये स्वरूप 'सुबल' सखा हैं, और रात्रि की लीला में 'पद्मा' हैं। सो पद्माको श्रीचंद्रावलीजी ऊपर बहुत ही आसक्ति है, सो इहां हू छीतस्वामी को श्रीगुसांईजीपे बहुत ही भरभाव है।

वार्ता प्रसंग–१

सो वे छीतस्वामी मथुरिया चोबे हते। तिनसों सब कोउ 'छीतू' कहते। सो सब मथुरा में पांच चोबे सिरनाम हते। पांचनहू में छीतू बड़े सिरनाम हे।

सो वे स्त्रीन कों देखते, उनसों मस्करी करते। सो एक दिन उन पांचों चोबेननें मिलिके विचार कियो जो– भाई! गोकुल के गुसांई टोंना टामन बहुत करत हैं। जो कोउ उनके पास जात है, सो उनके वस होय जात है। चलो जो– उन कों देखिये, जो वे कैसे टोंना करत हैं!

सो वे पांचो आपुस में मित्र हते, परि वे गुंडा हते।

तब उन पांचोंननें मिलिके एक खोटो रुपिया लियो, और एक थोथो नारीयल लियो, तामें राख भरी। और यह बिचार कियो जो–भाई! गोकुल जायके श्रीगुसांईजी सों आपुन कुटिल विद्या करिये।

तब उन चारोंन सों छीतूने कही जो– सगरेन के पहिले मैं जायके अपनी कुटिल विद्या करि आउं, ता पाछे तुम जइयो। तब विन चोबेननें कही जो– आछी बात है। तब छीतूने कुटिल विद्या को ठाठ ठठ्यो। सो वा थोथे नारियल कों गांठि में बांधिके और वह खोटो रुपैया लेके पांचो जनें मथुरा तें चले, सो नाव में बैठिके श्रीगोकुल में आये। तब छीतस्वामीने कही जो–तुम तो सब बाहिर रहो, बेठो। और मैं भीतर जात हों, जायके उनके टोंना टमना देखों, पाछें तुम भीतर आइयो।

सो छीतू तो थोथो नारियल लेके अरु खोटो रुपैया लेके भीतर गये, और साथ के चोबे तो बाहिर रहे। सो उत्थापन के समे पहिले श्रीगुसांईजी पोंढ़िके उठे हते। सो गादी ऊपर बिराजे हते, हाथ में पुस्तक हतो सो देखत हते।

ता समें छीतस्वामी आये। सो श्रीगुसांईजी कों देखे तो श्रीगिरधारीजी होयके बैठे हैं। तब तो ये मन में पश्चात्ताप करन लागे। (क्यों जो) मैं तो इनसों मसकरी करन आयो हो। सो ए तो साक्षात् पूरण पुरुषोत्तम हैं, ये ईश्वर हैं। मोकों धिक्कार है, जो–मैं ईश्वर सों कुटिल विद्या करन कों आयो।

या भांति सों सोच करत रहे। पाछें छीतस्वामी वह नारीयल लाये हते सो दुबकायके श्रीगुसांईजी सों दंडवत करी।

सो इतने में छीतस्वामी सों श्रीगुसांईजी बोले जो- छीतस्वामी ! तुम नीके हो ? आवो, तुम तो बहोत दिनन में दीखे हो। तब छीतस्वामीने हाथ जोडिके बिनती कीनी जो- महाराज ! हम आपके हैं। एसे कहिके साष्टांग दंडवत करी। और श्रीगुसांईजी सों फेरि बिनती कीनी जो- महाराज ! मोकों आपकी शरण लीजे, अब तो आप मेरो अंगीकार करोगे।

तब श्रीगुसांईजीनें छीतस्वामी सों कह्यो जो- तुम तो चोबे हो, हमारे पूजनीक हो। तुमकों तो सब आपहीतें सिद्ध है। तुम हमकों दंडवत काहेको करत हो ? और एसे कहा कहत हो ?

तब छीतस्वामीने फेरि हाथ जोरिके बिनती करी जो- महाराज ! मेरो अपराध क्षमा करो। और मोकों शरण लीजे। हम नांहि जानत जो- कोन अपराधतें स्वामी भये हैं। हमारे अब भाग्य खुले हैं जो- आप के दरशन पाये। अब एसी कृपा करो जो- स्वामित्व छूटे। जो आपके दास कहायवे की इच्छा है। और मनकी कुटिलता तो बहोत हुती, परि आपके दरशन करत ही सब कुटिलता दूरि भाजि गई। तातें अब हौं, आप के हाथ बिकानो हों, तातें अब तो आप जो चाहो सोई करो। आप तो दाता हो, प्रभु हो, दीनानाथ हो, दयासिंधु हो। या जीव की ओर प्रभुन

को कहा देखनो? तातें महाराज! अब मोकों आपको ही करि जानिये, आपुनो सेवक करिये।

तब छीतस्वामी को शुद्ध भाव जानिके श्रीगुसांईजी तो परम दयालु हैं, सो आप कृपा करिके कहे जो– छीतस्वामी! आगे आवो। तब ये दंडवत करिके आगे आय बैठे। ताही समे श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों नाम सुनायो। ता समे छीतस्वामीने यह पद गायो—

'भई अब गिरधरसों पहिचान–
कपटरूप धरि छलिवे आयो, पुरुषोत्तम नहिं जान ॥ १ ॥
छोटो बड़ो कछू नहिं जान्यो, छाय रह्यो अज्ञान।
छीतस्वामी देखत अपनायो, श्रीविट्ठल कृपानिधान' ॥ २ ॥

तब तो और वे चारो जने, जो बाहिर ठाड़े हते, वे आपुस में विचार करन लागे जो–भाई! छीतू कों तो टोना लग्यो, जो अब आपुन रहेंगे तो आपुनहू कों टोना लगेगो, तातें अब इहां ते भाजो। सो वे चारो जनें उहां तें भाजे सो मथुराजी में आये।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो जो–तुम हमारी भेट लाये हो सो लावो। तब छीतस्वामी अपने मनमें विचारे जो–नारियल रुपैया तो खोटो है, सो भेट कैसे धरों? पाछें विचारे जो– भंडार में पर्यो रहेगो, कहा मालुम होयगो, जो कहांते आयो है?

और फेरि आपु कहे श्रीमुख त जो– छीतस्वामी! भेट को नारियल लाये हो, सो तुम काहेको दुक्काये हो?

तब तो छीतस्वामी को मुख मुकाय गयो, और यह विचार्यो जो– यह तो प्रभु हैं। मैं नारियल लायो, सो जान गये तो नारियल की क्रिया क्यों न जाने होंयगे?

तब श्रीगुसांईजीसों छीतस्वामीनें वीनती करी जो– महाराज! आप तो सब मेरो कृत्य जानत हो! सो वह बात तो मेरी अब छानी राखो। तब श्रीगुसांईजी नें कही जो– छीतस्वामी! तुमारो जस तो जगत में विख्यात है। तुम कछु अपने मन में संदेह मत करो, तुम तो अब हमारे हो। तातें डरपत क्यों हो? वह नारियल ले आवो।

तब छीतस्वामी तो सोच करत रहे। और श्रीगुसांईजीने हरिदास खवास सों आज्ञा करी जो– हरिदास! इनकी गांठिमें सों वह नारियल है सो खोलि लाऊ। सो श्रीगुसांईजी की आज्ञा मानिके हरिदासने वह नारियल और खोटो रुपैया छीतस्वामीं की गांठिमें ते लेकें श्रीगुसांईजी की आगे धर्यो।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने हरिदास खवास सों कह्यो जो– आधो नारियल तो इन छीतस्वामी कों देउ। तब हरिदास खवासने वा नारीयल की गरी की दोय फाड़ करी, सो एक फाड़ तो छीतस्वामीकों दीनी, और एक फाडमें तें रंचक २ सबन कों बाँट दीनी।

इतने में श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों आज्ञा दीनी जो–छीतस्वामी! तुमारे साथके जो चारों जने हैं तिनकों यामें तें थोरी २ बांटि दीजो। तब छीतस्वामीनें दंडवत करिके वह गठरी में बांधि राखी।

सो एसी कृपा श्रीगुसांईजी की देखिके छीतस्वामी मनमें विचारे जो–मैं संसार–समुद्र में बह्यो जात हतो, सो मोकों बांह पकरिके काढ़े। और मेरे मनमें खोटे नारीयल को और खोटे रुपिया को पश्चात्ताप हतो सोउ ताप मेरो दूरि कर्‌यो। जो मो पर तो श्रीगुसांईजीने बड़ी कृपा करी।

पाछे छीतस्वामीने प्रसन्न होयके एक नयो पद ता समे बनायो। सो पद–

'हौं चरणातपत्र की छैयां।
कृपासिंधु श्रीवल्लभनंदन बह्यो जात राख्यो गहि बहियां॥
नव नख शरद चन्द्रमा मंडल ×त्रिविध ताप मेटत छिन महियां।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल सुजस बखान सकत श्रुति नहियां'॥

यह कीर्तन वाही समे श्रीगुसांईजी के आगे छीतस्वामीने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये।

तब छीतस्वामीने दंडवत करिके कही जो– महाराज! आप तो प्रभु हो। आप को श्रुति जो वेद है सोउ पार पावत नांही, तो और की कहा सामर्थ्य है? जो आप को जस गान करे।

× नव नखचन्द्र सरद राकाससि हरत ताप सुमिरत मन महियां। एसाभी पाठ है।

ता पाछे संध्यार्ति को समय भयो। तब श्रीगुसांईजी छीतस्वामी सों कहे जो– जाओ दर्शन करो। तब छीतस्वामी मंदिर में जायके तिवारी में तें श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन किये। तब देखे तो मंदिर में श्रीगुसांईजी ठाड़े हैं। तब छीत-स्वामी मन में कहे जो– श्रीगुसांईजी कों तो मैं बेठक में छोड़ आयो हतो और ये मंदिर में कहांते ठाड़े हैं? बहुरि मन में कहे जो– भीतर और राह होयगी, ता राह पावधारे होंयगे।

ता पाछे आरती के दरशन करिके छीतस्वामी बाहर आये। तहां देखे–तो श्रीगुसांईजी गादी ऊपर बिराजे हैं। तब तो छीतस्वामी कों बड़ो आश्चर्य भयो, परि ठीक न परी। ता पाछे सेन आरती भई। तब छीतस्वामी कों महा-प्रसाद लिवाये पाछे श्रीगुसांईजीने आज्ञा करी जो– सवारे ही तुम श्रीगिरिराज जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करि आवो।

तब छीतस्वामी रात में तो सोय रहे। प्रातःकाल होत ही सातों स्वरूपन के मंगला के दरशन करिके श्रीगुसांईजी के दरशन किये, पाछे श्रीयमुनाजी उतरिके मूधे ही श्रीगिरिराज कों चले, सो राजभोग के समय जाय पहोंचे। श्रीगोवर्द्धन-नाथजीके राजभोग आरती के दरशन किये। तब देखे–तो उहां श्रीगुसांईजी ठाड़े हैं, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास ही देखे। तब छीतस्वामी मन में विचारे जो– श्रीगुसांईजी कब पधारे हैं?

ता पाछे छीतस्वामी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करि के नीचे उतरे। तब उहां लोगन तें पूछे जो- श्रीगुसांईजी इहां कब पधारे हैं? तब उन सेवकनने कही जो- श्रीगुसांईजी तो श्रीगोकुल में हैं, इहां तो नांही पधारे हैं।

तब छीतस्वामी मन में विचारे जो-मैं तो श्रीगुसांईजी कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास ही देखे हैं, और काल हू श्री-नवनीतप्रियजी के पास ही ठाड़े देखे हैं। और बेठक हू में बिराजे देखे सो सब ठोर येही दरशन देत हैं, तातें ये ईश्वर हैं।

यह विचारिके छीतस्वामी श्रीगोकुल की सुरति बांधि चले, सो उत्थापन भोग के समय श्रीगोकुल आय पहुंचे। श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में गादी ऊपर बिराजे तब छीत-स्वामीनें आयके दंडवत कीनी। तब श्रीगुसांईजीने पूछी जो-छीतस्वामी! तुम श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करि आये? तब छीतस्वामीने कही जो-महाराज! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन किये, और उनके पास ठाड़े आपहू के दरशन किये। तब श्रीगुसांईजी मुसिकाये।

तब छीतस्वामीने अपने मनमें विचारि यह निश्चय कियो जो- श्रीगोवर्द्धननाथजी को और श्रीगुसांईजी को स्वरूप एक है। यह जानिके ताही समें छीतस्वामीने यह पद करिके गायो। सो पद-राग सारंग।

'जे वसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्रीवल्लभदेव।
जे गोपाल हुते गोकुल में सोई अब आनि बसे निज गेह॥

जे वे गोपवधू ही व्रजमें सो अब वेदऋचा भई येह ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल तेई एई एई तेई कछु न संदेह ॥'

यह कीर्तन सुनिके श्रीगुसांईजी वहोत ही प्रसन्न भये ।

पाछे श्रीगुसांईजीने सेन आरती उपरांत वाहू दिन छीतस्वामी कों अपने यहां महाप्रसाद लिवायो ।

ता पाछे तीसरे दिन छीतस्वामी देहकृत्य करि श्रीजमुनाजी में स्नान करिके अपरसहीमें आय श्रीगुसांईजी के आगे हाथ जोरिके ठाड़े भये । और श्रीगुसांईजी सों बिनती करी जो–महाराज! मोकों कृपा करिके समर्पन करावो ।

तब श्रीगुसांईजीने श्रीनवनीतप्रियजी के आगे समर्पण करवायो । ता पाछे छीतस्वामीनें बिनती कीनी जो–महाराज! आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊं । तब श्रीगुसांईजी आपु आज्ञा किये जो–राजभोग आरती के दरशन करिके पाछें तुमकों बिदा करेंगे ।

ता पाछे राजभोग आरती भई । पाछे श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में अपरस ही में बिराजे, तब छीतस्वामीने आयके दंडवत करी। पाछे बिनती करी जो–महाराज! आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊं। तब श्रीगुसांईजी कहे जो–महाप्रसाद लेके अपने घर जइयो ।

ता पाछें श्रीगुसांईजी सब बालकन सहित आपु भोजन कों पधारे । सो छीतस्वामी कों अपने श्रीहस्त सों पातर धरी। ता पाछे आपु भोजन कों पधारे। पाछे जब भोजन

करिके आचमन लेके श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में बिराजे। तब छीतस्वामी हू आचमन करिके श्रीगुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों महाप्रसादी बीड़ा दिये। और कह्यो जो– छीतस्वामी! अब तुम अपने घर जाओ।

तब श्रीगुसांईजी कों छीतस्वामी दंडवत करके चले सो मथुरा आये। तब वे चारों कुटिल हते, सो छीतस्वामी सों मिले। तब उन(ने) छीतस्वामी सों पूंछी जो– तुमने उहां कहा कियो? और हम तो जब ही जान्यो जो– तुमकों टोंना लग्यो। तब छीतस्वामीनें कह्यो जो– अब तो में श्रीगुसांईजी को सेवक भयो, तातें अब तो मैं तुमारे काम तें गयो।

यह बात छीतस्वामी की उन चारों जनेनने सुनी। ता पाछे वे चुप होय रहे।

तातें श्रीगुसांईजी को एसो प्रताप हैं। सो वे श्रीगुसांईजी की कृपा तें बड़े कवीश्वर भये, सो बहुत कीर्तन किये। सो वे छीतस्वामी एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–२

और एक समें छीतस्वामी बीरबल के घर गये। छीतस्वामी बीरबल के प्रोहित हते। सो अपनी बरसोंड लेवे कों गये हते।

सो बीरबलने अपने घरमें रहवे को स्थल दियो, सो छीत-स्वामी तहां रहे। सो पिछली घड़ी एक रात्रि रही, तब छीत-स्वामी उठिके प्रभुनको नाम लेके एक पद गायो। सो पद–

राग देवगंधार–

जै जै श्रीवल्लभराजकुमार ।

परमानंद कपट खंडन करि सकल वेद उद्वार० ॥

× × ×

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रकट कृष्ण अवतार ॥

यह छीतस्वामीने गायो, सो बीरबलने सुन्यो। सो बीरबल कों आछी न लागी। (और) मनमें कह्यो जो– देखो इन (ने) कहा बरनन कियो है? परि बीरबलने छीतस्वामी सों कछू कह्यो नांही। जो यह बात मनमें धरि राखी।

तापाछे छीतस्वामी उठि देहकृत्य करि श्रीयमुनाजी में स्नान करि, श्रीठाकुरजी कों भोग समरप्यो, ता पाछें भोगसरायके आप प्रसाद लिये।

पाछे बेठे बेठे छीतस्वामी कीर्तन गावत हते 'जे वसुदेव किये पूरण तप०'। तामें छेली कड़ी में कह्यो जो–'छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल येई तेई तेई येई कछू न संदेह'।

यह पद छीतस्वामीने गायो। सो सुनिके बीरबल कों वहोत बुरी लगी। तब तो बीरबलने छीतस्वामी सों कह्यो जो–छीतस्वामी! तुम (ने) अब तो यह पद गाये 'येई तेई तेई येई कछु न संदेह' और सवारे गाये जो 'प्रकट कृष्ण अवतार' सो यह तुमने गायो सो देशाधिपति म्लेच्छ है, जो–यह सुन पावेगो तो तुम कहा जुवाब दोगे?

तब बीरबलसों छीतस्वामीने कही जो–मोसों देशाधिपति पूछेगो तब मैं जुवाब दऊंगो। परि अब तो मेरे भाये तुई

म्लेच्छ है। (क्यों) जो– तेरे मनमें यह दुर्बुद्धि उपजी। तातें मैं तो आज तें तेरो मुंह न देखूंगो। एसे बीरबल को तिरस्कार करिके उहां तें छीतस्वामी श्रीगोकुल में श्रीगुसांईजी के पास आये।

सो यह बात देशाधिपति सों जायके हलकारे ने कही जो–साहिब! बीरबल का प्रोहित मथुरासे आया था, सो किसी बात के ऊपर बीरबल से रूठकर गया है।

एसे सब समाचार विस्तार सों देशाधिपति के आगे हलकारे ने कहे। ता पाछे जब बीरबल दरबारमें आयो तब देशाधिपतिने कह्यो जो– बीरबल! तेरा प्रोहित तुझ से क्यों रूठ गया है'। तब बीरबल ने देशाधिपति सों कही जो– साहिब! ब्राह्मण एसेही होते हैं। जो सहजकी बात ऊपर रूठ जाते हैं।

तब देशाधिपतिने बीरबल सों कह्यो जो–बात तो कहो क्या थी? तब बीरबलने कही जो–साहिब उन्होने दो पद दीक्षितजी के गाये थे। सो मैंने इतना कहा कि–जब देशाधिपति सुन पावेंगे तब क्या जवाब दोगे? इस पर वे रूठ गये।

तब देशाधिपतिने बीरबल सों कही जो–बीरबल! तेरे प्रोहित ने झूठ क्या कहा? तुझे उस बातकी सुधी आती है, जो मैं नावड़े में बैठा जाता था, सो नावड़ा गोकुल के नीचे जा निकला, उस समय दीक्षितजी वहां घाटके ऊपर बैठे थे। तब दीक्षितजीने मुझे आसीरवाद दिया। मेरे पास मणि थी जिससे पांच तोला सोना नित्य होता था, वह मणि मैने दीक्षितजी को दी।

सो दीक्षितजीने वह मणि हाथमें ले कर मुझसे पूछा जो–तुमने मणि हमको दी ? एसे तीन बार पूछा, तब मैंने तीन बार कहा, जो–मणि दी। तब दीक्षितजीने वह मणि लेकर जमनामें डाल दी।तब मैं फिर बैठा (और कहा) जो–मेरी मणि मुझे पीछे दो। तब दीक्षितजीने यमुना में हाथ डाल के दोनों हाथ की अंजलि भर कर मणि लाकर मुझे दी। और कहा जो– इन में तुम्हारी मणि होय सो काढ़ लो। जब मैंने न ली, तब फिर मुझे तीन बेर पूछा जो–अब तो फेर न लोगे ? तब मैने तीन बार नांही की। तब तो दीक्षितजीने अंजलि भरी की भरी मणि फिर यमुनामें डाल दी। जो बीरबल! यह बात तो तू भूल गया। सो यह बात ईश्वर की कृपा विना नहीं होती। इससे तुमको एसा संदेह न करना चाहिये। जो तुमने अपने मोहित से एसा कहा, सो दीक्षितजी तो साक्षात ईश्वर हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं।

या भांति सों देसाधिपतिने बीरबल सों कह्यो, सो सुनिके बीरबल चुप होय रह्यो, जो– कहा उत्तर देय ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तातें गुसांईजी को एसो प्रताप है। जो–देसाधिपति म्लेच्छ है सोऊ जानत हैं, जो–श्रीगुसांईजी तो साक्षात् ईश्वर हैं। और बीरबल तो बहिर्मुख है। तातें श्रीगुसांईजी के स्वरूप को ज्ञान नांही है। श्रीगुसांईजी कबहुं २ कहते जो– बीरबल तो बहिर्मुख है।

सो वे छीतस्वामी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–३

और जब बीरबल को तिरस्कार करिके छीतस्वामी श्रीगोकुल आये, ता दिन श्रीगुसांईजी, श्रीगिरधरजी श्रीनाथजीद्वार हते। सो जब छीतस्वामी आये सो बात श्रीगुसांईजीने सुनी, जो– छीतस्वामी या प्रकार अपनी वृत्ति छोड़िके श्रीगोकुल आये हैं, बैठें है। और यह हू बात श्रीगुसांईजीने पहले ही सुनी (हती) जो–छीतस्वामी बीरबल के पास बरसोंड़ लेवे कों गये हते, सो अब या तरह सों बीरबल को तिरस्कार करिके छोड़ि आये हैं।

सो तहां श्रीनाथजीद्वार में श्रीगोवर्द्धननाथजी के तथा श्रीगुसांईजी के दरशन कों दूर के वैष्णव जो आये हे, तिनसों श्रीगुसांईजी ने कह्यो जो– तुमारे पास मैं छीतस्वामी कों पठावत हों, सो तुम इनकी भली भांति सों सेवा कीजो।

ता पाछे वैष्णव तो श्रीगुसांईजी सों विदा होयके अपने देस कों चले।

ता पाछे बीरबल सों रिसायके छीतस्वामी श्रीगोकुल आये हते, सो उहां श्रीगुसांईजी के दरसन श्रीगोकुल में न पाये, तब दोय चार दिन तांई रहिके फेरि छीतस्वामी तरहटी में आये, श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन किये। सो अपने मनमें बहोत आनंद पाये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धननाथजी को अनोसर

करवायके पर्वत तें नीचे उतरे, सो अपनी बेठक में बिराजे। तब श्रीगुसांईजी की आगे आयके छीतस्वामीने सब समाचार विस्तार पूर्वक वीरबल के कहे। तब श्रीगुसांईजी छीतस्वामी के वचन सुनिके बहोत प्रसन्न भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने लाहोर के जो वैष्णव आये हते, तिनकों एक पत्र लिख्यो अपने श्रीहस्त सों, 'जो–ए छीतस्वामी (को) हमने तुमारे पास पठाये हैं सो इनकी टहल तुम आछी भांति सों कीजो'।

सो वह पत्र श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों दियो, और कह्यो जो– छीतस्वामी! तुम लाहोर जावो। तब छीतस्वामीने कही जो महाराज! मैं लाहोर जायके कहा करूंगा? तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो, जो–मैंने उन सब वैष्णवन सों कही है, सो वैष्णव तुमारी बिदा आछी तरह सों करेंगे।

तब श्रीगुसांईजी के वचन सुनिके छीतस्वामीने यह पद गायो। सो पद–

राग नट–हम तो श्रीविठ्ठलनाथ उपासी।
सदा सेवों श्रीवल्लभ–नंदन कहा करों जाय कासी॥
छांडि नाथ जो और रुचि उपजत सो कहियत अवुरासी।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल बानी निगम प्रकासी॥

जो यह पद छीतस्वामीने गायो। सो सुनिके श्रीगुसांईजी (ने) छीतस्वामी के हृदयकी जानी जो– एतो कहूं जानहार नांही हैं।

तब छीतस्वामीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज! मैं वैष्णव भयो सो कछु वैष्णव के पास तें भीख मांगन कों नांही भयो। और बीरबल पें तो मेरी बरसोंड़ हती सो मैं वाको मुंह तोड़िके लेतो। परि महाराज! वाने तो म्लेच्छ बुद्धि को जुवाब दियो, तातें मैं यहाँ उठि आयो। जो महाराज! मेरे तो राज के चरणकमल छांड़िके कछु काम नांही, और कहूं न जाऊंगो। और अब कहा एसे कर्म करूंगो, जो वैष्णव होयके कहा भीख मागूंगो?

सो छीतस्वामी के बचन सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये, और कह्यो जो– वैष्णव को यही धर्म है, जो– एसे ही चाहिये।

ता पाछें श्रीगुसांईजीने वह पत्र लाहोर के वैष्णवनकों लिख पठायो जो– छीतस्वामी तो इहां ते आय सकत नांही है, तासों यह ब्राह्मण गरीब है। जो तुमतें याकी टहल बनि आवे तो इहां ही मनुष्य के हाथ हुंडी कराय पठाय दीजो। सो वह पत्र श्रीगुसांईजी को एक मनुष्य लाहोर ले जायके उन वैष्णवन कों दियो। तब उन वैष्णवनने वह पत्र बांचिके रूपिया १००) की हुंडी करायके पठाई। और उन वैष्णवननें श्रीगुसांईजी को यह पत्र वीनती को लिख्यो, जो– महाराज! इतनी हुंडी तो हम वर्ष पर्यंत पठावेंगे, आपकी हुंडी के साथ इनकी हुंडी पठावेंगे सदा।

सो पत्र श्रीगुसांईजी के पास आयो, तब बांचिके श्री-

गुसांईजीनें वा पत्र के समाचार सब छीतस्वामी सों कहे। तब छीतस्वामी अपने मनमें बहोत प्रसन्न भये, और श्रीगुसांईजी हू उन वैष्णवन पर बहोत प्रसन्न भये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तातें छीतस्वामी उन बीरबल को त्याग करिके श्रीगुसांईजी को जस बढ़ायो। तो आपुने हू बीरबल की वरसोंड़ जितनो छीतस्वामी कों करय दीनो। तातें वैष्णवन कों तो दृढ विश्वास राखनो श्री गोवर्द्धननाथजी की ऊपर। जो विश्वास राखे तो प्रभु वाकी क्यों न खबर राखें? तातें वैष्णवन कों तो एसो अनन्यता राखी चहिये। और छीतस्वामी जो श्रीगुसांईजी की आज्ञा मानिके लाहोर जाते, तो एकही वार द्रव्य लावते। परि आगे कहा करते? सो उन छीतस्वामीने जो विश्वास राख्यो, तो जनम भरिके द्रव्य और ठोर जाचनो न पड्यो।

तातें या जीवकों एसो एक प्रभुन को आश्रय राखनो। एक आश्रय श्रीवल्लभाधीश को करनो जातें सब फल की प्राप्ति होय।

पाछे वे लाहोर के वैष्णव छीतस्वामी कों प्रतिवर्ष श्रीगुसांईजी की हुंडी के साथ न्यारी हुंडी पठावते, सो वे वैष्णव हू श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र हते। और छीतस्वामी हू श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये। सो उनकी वार्ता कहां तांई लिखिये।

(६) गोविन्दस्वामी

अब श्रीगुसांईजी के सेवक गोविंदस्वामी सनोढ़िया ब्राह्मण, महावनमें रहते तिनकी वार्ता–

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश–

ये गोविंदस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'श्रीदामा' सखा तिनकों

आधिदैविक प्राकट्य हैं। सो दिवसकी लीला में तो ये श्रीदामा

मूलस्वरूप सखा हैं, और रात्रि की लीला में ये 'भामा' सखी है, श्रीचंद्रावलीजी की। ताते यहां हू ये श्रीगुसांईजी के स्वरूप में आसक्त है।

वार्ता प्रसंग–१

सो वे प्रथम आंतरी गाममें रहते। तहां वे स्वामी कहावते, सो वे सेवक करते। परि गोविंदस्वामी परम भगवदीय हते। सो वे गोविंदस्वामी आंतरी में ते व्रज आये। तब महावनमें रहे, जो– यह व्रजधाम है। इहां श्रीभगवान के चरणारविंद की प्राप्ति केस न होइगी ?

सो गोविंदस्वामी कवीश्वर हते, सो आप पद करते। जो कोई इनके पद सीखिके श्रीगुसांईजी के आगे गावतो, ताकों श्रीगुसांईजी प्रसाद दिवावते, और बहोत प्रसन्न होते। सो वे गावनहारे गोविंदस्वामी के आगे जायके

कहते, जो–तुमारे किये पद हम श्रीगोकुल के गुसांईजी के आगे गावत हैं, सोवे वहुत प्रसन्न होत हैं, और हमकों प्रसाद दिवावत हैं। तातें तुम अपने किये पद हमकों और सिखावो।

सो यह सुनिके गोविंदस्वामी अपने मनमें कहते जो–जो कछु है, सो श्रीगोकुल है, और श्रीगोकुल के गुसांईजी है। परि मिलनो बनत नांहि।

सो एसे करत करत कितनेक दिन भये तब एक समे कोऊ एक श्रीगुसांईजी को सेवक कछु कार्यार्थ श्रीवृन्दावन में जाय निकस्यो। सो भगवदिच्छा सों गोविंदस्वामी को मिलाप भयो। गोविंदस्वामी और वह वैष्णव एकांत ठौर में बेठे हते, तहां कोई वार्ता के प्रसंग में गोविंदस्वामीने कह्यो जो–श्रीठाकुरजी की साक्षात् लीला कैसे जानि परे?

तब वा वैष्णव नें कह्यो जो–पाछे कहूंगो। तब गोविंदस्वामीने वा वैष्णवसों कह्यो जो–मोकों बहुत दिनन तें या बातकी आतुरता है, और तुम कहत हो जो–काल कहूंगो। जो याहूतें फेर एकांत कहां मिलेगी। तातें मेरे ऊपर कृपा करिके अबही कहो।

तब वा वैष्णवनें गोविंदस्वामी की बहुत आतुरता देखिके उनतें कह्यो जो–आज के समे तो श्रीठाकुरजी कों श्रीगुसांईजी श्रीविठ्ठलनाथजी नें वस करि राखे हैं। तातें श्रीठाकुरजी के चरणारविंद की प्राप्ति पाईये तो इनही तें पाइये, और को आश्रय करनो वृथा है।

सो यह बात सुनिके गोविंदस्वामीकों अत्यंत आतुरता भई, और अति उत्साह भयो। तब तो गोविंदस्वामीने उन वैष्णव सों कह्यो जो–तुम मेरे साथ चलो। तब रात्रि तो उहांई सोय रहे। पाछे प्रातःकाल भयो। तब तहांतें दोऊ जने चले सो श्रीगोकुल आये। ता समें श्रीगुसांईजी श्रीठाकुरजी कों राजभोग धरिके श्रीयमुनाजी पे संध्यावंदन करत हे। सो ताही समय ये आय पहुँचे।

तब वा वैष्णवन कही जो–श्रीगुसांईजी यही हैं। तब देखि के गोविंदस्वामी के मन में आई जो–ये कोई बड़े कर्मेष्ट हैं। कर्मकांड करत हैं, इनकों श्रीठाकुरजी क्यों कर मिलत होंयगे। एसे चित्त में सोच विचार करन लागे।

इतने में श्रीगुसांईजी संध्यावंदन तर्पण करि चुके। तब श्रीगुसांईजीनें कह्यो जो– गोविंददास ! कब आये ? तब इन (ने) कही जो प्रभु ! अब ही आयो हों।

ता पाछे श्रीगुसांईजी उहांतें मंदिरमे पधारे. सो साथ गोविंदस्वामी हू चले। पर गोविंदस्वामी अपने मनमें बिचार करत हुते, जो इन (ने) मोकों कबहू देख्यो नांही, जो इन (नें) मोकों केसें पहिचान्यो। ताते कछुक कारण दीसत है।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तो जाइके मंदिरमें भोग सराये। ता पाछे दरशन के किंवाड खुले। तब गोविंदस्वामीनें राजभोग आरती के दरशन किये। सो साक्षात् बाललीला

रसमय रसात्मक स्वरूपको दरशन कराये। ता समे श्रीगुसांईजी ने गोविंददास को यह दान किये।

ता पाछें श्रीगुसांईजी बाहिर आये। तब गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी, जो-महाराज! आप तो कपटरूप दिखावत हो। और आप के यहां तो साक्षात् प्रभु बिराजत हैं। (और) बाहिर तो वेदोक्त कर्म करत हो।

तब श्रीगुसांईजीने गोविंदस्वामी सों कह्यो, जो-भक्तिमार्ग है, सो तो फूलरूपी है, और कर्ममार्ग कांटारूपी है।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो फूल तो रक्षा बिना फूले न रहे। तातें वेदोक्त कर्ममार्ग है सो भक्तिरूपी फूलन कों कांटेनकी बाड़ है। तातें कर्ममार्ग की बाड़ बिना भक्तिरूपी फूल को जतन न होय, तब जतन बिना फूल हु न रहें। तातें यह वस्तु है सो गोप्य है। तातें प्रकट प्रमाण त्यौंही है।

तब ये वचन सुनिके गोविंदस्वामी बहोत प्रसन्न भये। तब गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजी सों फेरि बिनती कीनी जो-महाराज! कृपा करिये।

तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो-तू स्नान करि आव। तब गोविंदस्वामी तत्काल स्नान करिके अपरस ही में आये। तब श्रीगुसांईजी ने इन ऊपर कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे समर्पन करवायो। पाछें अनोसर कराय। श्रीगुसांईजी तो भोजन कों पधारे। तब गोविंदस्वामी कोहू महाप्रसादकी पातर श्रीगुसांई-

जीने अपने श्रीहस्तसों धरी। पाछे प्रसाद लेके गोविंदस्वामीं
आचमन करके श्रीगुसांईजी कों दंडवत करी।

ता पाछे गोविंदस्वामी श्रीगोकुल ही में आय रहे
सो वे गोविंदस्वामी पे श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। इ
ऊपर बहुत कृपा करते। सो गोविंदस्वामी एसे कृपापा
भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग—२

सो पहिले गोविंदस्वामी आंतरी में सेवक करते. सो
उहां गोविंदस्वामी कहावते। आंतरी में इनके सेवक बहोत
हते। एक समे आंतरी के लोग श्रीगोकुल में आये।
सो गोविंदस्वामी जसोदाघाट के ऊपर वेठे हते। सो उन
सुनी ही जो- गोविंदस्वामी श्रीगोकुल में रहे हैं। सो सुनि
के नाम पायवे के लिये आये हे। तब उन लोगनने पूछी
जो—गोविंदस्वामी कहां रहत है?

तब वे लोग पूछत २ गोविंदस्वामी के घर आये। तब
गोविंदस्वामी की बहिन कान्हबाईने कही जो—गोविंददास तो
स्नान करन कों गये हैं। तब वे लोग जसोदाघाट पे आये,
गोविंददास सों पूछी जो—गोविन्दस्वामी कहां है? तब
गोविन्ददास ने कही जो—वे तो मरे बहोत दिन भये। तब
वे लोग फेर घर आये। इतने में गोविंददास हू घर आये।
तब उन लोगनने उनकों पहिचाने, जो इन तो हमसों एसे
कही जो—वे ता मरे। सो एतो आप ही हैं।

तब उन लोगन सों कही जो-स्वामी ! तुम हमसों यों क्यों कहे जो-वे तो मरे। तब उन गोविंददास ने कही जो-मरे नांही तो अब मरेंगे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

जो या भांति सों गोविंददासजीने कही, ताको कारन कहा ? (क्यों) जो भगवदीय कों मिथ्या न बोलनो। ताको हेतु यह जो- उन लोगनने तो इनसों पूंछ्यो सो- गोविंदस्वामी कहि के पूछ्यो। तासों इन (ने) कही जो-वे स्वामी तो मरे। (क्यों) जो अब तो हम 'दास' हैं।

पाछे गोविंददासने कही जो- तुम अब श्रीगुसांईजी के पास नाम पावो। तब उनने कही जो-हमकों श्रीगुसांईजी की पास ले चलो तब उन लोगन कों गोविंददास अपने साथ ले जायके श्रीगुसांईजी की पास नाम दिवायो। तब वे लोग दिन चार श्रीगोकुल रहिके पाछे आंतरी कों गये। सो वे गोविंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-२

और गोविंददास श्रीजमुनाजी में कबहूं न्हाते नांहीं, पांव हू श्रीयमुनाजी में बुड़ावते नांही, कूप के जलसों स्नान करते, श्रीजमुनाजी की रेती में लोटते, अंजुली भरि जल लेते सो पी जाते, और आचमन हू न करते। जो- उनको श्रीजमुनाजी पर एसो भाव हतो। श्रीजमुनाजी कों साक्षात् स्वामिनी को स्वरूप जानते। और यह कहते जो-यह अप्र-योजक सरीर यामें मैं कैसे करि डारों। एसे श्री यमुनाजी को

स्वरुप अगाध भाव संयुक्त है, ताको विचार करते। सो वे गोविंददास एसे भावसंपन्न हते।

सो एक दिन श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी ए दोऊ भाई श्रीयमुनाजी में स्नान करत हते। ता समे श्रीजमुनाजी के तीर गोविंददास ठाड़े हते। तब श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी दोऊ भाई आपुस में विचार करन लागे, जो–आज तो गोविंददास कों श्रीजमुना में स्नान कराइये। सो इन दोऊ भाई गोविंददास कों पकरिके श्रीजमुनाजी में ले जान लागे। तब गोविंददास ने कह्यो जो–महाराज ! माकों श्रीयमुनाजी में मति डारो, मोकों श्रीयमुनाजी में डारोगे तो मेरो दोष नांही है, आप जानो। ये श्रीयमुनाजी हैं, सो साक्षात् श्रीस्वामिनीजी हैं। ये लीलात्मक स्वरूप है। तातें यह मेरो अप्रयोजक सरीर मैं यामें कैसें डारों ?

सो गोविंददासने जब एसें कह्यो, तब इनने उन कों छोड़ि दिये। तब इन दोउ भाईन कों श्रीजमुनाजी के लीलात्मक स्वरूप को ता समय दरसन भयो। तब गोविंददासने कह्यो जो– महाराज ! इहां तो उत्तम तें उत्तम सामग्री होय सो समर्पिये। सो निज स्वरूप जानिके कह्यो।

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-४

और एक समय रात्रि कों श्रीभागवत दसमस्कंध के अष्टादस अध्याय वेणुगीत के अंत के श्लोकको व्याख्यान श्रीगुसांईजी करत हते। सो श्लोक-

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥

सो या श्लोक को व्याख्यान गोविंददास के आगे श्रीगुसांइजी करत हते। सो करत २ अर्द्धरात्रि गई। ता पाछें श्रीगुसांईजी तो आप पोंढ़िवे कों उठे। तब गोविंददास कों आज्ञा दीनी जो- अब तुमही जायके सोय रहो।

तब गोविंददास श्रीगुसांइजी को दंडवत करिकें उठि चले। सो अपनी बेठक में श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी और श्रीगोविंदरायजी बेठे हते, सो आपुस में खेलत हसत हते। और हू वैष्णव पास बेठे हते, सो तहां गोविंददास हू आये।

तब गोविंददास तें श्रीगोकुलनाथजीने पूछी जो-कहो गोविंददास! या विरियां कहां ते आये हो? तब गोविंददासने कही जो-महाराज! श्रीगुसांइजी के पास हो, तहां ते आयो हूं। तब गोविंददास तें श्रीगोकुलनाथजीने कही, उहां कहा प्रसंग होत हतो? तब गोविंददासने कह्यो जो- महाराज! वेणुगीत के अंत के श्लोक को व्याख्यान भयो। तब श्री-

गोकुलनाथजीने गोविंददास तें कह्यो जो– कहा व्याख्यान भयो हो ? तब गोविंददासने कह्यो, जो महाराज ! अपनी वात आपु कहे, ताको कहा कहिये, ताकी पटतर कहा दीजिये ?

तब गोकुलनाथजीने कह्यो जो– श्रीगुसांईजी को स्वरूप गोविंददासने नीके जान्यो है ।

ता पाछे गोविंददास तो अपने घर कों आये । सो वे गोविंददास एसे भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग–९

और एक दिवस श्रीनाथजी और गोविंददास दोउ अप्सरा कुंड के ऊपर साथ ही खेलत हते । सो तहां ते गोविंददास तो श्रीगिरिराज परवत पर आये, तब उहां देखे तो राजभोग आरती होय चुकी है । तब गोविंददासने कही जो–इहां राजभोग कोन ने आरोग्यो है ? श्रीनाथजी तो अबही आवत हैं, एसें कह्यो । तब श्रीगुसांईजीने फेर सामग्री कराइ, और फेर राजभोग धरयो। फेर आरती भई पाछें अनोसर भयो ।

यहां यह संदेह होय जो–श्रीनाथजी तहां हते नांही तो सेवा

श्रीहरिरायजी कृत कोनकी भई ?

भावप्रकाश. तहां कहत हैं जो– श्रीआचार्यजी के पुष्टिमार्ग में श्रीठाकुरजी मर्यादा पुष्टि रीति सों बिराजत हैं। (तोभी) सगरे (सब स्थल में) पुष्टि पुरुषोत्तम के भाव सों सगरी सामग्री आरोगत हैं। सगरी वस्तु वस्त्र आभूषन को अंगीकार करत हैं। और दर्शन देवे में मर्यादा रीति सों

विराजत हैं, बोलत नांहि। सो भगवत्स्वरूप में दोय प्रकार को स्वरूप है। एक भक्तोद्धारक, और एक मर्यादा-पुष्टिरीति सों सब कों दर्शन दे सो सर्वोद्धारक।

भक्तोद्धारक स्वरूप के विषे सब कों दर्शन नांही। सो जहां तांई वैष्णव को प्रेम न होय तहां तांई मर्यादा-पुष्टिरीति सों अंगीकार (और) दर्शन है। भक्तोद्धारक स्वरूप, सर्वोद्धारक मर्यादा-पुष्टिरूप सों सिंहासनपे बिराजिके सब कों दर्शन देत हैं सो स्वरूप में ते बाहर प्रकट होय। सो जहां तरुन, वृद्ध, गाय आदि, जैसो कार्य करनो होय ता प्रकार को रूप करि उह भक्त सों बोलें, अनुभव करावें। तथा मर्यादा-पुष्टि स्वरूप है, उनही के सुख सों बोलें, अनुभव जतावें।

सो यहां भक्तोद्धारक स्वरूप को अनुभव गोविंदस्वामी कों है। और श्रीगुसांईजी ने जो राजभोग धरचो सो श्रीआचार्यजी की मर्यादा अनुसार श्रीनाथजीने सर्वोद्धारक रूप सों आरोग्यो। तोहू गोविंदस्वामी जैसे भक्त के विशेष अनुभव सों श्रीगुसांईजीने फेरि राजभोग धरचो, एसे जाननो।

प्रत्यक्ष अथवा वैष्णव द्वारा विशेष आज्ञा होवे तो भगवत्कृपा भई जाननी। सो यातें श्रीगुसांईजीने हू भगवद् इच्छा समझ करि फेरि राजभोग धरचो।

और गोविंदस्वामी, कुंभनदासजी और गोपीनाथदास ग्वाल ये तीनों जने श्रीनाथजीके एकांत के सखा हैं। श्रीगुसांईजीने इनको सब बात दिखाई ही। सो एकांत के

समे श्रीनाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर खेलते हैं। सो गोविंददास सदैव श्रीनाथजीकी साथ रहते।

सो एक दिन राजभोग को समो हतो तातें श्रीनाथजी राजभोग आरोगवे को पधारे। सो पूछरी की ओर तें आवत हते, गोविंददास साथ हे। सो गोपालदास भीतरिया अप्सरा कुंडते स्नान करिके आवत हते गिरिराज ऊपर, सो उनने देखे।

तब गोपालदासने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो–महाराज! गोविंददास और श्रीगोवर्द्धननाथजी पूछरी की ओर तें आये सो तो मैंने देखे। तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप करि रहे। ता पाछें राजभोग समर्प्यो।

सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के एकांतके एसे सखा है। सो वे श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार में अपनी बेठक में बिराजे हते। ता समय श्रीनाथजी के उत्थापन को समय भयो। सो गोविंददास तो ऊपर दर्शन कों गये। सो जायके देखे तो श्रीनाथजी के पाग के पेच खूट रहे है। सो वा समे श्रीनाथजीने पाग सांधिकर बांधी है।

सो वे गोविंददास पाग आछी बांधत हुते। तब गोविंददासने श्रीनाथजी सों पूंछी जो–महाराज! पाग के पेच क्यों खुलि रहे हैं? तब श्रीनाथजीने गोविंददास सों कह्यो जो–तू पाग के पेच संवार दे।

तब गोविंददास भीतर जायके पाग के पेच संवारे। श्रीगोवर्द्धननाथजी की पाग ढीली, सो संवार दी। इतने में श्रीगुसांईजी ऊपर पधारे। तब भीतरियाने श्रीगुसांईजी तें कही जो– महाराज! गोविंददास श्रीनाथजी कों छुये हैं। (जो) मंदिर के भीतर जाय श्रीनाथजी के पाग के पेच संवारे हैं।

तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप होय रहे, कछु बोले नांही। तब तो भीतरियाने फेरि कही जो– महाराज! अपरस छुइ गई। तब श्रीगुसांईजी ने कही– गोविंददास के छुये तें श्रीनाथजी छुये न जांय, तातें संध्याभोग धरो। या भांति सों श्रीगुसांईजीने आज्ञा दीनी।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

ताको हेतु कहा? जो– अनोसर में श्रीनाथजी गोविंददासजी सों खेलत हैं, लिपटत हैं, ऊपर चढ़त हैं। यातें उन के छुये तें अपरस छुई जाय नांहि। और वैसे हू ब्राह्मण हैं, तातें वेद मर्यादा हू में हानि आवत नांही।

सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और एक समय गोविंददास जगमोहन में ठाड़े २ कीर्तन करत हते। तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोर्विंददास की पीठ में कांकरी की मारी। सो एक बेर दीनी, दोय बेर दीनी। तब गोविंददासने एक बेर अंगुरीनतें फेर के दीनी। तब तो श्रीनाथजी चोंकि उठे। तब श्रीगुसांईजी फिरिके देखे

तो गोविंददास जगमोहन में ठाड़े है, और दूसरो कोऊ नांही है। तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो– गोविंददास! यह तुमने कहा कियो? तब गोविंददासने कही जो– महाराज! "आपनो सो पूत, परायो ढढींगर" मोकों इननें जबतें तीन कांकरी मारी हैं। आप मेरी पीठ तो देखो। पाछे गोविंददासने अपनी पीठ दिखाई। और कह्यो जो– "खेलत में को काको गुसैयां" तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप होय रहे।

ता पाछे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी को शृंगार करन लागे। तब गोविंददास कीर्तन करन लागे।

या भांति गोविंददास सदैव श्रीगोवर्द्धननाथजी के साथ खेलते। सो वे गोविन्ददास श्रीनाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–८

और एक समे वसंत के दिन हते। सो श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी को सेनभोग सरायके बीड़ी आरोगावत हते। और गोविंददास ठाड़े ठाड़े मणिकोठा में कीर्तन करत धमार गावत हते। सो एक नई धमार करिके गावन लागे। सो धमार। राग रायसो–

श्रीगोवर्द्धनराय लाला. × × × × ×

सो याकी तीन तुक करके चुप होय रहे। गोविंददास तें आगे कही न गई। तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो– गोविंददास! धमार क्यों नांही गावत हो? तब गोविंददासने कही जो–

महाराज! धमार तो भाजि गई अरु मन उरझाय गयो। 'अचका अचकी आयके भाजि गिरधर गाल लगाय'। सो वह तो भाजी गये तातें ख्याल उतनो ही रह्यो। जो—महाराज! भाजि गये तो आगे खेल कहांतें होय?

तब श्रीगुसांईजी सुनिके बहुत प्रसन्न भये। ता पाछे सेन आरती करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ायके श्रीगुसांईजी आपु तो नीचे उतरे। ता पाछे धमारि की एक तुक रही हती सो, श्रीगुसांईजीने पूरी करी। सो तुक—इहि विधि होरी खेलिके ....

सो वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते—

वार्ता प्रसंग—९

बहुरि सीतकाल में श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे हते। तब एक समे श्रीगोवर्द्धननाथजी और गोविंद-दास पूछरी की ओर श्यामढांक है, तहां ढांक की नीचे श्रीनाथजी और ग्वालवाल सब मिल के खेलत हैं। सो कबहूं वा ढांक पर चढ़िके मुरली बजावते, सब ग्वालवालन कों बुला-वतें। तहां श्यामढांक तें थोरी सी दूर एक चोंतरा है, तहां गोविंददास बैठे २ कीर्तन करत हते। सो श्रीठाकुरजी श्यामढांक के ऊपर बैठे हतें। गाय सब आसपास गदेला घास चरत हती बन में।

ता समे श्रीगुसांईजी स्नान करिके उत्थापन करिवे कों ऊपर पधारे। तब श्रीनाथजीने गोविंददासतें कही जो—

मैं तो अब अपने मंदिर में जात हों। तहां उत्थापन को समयो भयो है। श्रीगुसांईजी स्नान करिके उपर पधारे हैं। जो-उहां श्रीगुसांईजी मोकों मंदिर में न देखेंगे तो मोसों कहा कहेंगे, जो-तुम कहां गये हे? तातें मैं तो जातहों।

एसे गोविंददास सों कहिके श्रीनाथजी वा ढांकपे तें उतावले ही कूदे, सो कवाय को दांवन तहां ढांकमें अरुझ्यो। सो दांवन को टूक तहां ही फटिके रहि गयो। सो श्रीनाथजी ने न जानी। सो गोविंददासने दूर सों देख्यो जो श्रीनाथजी की कवाय को दांवन फटिके अरुझि रह्यो है।

पाछे श्रीनाथजी तो जायके अपने मंदिरमें सिंहासन पर बिराजे, और श्रीगुसांईजीने जायके श्रीनाथजी के मंदिर के किंवाड़ खोले, उत्थापन किये। सो जब झारी भरन लागे ता समे श्रीगुसांईजी देखें तो श्रीनाथजी को दांवन फटि रह्यो है। तब श्रीगुसांईजी झारी भरिके उत्थापन भोग धरिके बाहिर आये। तब रूपा पोरिया कों बुलायके श्रीगुसांईजीने पूंछी जो-रूपा! इहां कोउ आयो तो नांही? तब रूपा पोरियाने कही जो-महाराज! इहां तो कोउ आयो नांही। तब श्रीगुसांईजी चुप करि रहे।

पाछे श्रीनाथजीके उत्थापन भोग सरायके श्रीगुसांईजी श्रीगिरिराज तें नीचे उतरे, सो अपनी बेठक में आये। और भीतरियानकों आज्ञा दीनी जो-तुम आरती करियो। और सब सेवा तें पहुंचियो, तुम मेरो पेंडो मति देखियो।

इतनो कहिके आपतो नीचे आय अपनी बेठक में विराजे। तब सब वैष्णव दर्शन कों आये। सो आप काहूसों बोले नांही।

इतने में ही गोविंददास आये। तब गोविंददासने श्रीगुसांईजी सों कही जो–महाराज! आपु अनमने क्यों बेठे हो?

तब श्रीगुसांईजीने कही जो– कछु नांही। तब गोविंददासने कही जो–महाराज? कछु तो मनमें भ्रम है। तातें यह बात तो कही चहिये। तब श्रीगुसांईजीने गोविंददास सों कही जो--श्रीनाथजीको कबाय को दांवन फट्यो है। जो–न जानिये कोन अपराध पड्यो है?

तब गोविंददासने हँसिके कह्यो जो–महाराज! या बात के लिये तो राज भले अनमने होत हो! (क्यों जो) तुम कहा लरिका को सुभाव जानत नांही हो? तुम्हारो लरिका ढांक के ऊपर बेठ्यो हतो। सो तुम जब न्हाय के गिरिराज ऊपर पधारे तब लरिका वा ढांक ऊपर तें कूद्यो। सो वा ढांक में वा दांवन को टूक फटिके अरुझि रह्यो है, जो–महाराज! आपु पधारो तो मैं दिखाऊं।

तब तो श्रीगुसांईजी गोविंददास की बाँह पकरिके पूछरी की ओर चले। परि काहु सेवक कों संग न लीने। सो जब ढांक के नीचे आये तब श्रीगुसांईजी देखे तो वा कबाय की लीर लटकत है।

तब श्रीगुसांईजीने अपने श्रीहस्त सों उतारि लीनी। ता

पाछे आप उहांते अपसरा कुंड ऊपर आये, सो स्नान करिके अपरस ही में गिरिराज ऊपर पधारे। तब वह लीर श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकी कवाय के ऊपर धरिके देखे तो कवाय वह साजी होय गई। तब श्रीगुसांईजी गोविंददास के ऊपर बहुत ही प्रसन्न भये। पाछे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की साम्हें देखिके मुसिकाये। तब श्रीनाथजी हू मुसिकाए।

ता पाछे श्रीगुसांईजी सेन आरती करिके सेवा तें पहोंचिके आपु नीचे पधारे, सो अपुनी बेठक में बिराजे। तब और वैष्णव हू श्रीगुसांईजी की पास आयके बेठे। तब गोविंददास हू श्रीगुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजीने उन वैष्णवन सों कही जो—अब कछु तुम्हारे मनमें रह्यो है? तब सब वैष्णव चुप करि रहे। तब श्रीगुसांईजीने कही जो—अब कछु उपाय करिये, जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रम न करनो पडे।

तब श्रीगुसांईजी आपही मनमें बिचारि के भीतरियान सों कही, और सब सेवकन कों आज्ञा दीनी, जो-आज पाछे संखनाद तीन बेर करिके, ता पाछे क्षण एक रहिके, श्रीनाथजी के मंदिर के किंवाड़ खोलने।

यह सुनत ही गाविंददास बहुत ही प्रसन्न भये। सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१०

और श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास कों घोड़ा करते। और आप गोविंददास की पीठ ऊपर असवार होय बन में पधारते। सो एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास के ऊपर चढ़े चले जात हे, ता समे गोविंददास कों लघी की शंका आई, सो मारग में ठाड़े ठाड़े लघी करे जात हे।

सो एक दिन एक वैष्णवने कह्यो जो-गोविंददास! यह कहा है? तब गोविंददास कछू बोलेहू नांही, वाको उत्तर हू न दियो। सो प्याऊ के ढांक की ओर चले ही गये।

सो सेन आरती उपरांत श्रीगुसांईजी नीचे अपनी बेठक में विराजे हते, तब उहां वा वैष्णवनें कही जो- महाराज! गोविंददास तो आज ठाड़े २ निहरे निहरे जात हते और लघी करत जात हते।

इतने में श्रीगुसांईजी की पास गोविंददास हू आये। तब श्रीगुसांईजीने गोविंददास तें पूंछी जो- यह वैष्णव कहा कहत है? जो तुम मारग में निहरे २ ठाड़े २ लघी करत जात हते? तब गोविंददास ने कही जो- महाराज! घोड़ा हू कहुं बेठिके लघी करत है? और याकों तो सूझे नांही (जो) श्रीनाथजी तो मोकों घोड़ा करिके मेरी पीठ पर असवार होत हैं। और ता समें जो मोकों लघी आई तब मैं बेठि के कैसे लघी करूं? तातें मैं ठाड़े ही लघी करी सो तो याने देखी, परि श्रीनाथजी मेरी पीठ ऊपर असवार हते सो तो याकों सूझे नांही।

तब वा वैष्णवने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके कही जो-धन्य ! ए गोविंददास ! जीन पे महाराज की एसी कृपा है ।

सो वे गोविंददास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपा-पात्र भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग-११

और एक समे श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजीद्वार पधारे हते । सो श्रीनाथजी की सेन आरति करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ाय आपु नीचे अपनी बेठक में पधारे । पाछे गादी ऊपर बिराजे और वैष्णव सब आगे बेठे । तब श्रीगुसांईजी सों सब वैष्णवनने बिनती करी जो- महाराज ! गोविंददासजी तो श्रीनाथजी के राजभोग आरती के पहेले महाप्रसाद लेत हैं ?

तब इतने में ही गोविंददास तहां आये। तब श्रीगुसांईजी ने पूंछी जो- गोविंददास ! ये वैष्णव कहत हैं- जो तुम राजभोग की आरति के पहेले महाप्रसाद लेत हो ? तब गोविंददास ने श्रीगुसांईजी सों बिनती करी जो- महाराज ! मैं परवस लेत हों, काहेतें जो आप तो राजभोग आरति करि के अनोसर करत हो, और तुमारो लरिका आय के ठाड़ो होत हैं और कहेत हैं जो- गोविंददास ! खेलिवे कों चल । तातें हों पहेले ही प्रसाद लेत हों । तब श्रीगुसांईजी कहे जो- राजभोग पहेले तो महाप्रसाद लीजे नांही । तातें राजभोग की आरति उपरांत

प्रसाद लेवे कों आयो करि। तब गोविंददास ने कही जो–महाराज ! जो आज्ञा।

तब दूसरे दिन गोविंददास राजभोग आरति श्रीनाथजी की होय चुकी तब दरशन करि के ही तुरत आये। सो गोविंद-दास तो महाप्रसाद लेवे कों बेठे। और इहां श्रीगोवर्द्धन-नाथजी अनोसर भये पाछें जगमोहन में आय के ठाड़े भये और गोविंददास की राह देखत भये।

इतने ही (में) महाप्रसाद लेके गोविंददास आये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोविंददास सों पूंछ्यो जो–गोविंददास ! तु इतनी वार लों कहां गयो ? मैं तीन बेर जग-मोहन में गयो, और तीन ही बेर पाछो आयो। और अब आय के तेरी राह देखत हों।

तब गोविंददासने कह्यो जो– महाराज ! मैं तो तुमारो राजभोग सरतो तब तुरत ही महाप्रसाद लेत हतो। सो कालि रात्रि को श्रीगुसांईजीने यह आज्ञा दीनी हैं जो–राजभोग की आरति पाछें महाप्रसाद लियो कर। सो अबही आरति पाछें आयो हो। सो सुनि के श्रीनाथजी चुप करि रहे। ता पाछें गोविंददास की पीठ पर असवार होय के श्रीनाथजी तो बन कों पधारे।

ता पाछें उत्थापन को समय भयो तब श्रीगुसांईजी स्नान करि कें श्रीगिरिराज उपर जाय के संखनाद कराये। ता पाछे मंदिर में पधारे तब गडुवा भरन लागे। तब

श्रीनाथजीने श्रीगुसांईजी सों कही जो- तुमने गोविंददास को राजभोग आरति भये पाछे प्रसाद लेवेकी आज्ञा दीनी है, सो मोकों आज बन में खेलवे कों अवार भई। सो तीन बेर तो जगमोहन में आय के फिरि गयो। ता पाछें कितनीक बेर लों जगमोहन में ठाड़ो रह्यो। जब गोविंददास प्रसाद ले के आयो तब याकी पीठ पर असवार होय के खेलन कों गयो। तातें याकों आज्ञा दीजो जो-जा भाँति नित्य प्रसाद लेत है तैसे ही लियो करे।

ता पाछे उत्थापन भाग धरे। सो भोग धरि के अपरस ही में श्रीगुसांईजी नीचे पधारे, पाछे तुरत ही गोविंददास को नीचे बुलाये। तब गोविंददासने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि। तब श्रीगुसांईजी गोविंददास कों देखि के मुसिकाने।

पाछे गोविंददास सों कह्यो जो- गोविंददास! तुम नित्य प्रसाद लेत हो तेसेही ताही भाँति सों प्रसाद लेवो करो, तुम कों कछु दोष नांही है। तुम कों प्रसाद लेत अवार भई तासों श्रीनाथजी कों गेल देखनी परी। तब गोविंददासने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि कें कही जो-आज्ञा।

ता पाछें श्रीगुसांईजी फेरि श्रीगिरिराज पें पधार के श्रीनाथजी को भोग सरायो। ता पाछें आरती करि कें अनोसर कराये।

सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय अंतरंगी सखा हुते।

वार्ता प्रसंग–१२

और एक समे गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते। तहां प्रातःकाल को समो हतो सो गोविंददासनें भैरव राग अलाप्यो। सो गोविंददास को गरो बहोत आछो हतो। और आप गावत ही बहोत आछें हते। सो भैरव राग एसो जाम्यो जो कछु कहिवे में नांही आवे।

सो एक म्लेच्छ चल्यो जात हुतो सो वानें गोविंददास को अलाप सुनि के माथो धुन्यो। और कह्यो जो–वाह वाह! कैसा भैरव अलाप्या है।

जो एसें वा म्लेच्छने कह्यो। सो वा म्लेच्छ की बात गोविंददासने सुनी। तब सुनिके गोविंददासने कह्यो जो–अरे! राग तो छी गयो। (और) कह्यो जो– म्लेच्छने सरायो है, सो राग श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे कैसे गाऊं? राग तो छी गयो। सो ता दिनतें गोविंददासने भैरव राग में कोई पद कियो नांही। जो वे गोविंददास एसे टेक के कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–१३

और एक समे गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते। सो कोउ जल भरिवे को आवतो तासों वतरावते। और अपने हृदय विषे भगवदभाव, तातें जो चतुर होय तासों टोक करते।

सो एक दिन गोविंददास बैठे हते तहां एक बैरागी आय के बेठचो और गावन लाग्यो। सो कहूं तो सुर, कहूं ताल,

कहूं अक्षर कहूं राग। तब गोविंददासने सुनिके वा वैरागी सों कह्यो जो–अरे वैरागी! तू मति गावे। गायवे को खराब मति करें, न तो तेरो सुर सुद्ध, न तेरो राग सुद्ध, न तेरो गायवे को ठिकानो। एसे काहेकों गावत हैं? तो पें गायवो न आवे तो मति गावें।

तब उन वैरागीने कह्यो जो– हों तो अपने राम कों रिझावत हूं। मोकों गायवो नांही आवे तो कहा भयो? मेरे राग सों मेरो राम तो रिझत हैं।

तब गोविंददासने कही जो– तेरो राम कछू मूरख नांही जो तेरे गायवे पें रिझेगो, तातें तू मति गावे। तब वे वैरागी चूप करि रह्यो।

जो उन गोविंददास उपर एसी कृपा हती जो सबसों निशंक बोलते। वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–१४

और वे गोविंददास पाग आछी बांधते। सो एक दिन महावनतें श्रीगोकुल आवत हते। सो मारग में काहू व्रजवासीने माथेपेंते पाग उतार लीनी। तब तासों गोविंददासने कही जो– सारे! सोलह टूक हैं समारि लीजो, हों सकारे तेरे घर आय के ले जांउगो। पाछे वह व्रजवासी पावन पड़ि के गोविंददास कों पाग दे गयो।

सो वे गोविंददास एसे भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१५

और गोविंददास महावन में महावन के टीलन पर एक समे कीरतन करत हते। सो तहां श्रीगोकुलनाथजी कीर्तन सुनिवे कों आवते। तव आपने अपने खवास सों कही जो– सावधान रहियो। जव श्रीगुसांईजी भोजन करिवे कों पधारे (तव) समें होय तव तू मोकों बुलाय लीजो।

सो भीतर राजभोग आवते ता समय आप तहां पधारते, और इहां सावधान मनुष्य जो बेठारयो हतो सो जब समो होय तब बुलावन कों आवतो, एसे नित्य करते।

सो उहां एक दिन जो मनुष्य रहतो सो कछु काम कों गयो हतो, सो जव श्रीगुसांईजी भोजन को पधारन लागे तब सब बेटान कों बुलाये, तब तहां श्रीवल्लभ नांही हते। तब आप श्रीगुसांईजी कहे जो– महावन की ओर जाउ, तहां गोविंद-दास कीर्तन करत हैं, तहांते श्रीवल्लभ कों बुलायके ले आवो।

ता पाछें मनुष्य दोरे, सो तहां ते श्रीगोकुलनाथजी कों ले आये। तब श्रीगुसांईजी भोजन कों पधारे। सो गोविंद-दास गावत आछो हते ताते श्रीगोकुलनाथजी सुनिवे कों जाते। सो वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१६

और एक दिन श्रीगुसांईजी मथुराजी में केशोरायजी के दर्शन कों पधारे, जो साथ गोविंददास हू हते। सो उहां केशो-रायजी को शृंगार बहुत ही भारी भयो हतो, सो जरी को वागा, चीरा, ताके उपर जरी की ओढ़नी उढ़ाये।

सो श्रीगुसांईजी तो केशोरायजी के (निज) मंदिर में ठाडे भये और गोविंददास द्वार सों लागे दरसन करत हते। (सो) बागा जरी को ताके उपर ओढ़नी जरी की ओढ़ें देखि कें गोविन्ददासने केशोरायजी सों कह्यो जो-महाराज! नीके तो हो?

तब श्रीगुसांईजी गोविन्ददास की ओर देखि के मुसिक्याये। ता पाछें श्रीगुसांईजी तो केशोरायजी के दरशन करि कें बाहिर आये, तब श्रीगुसांईजी गोविन्ददास सों कहे जो- गोविंददास! एसें न कहिये।

तब गोविंददासने कही जो- महाराज! उष्णकाल के तो दिन और तेसी गरमी पडे, और जरीन को बागा उपर जरीन की ओढ़नी उढाई है, जब कहा कहूं? तब श्रीगुसांईजी मुसिक्याय के चुप होय रहे।

सो वे गोविंददास एसें कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१७

और एक समे गोविंददासकी बेटी आंतरी तें आई। जो वह थोरीसी रही। परि गोविंददासनें कबहू वासों संभाषनहू न कर्यो, जो कानबाई गोविंददास की बहेन हती ताने कही जो-गोविंददास! तू कबहू बेटी सों बोलत ही नांही, कबहू कछू कहेत ही नांही, योहूं न पूछे जो-तू कब आई है, सो यह कहा?

तब गोविंददासने कानबाई सों कही जो-कन्हीयां! मन तो एक हैं। सो श्रीठाकुरजी में लगाउं के बेटी में लगाउं? तब कान्हबाई सुनि के चुप होय रही।

पाछें कितनेक दिन रहिके जब गोविंददास की बेटी आंतरी कों चली, तब कान्हबाई वाकों बहूबेटिन के पास ले गई। तब बहुबेटीननें गोविंददास की बेटी जानि कें कछु चोली साडी लहेंगा श्रीपारवती बहूजीने दियो। और घरनतें औरन ने हू थोरो थोरो दिनो।

ता पाछें बहूबेटीन सों विदा होय के गोविंददास की बेटी चली। ता पाछे गोविंददास जब घर आये तब कान्हबाईने कही जो– गोविंददास! बेटी तो चली गई। तब गोविंददासने कही जो–काहूने कछू दीनो? तब कान्हबाईने कही जो– बहूबेटीनने साडी चोली दीनी हैं।

तब तो यह बात सुनि कें गोविंददास बेटी के पाछे दोरे, सो कोस एक ऊपर जाय पहोंचे। तब बेटीसों गोविंददासने कही जा– तोकों बहूबेटीनने जो कछू दीनों है, सो फेरि दे आउं, याके लियेतें आपुनो बुरो होयगो।

तब बेटी जो लाई हती सो सब फेरि दे आई, ता पाछें कान्हबाई सों आय के गोविंददासने कह्यो जो– कन्हीयां! तेनें घरसों क्यों न दीनो? एसे न करिये। तब कान्हबाई सुनिके चुप होय रहि।

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

——०○——

रूपा पोलिया आदि के जगविख्यात दो तीन प्रसंग अन्य प्राचीन प्रतियें में प्राप्त होने परभी इस प्रति में न होने से एवं स्थल संकोच के कारण दिया गया नहि है। उनका सम्पूर्ण विवरण 'पू. भक्तकवि' नामक ग्रन्थमें दिया जायगा.
—सम्पादक.

(७) चत्रभुजदास

अब श्रीगुसांईजी के सेवक चत्रभुजदास; कुंभनदासजी के बेटा, जिन के पद अष्टछाप में गाइयत है. तिनकी वार्ता-

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश-

ये चत्रभुजदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के 'विशाल' सखा को **आधिदैविक मूल** प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये **स्वरुप** 'विशाल' सखा हैं, और रात्रि की लीला में 'विमला' सखी हैं।

वार्ता प्रसंग-१

सो वे चत्रभुजदास जमुनावता में कुंभनदासजी के यहां जन्मे। सो कुंभनदासजी के प्रथम पांच बेटा हुते, तिनको मन लौकिक में बहोत आसक्त देखि के कुंभनदासजी के मनमें बहुत ही दुःख भयो। और मन में बिचारे जो- मेरे कोउ एसो पुत्र न भयो जातें हों अपने मन को भेद कहों।

पाछें कुंभनदासजीने पांचो वेटान कों न्यारे कर दिये। और कुंभनदासजी की बहू श्रीआचार्यजी महाप्रभु की सेवक हती, और एक बेटी ही सोउ परम भगवदीय हती, सो वह बेटी हू श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकी सेवक हती। ब्याह होत ही याको पुरुष तो मरि गयो। तातें वह बेटी हू

(भतीजी ?) कुंभनदासजी के घर रहेती । सो तीनों जने जमुनावते गाम में रहतें ।

ता पाछें एक बेटा कुंभनदासजी के और भयो । ताको नाम कुंभनदासजीने कृष्णदास धरचो । सो कृष्णदास बडे भये । तब श्रीनाथजी की गायन की सेवा करतें । और कीर्तन कोई न आवते । सो कृष्णदास नें श्रीनाथजी की गाय बचाई, और आपु नहार के सन्मुख होयके अपनो सरीर दियो सो उनकी वार्ता में प्रसिद्ध है ।

परि कुंभनदासजी के मनमें यह मनोरथ जो- कोई एसो पुत्र न भयो । जासों मैं अपने मन को भाव सब कहों, और सब भगवद्वार्ता करों । तासों कुंभनदासजी उदास रहते ।

ता पाछे एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी ने परासोली में कुंभनदास सों पूंछी जो- कुंभना ! तु उदास क्यों है ? तब कुंभनदासने कही महाराज ! सत्संग नांहि हैं । फेरि श्रीगोवर्द्धननाथजीने मुसिक्याय के कह्यो जो- अरे कुंभना ! सत्संग को फल जो " मैं," सो तो तेरे पाछे पाछे डोलत हों, तोहू तोको सत्संग की चाहना है ?

तब कुंभनदासने कही जो-महाराज ! भगवदीयन के संग बिना जीव आपके स्वरूपानंद को कैसे जाने ? आप के स्वरूप में रह्यो जो- आनंद, सोतो भगवदीय हू जानत हैं, और जानत नाहीं । तातें भगवदीयन के संग बिना आपके स्वरूप में मन उरझत नाहीं है ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने हँसिके आज्ञा करि जो- कुंभना ! तू धन्य है, जा, मैंनें तोकों सत्संग के लिये भगवदीय पुत्र दियो ।

तो हू कुंभनदासजी यह विचारि के उदास रहते जो कब पुत्र होयगो, फेरि कबतो वो बडो होयगो ? और न जाने वो कौनसे भाव में मगन रहेगो ? एसे करत करत पुत्र होयवे को फेर समय भयो। सो कुंभनदासजी की स्त्री को फेर गर्भ–स्थिति भई ।

सो एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने आय के श्रीमुखतें कुंभनदासजी सों कही जो– कुंभनदास ! तू मेरे संग चल । तब कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के संग चले, सो एक व्रज-भक्त के घरमें श्रीनाथजी पधारें । ये व्रजभक्त दहीं माखन की मथनियां दोऊ ऊंचे छींका पें धरिकें आपु कछु कार्य कों गई हती । सो ताही समें श्रीगोवर्द्धननाथजी तहां आय के आप एक हाथ तें दहीं की मथनियां लई। तबही श्रीगोवर्द्धननाथजी को पीतांबर खुल गयो, सो भूमि में गिरन लाग्यो । सो श्रीगोवर्द्धन-नाथजीनें आप तत्काल दोय भुजा और नीचे प्रकट करिके पीतांबर थांभ्यो । और दोय भुजान में माखन दहीं की मथ-नियां लिये रहे, ता समें चत्रभुज स्वरूप को कुंभनदासजी कों दरशन भयो ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी तो सखान सहित दूध दहीं माखन सब आरोगे, बच्यो सो सब बनचरन कों खवाय

दियो। ताही समें वह गोपिका अपने घर में दौरि आई, सो उहां देखे तो–दहीं माखन श्रीठाकुरजी आरोगत हैं। तब वह गोपिका श्रीठाकुरजी कों पकरिवे कों दोरी। तब सखा तो सब भाजि गये। तब कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाड़े रहि गये।

सो जब वह गोपिका निकट आई तब श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने श्रीमुख में दूध भरिके वा गोपिका के मुख उपर डारे, सो वाके सगरे मुख में नेत्रन में दूध भरि गयो। सो वह ठाडी होय रही।

तब कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी वहां तें भाजे। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आप तो अपने मंदिर में पधारे, और कुंभनदासजी जमनावते गाममें अपने घर गये। ता समें मारग में जातें यह पद कुंभनदासजीने गायो। राग सारंग–

आनि पाये हो हरि नीकें।
चोरि २ दधि माखन खायो गिरधर दिन प्रतिही के॥
रोक्यो भवन द्वार व्रजसुन्दरि नुपुर मोर अचानकही के।
अब कैसें जईयत घर अपनेमें भाजन फोरि दुध दधि पीके॥
कुंभनदास प्रभु भले परे फंद जानन देहों भावतें जीयके।
भरि गंडूप छींट दे नैंननमें गिरिधर धाय चले दे कीके॥

यह कीर्तन कुंभनदासजी करत चले। चत्रभुज स्वरूप को जो दर्शन भयो हतो, सो कुंभनदासजी ताके भाव में रस सों भरे अपने आप घर आये। ताही समें कुंभनदासजी की स्त्रीके

बेटा भयो । सो सुनिके कुंभनदासजीने कह्यो जो– या लरिका को नाम चतुरभुजदास हैं ।

पाछे उत्थापन के समें श्रीगुसांईजी के पास आयके कुंभनदासजीने दंडवत कियो । तब श्रीगुसांईजी मुसिक्याय के कुंभनदासजी सों पूछे जो– चत्रभुजदास आछे हैं ? तब कुंभनदासजीने बिनती कीनी जो– महाराज! जाके उपर आप एसी कृपा करत हो सो तो सदा ही आछे हैं । ताको सब ठोर कल्यान ही हैं ।

तब श्रीगुसांईजी कुंभनदासजी सों कहे जो– या पुत्र सों तुमकों बहोत ही सुख होयगो । सो तुमारे मनमें जैसो मनोरथ हतो ताही भांति सों तुमारे मनोरथ सब सिद्ध भये हैं ।

पाछे जब पिंडरू होय चुक्यो, तब कुंभनदासजी आछे सुद्धि होय पुत्रको स्नान करायो । और वाकों अपनी गोदिमें ले, श्रीगुसांईजी कों आय के कुंभनदासजीने दंडवत करी । पाछे चत्रभुजदास को मस्तक श्रीगुसांईजी के चरणकमल सों परस कराय के कुंभनदासजीने विनती करी जो– महाराज! कृपा करि के चत्रभुजदास को नाम सुनाईये । तब श्रीगुसांईजी आप मुसिक्याय के कहे जो–राजभोग सरे पाछें नाम निवेदन दोइ संग करवावेंगे ।

यह सुनि के चत्रभुजदास ताही समे किलक के हसे । तब कुंभनदासजी हुं मन में बहोत प्रसन्न भये । पाछे राजभोग सरवे को समय भयो तब माला बोली । तब श्रीगुसांईजी

भीतरियान कों आज्ञा दिनी जो– तुम बाहिर जावो । तब सब भीतरिया, पोरिया सब बाहिर जाय बैठें। ता समें मंदिरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी और कुंभनदासजी (रहे)। ता समय श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास को नाम सुनाय, पाछे तुलसी ले के कुंभनदास तें कहे, जो– चत्रभुजदास कों (आगे) लावो। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्मुख चत्रभुजदास कों ब्रह्मसंबंध करवायो। पाछें तुलसी श्रीगोवर्द्धननाथजीके चरणकमल पर समर्पे । जो ताही समय सगरी लीला की स्फुरति चत्रभुजदास कों भई, और श्रीगुसांईजी को स्वरूप हृदयारूढ भयो । तब ताही समें चत्रभुजदासने यह कीर्तन गायो । सो पद–

राग सारंग—

सेवक की सुखरास सदा श्रीवल्लभराज कुमार ।

× × × ×

यह कीर्तन चत्रभुजदास ने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये । और कुंभनदासजी हू प्रसन्न भये । अपने मनमें आनंद पाये, और कहे जो मोकों जैसो मनोरथ हतो तेसेही भगवदीय को संग मिल्यो।

ता पाछे मंदिरके किंवाड़ खुले । सब लोगन कों दरसन भये । पाछे श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की आरती उतारि के, श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर करवाये । और माला बीडा लेके श्रीगुसांईजी परवत तें नीचे उतरि, अपनी बैठक में पधारे । तहां सब वैष्णव हू आये । तहां कुंभनदासजी हू चत्र-

भुजदास कों लेके आये। तब सबन के आगे चत्रभुजदास मुग्ध बालक होय चुप करि रहे। ता पाछें श्रीगुसांईजी सब वैष्णवन कों विदा किये।

पाछे आप श्रीगुसांईजी भोजन करिवे को पधारे। ता पाछे श्रीगुसांईजी आप कृपा करि के अपने श्रीहस्त सों कुंभनदास, चत्रभुजदास कों अपनी जूठन की पातर धरी, सो उन दोउ जनेंन नें महाप्रसाद लियो।

पाछे श्रीगुसांईजी गादी उपर विराजे, सो आप बीडा आरोगत हते, तब कुंभनदासजी, चत्रभुजदासजी आचमन करि के श्रीगुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजी कृपा करिके दोउन कों न्यारो २ उगार दिये, सो कुंभनदास चत्रभुजदासने लियो। ता पाछे श्रीगुसांईजी विसराम करन कों पधारे। तब कुंभनदासजी चत्रभुजदास कों गोद में ले के श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि के जमनावते गाम में अपने घर में आये।

सो जब एकांत में कुंभनदासजी बैठे होंई तब चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी की वार्ता लीला को भाव और श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी की वारता करें। तब दोउ जने परस्पर आनंद को पावे। और जब कोउ तीसरो जनो आवे तब चत्रभुजदास बालक की नाई मुग्ध होय रहें। और जा दिनतें चत्रभुजदास नाम समर्पन पाये हते, ता दिन तें श्रीगोवर्द्धननाथजी के

दरशन किये बिना चत्रभुजदास दूध हु न पीवते। एसे करत करत वरस पांच के भये।

सो चत्रभुजदास नेम सों दरशन करते। सो वे चत्रभुजदास एसे भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–२

और एक दिन श्रीनाथजीने कह्यो जो– चतुरभुजदास! आज तू मेरे संग गाय चरावन कों चलियो। तब चत्रभुजदास राजभोग आरती के दरसन करि के आप गोविंदकुंड ऊपर जाय के बेठे रहे। तब मंदिर में कुंभनदासजीने सबनसों पूंछी जो– चत्रभुजदास आज कहां गयो। तब सबन नें कह्यो जो– दरसन में तो देखे हैं, और पाछे तो हमने देखे नांहीं।

तब कुंभनदासजी अपने मनमें विचार करन लागे जो– चत्रभुजदास कहां गयो? पाछें श्रीगुसांईजी (जब) श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर कराय के अपनी बैठक में बिराजें तब कुंभनदासजीने आय के दंडवत कीनी। जब श्रीगुसांईजीने कुंभनदास सों कह्यो जो–कुंभनदास! तुम उदास क्यों हो? तब कुंभनदासजीने कह्यो जो– महाराज! चत्रभुजदास आज दरसन में तो हतो सो अब नांही देखियत है, सो कहां गयो?

तब श्रीगुसांईजीने कुंभनदास सों कह्यो–जो–तुम आज पाछे चत्रभुजदास की चिंता मति करो। श्रीगोवर्द्धननाथजी वाकों आज्ञा किये हैं जो–तू मेरे संग गाय चरावन को चलि हों। तातें चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करिके तत्काल गोविंदकुंड के ऊपर जाय के बैठयो है।

सो अब श्रीगोवर्द्धननाथजी गायन कों सखान संग लेके बन में पधारत हैं, श्रीबलदेवजी सखान सहित। सो अब कोई घडी एक में श्यामढांक को पधारेंगे। जो तुमकों जानो होय तो सूधे श्यामढांक कों जाव। तहां श्रीगोवर्द्धननाथजी, चत्रभुजदास समाज सहित मिलेंगे।

यह सुनि के कुंभनदासजी तहां ते चले, सो सूधे श्यामढांक कों आये। तहां देखे तो–श्रीठाकुरजी श्रीबलदेवजी सहित बिराजत हैं। सो सखा तो सब बैठें हैं, और चहुं दिस गाय सब चरत हैं।

तब कुंभनदासजी ने जाय के दंडवत कीनी। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ने कुंभनदासजी तें हसि के कह्यो जो–कुंभनदास! आवो बैठो। तब कुंभनदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत कीनी। फेर बिनती कीनी जो– महाराज! आज चत्रभुजदास पर बड़ी कृपा करी। तातें याके परम भाग्य हैं। यह सुनि कें श्रीगोवर्द्धननाथजी चुप होय रहै। सो या भांति श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास के उपर कृपा करन लागे।

वार्ता प्रसंग–३

और एस समें श्रीगोवर्द्धननाथजी व्रजवासीन के घर दूध दहीं माखन की चोरी करन कों पधारे। तब चत्रभुजदास कों यह आज्ञा करें जो– कुंभनाके! तू हू चलियो। सो जाय के एक व्रजवासी के घर में पैठे। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी दूध दहीं माखन सब खाये।

ता पाछे वा ब्रजवासी की बेटीने चत्रभुजदास कों देखे। श्रीठाकुरजी तो वासों दीसे नहीं। तब वह अपने बाप कों पुकारी, जो–या कुंभना के बेटाने हमारो दूध, दहीं, माखन सब खायो है। तब यह बात सुनिके दस पांच ब्रजवासी दोरि-आये। तब श्रीठाकुरजी तो सखान सहित भाजि गये, वेतो चोरी की रीत जानत हते। और चत्रभुजदास तो प्रथमही इनके साथ आये हते। सो ये तो कछु जानत नांही। तातें उहां ठाड़े होय रहें। सो सब ब्रजवासी आय के चत्रभुजदास को पकरिके भलिभांति सों मार्यो। पाछे वे ब्रजबासी चत्रभुज-दासतें कहे जो–आज पाछे तू कबहू चोरी करन कों पेठेगो तो हम तेरे बाप कुंभना कों पकरि लावेंगे।

एसे कहि के ब्रजवासीनने चत्रभुजदासकों छोड़ि दियो। तब चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास आये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी सखान सहित बहोत ही हँसे। तब चत्रभुजदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो–महाराज! दूध, दहीं, माखन तो सखान सहित आप आरोगे, और मार मोकों खवाई?

तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो–तैंने हू दूध, दहीं, माखन क्यों न खायो? और जहां मैं भाज्यो और सब सखा भाजे, तहां तूहू क्यों न भाज्यो? तू क्यों मार खाय रह्यो। तब चत्रभुजदास सुनिकर चुप होय रहे। सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के तथा श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–४

और एक समे कुंभनदासजी और चत्रभुजदास 'जमुनावता' गाममें अपने घरमें बैठें हुते, सो अर्द्धरात्रि के समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में दीवा बरत देख्यो। तब कुंभनदासजीने चत्रभुजदास सों यह सुनाय के कही जो–'वह देखो बरत झरोखन दीपक हरि पोढें ऊंची चित्रसारी'।

सो कुंभनदासजी इतनो कहि के चुप होय रहे। तब यह सुनिके चत्रभुजदासनें कह्यो जो–'सुंदर बदन निहारन कारन राखे हैं बहुत जतन करि प्यारी'।

यह सुनिके कुंभनदासजी बहोत प्रसन्न भये। और पूंछ्यो जो–तोकों या लीला को अनुभव भयो? तब चत्रभुजदासने कुंभनदासजीतें कह्यो जो– श्रीगुसांईजी की कृपातें और श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की कांन ते यह लीला को अनुभव श्रीगोवर्द्धननाथजी आप जनावत हैं।

तब कुंभनदासजी यह सुनिके आपु बहोत प्रसन्न भये। और यह कीर्तन संपूर्ण करिके भाव सहित चत्रभुजदास कों सुनायो। और चत्रभुजदास सों कुंभनदासजीने कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आप तोसों छिपाये नाहीं तो मैंहू तोसो न छिपाऊंगो। ता दिन ते कुंभनदासजी रहस्य–लीला वार्ता सब चत्रभुजदास सों करते। कछु गोप्य न राखते।

सो वे कुंभनदासजी, चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे अंतरंगी सखा हते, कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–८

और एक दिवस श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको जनम दिवस आयो। तब श्रीगुसांईजी श्रीजीद्वार हते। सो नाना प्रकार की सामग्री सिंगार सब जन्माष्टमी की रीति करि।

ता समये श्रीगोवर्द्धननाथजी के सिंगार के दरशन करिके चत्रभुजदासने यह कीर्तन सुनायो सो पद–

राग बिलावल। 'सुभग सिंगार निरखि मोहनको ले दरपन कर पिय हिं दिखावें'।

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीगुसांईजी राजभोग धरिके गोविंदकुंडपे संध्यावंदन करिवे कों पधारे। तब चत्रभुजदास और एक वैष्णव श्रीगुसांईजी के साथ हते। तब श्रीगुसांईजी सों वा वैष्णव ने पूंछयो जो–महाराज! आप तो नित्य ही भांति २ सों सिंगार करत हो, दरसन करावत हो, दर्पन दिखावत हो। और चत्रभुजदासने तो आज कीर्तन में कह्यो जो–'आज की छबि कछु कहत न आवे' जो–महाराज! ताको कारन कहा?

तब श्रीगुसांईजीने आप श्रीमुखतें वा वैष्णव सों कह्यो, जो–तुम यह बात चत्रभुजदास ही तें पूंछो। तब वा वैष्णवने चत्रभुजदास सों पूंछयो, जो–तुम आज यह कीर्तन किये, ताको कारण कहा?

तब चत्रभुजदासने वा वैष्णव सों कह्यो जो– सुनो। ता पाछें चत्रभुजदासने तहां गोबिंदकुंड ऊपर दूसरो पद गायो। सो पद–

राग बिलावल। 'माईरी आज और काल और नित्यप्रति छिनु और और देखिये रसिक गिरिराजधरण'।

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, तब श्रीगुसांईजी आप चत्रभुजदास की और देखिके मुसिकाये ता पाछें वह वैष्णव कों और ही संदेह भयो। जो– चत्रभुजदासजीने दोय कीर्तन किये ताको भेद मैंने न जान्यो।

पाछें श्रीगुसांईजी आप संध्यावंदन करि चुके तब राजभोग को समय भयो हतो सो श्रीगुसांईजी तो मंदिर में पधारे। ता पाछें श्रीगोवर्द्धननाथजीको राजभोग सरायके राजभोग आरति करिके श्रीगोवर्द्धन परवत तें नीचे उतरे। पाछें बेठक में आय के श्रीगुसांईजी आप गादी उपर बिराजे। पाछें सब वैष्णवन कों बिदा करिके श्रीगुसांईजी आपु भोजन कों पधारे। सो भोजन करिके आचमन लेके श्रीगुसांईजी आप गादी ऊपर बिराजे, बीडा आरोगत हते। तब सब वैष्णव तो अपने २ डेरा गये हते, और श्रीगुसांईजीसों वा वैष्णवने विनती करी जो– महाराज! आज चत्रभुजदासने दोय कीर्तन सिंगार के समे किये तिनको भेद मैं न समझ्यो, जो– आप कृपा करिके मेरो संदेह दूरि करो।

तब श्रीगुसांईजी आप वा वैष्णव सों कहे जो– आज श्रीआचा-

यजी महाप्रभुन को जनम उत्सव हतो। तातें आज श्रीस्वामिनीजी अपने मनोरथ की सामग्री, सिंगार, सब अपने हाथ सों धराये हैं। तातें श्रीगोवर्द्धननाथजी आप बहोत ही प्रसन्न भये हैं। यातें चत्रभुजदासने कह्यो जो—"आज और काल और, जो आज की छबि कछु कहत न आवे।"

और गोविंदकुंड पें दूसरो कीर्तन कियो, ताको भाव ये है, जो—नित्य जितने व्रजभक्त हैं सो अपने २ मनोरथ की सामग्री धरावत हैं। अपने २ वस्त्र आभूषन धरावत हैं। तातें आज और, सो क्षण २ में अनेक व्रजभक्तन को सनमान करत हैं। सो जैसो व्रजभक्तन को भाव हैं, जो उनके मनोरथ हैं, तैसे श्रीगोवर्द्धननाथजी आपहु विनके मनोरथ सिद्ध करत हैं। ताते क्षण क्षण में श्रीगोवर्द्धननाथजी की सोभा होत हैं।

जा या भांति सों श्रीगुसांईजी आप वा वैष्णव सों कहे। तब वा वैष्णव को संदेह दूरि भयो। तब वा वैष्णवने अपने मनमें कही, जो—या चत्रभुजदासको बडो भाग्य है। जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी सब लीला सहित दरशन देत हैं। सो वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजीके ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग—६

और एक समय 'आन्योर' में रासधारि आये हते। सो श्रीगुसांईजी तो श्रीगोकुल हते, और श्रीगिरधरजी, श्रीगोविंदरायजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीगोकुलनाथजी और श्रीरघुनाथजी ए पांचो बालक श्रीजीद्वार हते। और श्रीजदुनाथजी, श्री-

गोकुलमें हे । और श्रीघनश्यामजी को प्राकट्य भयो न हतो ।

सो ए रासधारी श्रीगोकुलनाथजी के पास आए । और बहोत विनती कीनी जो– आप पधारो तो हम रास करें । तब श्रीगोकुलनाथजी नें रासधारीन तें कह्यो जो– मैं श्रीगिरिधरजी तें पूंछि के कहुंगो ।

ता पाछे जब श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती होय चुकी और अनोसर भये, पाछें श्रीगोकुलनाथजी श्रीगिरिधरजी सों पूंछ्यो जो– तुम कहो तो मैं रास कराउं, और हू बालकन को मन हैं, और तुम हू रास में आओ, तो आछो है ।

तब श्रीगिरिधरजी नें कह्यो जो–इहां श्रीगुसांईजी तो है नांही, होतें तो उनतें पूछ के रास करावते । तातें मति (कहुं) मेरे ऊपर श्रीगुसांईजी आप खीजें तो । तातें तुमारो मन होय तो परासोली चंद्रसरोवर के ऊपर रास करावो । और मेरो आवनो तो न होयगो ।

तब श्रीगोकुलनाथजी आदि दे के सब बालक रासधारिन कों ले के संग परासोली चंद्रसरोवर पें आये । सो श्रीगोकुलनाथजी चत्रभुजदास हू को अपने संग ले गये हते । और श्रीगिरिधरजी तो आप श्रीगुसांईजी की बैठक में सेन कर रहे हते ।

सो जब प्रहर एक रात्रि गई तब चंद्र सरोवर पें रास को मंडान भयो । चैत्र सुदी पूर्णमासि को दिन हुतो । सो जब तीन प्रहर रात्रि गई और एक प्रहर रात्रि रही, तब श्रीगोकुल-

नाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो- चत्रभुजदास! कछु गावो। तब चत्रभुजदासने कह्यो, जो- मैं तो श्रीगोवर्द्धननाथजीकों रास करत देखों तब गाऊं, जो रासके करनवारे तो श्रीगिरधरजी के निकट हैं।

तब श्रीगोकुलनाथजीने चत्रभुजदास सों कही जो- अब कहा करिये? रात्रि तो प्रहर एक बाकी रही है, और अब जो बुलायवे जइये तो जात आवत ही में भोर होय जाय, फेर उनके मनमें आवे तो वे आवें, नहीं तो न भी आवें। जो अब कहा करिये?

तब चत्रभुजदासने कह्यो जो-चिंता मति करो। कोई एक घड़ी में श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीगिरधरजी इहां पधारत हैं।

ताही समे श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिधरजी की बेठक में श्रीगिरधरजी की पास पधारे, और उनसों कह्यो जो-परासोली चंद्सरोवर ऊपर चलें, जो उहां रास करिये। तब श्रीगिरिधरजी तहां तें अकेले ही चले, सो दोऊ जने चंद्सरोवर ऊपर आये। तब रासधारीनकों श्रीगिरधरजी के दर्शन भये, और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन न भये, और सब बालकनकों दर्शन भये। पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने व्रजभक्तनके संग रासलीला करी, सो रात्रि हू बढ़ि गई, और चंद्रमा हू और भांति सों सोभा देन लाग्यो।

ता समे चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो। सो पद-राग केदारो। चरचरी (ताल)-

'अद्भुत नट भेख धरे जमुनातट स्यामसुंदर, गुननिधान, गिरिवरधर रास रंग राचे।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, तब सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आज्ञा करे जो – चत्रभुजदास! यह बिरियां कौन है? तब चत्रभुजदासने यह दूसरो पद गायो। सो पद–

राग भैरव।

'प्यारी ग्रीवा पें भुज मेलि निरतत पिय सुजान०।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी बहुत प्रसन्न भये, और चत्रभुजदास के सामने मुसिक्याए। तब चत्रभुजदासने जान्यो जो–धन्य मेरो भाग्य है।

सो एसे २ बहोत कीर्तन चत्रभुजदासने रास के गाये। ता पाछे रात्रि घड़ी दोय रही तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मंदिर में पधारे।

पाछे श्रीगिरधरजी चत्रभुजदास कों संग लेके गोपालपुर आये। ता पाछे रासधारीन कों श्रीगोकुलनाथजीने कछु द्रव्य देके विदा किये, पाछे सब बालकन सहित आप गोपालपुर आये। ता पाछे कछुक दिन रहिके श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुल पधारे।

पाछे जब श्रीगुसांईजी श्रीगोकुल तें श्रीजीद्वार पधारे, तब श्रीगिरधरजीने रास के समाचार सब कहे, श्रीगुसांईजी सों। तब श्रीगुसांईजी आप आज्ञा किये जो – आपुन कों श्रीगोवर्द्धननाथजी सों हठ करनो योग्य नांही। श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रम होत है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी तो अपनी इच्छा तें नित्य ही रास करत हैं।

सो या भांति सों श्रीगुसांईजी श्रीगिरधरजी सों कह्यो। तब सुनिके श्रीगिरधरजी चुप करि रहे। सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-७

और एक दिन श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास सों कहे, जो-तुम 'अपछरा' कुंड ऊपर जायके रामदासजी को इहां पठाय दीजो, और तुम रामदास को पठायके कछु फूल मिले तो लेते आइयो। तब चत्रभुजदास आप अपछरा कुंड ऊपर आये, तहां इनकों रामदासजी मिले। तिनसों चत्रभुजदासने कही जो – तुम कों श्रीगुसांईजी बुलावत हैं, सो तुम बेगे जाओ।

यह सुनिके रामदासजी श्रीगुसांईजी के पास चले। सो चत्रभुजदास अकेले ही फूल बीनत २ श्रीगोवर्द्धन की कंदरा के पास आय निकसे। तहां देखे तो-श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीस्वामिनीजी कंदरा में ते उनींदे पधारे हैं सो चत्रभुजदास कों ता समय एसे दरशन भये।

तब यह पद चत्रभुजदासने गायो, सो पद—

राग विभास। 'श्रीगोवर्द्धन-गिरि सघन कंदरा रेन निवास कियो पिय प्यारी० ।'

यह कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी आप सुनिके आज्ञा किये जो – चत्रभुजदास! कछु और गावो। तब चत्रभुजदासने यह दूसरो कीर्तन ताही समे गायो। सो पद-

राग विलावल। 'रजनी राज कियो निकुंज नगर की रानी।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो। पाछे श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों दंडवत करिके ताही समें चत्रभुजदास आनंद में फूल लेके, श्रीगुसांईजी कों आयके दंडवत करी। तब श्री-गुसांईजी कहे जो – चत्रभुजदास! तू फूल लेन कों गयो सो अब तांई कहां रह्यो? तब चत्रभुजदासने सब समाचार श्रीगुसांईजी सों कहे। तब श्रीगुसांईजी सुनिके चत्रभुजदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

ता दिन तें श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख तें आज्ञा किये जो – चत्रभुजदास! जब श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार होय, ता समे तू नित्य दरसन कों आयो कर। पाछे जब श्रीगोवर्धन-नाथजी को शृंगार होतो तब चत्रभुजदास ठाड़े दरसन करते।

एसी कृपा श्रीगोवर्द्धननाथजी तथा श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास के ऊपर करते। वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–८

फेर ता पाछे चत्रभुजदास ब्याह न करते। तब श्री-गोवर्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो – चत्रभुजदास! तू ब्याह कर। तब चत्रभुजदासने कही जो – महाराज! मैं यह सुख छांडिके आपदा में क्यों पडूं? तब श्रीगोवर्द्ध-ननाथजीने फेर आज्ञा करी जो – बेगि ब्याह कर।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञा मानिके चत्रभुजदास-ने ब्याह कर्यो।

सो कछुक दिन पाछे चत्रभुजदास की बहू मरि गई। तब चत्रभुजदास कों अटकाव (मृतक) भयो, तब वे अत्यंत विरह करिके आतुर भये। तब चत्रभुजदास के अंतःकरण की श्रीगोवर्द्धननाथजीने जानी। सो वन में चत्रभुजदास बेठे २ विरह करते, श्रीगोवर्द्धननाथजी सों प्रार्थना करते। सो कीरतन करि करिके दिन वितीत किये। ता समे चत्रभुजदासने कीर्तन गायो। सो पद–

राग भैरव। 'मोर भावतो श्रीगिरिधर देखों०।'

राग बिलावल। 'श्यामसुंदर प्राणप्यारे छिन जिन होउ न्यारे०।'

राग धनाश्री। 'गोपाल को मुखारविंद जिय में बिचारो।'

एसे २ प्रार्थना के चत्रभुजदासने बहोत कीर्तन करि के सूतक के दिन वितीत किये। ता पाछे शुद्ध होयके श्रीनाथजी के शृंगार के दरसन चत्रभुजदासने किये। तब साष्टांग दंडवत करिके हाथ जोरिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के सामे चत्रभुजदास ठाड़े भये। तब श्रीनाथजी उनकी सामने देखिके मुसिक्याये। ता पाछे ग्वाल के, राजभोग के दरशन करिके चत्रभुजदास मन में विचारे जो – घर चलिये। तब फेर श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों कहे जो – चत्रभुजदास! तू दूसरो विवाह कर। तब चत्रभुजदासने कही जो – महाराज! जात में तो लरिकिनी कोई नांही है। तब श्रीगोव-

र्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों फेरि कह्यो जो – तू धरेजो कर। तब यह बात सुनिके चत्रभुजदास कछु बोले नांही।

ता पाछे नित्य दिन ५–७ लों आय श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, परंतु चत्रभुजदास के मन में यह बात न आई। तब यह बात श्रीनाथजीने सदूपांडे सों जताई, जो – तुम ढूंढिके चत्रभुजदास को धरेजो कराय देउ।

तब सदूपांडे ने चत्रभुजदास तें कही जो– श्रीगोवर्द्धननाथजीने यह आज्ञा करी है, तातें अवश्य श्रीप्रभुजी की आज्ञा करी चहिये। तब चत्रभुजदासने कही जो– वे तो मेरे पाछे परे हैं, अब कहा करें?

ता पाछे एक मुकद्म की बेटी रांड हती, सो वासों सदूपांडेने कहिके चत्रभुजदास को धरेजो करायो। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों हसन लागे, जो– यह देखो कुंभनदासजी सारिखे को बेटा होयके स्त्री मरि गई तोऊ दोई च्यारि महिनाहू न रह्यो गयो, सो तुरत ही धरेजो कियो, और तोहू संतोष नांही। सो या भांति सों चत्रभुजदास की हांसी श्रीगोवर्द्धननाथजी सखा सहित नित्य करते।

सो एक दिन चत्रभुजदासने हू यह सुनि श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो– मोकों तो तुम नित्य एसे कहत हो, परंतु तुमहू तो घरघर व्रजवधून के संग लागे रहत हो, (और) संग डोलत हो।

यह सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी लज्या पाये। सो चत्र-भुजदास तें तो कछु बोले नांही, परि श्रीगोवर्द्धननाथजीने

श्रीगुसांईजी सों जायके कह्यो, जो– मोकों चत्रभुजदास या भांति सों कहत है। तातें तुम वाकों बरज दीजो, जो– अब एसे कबहु न कहे।

पाछे जब चत्रभुजदास मंदिर में दरसन करन कों आये, तब श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास कों बुलायके कहे जो– तू श्रीगोवर्द्धननाथजी सों एसे क्यों कह्यो? तब चत्रभुजदासने श्रीगोवर्द्धननाथजीकी बात सब श्रीगुसांईजी के आगे कही जो–महाराज! ये मेरी नित्य हांसी करत हैं, जो एक बार मैंने हू एसे कह्यो। तब श्रीगुसांईजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो– आज पाछे एसे तुम मति कहियो।

ता दिनतें श्रीगोवर्द्धननाथजी कहते, परि चत्रभुजदास कछु न कहते। और श्रीनाथजी आप तो हांसी करते। एसी कृपा श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास की ऊपर करते।

सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी सों एसे सानुभावता सों बात करते। तातें वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–९.

और एक समय श्रीगुसांईजी आप परदेस पधारे। सो फागुन वद ७ कों श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मथुरा में श्री गुसांईजी के घर पधारे हते। तब श्रीगिरधरजी आदि सब बालक वहु बेटीनने सगरो घर, गहेना, वस्त्रादि सब श्रीगोव-

र्द्धननाथजी की भेट करि दियो। तब एक बेटीजीने सोनेकी मुदरी छिपाय राखी हती।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिधरजी सों कहे जो– मेरी भेट फलानी बेटी के पास है, सो तुम ले आओ। तब श्री-गिरिधरजी ने आयके कह्यो जो– अपनो घर श्रीगोवर्द्धन-नाथजी की भेट कर्यो है, तामें तें तुम कछु राख्यो है सो देहु। तब उन ने मुदरी राखी हती सो दीनी। ता पाछे सब बहू बेटी बहोत ही प्रसन्न भये। जो– हमारी सत्ता की वस्तु श्रीगोवर्द्धननाथजीने अत्यंत प्रीति सों मांगिके अंगीकार कीनी, सो अपनो बड़ो भाग्य है।

जा समे श्रीगोवर्द्धननाथजी मथुरा पधारे, ता समे चत्रभुजदास जमुनावता गाम में अपने घर हते। सो जान्यो नांही जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मथुरा पधारे हैं। सो चत्रभुजदास उत्थापन के समे श्रीनाथजी के मंदिर में आये। तब श्रीगिरिराज पर्वत की ऊपर श्रीनाथजी कों न देखें तब सबन सों पूछे जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आज कहां पधारे हैं? तब पोरियाने और सब सेवकनने कह्यो, जो– श्रीनाथजी तो मथुराजी पधारे हैं। यह सुनिके चत्रभुजदासके मन में बहोत विरह भयो। तब श्रीगिरिराज के ऊपर बैठिके विरह के कीर्तन करन लागे। सो पद–

राग गोरी–'बात हिलग की कासों कहिये०।'

एसे एसे कीर्तन चत्रभुजदासने बहोत किये।

ता पाछे नृसिंह चतुर्दशी को एक दिवस बाकी रह्यो, तब तेरस के दिन संध्या आरती के समय चत्रभुजदास गिरिराज परवत के ऊपर आये, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी बिना मंदिर देख्यो न गयो। तब चत्रभुजदास के मन में अत्यंत विरह भयो। तब यह कीर्तन चत्रभुजदासने कियो। सो पद–

राग गोरी–' श्रीगोवर्द्धनवासी सांवरे लाल! तुम बिन रह्यो न जाय हो।

या भांति सों अत्यंत विरह के कीर्तन चत्रभुजदासने किये। सो प्रथम तो गायन के झुंड के दरशन चत्रभुज-दास कों भये। ता पाछे सखान के मध्य श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीबलदेवजी के दरशन भये।

तब चत्रभुजदासने निकट जायके दंडवत करिके श्रीनाथजी सों विनती कीनी जो– महाराज! आप कृपा करि के मोकों श्रीगोवर्द्धन पर्वत ऊपर दरशन कब देउगे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों कहे, जो– मैं काल श्री-गोवर्द्धन परवत ऊपर पधारूंगो।

एसे चत्रभुजदास कों धीरज देके श्रीनाथजी आप तो अंतर्ध्यान भये। सो चत्रभुजदासने सगरी रात्रि विरह के पद गाये।

ता पाछे प्रहर एक रात्रि गई। तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने श्रीगिरधरजी सों जताई जो– कालि प्रात मोकों गोवर्द्धन

पर्वत के ऊपर पधरावो । जो कालि श्रीगुसांईजी उहां पधारेंगे, तातें तुम अब ढील मति करो ।

पाछे श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगिरिधरजी सों कह्यो जो–श्रीगुसांईजी दोय चार दिन में पधारिवे वारे हैं, सो अपने घरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरशन श्रीगुसांईजी करें तो आछो । तातें श्रीनाथजी कों चारि दिन और राखो । तब श्रीगिरिधरजीने कह्यो, जो–तुम कहो सो तो सांच, परंतु श्री-गोवर्द्धननाथजी की इच्छा एसी है, तातें प्रातःकाल अवश्य श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रीगोवर्द्धन परवत ऊपर पधरावने ।

पाछे रात्रि कों सब तैयारी करि राखी । ता पाछे रात्रि घड़ी ४ रही, तब श्रीनाथजी कों जगायके मंगल भोग समर्पे। पाछे मंगला आरती करि, रथ पर श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पध-रायके सब बालक, बहू, बेटी सब संग चले । और इहां चत्रभुजदास गिरिराज परवत के ऊपर ऊंचे चढिके वारं-वार देखत हैं, जो–अब श्रीगोवर्द्धननाथजी पधारेंगे । तब चत्रभुजदासने ता समय यह कीर्तन गायो–

राग सारंग–'तबतें जुग समान पल जात० ।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने कह्यो । इतने म श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के दरशन चत्रभुजदास कों भये । ता पाछे श्री-गिरिधरजी आदि सब बालकन कों दंडवत किये । पाछे श्रीगि-रिधरजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार कियो और राजभोग की तैयारी होन लागी ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आप गुजरात के परदेशतें पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के उत्थापन भोग को समो हतो। तब श्रीगुसांईजी आयके अपनी बैठकमें पधारे, सो श्रीगिरिधरजी आदि सब बालक आयके मिले।

ताही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग की माला बोली। तब श्रीगुसांईजीने श्रीगिरिधरजी सों पूछी जो-श्री-गोवर्द्धननाथजी के इहां राजभोग की इतनी अबार काहेकों है? तब श्रीगिरधरजीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो, जो- आज श्री-गोवर्द्धननाथजी मध्याह्न समे मथुरातें इहां पधारे हैं। तातें आज इतनी ढील भई है।

तब श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो, जो-हम तो दादा तें कहे हुते, जो- दोय दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अपने घर और राखो, तातें श्रीगुसांईजी आपु अपने घरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करें तो आछो। परि दादाने न मानी, सो आज ही गोवर्द्धननाथजी कों पधराये हैं।

तब श्रीगुसांईजी श्रीगिरधरजी के ऊपर बहुत प्रसन्न भये। और श्रीगिरिधरजी सों कहे जो- तुमने मेरे मन को अभिप्राय जान्यो। जो मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर न देखतो तो मोसों रह्यो न जातो।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तुरत ही स्नान करिके श्रीनाथजी के मंदिर में पधारे, सो नृसिंह जयंती को उत्सव कियो।

ता दिन तें प्रतिवर्ष नृसिंह जयंती के दिन सेन आरती के समय फेरि श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राजभोग आवे, फेरि माला बोले, जो यह रीत भई*।

सो चत्रभुजदास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करिके बड़ो आनंद भयो। ता पाछे अनोसर करिके श्रीगुसांईजी अपनी बैठक में पधारे। तब चत्रभुजदास ने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके सब समाचार कहे, जो–या भांति सों श्रीगोवर्द्धननाथजी मथुरा पधारे। ता पाछे आज यहां श्रीगोवर्द्धन परवत पे पधारे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख तें कहे, जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी परम दयाल हैं। अपने जनकी आरति सहि सकत नांही हैं। पाछे आप श्रीगुसांईजी पोंढि रहे।

सो वे चत्रभुजदास श्रीनाथजी तथा श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–१०

और एक समय श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजी सों पूछ्यो जो– आप आज्ञा करो तो एक वार चत्रभुजदास कों श्रीगोकुल ले जाऊं। तब श्रीगुसांईजी कहे, जो–चत्रभुजदास आवे तो ले जावो।

---

*आज भी उसके स्मरण रूप में इस दिन शयन में भी राजभोग आते हैं।

—सम्पादक

ता पाछे श्रीगोकुलनाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो – पेंठ्यो गाम है (तहां) हम कों कछु काम है, सो तुम हमारे संग चलो।

तब चत्रभुजदास श्रीगोकुलनाथजी के साथ चले। जब पेंठ्यो गाम में श्रीगोकुलनाथजी आये तब चत्रभुजदास सों ये कह्यो, जो – हम कों श्रीगोकुल जानो है, जो हमारे संग खवास कोऊ नांही है, तातें तुम हमारे संग श्रीगोकुल तांई चलो। तहां श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन करिके तुमको फेरि हम यहां ले आवेगें।

तब श्रीगोकुलनाथजी घोड़ा ऊपर असवार होयके पधारे। तब चत्रभुजदास हू संग चले। पाछे श्रीगुसांईजी यह सुनिके श्रीगिरिधरजी कों श्रीनाथजी की पास राखिके आप हू घोड़ा ऊपर असवार होयके श्रीगोकुल पधारे। सो उत्थापन को समय हतो, सो श्रीगुसांईजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी कों जगाये।

ता पाछे संध्यार्ति के समय श्रीगोकुलनाथजीने और चत्रभुजदासने सुन्यो, जो – श्रीगुसांईजी आप इहां पधारे हैं। तब श्रीगोकुलनाथजी और चत्रभुजदास वहोत प्रसन्न भये। सो तत्काल श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में आये। तब श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके चत्रभुजदास बाहिर ठाड़े रहे। तब श्रीगुसांईजी श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे। और चत्रभुजदास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी

के दरशन करवाये। सो दरशन करिके ता समे चत्रभुजदासने गायो। सो पद– राग बिलावल।

१ महा महोत्सव श्रीगोकुल गाम०।

२ अंगुरी छांडि रेंगत अरग थरग०।

या भांति सों लीलासहित चत्रभुजदासने और हू कीर्तन गाये। सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये। तब श्रीगुसांईजी ने चत्रभुजदास तें कह्यो, जो – चत्रभुजदास! तोकों चहिये सो मांग। तब चत्रभुजदासने श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरिके बीनती कीनी जो – महाराज! आप तो अंतरगतकी जानत हो, तातें आप मोकों कृपा करि के श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कराओ।

तब श्रीगुसांईजी ने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो– काल्हि श्रीनवनीतप्रीयजी को शृंगार करिके, पालना झुलाय के हम हू चलेंगे, तव तुम हू संग चलियो। तब तो चत्रभुजदास मन में बहोत प्रसन्न भये।

ता पाछे रात्रि कों तो चत्रभुजदास सोय रहे। पाछे प्रातःकाल होत ही चत्रभुजदासने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत किये। ता समे मंगला के दरशन भये, तहां चत्रभुजदासने यह पद गायो। सो पद—

१ राग बिलावल। हौं वारी नवनीतप्रिया०।

२ राग देवगंधार। दिन दिन देन उहनो आवत०

एसे एसे कीर्तन चत्रभुजदासने तहां गाये ।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी को भोग सराय के शृंगार करिके पालने झूलाये। ता समय चत्रभुजदासने यह पालना को पद गायो–

राग रामकली ।

१ अपने री बाल गोपाले हो, रानी जू पालने झुलावे०

२ झूलो पालने गोविंद० ।

यह पालना चत्रभुजदासने गाये, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी घोड़ा मंगाय, ता ऊपर सवार होयके चत्रभुजदास कों संग लेके आपु गिरिराज पधारे।

उहां श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग को समय हतो। सो श्रीगुसांईजी आप तत्काल स्नान करिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग समर्प्यो । पाछे समो भयो, भोग सरायो। जब दरशन के किवांड़ खुले, तब चत्रभुजदास सों कुंभनदासने कही, जो – कछु कीर्तन गाव । तब चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो । सो पद–

राग सारंग । तब तें और कछून सुहाय० ।

यह सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास के साम्हे देखि के मुसिक्याये । तब चत्रभुजदास ने दंडवत करिके कह्यो, जो– आज मेरो धन्य भाग्य है, जो--श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन भये ।

पाछे इतने में टेरा आयो। तब चत्रभुजदास दंडवत

करिके बाहिर आये । तब कुंभनदास चत्रभुजदास तें पूछे, जो – चत्रभुजदास! तू कहां गयो हतो । तब चत्रभुजदासने कुंभनदास सों कह्यो जो–श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुल लिवाय गये हते । सो अबहि श्रीगुसांईजी के संग आयो हूं ! तब चत्रभुजदास तें कुंभनदासजी ने कह्यो, जो – तू प्रमान में जाय पर्‍यो ।

तब यह बात कुंभनदास के मुख तें सुनिके श्रीगुसांईजी आप मंदिर में हँसे । ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर करिके श्रीगुसांईजी आप अपनी बैठक में पधारे । तब चत्रभुजदास ने श्रीगुसांईजी सों बिनती करी, जो – महाराज ! कुंभनदासजी ने मोतें कह्यो जो – तूं कहां गयो हतो ? तब मैं कह्यो, जो – श्रीगोकुलनाथजी के संग श्रीगोकुल गयो हतो । तब उन मोतें कह्यो, जो – तू प्रमान में जाय पर्‍यो । सो श्रीगोकुल कों प्रमान क्यों गिने ?

तब श्रीगुसांईजी आपु चत्रभुजदास सों कहे, जो–कुंभनदास को मन श्रीगोवर्द्धननाथजी में लाग्यो है। जो एक क्षण हू न्यारे नांहि होत हैं । तातें ए और लीला कों प्रमान जानत हैं, और हैं तो–दोऊ लीला एक ही ।

ता दिन तें चत्रभुजदास श्रीगिरिराजजी की तलेटी छांडिके कहूं न जाते । ता पाछे श्रीगुसांईजी आप तो भोजन करिके विसराम किये । तब चत्रभुजदास दंडवत करिके अपने घर आये ।

श्रीगोवर्द्धननाथजी हू चत्रभुजदास पे परम कृपा करते। सो वे चत्रभुजदास एसे परम कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-११

और कितेक दिन पाछें श्रीगुसांईजी आप श्रीगिरिराजकी कंदरा में होयके, लीला में पधारे, तब श्रीगिरिधरजी कों अपनो उपरना दिये। और यह कहे, जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञा में रहियो। जामें श्रीगोवर्द्धननाथजी प्रसन्न रहें सोई कीजो, और सब बालकनको समाधान राखियो। श्रीनाथजी के सेवक, जो वैष्णव हैं इन सबन को समाधान राखियो। और जो मेरे अंग को उपरना है, ताको सब लौकिक संस्कार कीजो। काहेतें जो-संस्कार न करोगे, तो फिरि कोई कर्मसंस्कार न करेगो। तातें तुम अवश्य करियो और काहूबातकी चिंता मति करियो। सब वस्तुके कर्ता श्री-गोवर्द्धननाथजी हैं।

एसे श्रीगिरिधरजी को समाधान करिके श्रीगुसांईजी आप तो गिरिराजकी कंदरा में होयके लीला में पधारे।

ता पाछे श्रीगिरिधरजी आदि दे सब बालकन सहित, सब सेवकन सहित महाविरह करिके महाव्याकुल भये। सो ता समय को विरह कछु कहिवे में न आवे।

पाछे फेर धीरज धरिके श्रीगुसांईजीने जो उपरणा की जैसे आज्ञा कीनी हती, तैसेई श्रीगिरिधरजी ने वा उपरना को अग्निसंस्कार कियो। पाछे वेदोक्त विधि सों सब कर्म

दस गात्र–विधान कियो, और हू लौकिक विधि सब करि शुद्ध होये। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में सावधान भये।

सो जा समय श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत की कंदरा में होयके लीला में पधारे, ता समे चत्रभुजदास जमुनावता गाममें अपने घरमें हुते। सो सुनिके चत्रभुजदास दोरेही आये, सो आयके महाव्याकुल होयके कंदरा के आगे गिरि परे; और महाविलाप करन लागे। जो–महाराज! पधारत समें मोकों आपके दरसन हू न भये। और मैं आप बिना या पृथ्वी ऊपर कोनकों देखूंगो, तातें अब या पृथ्वी ऊपर मोकों मति राखो। मोहूकों आपके चरणारबिंद के पास निकट ही राखो, मोहूकों बुलाय लीजे।

ऐसे महाविरह संयुक्त होयके चत्रभुजदासने तहां यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग केदारो।

फिर व्रज बसहू श्रीविट्ठलेस।
कृपा करिके दरस दिखावहु वह लीला वह वेस॥
संग गाय अरु गोकुल गांव करहु प्रवेस।
नंदराय जो बिलसी संपति बहु ऊर नरेस॥
भक्तिमारग प्रकट करि कलिजन देहु उपदेस।
रचो रास बिलास वह सब गिरि गोवरधन देस॥
वदन इन्दु तें विमुख नैन चकोर तपत विसेस।
सुधापान कराइ मेटहु विरह को लवलेस॥
श्रीवल्लभनंदन, दुःख–निकंदन, सुनहु चित्तसंदेस।
चत्रभुज प्रभु घोखकुल के हरहु सकल कलेस॥

जो एसे विरह के कीर्तन चत्रभुजदासने बहुत किये।

तब श्रीगुसांईजीने चत्रभुजदासकी बहोत आरति जानिके महाआनंद स्वरूप (सों) चत्रभुजदास के हृदय में आयके आपु दरशन दिये। और कहे जो-चत्रभुजदास! तू इतनो विरह काहेकों करत हैं? में तो सदा तेरे पास ही हूं तातें तू अब इतनो खेद अपने मनमें मति करे।

और अब तो मेरो दरशन तू श्रीगोवर्द्धननाथजी के निकट ही कर्यो कर। जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं (वहां) सदैव मोहू कों तिनके पास जान्यो कर, तहां ही मैं रहत हों।

एसें चत्रभुजदास को समाधान करिके श्रीगुसांईजी तो आप अन्तर्ध्यान भये। पाछे चत्रभुजदास ताही स्वरूपानन्द में मगन होयके तहां यह कीर्तन गायो। सो पद-

राग केदारो।

श्रीविट्ठल प्रभु भये न ह्वै हैं।
पाछे सुने न अगें देखे यह छवि फेर न बनि है॥ १॥

मनुपदेह धरि भक्त-हेत कलिकाल जनम को लै हैं।
को फिरि नंदराय को वैभव व्रजबासिन बिलसै हैं॥ २॥

को कृतज्ञ करुणा सेवक-जन कृपा सुदृष्टि चितै हैं।
ग्वाल गाय सब संग लेके को फिरि गोकुल गाम बसै हैं॥ ३॥

धर्मथंभ गोय ज्ञान कर्म, को जगति भक्ति प्रकटै हैं।
को करकमल सीस धरकें अधमनि वैकुंठ पठै हैं॥ ४॥

रासविलास महोछव हरि को रागभोग सुख दैहैं।
को सादर गिरिराजधरग की सेवा सार दृढै हैं॥ ५॥

भूषण बसन गोपालल्लाल के को सिंगार सिखै हैं।
को आरति वारत श्रीमुख पर आनंद प्रेम बढ़ै हैं ॥ ७ ॥
मथुरा-मंडल खग मृगकी को महीमा कहि वरनै हैं।
को वृन्दावनचंद गोविंद को प्रकट स्वरूप दिखै हैं ॥ ७ ॥
काको वहोरि प्रताप जु एसो प्रकट पुहुमि में छै हैं।
काको गुन कोरत लीला जसु सकल लोक चलि जै हैं ॥ ८ ॥
श्रीवल्लभसुत दरसन कारन अब सब कोउ पछितै हैं।
चत्रभुजदास आस इतनी जो यह सुमिरित जन्म सिरे हैं ॥ ९ ॥

एसे एसे बहोत कीर्तन चत्रभुजदासने करिके, श्रीगुसांईजी के चरणारविंद में मन राखि, अपनी देह छो़ीके आप हू लीलामें जाय प्राप्त भये। सो चत्रभुजदासकी यह लीला देखिके और जो वैष्णव हते तिनके (और) सेवकन के मनमें बहोत दुःख भयो।

ता पाछे चत्रभुजदास के एक बेटा हतो राघोदास सो आयो, और वैष्णव सब आये। तिन सबनने मिलके चत्रभुजदास कों अग्निसंस्कार कियो। और क्रियाकर्म दसगात्र करि शुद्ध होये।

ता पाछे वे राघोदास जो हे चत्रभुजदासजी के बेटा,

राघोदास की वार्ता सो तिनहू श्रीगुसांईजी सों नाम पायो हो।

सो राघोदास एक समे गांठोली की कदमखंडी में श्रीगोवर्द्धननाथजी की गायन कों चरावत हते, सो उनकों गायन के मध्य श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन भये। होरी खेलत गोपीन के जूथ के मध्य दरसन

भये। सो एसे दरशन करिके तहां राघोदासने एक धमार करिके गाई, जो–'अरीचल जाइये जहाँ हरि खेलत होरी.।

यह धमार राघोदासने संपूर्ण करिके गाई, ता पाछे तहां ही राघोदासने देह छोडि दीनी।

तब तहां जो गांठोली के वैष्णव हते तिन मुनी जो सबन मिलिके राघोदास को अग्निसंस्कार कियो।

ता पाछे वे वैष्णव आयके श्रीगिरिधरजी सों कहे, जो–महाराज! राघोदासने या प्रकार सों यह धमारि गाइके अपनी देह छोडि दीनी। तब श्रीगिरिधरजी हँसे और कहे, जो–राघोदास बडे भगवदीय भये। सो उनकों श्रीगोवर्द्धननाथजीनें होरी के खेल के दरसन दिये गोपीन सहित।

ता समे राघोदासनें यह धमारि गाइके अपनी देह छोडि दीनी

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो ताको कारण यह है, जो–श्री गोवर्द्धननाथजी के लीला–सुखको अनुभव राघोदास या देह सों ताको प्रकार सह्यो न गयो। तातें या देह छोडिके राघोदास हू जायके लीला में प्राप्त भये।

और श्रीगिरिधरजी हँसे ताको कारण यह जो–जिनके बापदादाननें या देह सों लीलासुखको हृदय में अनुभव करि दूसरेन कों हू ताके पद गाइके अनुभव करायो, ताको बेटा यह राघोदास। तासों इतनो सुख हू हृदय में धारण कियो न गयो।

पाछे रामदास की बेटीने डेढ़ तुक बनाइ वा धमार पूरी कीनी।

सो वे राघोदास और उनकी बेटी श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

—०—

तब वा मुखियाने कह्यो जो- आछो, या बात की चिंता मति करो ।

ता पाछे वह संघ चल्यो, सो वाके संग नंददास हू चले । सो कछुक दिनमें वह संघ मथुराजी में आय पहुँच्यो। तब संघ तो मधुपुरी में रह्यो, और नंददास तो मधुपुरी की सोभा देखत देखत विश्रांत ऊपर आये । सो तहां अनेक स्त्री पुरुष स्नान करत देखे, और सुंदर स्वरूप के देखे । सो नंददास तो मनमें देखिके बहुत ही मोहित भये। और मनमें बिचार कियो जो- एसी जगह में कछुक दिन रहिये तो आछो है । सो या भांति नंददास अपने मनमें लुभाये ।

ता पाछे नंददासने अपने मनमें यह बिचार कियो जो- एकवार श्रीरणछोडजी के दरशन करि आऊं । ता पाछे आइके विश्रांत घाट ऊपर रहेंगे ।

पाछे नंददासने सुनी जो-संघ तो मथुराजी में दस दिन और रहेगो । तब इन ने बिचार कियो जो- संग तो अब ही मथुराजी में बहुत दिन लों रहेगो । तो मैं इतने अकेलो होयके श्रीरणछोडजी के दरशन कों जाऊंगों ।

एसो बिचार अपने मनमें नंददास करिके रात्रिकों तो सोय रहे । ता पाछे नंददास प्रातःकाल उठिके चले, सो काहू तें कछु कही नांहीं । पाछे वा संघमें जो-मुखिया हतो ताने अपने संगमें नंददास कों जब न देख्यो, तब सगरी मथुराजी में ढूंढ्यो ।

जब नंददास कहूं नजर न पडे, तब ढूंढि के बैठि रहे। और नंददासने तो काहूसों पूछी हू नांही। वे तो अकेले चलेही गये। सो श्रीद्वारिकाजी को तो मारग भूलि गये, और चले २ सिंहनंद में जाइ निकसे।

सो गाम के भीतर चले जात हते। तहां एक क्षत्री श्रीगुसांईजी को सेवक रहतो हतो। सो ताकी बहू अत्यन्त सुंदर हती। सो वह स्त्री अपने घरमें नहायके ऊपर ठाड़ी २ केश सुखावत हुती। सो चले जात में वह स्त्री नंददास की दृष्टि परी। सो नंदादस तो वाकों देखिके मोहित भये। और मनमें कह्यो जो– या पृथ्वी ऊपर एसे हू मनुष्य हैं? और वह स्त्री तो उतरि के अपने घर के कामकाज में लगी। और नंददास तो तहीं ठाड़े ठाड़े मनमें बिचार करन लागे, जो– अब तो एकवार याकों मुख देखों तब जलपान करूंगो।

पाछे ता दिन तो नंददास गये सो कोउ स्थल में जायके सोय रहे रात्रि कों।

ता पाछे दूसरे दिन नंददास प्रातःकाल उठिके वा स्त्री के द्वार पर आइके बेठे। सो नंददास कों तो बेठे बेठे तीन प्रहर व्यतीत होय गये। तब वा क्षत्री के एक लोंडी हती ताने बहूसों कह्यो जो– एक ब्राह्मण प्रातःकाल को अपने घर के द्वार ऊपर बेठ्यो है। सो वाने पानी हू नांहीं पियो। तब बहूने लोंडी सों कह्यो जो–वा ब्राह्मण सों पूछो तो सही जो– तुम द्वार ऊपर काहेकों बेठे हो?

तब वा लोंडीने आइके नंददास सों कह्यो जो– तुम इहां हमारे द्वारपे क्यों बेठे हो? तब नंददासने वा लोंडी सों कह्यो जो–मैं तो तेरी बहू को एक वार मुख देखूंगो। ता पाछे जलपान करूंगो, तब जाऊंगो। तब वा लोंडी यह सुनिके अपनी बहू पास गई। और यह सब वात बहू सों कही जो– वह ब्राह्मण तो तिहारो मुख देखिके जायगो। तब बहूने लोंडी सों कह्यो जो–मैं तो वाकों अपनो मुख दिखाऊंगी नांही। वह तो आपही ते उठि जायगो।

सो एसेही नंददास कों हू साज (हठ?) पड़ि गई। तब वा लोंडीने बहूतें फेरि कही जो– तुम मेरी एक वात सुनो।

"एक समे श्रीगोकुल श्रीगुसांईजी के दरशन कों अपनो सगरो घर गयो हो। तब संग में मैं हुती और तुम ही हे। सो श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलतें श्रीजीद्वार पधारत हते। और मैं, तुम, तुमारो ससुर सब संग हते। ज्येष्ठ को महीना हतो। सो मारग में एक म्लेच्छानी प्यासी होयके विकल भई परी हती, वह मेवा फरोसिनी हती। सो ताही मारग में होयके श्रीगुसांईजी पधारे। श्रीगुसांईजी निकट आये, तब खवासनें वासों कह्यो–तू मारग छोडि के न्यारी उठि बेठ, सो वाकों तो उठिवे की सकती नांही। वाको तो कंठ पानी विना सूखि गयो, सो नेत्रन में प्राण आय रहे हते, सो वापें बोल्यो हू न जाय।

तब श्रीगुसांईजी पूछे जो– यह कहा है? तब खवासने

श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज! एक म्लेच्छानी है, सो मारग में परी है। जो– वहोतेरो वासों कहत है परि वह उठत नांही।

तब श्रीगुसांईजीने वा म्लेच्छानी की ओर देख्यो। तब उन म्लेच्छानीने श्रीगुसांईजी की ओर हाथ सों बतायो जो– मैं तो प्यासी हों। तब श्रीगुसांईजीने खवास सों कह्यो जो– याकों बेगही जल प्यावो। तब खवासनें श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज! इहां तो काहूके पास जल नांहीहै, और तलाव कुवा हू निकट नांही है, सो पानी कहांते पाईये।

तब श्रीगुसांईजीने खवास सों कह्यो जो– हमारी झारी में जल होयगो। तब खवासने कही महाराज! झारी छुई जायगी। तब श्रीगुसांईजीने खवास तें कह्यो जो– झारी तो और आवेगी, परंतु फेरि या म्लेच्छानी के प्रान कहांते आवेंगे? तातें बेगि जल प्यावो, जीव मात्र पर दया राखनी।

सो वह श्रीनवनीतप्रियजी को महाप्रसादी जल हतो सो वा म्लेच्छानी कों प्यायो, सो वह जल पी गई। तब वा म्लेम्छानी के अंग २ में सीतलता होय गई।

तब वा म्लेच्छानीने उठिके श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज! मैनें कन्हैयाजी सुने हते, सो आज मैनें नेनन सों देखे। तातें तुम 'गुसांईयां' सांचे हो, सो मोकों जिवाई।

तापाछें वह गोकुल आय रही। सो वह सुंदर मेवा लायके श्रीगुसांईजी के द्वार ले के आवे। सो वह म्लेच्छानी

श्रीगुसांईजी के मनुष्यनतें कहे जो–ए मेवा तुम राखो. तब वे मनुष्य कहें जो–तू मोल कहे तो लेंय, नांही तो यह हमारे काम न आवे। तब वह थोरे पैसा कहें, सो या भांति सों वाने अपनो जनम व्यतीत कियो। सो वा म्लेच्छानी के ऊपर श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न रहते।

ता पाछे वह म्लेच्छानीने देह छोडी। सो वाने महावन में जायके ब्राह्मण के घर जनम पायो। सो फेर वे श्रीगुसांईजी की सेवकनी भई, और वह कृतार्थ भई।"

सो या भांति सों लोंडीने अपनी बहूसों कह्यो जो–जीव मात्र ऊपर दया राखनी। तातें ब्राह्मण प्रातःकाल को भूख्यो प्यासो बैठ्यो है, सो यह बात आछी नांही है। तब वह बात बहू के हृदे में आई। पाछे वा लोंडी के संग बहू द्वार ऊपर गई। तब नंददास वाको मुख देखिके उठि गये।

सो या भांति सों वे नंददास नित्य आवें सो वाकों मुख देखिके चले जांय। तब पाछे वाके घर के धनी क्षत्रीने सुनी जो–यह ब्राह्मण हमारे घर याकों देखवे कों आवत है। तब वा क्षत्रीने आयके नंददास सों कह्यो जो–तुम हमारे घर के द्वार पर नित्य आवत हों, सो हमारी जगत में हाँसी बहोत होत हैं।

तब नंददासने वा क्षत्री सों कह्यो जो–मैं तुमतें मागत नांही, कछु तुमारो बिगारत नांही। ता पाछे और तुम कहत हों मोसों, तो मैं तुमारे माथे मरूंगो।

तब यह नंददास के बचन सुनिके यह क्षत्री डरप्यो, जो– अब यातें मैं बोलूंगो तो– यह ब्राह्मण हत्या देयगो, सो कछु कहे नांही। और नंददास तो वेसेई नित्य आवें सो वाको मुख देखिके परे जांय।

ता पाछे कितेक दिन में यह बात सगरे गाममें भई। जो– फलाने क्षत्री की बहू को एक ब्राह्मण देखिवे कों नित्य आवत है। सो यह बात सुनिके वा क्षत्रीकों लाज आई। जब क्षत्रीने अपने पुत्रसों कह्यो जो– अब हमकों यह गाम छोड़नो आयो।

ता पाछे घरमें की सब वस्तु भाव बेचिके सब की हुंडी कराई। ता पाछे एक गाड़ी भाड़े करि दस–पांच मनुष्य मारग के लिये चाकर राखे। प्रातःकालतें नंददास वा बहूको म्होडो देखिके गये हते। ता पाछे वह क्षत्री, क्षत्री को बेटा, क्षत्री की बहू और चोथी लोंडी, सो ये चारों जने वा गाड़ी में बेठिके श्रीगोकुलकों चले।

ता पाछे दूसरे दिन नंददास वाके घर आये। सो देखे तो–वाके घरको ताला लग्यो है। तब नंददासने वाके परोसीन सों पूछी, जो– आज या घरके ताला लाग्यो है, सो या क्षत्री के घरके लोग कहां गये?

तब और लोगनने कही जो– जा भले आदमी! तेरे दुःखतें तो वा क्षत्रीने अपनो गाम हू छोड़ि दीनो है। सो वह तो काल प्रातः ही को श्रीगोकुल कों गयो है।

यह बचन सुनते ही नंददास तो अपने डेरा में आये।

जो अपनी बस्तुभाव लेके ताही समें श्रीगोकुल कों चले। सो चलत २ सांझ के समय जहां वा क्षत्री की गाड़ी उतर रही, तहां नंददास हू जाय पहोंचे। सो जायके वा क्षत्री की गाड़ी के निकट ही बैठि गये।

तब वा क्षत्रीने नंददास कों देखिके कह्यो, जो– जा दुखतें हमने अपनो घर छोड्यो, देश छोड्यो, सो दुख तो हमारे संग ही लग्यो आयो। ता पाछें वा क्षत्री के मनुष्य वासों लड़न लागे जो– तू हमारे संग काहे कों आवत है? तब नंददास उठिके दूरि जाय बैठे, और कह्यो जो– हम तुम सों मांगत तो नांही कछु, और यह गामहू तुमारो नांही, ता पाछे रात्रि को तो तहां सोय रहे।

प्रातःकाल होत ही वह क्षत्री तो गाड़ी में बैठके तहांते चल्यो। तब वासों नेक दूरि के नंददास हू चले। सो याही भांति कछुक दिन में श्रीगोकुल के घाट ऊपर आये।

तब उन क्षत्रीने विचार कियो जो– हम तो या ब्राह्मण के दुःखके मारे गाम छोड़िके आये। तोहू वह तो हमारे संग ही आयो है। तातें एसो जतन होई जो– यह हमारे संग श्रीजमुनाजी उतरिके श्रीगोकुल न चले तो आछो है, नांही (तो) हमारी हाँसी श्रीगोकुलमें हू होयगी। और श्रीगुसांईजी यह वात सुनेंगे तो–यह बात आछी नांही है।

तब उन मलाहन सों कहे, (ओर) घटवारेन सों वा क्षत्रीने कह्यो जो– हम तुमकों कछुक द्रव्य देंयगे, परि या ब्राह्मण को

पार मति उतारो। पाछे वह क्षत्री नाव में बैठ्यो, तब नंददास हू नाव पर बेठन लागे, तब उन मलाहनने हाथ पकरिके उतार दियो नाव पें तें। तब नंददास तो श्रीजमुनाजी के तीर ठाडे २ बिचार करन लागे। और वह क्षत्री तो नाव में बैठि के श्रीजमुनाजी के पार भयो।

ता पाछे वह क्षत्री श्रीगोकुल में आयके, लोंडीकों एक ठोर बेठायके वाके पास सब वस्तुमात्र धरिकें आप तीनों जने श्रीगुसांईजी के दरशन कों आये। सो श्रीनवनीतप्रियजी के राजभोग के दरशन किये। ता पाछे अनोसर करायके श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में पधारे। तब इन तीनों जनेनने भेट धरी, और दंडवत कीनी।

तव श्रीगुसांईजीने पूछी जो–वैष्णव! कब के आये हो? तव इन कही जो महाराज! अब ही आये हैं। श्रीनवनीत-प्रियजीके राजभोग की आरती के दरशन आपकी दयातें करे हैं। तव श्रीगुसांईजी कहे जो–आज तुम प्रसाद इहांई लीजो, अब बेठो।

एसे आज्ञा देके श्रीगुसांईजी आप तो भोजन कों पधारे। ता पाछे आचमन करिके अपनी जूठन की पातरि वा क्षत्रीकों धरी। सो चार पातर श्रीगुसांईजीने उन के आगे धरी।

तव वा वैष्णवने श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो–महाराज! हम तो तीनही जने हैं। और आपने चार पातरि कौन २ की धरी हैं। इहां तो और वैष्णव कोइ दीसत नांही।

तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो–वह तुमारे संग ब्राह्मण आयो है, जाकों तुम पार छोड़ि आये हो। सो वह कौन के घर जायगो ?

तब ए वचन श्रीगुसांईजी के सुनिके तीनो जने लज्जित भये। और कहे जो–जा बात तें देखो हम डरपत हते जो–हमारी हाँसी श्रीगोकुलमें न होय तो आछो है, सो यहां तो सब पहले ही प्रसिद्ध होय रही है। एसे कहिके वे तीनो जने अत्यत सोच करन लागे।

सो श्रीगुसांईजी वा क्षत्री सों कहे जो–तुम सोच काहेको करत हो ? वह तो दैवी जीव है, जो तुमारो संग पाइके इहां आयो है। सो अव तुमकों दुख न देहिगो।

एसे वासों कहिके एक ब्रजवासी कों बुलायके आज्ञा दीनी जो–तू पार जाइके तहां श्रीजमुनाजी के तीर एक नंददास ब्राह्मण बेठ्यो है, ताकों बुलाय लाव।

तब वह व्रजवासी तत्काल आइके नावमें बेठिके पार को चल्यो। और नंददास कों तो उन मलाहनने नावपे सों उतारि दियो, सो श्री जमुनाजी के तीर बेठे बेठे श्रीजमुनाजी के आगे विज्ञप्ति के पद गावन लागे। सो पद–

राग रामकली–१ 'नेह कारन श्रीजमुना प्रथमआइ' २ 'भक्त पर कर कृपा श्रीजमुनाजू एसी' ३ 'श्रीजमुने २ जो गावे'

सो या भांति नंददास तो श्रीजमुनाजी के तीर बेठे बेठे श्रीजमुनाजी की स्तुति करत हे।

इतने में वह ब्रजवासी जाकों श्रीगुसांईजीने नंददासकों लेवे पठायो हतो, सो नाव लेके पार जाय पहुंच्यो। सो तहां जायके पूछ्यो जो–नंददास ब्राह्मण कहां है? तब इन कही जो– नंददास ब्राह्मण तो मैं ही हूं। तब वा ब्रजवासीने नंददास सों कह्यो जो– तुमकों श्रीगुसांईजीने बुलाये हैं, और यह नाव पठाई है, तामें तुम बेठिके बेगि चलो।

तब तो नंददास प्रसन्न होइके श्रीजमुनाजीकों दंडवत करिके, श्रीगोकुल कों दंडवत करि पाछे नाव में बेठके पार आये। और आयके श्रीगुसांईजी को दरशन करिके साष्टांग दंडवत करी। सो दरशन करत ही नंददास की बुद्धि निरमल होय गई।

तब तो श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरि बिनती करी जो– महाराज! मैं जब तें जनम पायो, तब तें विषय करत ही जनम गयो। और आप तो परम कृपालु हो, मेरे ऊपर कृपा करिके मोकों अपनी शरण लीजे।

सो एसे दैन्यता के वचन नंददास के सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये। तब श्रीगुसांईजी श्रीमुख तें आज्ञा किये जो – नंददास! जाओ, स्नान करिके अपरस ही में इहां आइयो।

तब नंददास वेसेही स्नान करिके अपरसही में श्रीगुसांईजी के पास आये। पाछे श्रीगुसांईजीने नंददास को नाम-निवेदन (भावात्मक रुप सों) करवायो। तब श्रीगुसांईजी को स्वरूप नंददास के हृदयारूढ भयो, ता समे नंददासने यह कीर्तन

कियो। सो पद– राग बिलावल। 'जयति श्रीरुक्मिनी–नाथ, पद्मावती–प्राणपति* विप्रकुल–छत्र आनंदकारी० '।

नंददासने यह कीर्तन गायो। सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीगुसांईजी नंददास कों आज्ञा दीनी जो – तेरी महाप्रसाद की पातर धरी है, सो जाइके महाप्रसाद लेवो।

सो नंददास आइके महाप्रसादी रसोई–घरमें जायके श्रीगुसांईजी की जूठन को प्रसाद लेन लागे। सो लेत ही स्वरूपानंद को अनुभव होन लग्यो। सो नंददास तो देह को अनुसंधान भूलि गये, और जहां के तहां बेठे रहि गये। सो हाथ धोयवे की हू सुधि न रही।

जब उत्थापन को समय भयो, तब भीतरियाने आइके श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो – महाराजाधिराज ! नंददासजी तो महाप्रसाद लेके उहांई बेठि रहे हैं, उठे नांही हैं। तब श्री-गुसांईजीने उन भीतरिया सों कह्यो जो – उहां तुम नंददास तें कोऊ बोलो मति।

ता पाछे चारि प्रहर रात्रि गई तोऊ नंददास कों देह की सुधि न रही।

ता पाछे दूसरे दिन प्रातःकाल नंददास के पास श्री-गुसांईजी पधारे। तब श्रीगुसांईजीने नंददास के कानमें कह्यो जो – उठो नंददास ! दरशन को समय भयो है। तब

---

* यह पद सं. १६२४ के बादका है। देखो गुजराती अष्टछाप –सम्पादक

नंददास उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत करी । ता समे नंददासने यह कीर्तन कियो। सो पद—

राग बिभास । १ प्रात समे श्रीवल्लभसुत को पुन्य पवित्र विमल जस गाऊं० । २ प्रात समे श्रीवल्लभसुत को उठत ही रसना लीजे नाम०।

सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तो मंदिर में पधारे और नंददास आप देह कृत्य करिवे गये। ता पाछे श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन को समय भयो। सो नंददास श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करिके बहोत प्रसन्न भये। तब नंददासने यह पद गायो। सो पद-

राग बिलावल। १ 'गोपाल ललन कों गोद भरि जसुमति हुलरावति०'।

यह कीर्तन नन्ददासने तहां गायो। सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये। तब नंददास ने श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरि साष्टांग दंडवत करिके कह्यो जो—महाराज! मोसे पतित को उद्धार करोगे? सो वे नंददास श्रीगुसांइजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-२

और एक समय श्रीगुसांईजी रात्रिको अपनी बेठक में बिराजे हते। तब आप आज्ञा करे जो—कालि श्रीनाथजीद्वार अवश्य जानो। तब नंददासने बिनती कीनी जो—महाराजाधिराज! जेसे आपु कृपा करिके श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करवाये, तेसे श्रीनाथजी के दरशन करवावो।

ता पाछे प्रात भये श्रीनवनीतप्रियजी के मंगलाके दर्शन करिके, शृंगार राजभोग करिके श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे, और नन्ददास को हू संग लिये। सो उत्थापन के समय श्रीगिरिराज आइ पहोंचे। श्रीगुसांईजी तो न्हायके मंदिर में पधारे।

समो भयो तब दरशन को टेरा खुल्यो। सो नंददास श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करिके बहोत प्रसन्न भये। ता समे नन्ददासने यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग नट। 'सोहत सुरंग दुरंग पाग कुरंग ललना केसे लोइन लोने० ।

यह कीर्तन नन्ददासने गायो, सो श्रीगुसांईजी मंदिर में सुने। पाछे टेरा खेंचि लियो। ता पाछे परमानन्द में नन्ददासने बेठे २ और हू कीर्तन किये। पाछे संध्यार्ति के दरशन खुले तब नन्ददासने दरशन करिके यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग गोरी। १ बन तें सखन संग गायन के पाछे पाछे आवत० । २ बनतें आवत गावत गोरी० । ३ देखि सखी हरि को बदन सरोज० । ४ नंदमहरि के मिषही मिष आवे गोकुलकी नारी० ।

सो या भांति सों नन्ददासने बहोत कीर्तन किये।

ता पाछे नन्ददास छ मास पर्यंत सूरदासजी के संग परासोली में रहे, पाछे श्रीगोकुल में रहे। सो श्रीगुसांईजी नन्ददास ऊपर सदा प्रसन्न रहते। वे नन्ददास एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–३

और एक समय श्रीमथुराजी को एक संघ पूरब कों चल्यो, गयाश्राद्ध करिवे कों। ता संघ में दस पांच वैष्णव हू हते। सो कितेक दिन में वह संघ पूरब कों चल्यो, काशीजी जाइ पहुंच्यो।

तब तुलसीदासजीने सुन्यो जो – संघ आयो है। तब वा संघ में तुलसीदासजीने आइके पूछी जो – एक नन्ददास ब्राह्मण इहां तें गयो है, सो मथुराजी में सुन्यो है। सो तुमने कहुं देख्यो होय तो कहो।

तब एक वैष्णवने कही जो-तुलसीदासजी! एक नन्ददास तो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है। सो वह नन्ददास पहले तो अत्यंत विषयी हतो, सो अब तो बडोही कृपापात्र भगवदीय भयो है!

तब तुलसीदासजी अपने मनमें बिचारे जो – एसो तो वही नन्ददास है, सो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है। जो अब तो उन कों मेरी शिक्षा न लगेगी।

तब तुलसीदासजीने उन वैष्णवन सों कह्यो जो – मैं तुमकों एक पत्र देउं, ताको जुवाब तुम मोकों मगाय देउगे?

तब उन वैष्णवनने तुलसीदासजी सों कही जो– काल मेरो मनुष्य श्रीगोकुल कों चलेगो। जो तुमकों पत्र देनो होय तो लिखके बेगि त्यार करियो। तब तुलसीदासजीने ताही समे पत्र लिखिके तैयार कियो। तामें लिख्यो जो– तू पतिव्रतधर्म

छोड़ि व्यभिचार धर्म लियो, सो आछो नांही कियो। अब तू आवे तो फेरि तोकों पतिव्रतधर्म बताऊं।

यह पत्र तुलसीदासजीने वा वैष्णव के हाथ दियो। सो वह पत्र अपने पत्रन में धरिके वा वैष्णवने कासिद के हाथ दियो। सो वह पत्र लेके श्रीगोकुल आयो। तब कासिदने दंडवत करिके वे पत्र श्रीगुसांईजी के आगे धरे। तब उन पत्रन में नंददास के नामको जो पत्र हतो सो निकस्यो। तब श्रीगुसांईजीने वह पत्र बांचि के नंददास कों बुलायके दियो।

तब नंददासने वह पत्र लेके बांच्यो। पाछे वा पत्र को प्रतिउत्तर लिख्यो जो–मेरो तो प्रथम रामचन्द्रजी सों विवाह भयो हतो। सो बीचमें श्रीकृष्ण दोरि आइके लूटि ले गये। सो रामचन्द्रजी में जो बल होतो तो मोकों श्रीकृष्ण केसे ले जाते? और श्रीरामचन्द्रजी तो एकपत्नी व्रत हैं। सो दूसरी पत्नीनकुं केसे संभार सकेंगे? एक पत्नी हू बरावर संभारि न सके, सो रावण हरिके ले गयो। और श्रीकृष्ण तो अनंत अबलान के स्वामी हैं, और इनकी पत्नी भये पाछे कोई प्रकार को भय रहे नांही है। एक कालावच्छिन्न अनंत पत्नीनकुँ सुख देत हैं। जासों मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं। सो जानोगे। सो मैं तो अब तन, मन, धन यह लोक, परलोक श्रीकृष्ण कों दीनो है। (और) अब तो मैं परवश होइके पर्यो हूं।

एसो नंददासने तुलसीदासजी कों पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो पद–

राग आशावरी–१ 'कृष्णनाम जबतें श्रवण सुन्यो री आली ! भूलि री भवन हों। तो बावरी भई री०' ।

यह कीर्तन नंददासने वा पत्र में लिखिके वह पत्र कासिद कों दियो । सो वह कासिद कितेक दिननमें कासीजीमें आयो । सो वे पत्र सब वैष्णवन कों दिये ।

तब उन वैष्णवनने वह नंददास को पत्र बांचिके तुलसीदासजी कों बुलायके दीनो। पाछे तुलसीदासजीने नंददास को पत्र बांचिके अपने मनमें जान्यो जो– अब नंददास इहां कबहूं न आवेगो। एसो जानिके तुलसीदासजी अपने घर आये।

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजीके एसे कृपापात्र भगवदीय भये । जिनकों श्रीगुसांईजीके स्वरूप में एसो दृढ भाव हतो।

वार्ता प्रसंग–४

औ एक समे तुलसीदासजीने विचार कियो जो– नन्ददास श्रीगोकुल में है, सो मैं जाइके लिवाय लाऊं । यह विचारिके तुलसीदासजी काशीजीतें चले, सो कितेक दिनमें श्रीमथुराजीमें आइ पहोंचे ।

तब मथुराजी में पूछे जो– इहां नन्ददास ब्राह्मण काशीतें आयो है, सो तुम जानत होउ तो बताओ, जो– वह कहां होयगो ? तब काहूने कह्यो जो– एक नन्ददास तो आइके श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है, सो तो गोकुल होयगो, या गिरिराज होयगो ।

तब तुलसीदासजी प्रथम तो श्रीगोकुल आये । सो श्रीगोकुलकी शोभा देखिके तुलसीदासजी को मन बहुत ही प्रसन्न

भयो। पाछे तुलसीदासजी मनमें बिचारे जो-एसो स्थल छोड़िके नन्ददास केसे चलेगो ?

तब तुलसीदासजीने तहां पूछ्यो जो-एक नन्ददास ब्राह्मण है, सो कहां होयगो ? तब काहूने कही, जो-एक नन्ददास तो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है। सो श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजीद्वार गये हैं, सो उहांही होयगो।

तब तुलसीदासजी फेर मथुरा में आयके श्रीयमुनाजी के दर्शन करे, पाछे तहांते श्रीगिरिराजजी गये। सो उहां परासोलीमें तुलसीदासजी नन्ददासकूं मिले।

पाछे तुलसीदासजीने नन्ददास सों कही जो-तुम हमारे संग चलो। सो गाम रुचे तो अयोध्यामें रहो, पुरी रुचे तो काशीमें रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो, वन रुचे तो दंडकारण्य में रहो। एसे बड़े बड़े धाम श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र करे हैं।

तब नन्ददासने उत्तर देयवेकुं ये पद गायो। सो पद—

'जो गिरि रुचे तो वसो श्रीगोवर्द्धन, गाम रुचे तो वसो नंदगाम। नगर रुचे तो वसो श्रीमधुपुरी सोभा-सागर अति अभिराम ॥ १ ॥

सरिता रुचे तो वसो श्रीयमुनातट, सकल मनोरथ, पूरन काम। नन्ददास कानन रुचे तो वसो भूमि वृंदावन धाम ॥२॥

पाछे नन्ददास सूरदासजी सों मिलिके श्रीनाथजी के दर्शन करवेकुं गये। तब तुलसीदासजी हू उनके पाछे पाछे गये। जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे तब तुलसीदासजीने

माथो नमायो नहीं। तब नन्ददास जानि गये, जो- ये श्री-
रामचन्द्रजी बिना और दूसरेकों नहीं नमे हैं। नन्ददासने
मनमें बिचार कीनो जो- यहां और श्रीगोकुलमें इनकों श्रीराम-
चन्द्रजी के दर्शन कराउं। तब ये श्रीकृष्ण को प्रभाव जानेंगे।
पाछे- नन्ददासने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिनती करी।
सो दोहा-

कहा कहूं छबि आज की, भले बने हो नाथ,
तुलसी-मस्तक तब नमे, धनुषबाण लो हाथ ॥

यह बात सुनिके श्रीनाथजी कों श्रीगुसांईजीकी कानतें बिचार
भयो, जो- श्रीगुसांईजी के सेवक कहै, सो हमकुं मान्यो चहिये।

पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजीने श्रीरामचन्द्रजीको रूप धरिके
तुलसीदासजीकों दर्शन दिये। तब तुलसीदासजीने श्रीगोवर्द्धन-
नाथजीकों साष्टांग दंडवत् करी।

जब तुलसीदासजी दर्शन करिके बाहर आये, तब नन्द-
दास श्रीगोकुल चले। तब तुलसीदासजी हू संग संग आये।
तब आयके नन्ददासने श्रीगुसांईजी के दर्शन करि साष्टांग
दंडवत करी और तुलसीदासजीने दंडवत् करी नांहि।

पाछे नन्ददासकों तुलसीदासजीने कही जो- जैसे दर्शन
तुमने वहां कराये वेसेही यहां करावो। तब नन्ददासने
श्रीगुसांईजी सों बिनती करी- ये मेरे भाई तुलसीदास हैं। सो
श्रीरामचन्द्रजी बिना और कों नहीं नमे हैं।

तब श्रीगुसांईजीने कही जो- तुलसीदासजी ! बेठो।

ता समे श्रीगुसांईजीके पांचमे पुत्र श्रीरघुनाथजी वहां

ठाड़े हुते, और उन दिनन में श्रीरघुनाथजी को विवाह भयो हुतो। जब श्रीगुसांईजीने कही जो– श्रीरामचन्द्रजी! तुमारे सेवक आये हैं, इनको दर्शन देवो। तब श्रीरघुनाथलालजीने तथा श्रीजानकीबहूजीने श्रीरामचन्द्रजीको तथा श्रीजानकी-जी को स्वरूप धरिके दर्शन दिये। तब तुलसीदासजीने साष्टांग दंडवत करी।

पाछे तुलसीदासजी दर्शन करिके बहोत प्रसन्न भये। और यह पद गायो। सो पद—

'वरनों अवधि श्रीगोकुल गाम। वहां सरजू यहां यमुना एकहो नाम०'।

ता पाछे तुलसीदासजीने श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके कह्यो–जो महाराज! नंददास तो पहले बड़ो विषयी हतो, सो अब तो याकों बड़ी अनन्य भक्ति भई है, ताको कारण कहा है?

तब श्रीगुसांईजीने तुलसीदासजी सों कह्यो जो–नंददास उत्तम पात्र हुते, यातें पुष्टिमार्ग में आयके प्रवृत्त भये। और अब व्यसन अवस्था याकों सिद्ध भई है। सो अब वे द्रढ भये है। तब श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के बचन सुनिके तुलसी-दासजी प्रसन्न होय श्रीगुसांईजी को दंडवत् करिके पाछे आप विदा होय काशी आये

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगव-दीय हते। जिनके कहेतें श्रीगोवर्द्धननाथजी कों तथा श्रीरघु-नाथलालजी कों श्रीरामचन्द्रजी को स्वरूप धरिके दर्शन देने पड़े।

वार्ता प्रसंग–५

सो एक दिन नंददास के मनमें एसी आई जो– जेसें तुलसीदासजीने रामायण भाषा किये हैं, तेसे हमहू श्रीमद्-भागवत भाषा करें। पाछे नंददासने श्रीमद्भागवत दशम भाषा संपूरण कियो।

तब मथुरा के सब पंडित मिलिके श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी, जो महाराज! हम श्रीभागवत की कथा कहिके निरवाह करत हते, सो तुमारे सेवक नंददासजीने भाषा में श्रीभागवत कही है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो। तातें अब हमारी जीविका तो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है।

तब श्रीगुसांईजीने नंददास कों बुलायके कह्यो जो– नन्ददास! तुमने जो श्रीमद् भागवत भाषा में कीनो है, सो इन ब्राह्मणन की जीविका में हानि होत है। तासों तुम व्रज-लीला तो पंचाध्याई तांई की राखो और सब श्रीजमुनाजी में पधराय देवो।

सो नन्ददासने श्रीगुसांईजी की आज्ञा प्रमाण मानिके व्रजलीला तांई (भागवत) राखी, और सब श्रीजमुनाजी में पधराय दीनी।

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे आज्ञाकारी और बड़े कृपापात्र हते।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समे अकबर पात्शाह और बीरबल श्रीमथुराजी आये, सो बीरबल श्रीगुसांईजी के दर्शन कों आयो। सो

श्रीनाथजीद्वार श्रीगुसांईजी पधारे हते, और श्रीगिरधरजी घर हते सो–बीरबल श्रीगिरिधरजी के दरशन करिके अकबर पात्शाह के पास आये। तब पात्साहने पूछी जो–बीरबल ! तू कहां गया था ? तब बीरबल ने कह्यो जो–दीक्षितजी के दरशन को श्रीगोकुल गया था। सो श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजी के दरशन को श्रीगोवर्द्धन पधारे हैं, और उनके पुत्र श्री गिरधरजी घर थे, सो उनके दरशन करके आया हूं।

तब पात्साहने बीरबल सों कह्यो जो–दिन दो में हमभी श्रीगोवर्द्धन चलेंगे, वहां से तुम जाकर दीक्षितजी के दर्शन करआना।

ता पाछे दिन दोय में अकबर पात्साह के डेरा गोवर्द्धन मानसी गंगापे भये। तब बीरबल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों गोपालपुर आये। सो दरशन करिके श्रीगुसांइजी को दंडवत् करिके ता पाछे अपने डेरा आयो।

पाछे नन्ददासने सुनी जो–अकबर पात्साह के डेरा गोवर्द्धन में मानसी गंगापे भये हैं। सो अकबर पात्साह के एक लोंडी हती। सो वह श्रीगुसांइजी की सेवक हती। ताके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी बड़ी कृपा करते, वाकों दर्शन देते।

वा लोंडी सों और नन्ददास सों बडी प्रीति हती। सो नन्ददास वा लोंडी सों मिलिवे को मानसी गंगापे आये। सो तहां वा लोंडी को ढूंढन लागे। सो वह लोंडी एक एकांत ठौर में बिलछू पे वृक्षन की लतान की तरें रसोई करत हती। सो रसोई करिके भोग धरयो हो। तहां श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु पधारे हुते। सो नंददास ता समे श्रीगोवर्द्धननाथजी

कों देखे। सो दरशन करिके नन्ददास बहोत ही प्रसन्न भये। और कह्यो जो–याके बड़े भाग्य हैं।

ता पाछे नन्ददास एक वृक्ष की ओटमें ठाड़े रहिके यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग टोडी–

चित्र सराहत चितवति दुरि मुरि गोपी बहोत सयानी० ।

यह कीर्तन तहां नंददास ने गायो। तब जाने जो– इहां नन्ददास आये हैं। तब वा लोंडीने चारों ओर देख्यो। तब देखे तो–एक वृक्ष की ओट में नन्ददास ठाडे हैं। तब वा लोंडीने नन्ददास सों कह्यो, जो–तुम एसे छिपके क्यों ठाड़े हो ? मेरे पास क्यों नांहि आवत हो ?

तब नन्ददास ने कही जो– राजभोग को समो हतो, श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगवे पधारे हते, तातें हों इहां ठाड़ो होय रह्यो।

ता पाछे भोग सरायके अनोसर करायके कह्यो जो– मैं तुमतें कही नांही सकत हों, परि श्रीनाथजी को महाप्रसाद है, तामे हू दूध की सामग्री है। तामें तुमारो मन प्रसन्न होय सो लेउ। काहेतें जो– तुम ब्राह्मण हो।

तब नन्ददासने कह्यो जो–अब तो मैं रंचक २ सब सामग्री लेउंगो। तब उन दोउ जनेन ने प्रसन्नता सों महाप्रसाद लियो। ता पाछे आचमन करिके बेठे। तब वा लोंडी ने नन्ददास सों कह्यो जो–अब इहां ते कहूं न जानो होय तो आछो है। यहां जो– मानसीगंगा है। यह श्रीगिरिराज प्रभुनकी दया तें स्थल प्राप्त भयो है। तातें अब मैं काहू

देशमें न जांउ तो आछो है, और अब सदा तुमारो संग होय तो आछो ।

तब नन्ददासने बा लोंडी सो कह्यो जो–प्रभु एसे ही करेंगे। ता पाछे लोंडी ने कह्यो जो–अब इन आंखनिसों लौकिक को देखनो उचित नांही है ।

पाछे नन्ददास रात्रि कों अपने स्थान मानसीगंगा पे जाय रहे । और प्रातःकाल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों आये, सो गोवर्द्धननाथजी के दरशन किये । और श्रीगुसांईजी के दरशन किये ।

ता पाछे अकबर पात्साह के आगे तानसेन रात्रिकों गायवे आये । सो तहां नन्ददास को कियो पद तान-सेनने गायो । सो पद–

राग केदारो ।

'देखो री ! देखो नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट०'

× × ×

(अंतमे) 'नंददास गावत तहां निपट निकट'

यह नन्ददासको कीयो पद सुनिके अकबर पात्साहने तानसेन सों पूछी जो – जिसने यह पद बनाया है, सो कहां है ? तब बीरबल ने अकबर पात्साह सों कह्यो जो – साहब ! वह तो यहां ही है, श्रीनाथजीद्वार में रहता है । बड़ा कवि और भगवदीय है ।

तब देसाधिपति ने बीरबल सों कह्यो जो – इसी घडी उनको इहां बुलावो । तब बीरबल ने पातसाह सों कह्यो जो – साहब ! वह इस भांति से तो यहां न आवेंगे। मैं कल जाकर लिवा लाउंगा ।

ता पाछे दूसरे दिन बीरबल गोपालपुर आये। तब श्रीगुसांईजीके दरशन किये। ता पाछे नन्ददास सों बीरबलने कह्यो जो– नन्ददासजी! तुमकों अकबर पातसाहने बुलाये हैं। तब नन्ददासने बीरबल सों कह्यो जो– मोकों अकबर पातसाह सों कहा प्रयोजन है? मोकों कछु द्रव्यकी चाहना नांहि। जो– मैं जाऊं। और मेरे कछु द्रव्य नांही जो– अकबर पातसाह लेइगो। तातें हमारो कहा काम हैं?

तब बीरबलने कह्यो जो– तुम न चलोगे तो अकबर पातसाह ही तुमारे पास आवेगो।

तब नन्ददासने कही जो– तुम इहां वाको मति लावो। इहां भीड को काम नांही है। तातें मैं सेन आरती पाछे श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके मानसी गंगा आउंगो।

पाछे नंददास सेन आरती के दरशन करि, श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके विदा होयके मानसीगंगा आये! सो तहां अकबर पात्साह और बीरबल दोउ जनें बेठे हते। सो नंददास कों देखिके पातसाहने सन्मान करिके बेठाये।

ता पाछें अकबर पात्साह ने नंददास सों कह्यो जो– तुमने रास को पद बनायो है, तामें तुमने कह्यो हे जो– 'नंददास गावे तहां निपट निकट' सो इतनो झूठ क्यों बोलत हो? जो तुम कहो जो– कौंन भांति सों निकट आये?

तब नंददासने पातसाह सों कह्यो जो– मेरे कहे को तुमकों विश्वास न होयगो। सो तुमारे घर में फलानी (रूपमंजरी?) लोंडी है तासों तुम पूछ लेउ, जो वह जानत हैं।

तब अकबर पातसाहने बीरबल कों तो नंददास के पास बेठाये, और आप अपने डेरामें जायके वा लोंडी सो पूछी,

जो- यह रास को पद नंददास ने गायो है, सो ताको अभिप्राय कहा है?

तब यह बचन पातसाह के सुनिके वह लोंडी पछाड खायके गिरि परी, सो देह छूटि गई। सो वह लीलामें जायके प्राप्त भई। तब देसाधिपति नंददास के पास दोरे आये। सो इहां आयके देखे तो नन्ददास की हू देह छूटि गई है। सो एउ लीला में जायके प्राप्त भये।

तब अकबर पातसाह कों बडो आश्चर्य भयो। तब वाने बीरबल सों पूंछी जो- इन दोउन की देह क्यों छूटि गई? तब बीरबलने पातसाह सों कह्यो जो- साहिब! इन (नें) अपनो धर्म राख्यो। काहेतें यह बात बतांयबेमें न आवे, कहिवेमें न आवे। तासों या बात को तो यही उपाय है।

ता पाछे अकबर पातसाह अपने डेरान में आयो। ता पाछे यह बात वैष्णवनने सुनी, सो आयके यह समाचार सब श्रीगुसांईजी सों कहे, जो- महाराज! नंददासजीने मानसी गंगा पे या रीति सों देह छोडी।

तब श्रीगुसांईजीने श्रीमुखतें बहोत ही सराहना करी। जो वैष्णवकों एसेही अपनो धर्म (गुप्त) राख्यो चाहिये। जो- और के आगे कहनो नांही। सो वह नंददासजी और वह लोंडी एसे भगवदीय हते। सो दोउ जनेनने अपनो धर्म गोप्य राख्यो।

सो वह लोंडीहू एसी भगवदीय भई। और नंददासजीहू श्रीगुसांईजीके एसे कृपापात्र भगवदीय हते। जिनके ऊपर श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। और अपने स्वरूपानंदको वैभव दिखायो। तातें उनकी वार्ता कहां तांई लिखिये? ता वार्ता को पार ना आवे एसे भगवदीय भये।

इति श्री अष्ट छापकी वार्ता संपूरन।

શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ।

અષ્ટ-છાપ

ગુજરાતી ઐતિહાસિક વિભાગ

લેખક-પ્રકાશક
શ્રીદ્વારકાદાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ
શ્રીવિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી

—:૦:—

શ્રીવલ્લભાબ્દ ૪૬૩

મુદ્રક : કેશવલાલ સાંકળચંદ શાહ
ધી વીરવિજય પ્રીન્ટીંગ પ્રેસ
સલાપોસ ક્રોસ રોડ—અમદાવાદ

વૈષ્ણવોને નિવેદન

વૈષ્ણવો ! જો આજના યુગમાં તમારા સંપ્રદાય અને તેની વિશુદ્ધ સંસ્કૃતિની રક્ષાની સાથે, ગૌરવયુક્ત જીવન વ્યતીત કરવું હોય તો વિના વિલંબે નીચેની મહત્વપૂર્ણ યોજનાને સ્વીકારી ભાષા-સાહિત્યના પ્રચારને સમ્પૂર્ણ બળથી સ્વીકાર કરો.

એ તો ઇતિહાસથી સર્વ વિદિત છે કે જે દેશ, સમ્પ્રદાય કે સંસ્થામાં તેના પોષક ભાષા-સાહિત્યનો જેટલા અંશમાં અભાવ જોવામાં આવે છે તેટલા જ અંશમાં તેના અસ્તિત્વનો પણ ક્ષય અવશ્યંભાવી હોય છે. અતઃ આપને પણ અમારી એજ પ્રાર્થના છે કે આ યોજના ઉપર સત્વર ધ્યાન આપી સક્રિય બનો—

પુષ્ટિમાર્ગના સક્રિય અસ્તિત્વને અર્થે તેના પ્રાકટ્ય કર્તા શ્રીમદ્ વલ્લભાચાર્યજીના સ્વરૂપના યથાર્થ માહાત્મ્યજ્ઞાનનો જનસમૂહમાં પ્રચાર કરવો અત્યાવશ્યક છે. આપશ્રીના આદર્શ ભક્તોની કૃતિઓ અને ચરિત્રોનો બાહ્ય આવિર્ભાવ મહત્વપૂર્ણ છે એમ સમજી અમે 'શ્રીવલ્લભીય–સુધા' અને 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત–કવિ' નામનો દ્વિદલાત્મક ગ્રન્થ હવે પછી બહાર પાડવાની ઇચ્છા રાખીએ છીએ અને તેમાં આપનો નિમ્નાંકિત પ્રકારે સહકાર વાંછિએ છીએ.

૧. તમારી અને તમારા મિત્રોની પાસેના અપ્રસિદ્ધ હિન્દી, ગુજરાતી વલ્લભીય–સાહિત્ય (આચાર્યશ્રી અને તેમના વંશજો સંબંધીનુંજ)ની અપેક્ષા.

૨. વલ્લભીય કવિઓની અપ્રસિદ્ધ પ્રામાણિક જનશ્રુતિ, એવં આંતર, બાહ્ય પૂરાવાઓની અપેક્ષા.

૩. લાગવગ ધરાવતાં ટ્રસ્ટકેડો અને સજ્જનો પાસેથી આર્થિક સહાય.

[આ સંબંધી વિશેષ જાણવા માટે પત્ર–વ્યવહાર કરો.]

વિદ્યાવિભાગ—કાંકરોલી

श्रीद्वारकेशो जयति।

પ્રસ્તાવના

——:o:——

વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્યનો ઇતિહાસ
અને
તેની પ્રામાણિકતા

યદ્યપિ વિશ્વમાં સર્વોપરિ મનાતી આર્ય-સંસ્કૃતિની ભાવનાનુસાર, સ્વરૂપ–સમ્પન્ન બ્રહ્મ અને નામ–સમ્પન્ન **વ્રજભાષા–સાહિત્યના** વેદ જેમ સ્વતઃ સિદ્ધ મનાય છે તેમ સ્વ-**પ્રચારનું મુખ્ય કારણ** સમ્પ્રદાયની ભાવનામાં તેનું વ્રજભાષા–સાહિત્ય પણ એ જ પ્રકારે સ્વયંસિદ્ધ મનાતું આવ્યું છે; તથાપિ સાહિત્યિક–દૃષ્ટિએ તેનું નિર્માણ કોણે, ક્યા પ્રકારે, કેવા કાળમાં, કેમ કર્યું તે પરત્વે ગંભીર વિચારની આવશ્યકતા છે.

મુદ્રિત, અમુદ્રિત લગભગ સારાયે ભાષા–સાહિત્યના મુખ્ય મુખ્ય ગ્રન્થોના અધ્યયન એવં મનન પશ્ચાત્ વીસ વર્ષના મારા અનુભવે મને તે સંબંધી નિમ્ન–પ્રકારનો નિશ્ચય આપ્યો છે–

'अर्थं तस्य विवेचितुं नहि विभुर्वैश्वानराद्वाक्पते,
रन्यस्तत्र विधाय मानुपतनुं मां व्यासवच्छ्रीपतिः।
दत्त्वाऽऽज्ञां च कृपावलोकनपटुर्यस्मादतोऽहं मुदा,
गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम्× ॥

× જો કે મૂઢ પુરુષો આ શ્લોકને પ્રક્ષિપ્ત અથવા તો આત્મશ્લાઘાવત્ કહી જગદ્ગુરુ પરત્વે પ્રમત્ત પ્રલાપ કરે છે, તથાપિ એ અલ્પજ્ઞો જો ગીતા આદિનાં '**तस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः**' તથા '**यदा यदा हि धर्मस्य**' ઇત્યાદિ સ્વસ્વરૂપ એવં સ્વપ્રાકટ્ય–પ્રયોજનદર્શક શ્લોકોને ધ્યાનમાં લે, તો તેમને પોતાના કરેલા પ્રમત્ત પ્રલાપ ઉપર વિલાપ કરવાની નિતાન્ત આવશ્યકતા જણાઈ રહેશે. મહાપુરુષો પૃથ્વી ઉપર પ્રકટ થઈ પોતાનાં સ્વરૂપ એવં પ્રાકટ્ય–

ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં દર્શાવેલી ભગવદાજ્ઞાના પાલનને અર્થે એ વિભુવદનાનલે ભૂમિ ઉપર પ્રકટ થઈ પોતાના પ્રાકટ્ય–હેતુને નિમ્ન પ્રકારે સિદ્ધ કર્યો—

સ્વલ્પ વયે જ એ 'વૈશ્વાનરે' તત્કાલિન પ્રસિદ્ધ પાટનગરો એવં તીર્થ–સ્થળોમાં વારંવાર પધારી સ્વતેજથી પ્રથમ ત્યાંનાં માયાવાદાચ્છાદિત આવરણોને ભસ્મીભૂત કર્યાં. અનન્તર એ 'વિભુ'એ વિશુદ્ધ બ્રહ્મવાદી શુદ્ધાદ્વૈત જ્ઞાનાકાશને પુનઃ નિર્મળ કર્યું. અને તેમાં વિદ્વાનો એવં સમ્રાટોદ્વારા વારંવાર પોતે 'કનક'× આદિના અભિષેકોથી સમ્માનિત થઈ 'ભક્તિ–માર્તંડ' રૂપે સ્થિત થયા.

એ દિવ્ય માર્તંડે સારાયે ભારતવર્ષમાં વ્યાપ્ત તે સમયની બાહ્યાભ્યંતર–રાજકીય એવં ધાર્મિક વિપ્લવરૂપ–અશાન્તિને પોતાનાં ઉગ્ર તત્ત્વાદિ કિરણોથી નષ્ટ કરી, એક અત્યદ્‌ભુત કૃષ્ણ–ભક્તિના સ્રોતને સ્વ–આત્માનંદમાંથી બાહ્ય પ્રકટ કર્યો. અને તપ્ત તથા તૃષિત જીવોને તેના પાન માટે આહ્વાન કર્યું.

વ્રજનરેશનંદનની ભાગવતોક્ત ગૂઢાર્થમયી તે ભક્તિનું પાન સર્વસાધારણ ને સુલભ કરવાને અર્થે એ 'વાગીશે' નાના ગ્રન્થોના નિર્માણદ્વારા ફલમાર્ગને નિશ્ચિત કર્યો. અને તે માર્ગ–વૃક્ષની શીતલ છાયામાં દમલા, પદ્મનાભ, કુંભન એવં સૂરદાસાદિ મહાનુભાવોને એકત્રિત કર્યા.

પ્રયોજનોને આત્મવિશ્વાસ ભર્યાં વાક્યો દ્વારા પ્રકટ કરી સામાન્ય પુરુષોથી પોતાની વિલક્ષણતાને લોકહિતાર્થે સૃષ્ટિમાં સિદ્ધ કરે છે, જેના અનેક ઇતિહાસો સાક્ષી–દાતા છે. —લેખક.

× હરિહરભટ્ટના સં. ૧૬૬૦ ના લખેલા 'વિષ્ણુસ્વામિચરિત' નામક સંસ્કૃત ગ્રન્થમાં પણ 'કનકાભિષેક'નો એક વધુ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત થયો છે.

અનન્તર તેમના યશોગાનથી સંહૃષ્ટ થયેલા એ 'રાસલીલૈકતાત્પર્યે' એમને વ્રજભક્તોના સમ્બન્ધવાળી રાસાદિ લીલાઓથી પ્લાવિત કર્યાં. અને ફલતઃ તેમની દ્વારા એ વ્રજભક્તોના પૂર્ણ સંબંધને પ્રાપ્ત થયેલી રસમયી પ્રાકૃતિક–અકૃત્રિમ, સ્વાભાવિક–વ્રજભાષાને ભક્તિ સાહિત્ય–ક્ષેત્રમાં ખેંચી, તેને તેનું પ્રધાનપદ આપ્યું.

પશ્ચાત્ તે ભાષા–ક્ષેત્રને વિસ્તૃત બનાવવાને અર્થે એ 'મહાપ્રભુ'એ સૂરદાસાદિની વાણીમાં સ્વસુધાને મિશ્રિત કરી તેનું 'મણિ–કાંચન' યોગરૂપે સમ્પાદન કર્યું.

એ પ્રકારે વ્રજભાષા–સાહિત્યનો આવિર્ભાવ કરી એ 'વૈશ્વાનરે' સર્વત્ર જનસાધારણમાં પણ ભાગવતના ગૂઢાર્થને સર્વાનુભવગોચર કર્યો. અને તે દ્વારા પોતાનું પ્રાકટ્ય–પ્રયોજન લોકમાં સિદ્ધ કર્યું.

તે સમયથી તત્કાલીન હિન્દી સ્વરૂપિણી એ વ્રજભાષા આપની છત્રછાયા નીચે ફલી ફૂલી અને સદાને માટે 'વાક્પતિ'ની કૃતજ્ઞ બની. જે વાત આજના તટસ્થ વિદ્વાનો પણ મુક્ત કંઠે સ્વીકારે છે.[૧]

બસ, તે જ દિવસથી વ્રજભાષા સાહિત્યનો પૂર્ણ ભાગ્યોદય થયો.

આચાર્યશ્રીએ અપનાવેલી એ વ્રજભાષા સંસ્કૃત શબ્દો અને ક્રિયાઓથી જ પરિપૂર્ણ હોઈ સાહિત્યની દષ્ટિએ પણ સંસ્કૃતના પ્રચારમાં ઘણી ઉપયોગી નીવડી. અસ્તુ.

વૈશ્વાનરના અન્તર્ધાન બાદ તેમના કુમાર 'શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે' તો પિતૃચરણથી પ્રોત્સાહિત થયેલ તે ભાષાસાહિત્યને અષ્ટછાપની સ્થાપના દ્વારા ગૌરવ શિખરે પહોંચાડયું. અને તેમાં સ્વયં પણ રચના કરીને,

---

१ व्रजभाषा सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी। क्योंकि इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और उनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुंचा दिया। **रामनरेश-त्रिपाठी** । इन पितापुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बडा उपकार किया। **मिश्रबन्धु**.

'ભાષા'ને 'ભાખા' કહી તિરસ્કૃત કરનારા વિદ્વાનોના સમક્ષ ભવ્ય આદર્શ વ્યાપ્યું.

યદ્યપિ આપે આચાર્ય–મર્યાદાની રક્ષણાર્થે સ્વરચનાને સંકેતાત્મક પરોક્ષ રૂપ આપ્યું તથાપિ તે દ્વારા પોતાના વ્રજભાષા પ્રતિના પક્ષપાતને ભક્ત–કવિઓ સમક્ષ વસ્તુતઃ સિદ્ધ કર્યો.

અનન્તર આપની વિદ્યમાનતામાંજ શ્રીગોકુલેશ, શ્રીરઘુનાયક આદિ આપના સુપુત્રોએ પણ ભાષામાં અનેક રચનાઓ કરી પદ્ય–સાહિત્યમાં વ્રજભાષાનું સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું, જેનો પ્રભાવ કાવ્ય–ક્ષેત્રમાં અખંડિત રૂપે આજપણ તાદશ છે.

આ પ્રકારે પિતા, પુત્ર અને તેમના વંશ તથા અષ્ટછાપાદિ સેવકોએ પણ વિશુદ્ધ વ્રજભાષા, વ્રજશૃંગાર અને વ્રજભક્તિને આર્યાવર્તના ખૂણે ખૂણે સ્થાપી સ્વ–સ્વપ્રાકટ્ય–હેતુને પૂર્ણ કર્યાં.

આમ સાહિત્યની પદ્યશૈલીને પરિપૂર્ણ કરી અગ્નિકુમાર શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે ભગવદાજ્ઞાથી પ્રેરિત થઈ વ્રજભાષાની ગદ્યશૈલી તરફ પણ મુખ માંડયું.[૧] અને તેનો પોતાના જીવનકાલ પર્યન્ત મૌખિક પ્રચાર કર્યો.

શ્રીગોકુલેશનું વ્રજભાષા નેતૃત્વ

અગ્નિકુમારના તિરોધાન અનન્તર એ ભાષાનેતૃત્વનું કાર્ય એમના ચતુર્થ પુત્ર શ્રીગોકુલેશે સંભાળ્યું. કિન્તુ આપનું નેતૃત્વ પોતાના પિતા અને પિતામહના સમય કરતાં વિલક્ષણ પ્રકારનું રહ્યું. ઉક્ત ઉભય પિતા, પુત્રના સમયમાં તો ગણત્રીના સંસ્કૃત વિદ્વાનો દ્વારા જ કેવળ ભાષા પરત્વે ઉપેક્ષાભાવ રહ્યો, પરંતુ શ્રીગોકુલેશના સમયમાં તો વિધર્મી રાજ્યનો આશ્રય પ્રાપ્ત કરી હરીફ યાવની ભાષાએ રાષ્ટ્રપદ ધારણ કર્યું હતું. યદ્યપિ એનો પ્રચાર રાજા ટોડરમલદ્વારા હિન્દુઓના આર્થિક હિતને અંગે થયો હતો તથાપિ તેને સંસ્કૃત એવં વ્રજભાષાની પ્રતિસ્પર્ધા કરતાં શનૈઃ શનૈઃ સાહિત્ય–ક્ષેત્રને પણ સ્પર્શ કરવા માંડયો.

---

૧ જુઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત.

આ વિકટ પરિસ્થિતિને અનુભવી પરમ નિપુણ એવં દૂરદર્શી શ્રીગોકુલેશે પિતૃચરણ દ્વારા પ્રસ્ફુરિત ગદ્યને જનસાધારણમાં પ્રચારિત કરી વ્રજભાષાને ઉત્તેજિત રાખવાને તત્કાલીન કથાની વાર્તાત્મક શૈલી ને અપનાવી. કેમકે તે સમયમાં લોકોની અભિરુચિ કથા, વાર્તા અને ધર્મપ્રતિ વિશેષ દેખવામાં આવતી હતી. પુરાણોની કથા વાર્તા દ્વારા લોકો ધર્મપ્રતિ એવા તો આસક્ત રહેતા કે તેને માટે તેઓ આવશ્યક પડયે પોતાનો પ્રાણ પણ અર્પણ કરતા.

એ પ્રકારે ભાષા અને ધર્મના અસ્તિત્વની સાથે અભ્યુદયાર્થે પણ શ્રીગોકુલેશે મૌખિક કથાત્મક પ્રચાર કર્યો, કિન્તુ મિથ્યા ક્રિયા, વાણી અને ધ્યાનને સર્વથા પરિત્યાગ કરનાર એ મહાપુરુષે પોતાના તે કાર્યનો વ્યક્તિત્વ, સમાજ કે સાંપ્રદાયિક પ્રતિષ્ઠાની રક્ષણાર્થે પણ આધુનિક ‘જૂઠા પ્રચાર’ (Propaganda) સાથે યત્કિંચિત્ પણ સ્પર્શ થવા દીધો નહિ, કે જેવું કેટલાક દુર્ભ્રાન્તો માને છે.

એ વાતના પુરાવામાં વાર્તાનાં અનેક દૃષ્ટાન્તોમાંના એકાદ બે આ પ્રકારે છે—

કૃષ્ણદાસ અધિકારીના વ્યક્તિત્વ અને સાંપ્રદાયિક સંબંધની પ્રતિષ્ઠાની રક્ષાર્થે પણ વેશ્યા, તથા બંગાલીની ઝૂંપડીમાં આગ લગાડવી અને ભૂત થયા આદિના પ્રસંગોને છુપાવવા આવશ્યક હોવા છતાં તે છુપાવ્યા નથી. તેવી જ રીતે નંદદાસનો રૂપમંજરી સાથેનો પ્રેમ અને સનાતની દૃષ્ટિએ ખાનપાનમાં તેની સાથેનો વ્યવહાર પણ છુપાવવામાં આવ્યો નથી. ઇત્યાદિ.

નિજવાર્તાથી વાર્તા પ્રત્યેની અનેક શંકાઓનું સહજ નિવારણ

ઉક્ત સત્યાંશની પૂર્તિમાં, શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાની માફક આચાર્યશ્રીની નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, બેઠક ચરિત્ર અને ભાવસિન્ધુને પણ સ્વગુરુ શ્રીગોકુલેશના મુખથી શ્રવણ કરી તેનું જે સંકલન કર્યું છે; તેમાં આપ, ચોરાશી સંખ્યા કેમ ? વાર્તાનો મૂળ ઉદ્દેશ્ય શો ? અને વાર્તાની પ્રામાણિક ઉત્કૃષ્ટતા આદિ પ્રશ્નો ઉપર નિમ્ન પ્રકારે સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—

'श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक तों बहोत हैं। और श्रीगोकुलनाथजी महाराज आप श्रीमुखतें चौरासी वैष्णव की वार्ता (ही क्यों) कही ताको हेतु यह है जो-(ये) चौरासी वैष्णव कैसे हते, ये मुख्य हैं, जिनकुं श्रीमहाप्रभुजी आपु प्रेमलक्षणाभक्ति कों दान किये हैं। सो कैसे जानिये सो गोविन्दस्वामी गाये हैं' जों-

'भक्ति मुक्ति देत सबहिनकों निजजनकों कृपाप्रेम बरषत अधिकाई।'

'सो कृपाप्रेमवारे को कहा लक्षण है? जो जिनसों श्रीठाकुरजी साक्षात वाही देहसों बोलत हैं, और बातें करत हैं, चहियत सो मांगि लेत हैं।'

'और श्रीगोकुलनाथजो श्रीसर्वोत्तम की टीका में पद्मनाभदास को स्वरूप लिखे हैं। तातें ए चोरासी भगवदीय कैसेहैं जैसें भगवानके गुण गायेतें जीव कृतार्थ होत हैं तेसें (इन) भगवदीन कों जस गाये तें जीव कृतार्थ होत हैं। वाही तें श्रीसुकदेवजी नवमस्कंधमें सब राजान की कथा कही। सो वे राजा भगवदीय हुते। तातें प्रथम भगवदीय की कथा कहिये तो भगवतकथा को अधिकार होय। तहीतें श्रीसुकदेवजी नवमस्कंध में भगवदीयेको चरित्र कहिके पाछे दसमस्कंध में भगवान को चरित्र कहे। ताहीतें श्रीगोकुलनाथजी चोरासी वैष्णवकी वार्ता प्रकट कीनी।'

'और श्रीगोकुलनाथजी आप कथा कहते सो एक दिन श्रीगोकुलनाथजी आप दामोदरदास संभरवारे की वार्ता करत हुते। तब एक

वैष्णव ने पूछ्यो जो महाराज ! आज कथा न कहोगे ? तब श्रीगोकुलनाथजी आप श्रीमुख तें कह्यो जो आज तो कथा कौ फल कहत हैं। तातें भगवदीयनकों अवस्य चोरासी वार्ता कहनी और सुननी जातें भगवद्भक्ति होय, और श्रीठाकुरजो के चरणारविंद में स्नेह होय और श्रीनाथजी प्रसन्न हौंय ।' (सं.१८५१ को हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।)

આથી વાર્તાના વિવેચકો સ્પષ્ટ સમજી શકશે કે—

૧ આચાર્યશ્રીના કેવળ ચોરાશી જ સેવકો ન હતા જેમ ' ભારત ધર્મકા ઇતિહાસ'માં મિ. શિવશંકર મિશ્ર લખે છે.

૨ વાર્તા શ્રીગોકુલનાથજીના સમયની છે તેના સુદૃઢ પુરાવા રૂપે સ્વયં શ્રીગોકુલેશે સંસ્કૃતમાં લખેલી શ્રીસર્વોત્તમજીની ટીકામાં પદ્મનાભદાસના તથા વલ્લભાષ્ટક ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકામાં આવેલા કૃષ્ણદાસમેઘનઆદિના વાર્તાના જ અક્ષરશઃ આપેલા પ્રસંગોનાં દૃષ્ટાંતો વિદ્યમાન છે.

એથી એ વાત નિર્વિવાદ છે કે શ્રીગોકુલેશના ગુજરાતી શિષ્યોએ શ્રીગોકુલેશની પાછળથી તેની રચના કરી નથી, જેમ વ્યક્તિત્વની રક્ષાને અર્થે સ્વ૦ લબ્ધપ્રતિષ્ઠ પં. રામચંદ્ર શુક્લે એમના ' हिन्दी साहित्य का इतिहास 'માં તથા નાગરી પ્રચારિણી સભા–કાશી દ્વારા પ્રકાશિત હિન્દી શબ્દકોષની પ્રસ્તાવનામાં વાર્તા પ્રતિ એક અસહ્ય અન્યાય પૂર્ણ લેખ લખીને જણાવ્યું છે તેમ– જો કે અમે એ સંબંધી એમના મન્તવ્યને સંપૂર્ણ જાણવાને તથા તેને દૂર કરાવવાને અર્થે સબળ પ્રમાણો મોકલવા તેમની સાથે અંગ્રેજીમાં પત્રવ્યવહાર પણ કર્યો હતો છતાં નાગરી પ્રચારિણીના અનેક પત્રોદ્વારા તેમની બિમારીની જ ખબરો આવતી રહેવાથી અમારો એ પ્રયત્ન સફળ ન થયો. અને હાલમાં જ તેમના સ્વર્ગવાસનું સાંભળી ચિત્તને ખેદ થયો. અસ્તુ.

૩ વાર્તાની રચના વલ્લભ સમ્પ્રદાયની ગાદીનો મહિમા વધારવા અર્થે જૂઠા પ્રચારના રૂપમાં કરવામાં આવી નથી, જેમ પં. રામચંદ્ર શુકલે લખ્યું છે, કિન્તુ ભગવદ્પ્રાપ્તિનાજ ઉદ્દેશ્યથી એક ભક્તિની દૃષ્ટિએ જ તેની વાસ્તવિક અનુભવ સિદ્ધ રચના કરવામાં આવી છે-અતએવ તેમાં જ્ઞાતિ, ગૌરવ, સંબંધ આદિ ભૌતિક તત્ત્વોના પક્ષાગ્રહની ઉપેક્ષાજ રહેલી છે. કેમકે–દૃષ્ટાંત રૂપે–

નંદદાસજી ચાહે સનાઢ્ય હો કે સરયૂપારિણ, શ્રીગોકુલનાથજીને તેમ જ પુષ્ટિ સમ્પ્રદાયને તેમના જ્ઞાતિસંબંધથી કોઈ ગૌરવ અથવા અન્ય લાભ નથી. તેવીજ રીતે નંદદાસજી ચાહે રામાયણ રચયિતા તુલસીદાસના ભાઈ હો કે અન્ય તુલસીદાસના, તેથી પણ સમ્પ્રદાયને જરાયે લાભ કે હાનિ નથી. ઊલટું સમ્પ્રદાયની દૃષ્ટિએ તો મર્યાદા પરમ ભક્ત તુલસીદાસની કક્ષા પણ ગૌણજ છે, કેમકે તેમણે મીરાંની માફક સ્વઈષ્ટ શ્રીરામચંદ્રજીને અનેક પરિશ્રમ કરાવ્યા છે જેનો પુષ્ટિદૃષ્ટિથી તો બહિષ્કારજ છે. આથી પાઠકો સમજી શકશે કે વાર્તામાં ભૌતિક જૂઠો સ્વાર્થમય પ્રચાર નથી જ.

૪ સમ્પ્રદાયમાં શ્રીગોકુલેશ અને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ જેવા વાર્તાને શ્રીસુબોધિનીજીની કથાના ફલરૂપે કહે છે. અર્થાત્ પુષ્ટિમાં સાધન અને ફલનો અભેદ હોઈ ઉત્તમ અને ગૌણતાની સમાન આને ફલરૂપે કહેલું નથી, કિન્તુ આગળ ઉપર 'વાર્તા–સાહિત્યનો વાસ્તવિક ઉદ્દેશ્ય' એ પેરેગ્રાફમાં કહેવાશે તેમ તે કેવળ સુધાના અનુભવ રૂપ હોઈ શ્રીસુબોધિની આદિ ભગવલ્લીલાનિદર્શક પરમોત્કૃષ્ટ ગ્રન્થોનાયે અનુભવ–સારરૂપ છે. અતઃ પ્રા૦ વાર્તા–સાહિત્ય પ્રથમ ભાગની પ્રસ્તાવનામાં પ્રમાણરૂપ શબ્દાત્મક સંસ્કૃત સાહિત્યના ફલરૂપે આપ્તવાક્યો રૂપ વ્રજભાષા–વાર્તા–સાહિત્યને એ માટે કહેવામાં આવ્યું છે કે–વિભિન્ન શ્રેણીના જીવોની સાંપ્રદાયિક સેવા, સ્મરણ, સિદ્ધાંત અને આચારવિચાર સમેત તેના ફલના અનુભવ પરત્વેની તમામ શંકાઓનું

વિવિધ સક્રિય સંતોષપ્રદ સમાધાન સંસ્કૃત સાહિત્ય દ્વારા પૂર્ણ થઈ શકતું નથી જેવું વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્ય દ્વારા. બસ, એથીજ એની ફલરૂપતા સ્વતઃસિદ્ધ છે, તોપણ તેથી સંસ્કૃત–સાહિત્યની ગૌણતા થતી નથી, કેમકે એ ઉભય સાહિત્ય બીજ અને ફલની માફક પરસ્પર આધાર–આધેય રૂપે રહેલું છે, જેમ બીજથી ફલ અને ફલથી બીજનું અસ્તિત્વ છે. અતએવ જેમ ઈશ્વરની સર્વરૂપા શક્તિનું લીલા-ભાવના પરત્વે જ પ્રાધાન્ય ગ્રાહ્ય છે વસ્તુતઃ તો ઈશ્વરની સાથે તેનો અભેદ જ શુદ્ધાદ્વૈતરૂપે રહેલો છે તેમ સુધા–આચાર્યશ્રીના સ્વરૂપાનુભવ પરત્વે જ વ્રજભાષા–વાર્તા–સાહિત્યને શ્રીસુબોધિનીજી આદિ ગ્રન્થોની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવેલી છે, અને તેની વાસ્તવિકતાનું જ્ઞાન પણ આચાર્યશ્રીના સ્વરૂપના નિગૂઢ જ્ઞાનની સાથે સંકળાયેલું છે. અતઃ આચાર્યશ્રીના મૂળ સ્વરૂપથી વિમુખ પુરુષ–પછી ભલે તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપમાં પૂર્ણ આસક્ત કેમ ન હોય–કદી પણ આ વસ્તુનો વાસ્તવિક અનુભવ પ્રાપ્ત કરી શકશે નહિ એમ જાણીને જ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્ય પ્રતિ આ અવિરત શ્રમ કર્યો છે. જ્યારે દુરાગ્રહી અને હઠાગ્રહી સાંપ્રદાયિકો એ શ્રમને સમજશે ત્યારે વાર્તાપ્રતિના તમામ આક્ષેપો સહજ દૂર થઈ જશે, એટલું જ નહિ પરંતુ તે વાર્તા ભક્તિ અને ઐતિહાસિક હિન્દી સાહિત્ય–ક્ષેત્રમાં પણ પરમ આદરણીય બની અગ્રસ્થાનને વિના વિરોધે જરૂર પ્રાપ્ત કરશે જ એમ અમે માનીએ છીએ.

ઉક્ત પ્રકારના બીજા પણ અનેક પુરાવાઓ–કે જે અમે આગળ ઉપર આપીશું–શ્રીગોકુલનાથજીના સત્ય કથનને સિદ્ધ કરનારા ભાષા-સાહિત્યમાં વિદ્યમાન છે; અતઃ વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્યની પ્રામાણિકતા પણ નિઃસંદિગ્ધ જ છે. અસ્તુ.

પિતા અને પિતામહના અથાગ પ્રયાસે તે સમયનો હિન્દુ રાજા અને પ્રજાનો વર્ગ તો બહુધા વૈષ્ણવ જ હતો, ઉપરાંત અહિન્દુ

રાજા પ્રજાઓમાં પણ પ્રાય: વૈષ્ણવી પ્રભાવ વિદ્યમાન હતો. અત: શ્રીગોકુલેશે એ સમયનો સદુપયોગ કરી વ્રજભાષાના પ્રચારની સાથે સાથે વૈષ્ણવી ભક્તિનો ચોમેર **અનુભવ** ફેલાવવાને અર્થે તત્કાલીન સમસામયિક મહાપુરુષોનાં શિક્ષાપ્રદ એવં મનોરંજક પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાન્તોનું પણ અવલંબન કર્યું.

એ પ્રકારે શ્રીગોકુલેશે વ્રજભાષાના ગૌરવને સાચવી તેના પ્રચાર–બાહુલ્ય દ્વારા સાહિત્ય–ક્ષેત્રમાં યાવનીભાષાનું મુખમર્દન કર્યું. ફલત: તે યાવની–ભાષા રાજ્યના દફતરોમાંજ સ્તમિત રહી.

આમ છતાં શ્રીગોકુલેશનો વાર્તા–સાહિત્યના પ્રચારનો વાસ્તવિક ઉદ્દેશ્ય જુદો જ હતો. યદ્યપિ શ્રીગોકુલેશે ભાષા અને કૃષ્ણભક્તિના પ્રચારને અર્થે ઉપર કહી ગયા તેમ વાર્તા ને કથાનક શૈલી આપી સરળ રાખી અને તે દ્વારા સર્વ સાધારણ ને આકર્ષ્યાં તથાપિ તેની કૂટરચના દ્વારા તેના અર્થ ગાંભીર્યમાં મૌલિકતા સ્થાપી.

વાર્તા–સાહિત્યનો વાસ્તવિક–ઉદ્દેશ્ય

**'माहात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः ।'**

એ આચાર્યશ્રીની ભક્તિની વ્યાખ્યાને શ્રીગોકુલેશે વાર્તાના અક્ષરે અક્ષરમાં ઓતપ્રોત કરી ચરિતાર્થ કરી છે. અને તે દ્વારા પુષ્ટિભક્તિના વાસ્તવિક સ્વરૂપનો દૈવીજીવોને અનુભવ કરાવ્યો છે. **વાર્તામાં પુષ્ટિભક્તોના યથાર્થ સ્વરૂપ વર્ણન દ્વારા વસ્તુત: આચાર્યશ્રી એવં પ્રભુચરણના સ્વરૂપ–સામર્થ્યનું જે સુનિપુણ પ્રતિપાદન કર્યું છે તે અનુભવતાં** શ્રીગોકુલેશની આચાર્યશ્રી પરત્વેની પ્રગાઢ અનુભવૈકવેદ્ય બુદ્ધિનો ખાસો પરિચય થાય છે, અને વિના પ્રયાસે એમ કહેવાઈ જવાય છે કે શ્રીગોકુલેશ પણ શ્રીસૂરની માફક મહાન કૂટનીતિજ્ઞ હતા.

આપે સેવકોના તત્કાલીન પ્રસંગોદ્વારા આચાર્યશ્રીના માહાત્મ્ય-જ્ઞાનનું વાર્તામાં જે પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યું છે તેનાથી સર્વ સાધારણ દૈવી જીવોને પણ આચાર્યશ્રીના મૂળ સ્વરૂપમાં સર્વતોધિક સ્નેહ ઉદ્દભવ્યા વિના રહી શકે એમ નથી: અને એ આચાર્ય-સ્નેહજ પુષ્ટિ–ભક્તોમાં પ્રથમ અને અંતિમ કર્તવ્યરૂપ હોઈ પરમોત્કૃષ્ટ ફલરૂપ છે. અતઃ વાર્તા કૃષ્ણલીલા–નિદર્શક શ્રીસુબોધિની આદિ ફલ-કથાના પણ સુધારૂપે છે. કે જેનો અનુભવ શ્રીહરિરાયમહાપ્રભુ જેવા મહાનુભાવે કર્યો છે.

જ્યાંસુધી ભાવમયી આચાર્ય–પ્રતિમા હૃદયમાં નહિ બિરાજે ત્યાંસુધી પુષ્ટિમાર્ગનો ફલાનુભવ સેવાની લાખ ચેષ્ટાથી પણ અશક્ય જ છે, એ પ્રકારનું શ્રીગોકુલેશનું હાર્દ આચાર્યશ્રીના સેવકોની એકે એક વાર્તામાં અને એકે એક પ્રસંગમાં તરી આવે છે. જેનું શ્રીહરિ-રાયજીએ ભાવપ્રકાશ દ્વારા સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. એ હાર્દને પ્રકટ કરવાને અર્થે જ શ્રીગોકુલેશે અને શ્રીહરિરાયજીએ પણ 'વાર્તા'ને શ્રી-સુબોધિનીજીની કથાના ફલ રૂપે વર્ણવી છે.[૧]

આ મુખ્ય ઉદ્દેશ્યને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ શ્રીગોકુલેશથી જાણી તેનું રહસ્યોદ્ઘાટન ભાવપ્રકાશ દ્વારા કર્યું, જેથી વાર્તાની મહત્તા સમ્પ્રદાયમાં એટલી બધી વધી કે આજપર્યંત ગોસ્વામી મહાનુભાવો ઉપરાંત વિદ્વાન, અવિદ્વાન, સેવારસિક, વાર્તા–રસિક આદિ તમામ પ્રકારના સાંપ્રદાયિક ભક્તો તેને પ્રાણસમી અપનાવી, આર્યાવર્તની બહાર બલુચિસ્તાન આદિ સ્થળોએ પણ બેઠા બેઠા તેનું અધ્યયન કરી રહ્યા છે.

---

૧ ફલનું દૃષ્ટાંત દેવામાં શ્રીગોકુલેશનું એક ધ્યેય એ પણ છે કે જેમ વેદને નિગમકલ્પતરુ કહી ભાગવતને ફલ બતાવવાથી વેદનો અવિચ્છિન્ન સમ્બન્ધ ભાગવત સાથે રહેલો સ્પષ્ટ થાય છે તેમ શ્રી-સુબોધિનીજી અને વાર્તા વચ્ચેના સમ્બન્ધને સમજાવવાનો છે.

કિન્તુ ખેદ છે કે આધુનિક પાશ્ચાત્ય કેળવણીના સામ્પ્રદાયિક અર્ધદગ્ધ વિદ્યાર્થીઓ આ આધ્યાત્મિક તત્ત્વદર્શક વાર્તાઓને કેવળ ભૌતિક પાશ્ચાત્ય ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જોઈ તેનો ઉપયોગ તુચ્છ સ્વાર્થ પરત્વે જ કરવા ધારે છે.

વાર્તાની પૌરસ્ત્ય ઐતિહાસિક શૈલી

અમે પહેલા ભાગની પ્રસ્તાવનામાં આર્યાવર્તના ઇતિહાસની વ્યાખ્યા આપતાં એ બતાવ્યું છે કે પ્રાચીન આર્યાવર્તનો ઇતિહાસ પરંપરાપ્રાપ્ત ઉપદેશો દ્વારા ચતુર્વિધ પુરુષાર્થ પ્રતિપાદન કરવાવાળો છે, એટલે તેમાં આવશ્યકતાથી અધિક ભૌતિક ગાથાઓનો સમાવેશ જોવામાં આવતો નથી. અરે ! એટલું જ નહિ પણ શ્રી શંકર, રામાનુજ, નિમ્બાર્ક અને શ્રીવલ્લભ જેવા મહાન આચાર્યોના પ્રાકટ્ય–સંવતો તકનો ઉલ્લેખ પ્રાચીન તત્કાલીન પુરુષો દ્વારા થયેલો નથી, કેમકે આધ્યાત્મિક બાબતોમાં તે સમયના પુરુષો તેને નિરર્થક સમજતા હતા.

આમ છતાં વાર્તા–સાહિત્ય ઇતિહાસ–ક્ષેત્રથી વિમુખ રહ્યું નથી. તે સાહિત્યમાં શ્રીગોકુલનાથજીથી પણ વિશેષ શ્રીહરિરાયજીએ ઐતિહ્ય સાધનો એટલાં તો પરિષ્કૃત અને પરિવર્દ્ધિત કર્યાં છે કે તે દ્વારા નવીન ઇતિહાસલેખકો પણ સમય આદિને સ્થિર કરી શકે છે.

અલબત્ત, વાર્તાની શૈલી કથાનકરૂપ હોવાથી તે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ક્રમશઃ એવં પરિપૂર્ણ નથી. દૃષ્ટાંતમાં–કૃષ્ણદાસનો બંગાલીઓને કાઢવાનો સમય અને બંગાલીઓનો અકબરના દરબારમાં ફરિયાદનો સમય એક ન હોવા છતાં વાર્તાના પ્રસંગમાં તેની રૂપરેખા અવિચ્છિન્ન રાખવામાં આવી છે. તથાપિ ઇતિહાસજ્ઞો તત્કાલીન અન્ય ઐતિહાસિક ગ્રન્થોના આધારે તેને અલગ અલગ કરી શકે છે. અસ્તુ.

શ્રીગોકુલેશ પ્રથમ તો વ્રજભાષાનો પ્રચાર પિતૃચરણની માફક મધ્યભારત અને ગુજરાત આદિ સ્થળોએ વાર્તા કથાદ્વારા મૌખિક રૂપે નિયમિત કરતા, કિન્તુ જેમ જેમ યાવનીભાષા–ઉર્દૂ–નો વિસ્તાર રાજ્યના આશ્રયથી વધવા માંડયો તેમ તેમ આપ પણ સચેત થયા, અને તે ઘાતક પ્રચાર ભવિષ્યમાં વ્રજભાષા ઉપર અણધાર્યો પ્રહાર ન કરે એને માટે આપે ઉક્ત વાર્તાઓના વિવિધ પ્રસંગોનું સ્વશિષ્ય એવં મહાનુભાવ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ પાસે નવ્યસાહિત્યિક સંસ્કરણ કરાવ્યું. ત્યારથી એ વાર્તાઓ ગ્રન્થરૂપે પ્રસિદ્ધ થઈ. [વાર્તાનાં સંસ્કરણો સંબંધી વિશેષ જુઓ આ પુસ્તકમાં આવેલું પ્રાથમિક હિન્દી વક્તવ્ય]

પ્રસંગાત્મક વાર્તાનું નવ્યસાહિત્યાત્મક સંસ્કરણ

એ સમયે વાર્તાત્મક સુપ્રસિદ્ધ વૈષ્ણવોની ચોર્યાશી અને બસોબાવન સંખ્યાઓનું પણ નિર્માણ થયું. અને તે શ્રીહરિરાયજી દ્વારા થયેલું હોવાથી તેમાં શ્રીગોકુલનાથજીના નામનો પણ ઉલ્લેખ પરોક્ષે થયો.

'વાર્તાઓ' **શ્રીગોકુલનાથજીની રચેલી છે તેના બીજા પણ બાહ્યાભ્યંતર પુરાવાઓ આ પ્રકારે પ્રાપ્ત થાય છે—**

બાહ્ય પુરાવાઓ—

૧ આર્યાવર્તના ખૂણે ખૂણે વ્યાપ્ત હસ્તલિખિત તે વાર્તાના પ્રાચીન ઉપલબ્ધ ગ્રન્થોમાં 'શ્રીગોકુલનાથજી રચિત' એ શબ્દો છૂટથી વાપરેલા જોવામાં આવે છે.

૨ શ્રીગોકુલનાથજીની ઉપસ્થિતિમાં શ્રીગોકુલમાંજ લખાયેલું વ્રજ સં. ૧૬૯૭ (ગુ. સં. ૧૬૯૬) ના ચૈત્ર સુદ ૫ નું પુસ્તક કાંકરોલી સરસ્વતીભંડારમાં પ્રાપ્ત થાય છે, જેનો બ્લોક પણ આ પુસ્તકમાં આપવામાં આવ્યો છે.

૩ શ્રીગોકુલનાથજીના સમસામયિક શ્રીદેવકીનંદજીએ '**प्रभुचरित्र-चिंतामणि**' નામક પોતાના ગ્રન્થમાં તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૪ પ્રભુચરણના અનન્ય સેવક અને શ્રીગોકુલનાથજીના સહયોગી અલીખાન પઠાણરચિત 'ચોર્યાશી વૈષ્ણવ'નું પદ, જે સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે.

૫ શ્રીગોકુલેશના સમસામયિક એવં શિષ્ય મહાનુભાવ શ્રીહરિરાયજીનો 'ભાવપ્રકાશ' તેનો એક વધુ અને સૌથી જબ્બર પુરાવો છે, કે જેનો કાકાવલ્લભજીએ પોતાના ચોર્યાશીના ધોળમાં પણ ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૬ શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય શ્રીવિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે સ્વરચિત 'સંપ્રદાય-કલ્પદ્રુમ' નામક ગ્રંથમાં શ્રીગોકુલનાથજીના રચેલા ગ્રન્થોનાં નામોમાં તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૭ સમસામાયિક શ્રીનાથદેવનો સંસ્કૃત અનુવાદ તેનું એક અકાટ્ય પ્રમાણ છે.

૮ ષષ્ઠપુત્ર શ્રીયદુનાથજીરચિત 'દિગ્વિજય' જેની રચના સં. ૧૬૫૮માં થઈ છે તેની સાથે વાર્તાની સંપૂર્ણ વિગતો પ્રાયઃ બંધબેસતી આવે છે.

૯ વાર્તા ઉપરની અચલ શ્રદ્ધાને પ્રકટ કરતા શ્રીગોકુલેશના સમયથી અદ્યાપિપર્યંત અનેક મહાનુભાવો જેવા કે—અલીખાન, મોહન, શ્રીનાથ, માધો, શ્રીહરિરાયજી, નિજજન, શ્રીદ્વારકેશજી, કાકાવલ્લભજી, દાસવલ્લભ, ભારતેંદુ હરિશ્ચન્દ્ર અને દયારામ આદિના ગદ્યપદ્યાત્મક સંસ્કૃત, વ્રજ એવં ગુર્જરભાષીય અનુવાદો.

આંતર પુરાવાઓ—

૧ વાર્તા પરત્વે વલ્લભવંશના મહાનુભાવોમાં પણ અખંડિત **શ્રદ્ધાને સ્થાન.**

૨ વાર્તાનો **સર્વગ્રાહ્ય પ્રચાર.**

૩ વાર્તામાં રહેલી સેવા, સિદ્ધાંત આદિની સૂક્ષ્મ બારીકિઓ જે આજપર્યંત ગોસ્વામિબાલકોમાં પણ મહાનુભાવોથી અતિરિક્ત કોઈ નથી જાણતું.

૪ વલ્લભવંશનાં ઘરોની સૂક્ષ્મ અપ્રસિદ્ધ વિવિધ રીતભાંતો.

૫ સમય સમય ઉપરનાં પ્રાસંગિક અપ્રસિદ્ધ પદો અને 'મુકુન્દ-સાગર' જેવા અપ્રાપ્ય અજ્ઞાત ગ્રન્થોનો ઉલ્લેખ.

૬ વાર્તામાં આવેલ રીત, રિવાજ, વંશજો અને પંચમહાલ આદિના ઉલ્લેખોની વિદ્યમાનતા.

ઉપર્યુક્ત કથિત બાહ્યાભ્યંતર પુરાવાઓથી સંપ્રદાયને જાણવા-વાળો મનુષ્ય સહજ સમજી શકે છે કે—કોઈપણ વલ્લભવંશીય પ્રતિભાશાલી વ્યક્તિની રચના વિના 'વાર્તાઓ' સર્વગ્રાહ્ય તથા ભૂત એવં વર્તમાન તત્કાલીન સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ રહસ્યપૂર્ણ પ્રસંગો અને ચમત્કૃતિઓથી પરિપૂર્ણ થઈ શકે નહિ જ, વળી અલીખાન અને શ્રીહરિરાયજી જેવા સમસામયિક મહાનુભાવોના હૃદયને પણ આકર્ષી શકે નહિ.

આથી વિશેષ શું હજુયે વાર્તાની પ્રામાણિકતા વિષે કહેવું બાકી રહે છે કે?

શ્રીગોકુલેશ વ્રજભાષાના ગદ્ય લેખક કે આદ્યપિતા?

હાં ! તો આધુનિક સાહિત્યકારો શ્રીગોકુલેશને વાર્તાના ગદ્યલેખક રૂપે માને છે, કિન્તુ તે ગૌરવાસ્પદ હોવા છતાં અરુચિકર છે. આપને લેખક ન કહેતાં ગદ્ય-રચયિતા અથવા આદ્યપિતા કહેવા વધુ સંગત છે, કેમકે આધુનિક ગદ્યશૈલીનો પ્રથમ સાહિત્યિક આવિર્ભાવ આપના દ્વારા જ થયેલો છે. જો કે તે પહેલાનું યે ગદ્ય પ્રાપ્ત થાય છે તથાપિ તે આધુનિક શૈલીના સૂત્રરૂપ નથી.

શ્રીગોકુલેશની ગદ્યશૈલી શ્રીહરિરાયજીના સમયમાં પરિમાર્જિત થઈ દ્વારકેશજીના સમયમાં આધુનિકતાને પ્રાપ્ત થઈ. એથી શ્રીગોકુ-લેશને જ વ્રજભાષાગદ્યના આદ્યપિતા કહી શકાય.

શ્રીગોકુલેશ પછી શ્રીહરિરાયજીએ ભાષાનું નેતૃત્વ સંભાળ્યું અને આપે આચાર્યશ્રીના સમયની વિશુદ્ધ વ્રજભાષાનું પુનઃ નવનિર્માણ કર્યું, અર્થાત્ ભાષામાં ઘુસી ગયેલા યાવની શબ્દોને જ્યાં જ્યાં દેખાયા ત્યાં ત્યાંથી દૂર કરી તેને સંસ્કૃતનો પૂર્ણ સહયોગ આપ્યો, અને આચાર્યશ્રી એવં પ્રભુચરણના સેવકોની માફક આપે પણ ભાષા–પદ્યમાં પ્રાયઃ સંસ્કૃતના શબ્દોનો જ પ્રયોગ કર્યો. એ રીતે પદ્યને સુવ્યવસ્થિત કરી ગદ્યનું પણ સુરમ્ય નવ્ય સંસ્કરણ કર્યું અને વાર્તાઓ ઉપરનું 'ભાવપ્રકાશ' ટિપ્પણ, પ્રાકટ્ય–વાર્તા તથા અનેકવિધ ભાવનાઓ આદિને તેમાં યોજ્યાં.

શ્રીહરિરાયજી અને વ્રજભાષા–સાહિત્ય

આપના ગદ્યમાં વ્યાકરણ અને શબ્દરચનાઓની પણ અનેક ચમત્કૃતિઓ જોવામાં આવે છે.

વ્રજભાષાની માફક આપે તેની આંતર સંબંધિની ગુર્જર ભાષાને પણ સંભાળી અને પદ્યમાં તેને પણ સ્વરચના દ્વારા અદ્‌ભુત અને અપરિમિત સ્થાન આપ્યું.

પ્રાકૃત વૈદિકથી પરિષ્કૃત બનેલી સંસ્કૃત ભાષાની જેમ ગાઢ અંતરંગી વ્રજભાષા છે તેમ તે વ્રજભાષાના અતિશય નિકટ સંબંધવાળી ગુર્જર ભાષા હોઈ આપે વ્રજભક્તિમાં તેનો પણ પ્રભુચરણની માફક સમાદર કર્યો, અને તે દ્વારા ગુજરાતીઓના મનને આકર્ષી ત્યાં વ્રજભાષાના પ્રચારને સૌથી વિશેષ વ્યાપક બનાવ્યો.

એ રીતે શ્રીહરિરાયજીએ સંસ્કૃત, વ્રજ અને ગુર્જર એમ ત્રિવિધ ભાષાને ભક્તિ–સાહિત્યમાં સ્થાન આપી સર્વત્ર ત્રિવેણી વહેવડાવી.

શ્રીદ્વારકેશજી અને વ્રજભાષા

શ્રીહરિરાયજીની પછી શ્રીદ્વારકેશજીએ એ ત્રિવેણીનું નેતૃત્વ સંભાળ્યું અને તેમાં અનેક પ્રકારની નવીન રચનાઓને સ્થાન આપી ગદ્ય પદ્યાત્મક રચનાઓ કરી. આપના સમયમાં વ્રજભાષાનો પૂર્ણોદય રહ્યો, તથાપિ પછીથી તેનું નેતૃત્વ વ્યાપકરૂપે

કોઈએ ન સંભાળ્યું એટલે ગદ્યસાહિત્યમાં ઉર્દૂ મિશ્રિત હિન્દીના પ્રચારનું જોર વધ્યું.

જો કે આપના પછી પણ કાકાવલ્લભજી, શ્રી ચટ્ટુજી, શ્રીમદ્દુજી અને શ્રીગોપિકાલંકારજી આદિ એ શુદ્ધ વ્રજભાષાના ગદ્યનો પ્રચાર કર્યો, કિન્તુ તે કેવળ અમુક અંશમાં વચનામૃતરૂપે હોવાથી વિસ્તૃત ન રહ્યો. પરિણામે આજ ગદ્યમાં નવીન હિન્દીએ પ્રાધાન્યપદ લીધું. તથાપિ એ દિવ્યવલ્લભવંશમાં હજુ પણ વ્રજભાષાનો મૌખિક પ્રચાર ગૃહવ્યવહારમાં તો ચાલુછેજ. વળી પદ્યમાં તો હજુયે આજની હિન્દી વિશુદ્ધ વ્રજભાષાના સામ્રાજ્ય ને નષ્ટ કરવામાં કામયાબ થઈ નથી જ એમ આધુનિક લેખકો પણ સ્વીકારે છે. વ્રજભાષા પદ્ય-સાહિત્યમાં તો એ દિવ્ય વલ્લભવંશની મહાનુભાવ વહુબેટીઓનું સ્થાન પણ અનેરું છેજ, જેનું વિસ્તૃત વિવેચન અમે '**पुष्टिमार्गीय भक्त कवि**' નામક ગ્રન્થમાં હવે પછી આપીશું.

આ પ્રકારે વ્રજભાષા જગદ્‌ગુરુ શ્રીવલ્લભાધીશ્વર અને તેમના વંશની પૂર્ણ ઋણી બની.

આ વિદ્વત્તાપૂર્ણ વિશુદ્ધવંશે જેમ સંસ્કૃતને પૂર્ણ અપનાવી વિદ્વાનોને મોહિત કર્યા તેમ વ્રજભાષાના નેતૃત્ત્વ દ્વારા સર્વ સાધારણને પણ પૂર્ણ આકર્ષિત કર્યા.

એ પ્રકારે શ્રીભાગવતમાં રહેલી નિગૂઢ ભાવમયી નિર્ગુણ ભક્તિના અબાધિત શીતલ, સુગંધિત સ્રોતને વ્રજભાષા દ્વારા સારાયે ભારતવર્ષમાં અવિચ્છિન્નરૂપે વહેવડાવી, તે વિશુદ્ધ વંશે આચાર્યશ્રીના ઉક્ત પ્રાકટ્ય-પ્રયોજનને જગત સમક્ષ સિદ્ધ કર્યું. અને તેથી '**श्रीवल्लभ के वंश में सबही वल्लभ रूप**' એ માન્યતા સર્વ સાધારણમાં પણ આજસુધી ચાલી આવી.

વલ્લભજયંતી
સં. ૧૯૯૭
કાંકરોલી.

આચાર્ય ચરણાનુરાગી–
દ્વારકાદાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ
'સમ્પાદક'-વાર્તા-સાહિત્ય

—: ઉપકાર—સ્મરણ :—

કૃપાપીયૂષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રી૧૦૮તૃતીયગૃહતિલકાયિત શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ અને આપશ્રીના અનુજ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી મહારાજશ્રીના કેવળ અનુગ્રહ બળનું સ્મરણ કરીને ટૂંકામાં મિત્રવર્ય શ્રીકણ્ઠમણિ શાસ્ત્રી એવં વીસનગરનિવાસી શ્રીપુરુષોત્તમ શાસ્ત્રીનો પણ પૂર્વવત્ ઉપકાર—સ્મરણ કરીશું, કેમકે શ્રીકણ્ઠમણિજી દ્વારા આ 'અષ્ટછાપ'નું પુસ્તક પ્રુફસંશોધન એવં આધુનિક પદ્ધતિથી રમ્ય બની શીઘ્ર બહાર પડયું, તેમજ શ્રીપુરુષોત્તમજીના શુભ પ્રયાસે આ પુસ્તકની છપાઈમાં નિમ્નાંકિત વીસનગરનિવાસી સદ્‌ગૃહસ્થોએ પ્રાથમિક આર્થિક મદદ પ્રદાન કરી. અતઃ તેમનો પણ ઉપકાર અવિસ્મરણીયજ કહી શકાય.

છપાઈ કાર્ય ચાલુ થયા પછી સિદ્ધપુરનિવાસી ભગવદીય શ્રી બલદેવદાસ ભાઈએ પણ યથાશક્તિ આ કાર્યમાં આર્થિક મદદ સ્વયં કરી અને અન્ય વૈષ્ણવો દ્વારા પણ કરાવી. અતએવ એમનો પણ ઉપકાર માનીશું જ.

આ રીતે મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યના અનુગ્રહ બળે જ લડાઈની મોંઘવારીમાં આ બૃહદ ગ્રન્થ બહાર પાડવાને ઉક્ત સજ્જનોની સહાયથી અમે પ્રારંભાયા છતાં આર્થિક ત્રુટી વધુ ને વધુ દેખાતી ગઈ. પરિણામે મૂંઝવણ ઊભી થઈ ત્યારે એ 'સર્વશક્તિધૃગ્ વાગીશે' અમને પુનઃ **શેઠ ઉજમશી પીતાંબરનાં ધર્મપત્ની** જે યાત્રાર્થે અહીં આવેલાં હતાં તેમની દ્વારા મદદ કરાવી ઉત્સાહિત કર્યા. તથાપિ પૂર્તિ ન અનુભવાતી જોઈ અમે પ્રથમ ભાગના વેચાણનું દ્રવ્ય પણ આ કાર્યમાં લગાવ્યું, પરંતુ આ 'અષ્ટછાપે' દામોદરલીલાનું સ્મરણ

કરાવવા માંડયું અને જેમ જેમ આર્થિક મદદ મળતી ગઈ તેમ તેમ ખર્ચની પૂર્તિમાં એ આંગળનું છેટું રહેતું જ ગયું. છેવટે અમને હતોત્સાહી જોઇ એ કૌતૂહલપ્રિય પ્રભુએ આ કૌતુકને સમાપ્ત કર્યું અને શેઠ રમણલાલ દાતાર પેટલાદવાળાને પચાસ પુસ્તકોના અગાઉ ગ્રાહક બનાવરાવી કાર્યને લગભગ સમાપ્ત કર્યું.

જો કે આ કૌતુકે થોડીવાર માટે અમને મૂંઝવણ ઊભી કરી તથાપિ આખરે શ્રીવલ્લભાધીશ પ્રત્યેની અમારી શ્રદ્ધાને ફલીભૂત કરી સદાને માટે પરમાનંદનું દાન પણ કર્યું. અસ્તુ.

અર્થપ્રદાન કરવાવાળાઓનાં શુભ નામોની યાદી—

૧૦૦) શેઠ માણેકલાલ વ્રજલાલ મોદી વીસનગર
૫૦) શેઠ વ્રજલાલ મોતીલાલ વિસનગર
૫૦) બાઈ અમથી તે શેઠ મથુરદાસ લીલાચંદની દીકરી હા. શેઠ વ્રજલાલ વીસનગર
૧૦૦) દાતાર શેઠશ્રી રમણલાલ કેશવલાલ પેટલાદ
૫૧) શેઠ ઉજમશી પીતાંબર પાટણ
૨૫) બાઇ મણી તે શેઠ જેઠાલાલ મગનલાલની વિધવા સિદ્ધપુર
૫) મનહરલાલ મટુભાઈ મુંબાઇ
૫) બલદેવદાસ નાથુરામ સિદ્ધપુર
૫) રુઘનાથદાસ ગોવિંદરામ લાલચંદ સિદ્ધપુર

સાંપ્રદાયિક 'અનુગ્રહ' માસિકના તંત્રીઓએ પણ વિના મૂલ્યે જે જાહેર ખબરો તેમના માસિકમાં છાપી આ પુસ્તકપ્રસિદ્ધિમાં સહાયતા કરી છે તે બદલ તેમનો ઉપકાર પણ ભૂલીશું નહિ. આ ઉપરાંત અન્ય અગાઉ થયેલા ગ્રાહકોને પણ સ્મરણ કરી સ્મૃતિ—ભ્રમથી વિસ્મૃત બનેલા ભગવદિયોનો પણ ઉપકાર સ્મરણ કરીએ છીએ.

સરૈયા આર્ટના મેનેજરનો શ્રીહરિરાયજીના બ્લોક બદલ તથા 'ભારતવર્ષ'માં જાહેર ખબર વિના મૂલ્ય છાપવા બદલ શ્રીશાસ્ત્રીજી વસંતરામનો પણ ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

દ્વારકાદાસ 'સમ્પાદક વાર્તા—સાહિત્ય.

प्राचीन वार्ता-रहस्य भाग १

अभिप्राय संग्रह—

आपकी पठाई प्राचीन वार्ता-रहस्य की पुस्तकें प्राप्त हुई। अबकाश पायके मैंने अक्षरशः सुनी। आप के ऊपर भगवत्कृपा है तासों एसे सत्कार्यमें आपकी रुचि भई है। आपको यह परिश्रम प्रशंसा योग्य है। काच के भवन में छिद्र देखनो जैसे पीपिलिका को कार्य है, एसे भगवान तथा भगवदीयन के चरित्र में दोष देखनों असज्जनको कार्य है।

× × पं. गोकुलदासजी विद्यासुधाकर-कोटा.

आपका भेजा हुआ "प्राचीन वार्ता-रहस्य" कुछ समय पूर्व मिला। देखने से चित्त बडा प्रसन्न हुआ। आपने इस में वह रंग भर दिया है जो वर्तमान समय के मलिन हृदयों को भी शुद्ध और सुन्दर रूप दे सकता है। ग्रन्थ के प्रारंभमें "श्री गिरिधरगोपाल" के चित्र की मुहर बडी सुन्दर लगी है। कार्य सब प्रकार प्रशंसनीय है।

—जगन्नाथ शास्त्री
संस्कृत पाठशाला. प्रतापगढराज.

× × ×

भक्ति-भागीरथी का आश्रय लेकर अष्टछापकी सरस काव्यधारा के साथ-साथ प्रस्तुत राष्ट्रभाषा हिन्दी के व्रज-भाषात्मक गद्य साहित्यका प्रोत्कर्ष वार्तारूप में साहित्य-जगत में विद्यमान है। किन्तु साधनों के अभाव एवं इस साहित्य के प्रति प्रायः अनभिरुचि के कारण ही परिष्कृत रूप में वह धार्मिक जनता के समक्ष न आसका। ऐसी परिस्थितिमें आवश्यक शङ्का-समाधान-पूर्वक ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण स्पष्टीकरण सहित नवीन रूप में इन भक्ति-भावोद्बोधक पुनित भगवद्वार्ताओं का क्रमागत प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है। यह प्राचीन वार्ता-वृत्त का रहस्य-साहित्य-प्रकाशन वैष्णव जगत के लिये एक अनुशीलनीय वस्तु है। इसमें आठ वैष्णवों

की वार्त्ताओं का समावेश है। इसी प्रकार सभी वार्ताओं के पृथक् पृथक् भाग रूप में प्रकाशन का आयोजन सम्पादकने किया है। साम्प्रदायिक वैष्णव जनता इस आयोजन को क्रियात्मक रूप देने में सर्वविध सहायक होगी, ऐसी आशा है। प्रस्तुत ग्रंथ सर्व प्रकार से पठनीय एवं संग्रहणीय है। अग्रिम भागों की हम उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं।

तैलंग श्रीगोकलानन्दजी,
सम्पादक 'दिव्यादर्श'

× × ×

આપે ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થનું પ્રકાશન કાર્ય કરી વૈષ્ણવ જનતા ઉપર મહાન અનુગ્રહ જ કર્યો છે. એ બદલ મારાં અંતઃકરણ પૂર્વક આપને અભિનંદન પાઠવું છું. **પ્રેમલાલ જી. મેવચા સુલતાનપુર.**

× × ×

પ્રાચીન વાર્તા–રહસ્ય ભાગ ૧લો એ ગ્રન્થ સમ્પ્રદાયના ભાષા-સાહિત્યમાં એક પહેલરૂપ છે, તેનું સંશોધન પણ ઘણુંજ સારું થયું છે. એ પુસ્તક વાંચી ગયા પછી દુરાગ્રહીઓ સિવાય ભાગ્યે જ કોઇને ભાષા–સાહિત્ય વિશે શંકા રહે તેમ છે. ભાષા સાહિત્યના સંશોધનનું અને પ્રકાશનનું અપૂર્વ કાર્ય ઉપાડી વિદ્યાવિભાગે સંપ્રદાયની સાચી અને મહાન સેવા બજાવી છે. ટીકાઓના જવાબ શિષ્ટભાષામાં આપ્યા છે તે વૈષ્ણવને છાજે તેવા છે. આપ તરફથી પ્રકટ થયેલ પુસ્તક વાંચ્યા પછી વાર્તા–સાહિત્યની અદ્‌ભુતતા અને મહત્તા સમજાયા વિના નહિ રહે.

શેઠ હરિલાલ જે. M. A.
પુ. યુ: પરિષદના મંત્રી. મુંબાઈ.

વધુમાં, આ પુસ્તક લોકપ્રિય બન્યું એના પ્રત્યક્ષ નમૂનામાં નાથદ્વારા વિદ્યાસમિતિ તરફથી ઉત્તમશ્રેણીના પાઠ્યપુસ્તક તરીકે તે જાહેર થયું છે. ઉપરાંત આક્ષેપપરિહાર સમિતિ એવં શ્રી. રામલાલ ચુનીલાલ મોદી, શ્રી રમાનાથ શાસ્ત્રી અને શ્રી પુરુષોત્તમ ચતુર્વેદી સાહિત્યાચાર્ય આદિના સુંદર અભિપ્રાયો પણ આવેલ છે, જે સ્થાનાભાવથી હવે પછીના પુસ્તકમાં ક્રમશઃ આપવામાં આવશે.

સમ્પાદક **'વાર્તા–સાહિત્ય'**

અષ્ટછાપના ગુજરાતી વિભાગનું શુદ્ધિ-પત્રક×

—०:○:०—

કૃપા કરીને નીચે પ્રમાણે સુધારીને વાંચો—

અશુદ્ધ	શુદ્ધ	પત્ર	પંક્તિ
રાખી	સખી	૭	૧૧
उउ	उन	૧૬	૧૬
(વિશેષ જુઓ પ્રસ્તાવનામાં)×		૧૭	૨૪
सूरका	सूरको	૨૧	૧૮
સૂરસાવલી	સૂરસારાવલી	૩૨	૧૫
સં. ૧૫૪૦	સં. ૧૬૪૦	૩૮	૨૦
સાતે કવિયો	ઉપસ્થિત કવિયો	૩૯	૭
દંડવત કરી	દંડવત કર્યા	૩૯	૧૦
પ્રાસાદાત્મક	પ્રસાદાત્મક	૪૧	૯
સં. ૧૬૦૭	ગુર્જર સં. ૧૬૦૬	૪૩	૫-૭-૧૦-૨૪
દિગ્વદર્શન	દિગ્દર્શન	૪૮	૩
उघास	उपारत	૪૮	૨૩
सरश्याम	सूरश्याम	૪૯	૧૦
જમનાવતામા	સંકર્ષણકુંડ ઉપર	૭૨	૧૩
સં. ૧૬૨૦	સં. ૧૬૨૫	૮૪	૧૮
स्यामस ब्रासी	स्यामसर ब्रासी	૧૦૪	૧૩-૨૫

× મજ હિન્દી સાહિત્ય-વિભાગનું શુદ્ધિ પત્રક સ્થલાભાવથી આપવામાં આવ્યું નથી એટલે પાઠકોએ પ્રેસની થએલી ભૂલોને સ્વયં સુધારી લેવી.

पत्र १८६ पंक्ति २२ में अंकूरजीके स्थान पर श्रीकृष्ण सुधारना.

અષ્ટછાપ

——:÷:÷:——

મહાનુભાવ શ્રીસૂર—

——:*:——

(સં. ૧૫૩૫ થી સં. ૧૬૪૦)

ભક્તિમાર્ગીય કાવ્યક્ષેત્રમાં સૂરદાસ નામક સુપ્રસિદ્ધ ત્રણ ભક્તકવિ થયા છે. તેમાંના એક અને મુખ્ય અમારા ચરિત્ર-નાયક અષ્ટછાપવાળા મહાનુભાવ શ્રીસૂર છે.

તે પરમવંદનીય શ્રીસૂરની ભક્તિવિષયક મહાનુભાવતા એવં ગંભીર ગૂઢાર્થ-સૂચક વાણીની શ્રેષ્ઠતામાં કોઈનાય બે મત નથી જ.

તેઓ શુદ્ધ વ્રજભાષા-પદ્ય-સાહિત્યના આદ્યપિતા એવં ભક્ત-કવિકુલ-સમ્રાટ હોઈ કાવ્યક્ષેત્રમાં બિન હરીફ સૂર્યની માફક સદાય પ્રકાશિત છે.

એમની વિદ્યમાનતાથી અદ્યાવધિ કોઈ કવિએ તેમની સમાન હોવાનો દાવો કર્યો નથી, એ જ શ્રીસૂરની અપૂર્વ સૂર્યવત્ પ્રભાનો પરમોત્કૃષ્ટ વિજય છે.

શ્રીસૂરના આવા અપરિમિત યશથી આકર્ષાઇ અદ્યાપિ પર્યંત ભારત-વર્ષના વિવિધ પ્રાંતોના કેટલાય સર્વોચ્ચ સાહિ-

ત્યકારો અને અન્વેષણ–કર્ત્તાઓએ વિવિધ ભાષામાં તેમની જીવની લખવાનો પ્રયાસ કર્યો છે.

કિંતુ મારે કહેવું જોઈએ કે વ્રજભાષા–ગદ્ય–સાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલનાથજી એવં તત્શિષ્ય શ્રીહરિરાય-મહાપ્રભુથી અતિરિક્ત કોઈનેય તે સંબંધી પૂર્ણ સફલતા પ્રાપ્ત થઈ નથી જ.

એથી વિરૂદ્ધ, એ કહેવું જરાય અતિશયોક્તિ–પૂર્ણ નથી કે–આધુનિક કેટલાક સાહિત્ય–અન્વેષણ–કર્તાઓએ તો અષ્ટછાપના શ્રીસૂરની જીવનીમાં અન્ય સૂરદાસોના યથાપ્રાપ્ત ચરિત્રોને અંકિત કરી તેની વાસ્તવિકતાની પ્રાયઃ હાની જ કરી છે.

અર્વાચીન અન્વેષણ–કર્તાઓમાં મુખ્ય મિશ્રબન્ધુઓ, રામનરેશ પાઠક અને રમાશંકર પ્રસાદ આદિ નવીન દૃષ્ટિના સંશોધકો પણ ઉક્ત દોષથી દૂર રહી શક્યા નથી જ. તો પછી, તે પુરુષોની લેખનીને જ પ્રમાણ માની, પોતાના પરમ-પૂજ્ય શ્રીગોકુલેશ પ્રભૃતિ મહાનુભાવોના લેખનમાં શંકા કરનારા કહેવાતા વાલ્લભોનું તો કહેવું જ શું ?   અસ્તુ.

આ પ્રકારે અમારા ગૌરવ સમાં શ્રીસૂર આદિ અષ્ટ-છાપનાં વાસ્તવિક ચરિત્રોને સંદિગ્ધ થતાં જોઇ, અમે દુઃખી હૃદયે કિંતુ ઉત્સાહપૂર્ણ, ભગવદ્–ઈચ્છાને આધીન થઇ, કેવળ તે ભક્તોના આશ્રય બલથી જ ઉક્ત ચરિત્રોને વિશુદ્ધ રૂપ આપવા નિમિત્ત માત્ર થયા છીએ. અને તેમાં અમે અમારૂં પૂર્ણ–સૌભાગ્ય સમજીએ છીએ.

અમે ઉપર કહી ગયા છીએ કે સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં સૂરદાસ નામક ત્રણ સુપ્રસિદ્ધ ભક્ત-કવિનાં ચરિત્રો પ્રાપ્ત છે. તેથી સામ્પ્રત અલ્પપ્રયાસી સાહિત્ય-સંશોધકો દ્વારા સંમિશ્રણ થઇ ગયેલા અષ્ટછાપના શ્રીસૂરના ચરિત્રનું વિશુદ્ધ રૂપ બતાવતાં પહેલાં, અન્ય દ્વય સૂરદાસોનો સ્વલ્પ પરિચય આવશ્યક જાણી અમોએ તે યથાપ્રાપ્ત અહીં ઉધ્ધૃત કર્યો છે—

૧ *પહેલા સૂરદાસનું મૂળનામ બિલ્વમંગલ હતું. તેઓ દક્ષિણમાં કૃષ્ણા નદીના તીર ઉપરના કોઇ એક ગામમાં રહેતા હતા.

પ્રસંગોપાત, સામે પાર રહેતી ચિંતામણી વેશ્યા દ્વારા ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરી તેઓ ઘરથી વિરક્ત થઇ ચાલી નિકળ્યા. છતાં રસ્તામાં તેઓ નર્મદાના કાંઠે આવેલી માહિષ્મતી નગરીમાં એક અતિથિ-વત્સલ વૈશ્ય સ્ત્રીના રૂપથી સંભ્રમ યુક્ત થયા. પછી જ્ઞાનદ્વારા તેમણે પોતાની વિષયી આંખોને સોયાથી ફોડી નાખી. અને ત્યારથી તેઓ સૂરદાસના નામથી પ્રસિદ્ધ થયા.+

---

* આ ચરિત્ર લોકમાં અતિ પ્રસિદ્ધ હોવાથી તેને અત્રે વિસ્તારથી આપ્યું નથી. આ પ્રસંગ 'ભક્તિ-માહાત્મ્ય' નામક એક અતિ પ્રાચીન સંસ્કૃત ગ્રન્થથી ઉધ્ધૃત કર્યો છે. ઉક્ત ગ્રન્થ શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી શ્રી કણ્ઠમણિજીથી પ્રાપ્ત થયો છે. જેમાં અનેક ભક્તોના પ્રસંગો યોજેલા છે. કિંતુ ખેદની વાત છે કે તે ગ્રન્થ સાંગોપાંગ પ્રાપ્ત નથી, જેથી તેના કર્તા વિષે મૌન જ સેવવું પડે છે.

—સમ્પાદક.

+ મિશ્રબન્ધુઓ આદિ કેટલાક સાહિત્ય-સંશોધકોએ પણ ઉક્ત બિલ્વમંગલ સૂરદાસના સ્ત્રી વિષયક પ્રસંગને અષ્ટછાપના શ્રી

પછી કેટલોક સમય ગુજરાતમાં રહી તેમણે ભક્તિજ્ઞાન યુક્ત કાવ્ય દ્વારા પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. બાદમાં તેઓ વૃંદાવન જઇને રહ્યા.

તેમનાં પદ ગુર્જર એવં ગુર્જરમિશ્રિત વ્રજભાષામાં ઘણાં પ્રાપ્ત થાય છે. જેવાં કે–

૧ 'કૃષ્ણ કહેતાં શું બેસે નાણું'
૨ 'कोउ मेरे काम न आयो श्री हरि विना'
૩ 'કૃષ્ણ નામ ચિત્ત ધરતો જો તું'
૪ 'કેવું તે વાશે વહાણું ઘેલા પ્રાણી'

ઈત્યાદિ.

૨ બીજા સૂરદાસ, અષ્ટછાપના શ્રીસૂર છે, જેમનું ચરિત્ર વિસ્તારપૂર્વક આગળ આપવામાં આવ્યું છે.

૩ ત્રીજા સૂરદાસ, સંડીલાના દિવાન 'સૂરદાસ મદન-મોહન'ના નામથી પ્રસિદ્ધ હતા. આ સૂરદાસનું મૂળ નામ

સૂરના ચરિત્રમાં યોજવાનો અર્થહીન નિષ્ફળ પ્રયાસ કર્યો ઉપરાંત, તે સ્ત્રી વિષયક પ્રસંગ હોઈ દોષયુક્ત લાગવાથી શ્રી ગોકુલનાથજીએ વાર્તામાં ન યોજ્યો હોય, એવું અનુમાન પોતાના 'નવરત્ન' નામક ગ્રન્થ પાન ૨૭૭માં કરી ખરે જ તેમણે પોતાની બુદ્ધિનો હાસ્યાસ્પદ હવાલો વિદ્વાનોને આપ્યો છે. પરંતુ વાર્તા-રસિકો વિચારી શકે છે કે–મહાનુભાવ અષ્ટછાપ શ્રીનંદદાસની સ્ત્રી ઉપરની આસક્તિના પ્રસંગનો જેમણે નિર્દોષપણે સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ વાર્તામાં કર્યો છે એવા સત્યવક્તા શ્રીગોકુલેશ, યદિ સ્ત્રી વિષયક ઉક્ત પ્રસંગ અષ્ટછાપ શ્રીસૂરનો જ હોત, તો શા માટે વાર્તામાં તે ન યોજત?

—સમ્પાદક.

અજ્ઞાત હોવા છતાં એ નિશ્ચય છે કે તેમણે પોતાનું સૂરદાસનું ઉપનામ સકારણ રાખ્યું છે.

તેઓ દિલ્હી પાસેના કોઈ એક ગામમાં સૂરધ્વજ બ્રાહ્મણને ત્યાં જન્મ્યા હતા. તેઓ બાદશાહ અકબરના એક પરગનાના અમીન યા દિવાન હતા, અને તેમની પાસે રાજ્યના ૧૩ લાખ રૂપીયાની વિપુલ ધનરાશી રહેતી.

જ્યારથી એમને ભગવાન અને ભક્તોનાં ઐક્ય ભાવ-રૂપે દર્શન થયાં ત્યારથી તેઓ સાધુ, સંત અને ભક્તોમાં વિશેષ પ્રીતિ રાખતા, અને પોતાને પ્રાપ્ત ધન ઉપરાંત આવશ્યક લાગે તો ખજાનાના ધનનો પણ સાધુ સંતોના સત્કારમાં ઉપયોગ કરતા.

એમ કરતાં એક વખત દુષ્કાળના સમયમાં એમણે બાદશાહની ૧૩ લાખની ધનરાશીને પરોપકારાર્થે ખર્ચી દીધી.

પછી બાદશાહે ખજાનો મંગાવ્યો ત્યારે તેમાં તેટલાજ પત્થરો ભરી પ્રત્યેક થેલીમાં નિમ્નાંકિત દોહો લખીને મોકલ્યો, અને તેઓ અર્ધી રાત્રે શ્રીમદનમોહન ઠાકુરજીને પધરાવી વૃંદાવન ચાલી નિકળ્યા.

ઉક્ત દોહો આ પ્રકારે છે—

तेरालाख संडीले आये—सब साधुन मिलि गटके।
सूरदास मदनमोहन मिलि—आधी रातैं सटके॥

આ વાંચી બાદશાહના આશ્ચર્યનો પાર ન રહ્યો, અને તેણે રાજા ટોડરમલને કહ્યું કે—સાધુઓએ તેરા લાખ ગટકયા તો ભલે, પરંતુ સૂરદાસ કેમ સટકયા?

પછી રાજા ટોડરમલે તેમને પકડી મંગાવી કેદમાં નાખ્યા. ત્યાં તેઓએ પ્રભુને પોતાની મુક્તિને અર્થે પ્રાર્થનાનું આ પદ ગાયું—

जव विलंब नहिं कियो, हाक हरनाकुश मार्यो ।
जब विलंब नहिं कियो, केश गहि कंस पछार्यो ॥

* * * *

कहे सूर करजोरि के, तुम दयाल रुक्मनि रवन !
काट फंद मो अंधके,× अब विलंब कारन कवन ॥ ÷

× અહીં 'અંધ' શબ્દ શ્રીસૂરના 'द्विविध आंधरा'ની માફક સકારણ છે. અને તે એમ સૂચવે છે કે—હે પ્રભુ! આપ અને આપના ભક્તોમાં દ્વિવિત્ર ભાવથી રહિત એવો અંધ જે હું તેના આ ફંદ (કેદ)ને કાટ એટલે દૂર કર.

÷ કેટલાક લેખકોએ આ પદ અષ્ટછાપ વાળા સૂરદાસના નામે ચઢાવી લોકોમાં ભ્રમ ફેલાયો છે. પરંતુ અષ્ટછાપવાળા શ્રીસૂરનાં પદોની ઓળખાણ બે પ્રકારે સ્પષ્ટ છે. એક તો તેમણે પોતાની રચનામાં આવશ્યક પ્રચલિત સંસ્કૃત શબ્દોથી અતિરિક્ત શુદ્ધ વ્રજભાષા શિવાયના કોઈ પણ પ્રકારના શબ્દોનો પ્રયોગ કર્યો નથી, જ્યારે ઉક્ત પદમાં 'કવન' શબ્દ પૂર્વી ભાષાનો પ્રતીત થાય છે.

બીજું કારણ એ સ્પષ્ટ છે કે—શ્રીસૂરે, શરણ આવ્યા પહેલાં પણ કેવળ ઉદ્ધારના શિવાયની કોઈ પણ અંગત સ્વાર્થમય પ્રાર્થના પદો દ્વારા કરી પ્રભુને પરિશ્રમ આપ્યો નથી. અને જ્યાં સુધી મને ખબર છે ત્યાં સુધી તો હું એમ નિશ્ચિત રૂપે કહી શકું છું કે શ્રીસૂર-

આ પ્રાર્થનાથી પ્રભુએ પ્રત્યક્ષ થઈ તેમને દર્શન આપ્યાં. અને બાદશાહને પણ સ્વપ્નમાં સૂરદાસને શીઘ્ર મુક્ત કરવાની આજ્ઞા આપી. પછી બાદશાહે તેમને મુક્ત કરી, ગયેલી સત્તા પુનઃ સ્વીકારી પોતાની પાસે રહેવાને અત્યંત આગ્રહ કર્યો. છતાં તેમણે તે વાત ન માની અને તુરત વૃંદાવન જઈને રહ્યા.

ત્યાં તેમણે સાનુભવતા પ્રાપ્ત કરી ઘણાં પદો રચ્યાં અને તેમાં 'સૂરદાસ મદનમોહન' નામક છાપ રાખી.

ના પદોમાં પ્રભુનું માહાત્મ્ય અને પોતાની દૈન્યતા શિવાય બીજી વસ્તુ બહુ ઓછી જણાય છે. અને શરણે આવ્યા પછી તો તેઓએ દાસ, સખ્ય, અને રાખી ભાવને જ પોતાના પદોમાં મુખ્ય સ્થાન આપ્યું છે.

તદ્દતિરિક્ત જે પદો પ્રાપ્ત છે તે અષ્ટછાપના શ્રીસૂરનાં નથી જ.

વળી જે પુરૂષોનું એવું કહેવું છે કે શ્રીસૂરે ફારસી ભાષામાં પણ પદો રચ્યાં છે અથવા તેમના પદોમાં ફારસી શબ્દો—જેવા કે 'મહેલાત' આદિ આવે છે, તેઓ સ્વયંભ્રમિત છે.

યદ્યપિ તે શંકાનો જવાબ પ્રસ્તુત વાર્તા પ્રસંગ ૪ માં આવી જાય છે તો પણ એનું સ્પષ્ટીકરણ કરવું ઠીક છે કે—સૂરદાસજીનાં વિશુદ્ધ વ્રજભાષામય પદોને બાદશાહ અકબર ફારસીમાં ઉતરાવી સ્વયં વાંચતો અને તેથી સંભવ છે કે તેમના પદોમાં લેખકોએ જાણે કે અજાણે કવચિત્ પ્રચારની દષ્ટિએ પણ તે સમયની પ્રચલિત ભાષાના શબ્દોને યોજી તેમને વિકૃત કર્યાં હોય.

કારણ કે એ આ વાર્તામાં સ્પષ્ટ છે કે શ્રીસૂરની છાપથી, અન્ય લોકો પણ પદોની રચના કરતા. અતઃ તેનું વિકૃત થવું જરાય અસંભવ નથી.

—સમ્પાદક

પછી 'ગીતસંગીતસાગર' ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીની કૃપાથી–યદ્યપિ તેઓ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ન હતા તો પણ–તેમણે મહાનુભાવ કવિઓમાં સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું.

ઉક્ત ઉભય સૂરદાસોનો સંક્ષિપ્ત પરિચય આપી હવે અમે અમારા ચરિત્ર–નાયક અષ્ટછાપના શ્રીસૂરના, વાર્તાથી ઉદ્ધૃત અને તેને અપેક્ષિત એવા, શેષ ભૌતિક ચરિત્રને અમારી લેખની એવં મનને પવિત્ર કરવાને અર્થે કંઇક લખીએ છીએ.

શ્રીસૂરનાં વિશુદ્ધ અને સંમિશ્રણ યુક્ત ચરિત્ર નિમ્નાંકિત ગ્રન્થોમાં પ્રાપ્ત છે—

(વિશુદ્ધ પ્રામાણિક ગ્રન્થો)

૧ ૮૪ વૈષ્ણવોની વાર્તા, રચયિતા ગો. શ્રીગોકુલનાથજી. સં.૧૬૪૫
૨ 'ભાવપ્રકાશ' ,, ,, શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ. સં. ૧૭૪૦ લગભગ

(તટસ્થ ગ્રન્થ)

૩ ભક્તમાળ ,, નાભાજી. સં. ૧૬૬૦–૮૦
૪ ભક્તિમાહાત્મ્ય (સંસ્કૃત)

(સંદિગ્ધ ગ્રન્થો)

૫ 'મૂલ ગોસાંઇ ચરિત' રચયિતા વેણીમાધોદાસ. સં. ૧૬૮૮
૬ આઇને અકબરી વગેરે—

(આધારભૂત ગ્રન્થો)

૭ સૂરસાગર, ૮ સાહિત્ય લહરી, ૯ સૂર સારાવલી.

ઉપરાંત અન્ય ચરિત્ર ચંદ્રિકા, રામરસિકાવલી; શિવસિંહસરોજ, નાગર સમુચ્ચય, ભક્તવિનોદ, સુગમપંથ, ભક્તનામાવલી, ભારતેંદુ ભક્તમાલ, ભાષાકોષ, નાગરી પ્રચારિણી

સભાની પત્રિકા, મિશ્રબન્ધુવિનોદ, નવરત્ન, સૂરસુધા, કવિતા કૌમુદી, વ્રજમાધુરીસાર, અને સૂરદાસજીનું જીવનચરિત્ર ઈત્યાદિ ગ્રન્થોમાં સંભ્રમયુક્ત પ્રસંગોનું સંમિશ્રણ જોવામાં આવે છે.

ઉક્ત સંમિશ્રણ યુક્ત ગ્રન્થોના પ્રસંગોને વિશુદ્ધ રૂપ આપવાને માટે પ્રથમના ૧, ૨ સંખ્યાત્મક ગ્રન્થોના આશ્રયની ખાસ આવશ્યકતા છે. કારણ કે સૂરદાસજી પુષ્ટિમાર્ગીય હોવાથી તેમના ચરિત્રનો સંગ્રહ જેટલો તે સંપ્રદાયના મૂળ લેખકોથી વિશુદ્ધ રૂપે પ્રાપ્ત થાય તેટલો અન્યો દ્વારા નહિ જ એ સાવ સીધી વાત છે.

તેમાંયે વળી શ્રીસૂરના સમકાલીન અને અંગત ગાઢ પરિચયવાળા, ગદ્યપદ્ય વ્રજભાષા—સાહિત્યના પૂર્ણ પ્રેમી ગો. શ્રીગોકુલનાથજી દ્વારા જે સંગ્રહ થાય તેની વિશુદ્ધતા અને પ્રામાણિકતામાં તો કહેવું જ શું?

વળી એ નિઃસંદેહ છે કે ગો. શ્રીગોકુલનાથજી સ્પષ્ટ અને સત્યવક્તા હતા. તેના કારણ રૂપે ૮૪ અને ૨૫૨ વાર્તાઓમાં આવેલી શ્રીનંદદાસ, કૃષ્ણદાસ આદિની ઘટનાઓ વિદ્યમાન છે.

શ્રી ગોકુલેશે લોકદૃષ્ટિએ અસંગત અને વિકૃત લાગતી ઉક્ત ઘટનાઓને પણ સ્પષ્ટ તથા વિસ્તારપૂર્વક જનસમૂહમાં નિર્દિષ્ટ કરી છે. એથી વિશેષ તેમની પ્રામાણિકતા માટે અન્ય કયું પ્રમાણ હોઇ શકે?

આ વાત વાર્તાના અભ્યાસીઓ સારી રીતે જાણતા હોઈ તે મહાપુરૂષની ઉક્તિમાં તેઓને જરાય અતિશયોક્તિ કે અવાંચ્છનીય ભાવના દેખાતી નથી જ. અસ્તુ.

જો કે શ્રીસૂરની પ્રામાણિક જીવની જાણવાને માટે તેમના સમકાલીન ગો. શ્રીગોકુલનાથજી રચિત 'ચોરાશી વાર્તા' વિશેષ ઉપયોગી છે, છતાં તે સંક્ષિપ્ત હોવાથી જીજ્ઞાસુઓને વાસ્તવિક તૃપ્તિ આપવાને અસમર્થ છે.

ઉક્ત ત્રુટીને દુર કરવાને અર્થે ગો. શ્રીગોકુલનાથજીના શિષ્ય મહાનુભાવ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુનો પ્રયાસ અતિ પ્રશંસનીય છે.

શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ, આચાર્યશ્રી એવં ગોસ્વામીજીના ૮૪ અને ૨૫૨ વૈષ્ણવોનાં વિશુદ્ધ આધ્યાત્મિક ચરિત્રોને સ્વગુરૂથી શ્રવણ કર્યા બાદ, તેમાં ઓછાં દેખાતાં ભૌતિક અને આધિદૈવિક તત્ત્વોને પુનઃ વિશેષ રૂપમાં શ્રવણ કરવાની પોતાની ઈચ્છાને તેમની પાસે પ્રકટ કરી. તેથી વ્રજભાષા ગદ્ય–સાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલેશે શ્રીહરિરાયજીને એકાંત અનુભવગમ્ય અને મનનીય વાર્તાના આધિદૈવિક તત્ત્વોનું આવશ્યક વિશેષ ભૌતિક ચરિત્રની સાથે પુનઃ શ્રવણ કરાવ્યું. જેથી તેના ફલ રૂપે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ વાર્તા ઉપર 'ભાવપ્રકાશ' યોજ્યો, જે અમારા તરફથી પ્રકાશિત થાય છે.

શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાની ભાષાત્મક ટીકા સ્વરૂપે ઉક્ત 'ભાવપ્રકાશ'ને સં. ૧૭૨૯ પછી નિજસેવકોના આગ્રહથી ગ્રન્થાકાર રૂપે લેખનબદ્ધ કરાવી ભાષાના ગ્રન્થો ઉપર પણ ભાષામાં જ ટીકા કરવાની નવીન શૈલીનો અવિષ્કાર કર્યો.

પછી તેની દેખાદેખી નાભાજીના શિષ્ય પ્રિયાદાસે પણ ભક્તમાળ ઉપર સં. ૧૭૮૦ માં એવીજ પદ્યાત્મક ટીકા રચી અને ત્યારથી અદ્યાવધિ ગદ્યપદ્યટીકાત્મક ભાષા શૈલી ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધીજ પામતી જાય છે.

આ રીતે ભાષા સાહિત્યનું પુર વધ્યું. અને તેના પ્રાથમિક પ્રચારનો યશ ગો. શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુને મળ્યો.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરના યથાર્થ ચરિત્રને જાણવાને અર્થે '૮૪ વાર્તા' અને 'ભાવપ્રકાશ' એ બે ગ્રન્થો પ્રામાણિક અને મહત્ત્વના છે.

વળી શ્રીગોકુલનાથજી માફક શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુની મહાનુભાવતા, સાક્ષાત્કારિતા અને સત્યપ્રિયતામાં પણ કોઈનાય બે મત નથી જ.* અસ્તુ.

આજપર્યંત કોઈ પણ ચરિત્રનાયક પોતાની વિદ્યમાનતામાં સ્વક્ષેત્રના સર્વમાન્ય રૂપે સ્વીકાર્ય થઈ શકયો નથી, એમ ભારતવર્ષના ઇતિહાસથી સ્પષ્ટ જણાય છે. પરંતુ શ્રીસૂર તેના અપવાદ રૂપે સિદ્ધ થઇ ચુકયા છે. તે વિષે પ્રકાશ ફેંકતા નિમ્નાંકિત બે પ્રસંગો અતિ પ્રસિદ્ધ છે જે આ રહ્યા—

પ્રસંગ ૧—શ્રીસૂરના બાર વર્ષ પર્યંતના ગૌઘાટ નિવાસ દરમ્યાન પ્રત્યેક કવિ શ્રીસૂરની પ્રસિદ્ધિથી આકર્ષાઈ તેમને મળવા ગૌઘાટ આવતા. પછી તેમની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી વ્રજના દર્શનાર્થે તેઓ મથુરા પ્રયાણ કરતા.

એ રીતે સં. ૧૫૫૩ થી ૧૫૫૫ લગભગ પ્રસિદ્ધ કવિ કબીર પણ શ્રીસૂરને મળવા ગૌઘાટ આવ્યા. થોડા સમયના

* શ્રી હરિરાય મહાપ્રભુના વિશેષ ચરિત્ર જ્ઞાનાર્થે જુઓ 'શ્રી વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત' અને 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તકવિ' નામક અમારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થતા ગુર્જર અને હિન્દી ભાષાના ગ્રન્થોના પ્રસંગો —સમ્પાદક

સત્સંગ પશ્ચાત કબીરે જ્યારે વ્રજના દર્શનાર્થે મથુરા પ્રયાણની આજ્ઞા માગી ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને વ્રજમાં જતા રોકયા. અને તેઓને તેમના નિરાકાર, નિરંજન વાદને સમજાવતાં કહેવા લાગ્યા કે–'વ્રજ તો રસિકોની ખાણ છે, ત્યાંના પ્રત્યેક વૃક્ષનું એક એક પત્તું સગુણ લીલામય પરબ્રહ્મમાં તલ્લીન છે. જેથી તમે–શુષ્ક નિરાકાર બ્રહ્મવાદી–ત્યાં જશો તો ત્યાંનાં સર્વે વૃક્ષો સુકાઈ જશે.'

પશ્ચાત જ્યારે શ્રીસૂરે, પોતાની આ ભવિષ્ય વાણી ઉપર કબીરને વિશ્વાસ થતો ન જોયો, ત્યારે તેમણે ગૌઘાટ ઉપરના એક વૃક્ષ નીચે બેસી તેમને નિરાકાર બ્રહ્મનાં પદ ગાવાને કહ્યું. તેથી કબીરે આજ્ઞાનુસાર એક વૃક્ષ નીચે બેસી શુષ્ક જ્ઞાનનું ફક્ત એક પદ ગાયું. જેથી તે વૃક્ષ જોતજોતાંમાં સુકાઈ ગયું.

આ પ્રત્યક્ષ ચમત્કાર જોઈ કબીર આશ્ચર્યપૂર્વક શ્રીસૂરને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિએ અવલોકવા લાગ્યા. પછી શ્રીસૂરે તે જ વૃક્ષ નીચે બેસી ભક્તિવિષયક લીલામય સગુણ બ્રહ્મનું એક પદ ગાયું, કે જેનાથી તે વૃક્ષ પુનઃ નવપલ્લવિત થયું.

આથી કબીરે શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતા સ્વીકારી. અને તેમની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી વ્રજ તરફ પ્રયાણ ન કરતાં ત્યાંથી સીધા કાશી ગયા.*

---

* આ પ્રસંગથી, કબીરનો અંત સમય વિ. સં. ૧૫૭૫ નો જેવો કે નીચેના દોહાથી કબીર પંથિયોમાં પ્રસિદ્ધ છે તે–સિદ્ધ થાય છે. અને તેથી ભક્તમાળના, બાદશાહ સિકંદર સાથે કબીરના થયેલા મેળાપવાળા પ્રસંગને પણ ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી પુષ્ટિ મળે છે.

કબીરનો જન્મ સં. ૧૪૫૫–૫૬ માં છે અને અંત ૧૫૭૫ માં છે. તે વાત શ્રીરામકુમાર વર્મા એમ. એ. દ્વારા 'કબીર પદાવલી'

પ્રસંગ ૨—સં. ૧૬૨૮ માં શ્રીરામના અનન્ય÷ ભક્ત તુલસીદાસ પોતાના અનુજ શ્રીનંદદાસને મળવા વ્રજમાં આવ્યા. તે સમયે સૂરદાસજીની પ્રસિદ્ધિ શ્રવણ કરી તેઓ ચંદ્ર સરોવર પરાસોલી તેમને મળવા ગયા.

ત્યાં તુલસીદાસજી રામનામનું ઉચ્ચારણ કરી સૂરદાસજીને મળ્યા. ત્યારે સૂરદાસજીએ તેમને 'આવો તુલસીદાસ' કહીને સત્કાર્યા.

આથી તુલસીદાસજી આશ્ચર્યમાં પડયા. અને વિના નેત્રવાળા સૂરદાસજી એ, કદી ન મળેલા એવા પોતાને કેવી રીતે ઓળખ્યો, તે વિચારમાં લીન થયા.

પછી તુલસીદાસજીએ તેનું કારણ પૂછ્યું ત્યારે સૂરદાસજીએ તેમને કહ્યું કે–તમારા હમણાં બોલેલા બે શબ્દોથી તમારી ઓળખાણ પડી, કિંતુ સૂરદાસજીએ તે સમયે રામનામનો ઉચ્ચાર ન કર્યો.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે પોતાની સુદૃઢ અનન્યતાનો પરિચય

માં સમાલોચનાત્મક રૂપે સિદ્ધ થઇ ચુકેલી છે. એટલે અત્રે તેનો ઉહાપોહ કરવો વ્યર્થ છે.

કબીરના અંતકાલને માટે આ પ્રમાણે પ્રસિદ્ધ છે—

संवत पंद्रहसे पछत्तरा, किया मगहर को गौन ।
माघ सुदी एकादसी, रलौ पौन में पौन ॥

कबीर पदावली
—સમ્પાદક

÷ જે લેખકો 'અનન્ય' શબ્દને હઠધર્મમાં લઈ જઈ, 'તુલસીદાસજી એવા હઠધર્મી ન હતા' એમ કહી ભક્તિમાં પૂર્ણ આવ-

આપી તુલસીદાસજીને મુગ્ધ કર્યા. પછી તેમણે વ્રજનાં મનુષ્યો અને વૃક્ષોની રાધાકૃષ્ણ પ્રત્યેની અનન્યતાનાં તેમને પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યાં. તેથી તેઓએ આશ્ચર્યયુક્ત નિમ્ન દોહો રચ્યો—

राधे २ सब कहै, आक ढाक अरु कैर ।
तुलसी या व्रज भूमिमें, कहा रामसों बैर ॥

પછી સૂરદાસજીએ તેઓને રામકૃષ્ણના અભિન્નત્વનું જ્ઞાન કરાવ્યું. તો પણ જ્યાં સુધી પોતાને રામ અને કૃષ્ણનાં અભિન્ન રૂપે દર્શન ન થાય ત્યાં સુધી તે જ્ઞાનને હૃદય સુદૃઢ-પણે સ્વીકારતું નથી એમ જ્યારે તુલસીદાસે કહ્યું ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને નંદદાસજીની સાથે શ્રીનાથજીનાં દર્શન કરી મનોરથ સિદ્ધ કરવાની આજ્ઞા આપી.

શ્રીસૂર સાચા ભવિષ્યવક્તા તરીકે પ્રસિદ્ધ હોઈ, તેમની આજ્ઞા ઉપર વિશ્વાસ રાખી તેઓ નંદદાસજીની સાથે શ્રીના-થજીનાં દર્શન કરવા ગયા. ત્યાં તેઓને જ્યારે શ્રીરામ સ્વરૂપે પ્રભુએ દર્શન આપ્યાં ત્યારે તેમને સૂરદાસજી દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ જ્ઞાન દૃઢ થયું. અને પછી તેમણે સૂરદાસજીના પદો દ્વારા સ્ફુટ કૃષ્ણના બાલભાવને હૃદયમાં ધારણ કરી

શ્યક એવા અનન્ય પાતિવ્રત ધર્મને સમજતા નથી તેઓ મોટી ભૂલ કરે છે. તુલસીદાસજી પ્રારંભિક અવસ્થામાં કેટલા રામ પ્રતિ સ્વરૂપાગ્રહી હતા તે આ દોહાથી સ્પષ્ટ છે—

‘कहा कहूं छबि आजकी, भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नमै, धनुष बाण लो हाथ ॥’

વિશેષ જુઓ મહાનુભાવ નંદદાસજીનું ચરિત્ર. —**સમ્પાદક**

તેની છાયા લઇ રામ અને કૃષ્ણનાં બાલભાવવાળાં ઘણાં પદ રચ્યાં, જે આજ 'કૃષ્ણ ગીતાવલી' નામથી પ્રસિદ્ધ છે.

પછી સૂરદાસજીની સર્વોચ્ચતાને સ્વીકારી તેમને પ્રણામ કરી તેઓ પુનઃ કાશી આવ્યા.*

તુલસીદાસજીનાં ભક્તિ વિષયક બાલભાવાદિ રામ અને કૃષ્ણ સંબંધી પદોનું અવલોકન કરતાં ઉક્ત પ્રસંગને ઘણી જ પુષ્ટિ મળે છે. અને તેથી સૂરદાસના સૂર્યવત્ પ્રભાવનું પણ

---

* વેણીમાધોદાસ રચિત 'મૂલ ગોસાઈ ચરિત'ની–સૂરદાસજી સં. ૧૬૧૬ માં શ્રીગોકુલનાથજીથી પ્રેરિત થઈ તુલસીદાસજીને મળવા કામદગિરિ પાસે આવ્યા.–એ વાત આ પ્રસંગથી, તેમજ શ્રીગોકુલનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૬૦૮ માં હોવાના કારણને લીધે અસંબદ્ધ છે. વળી યુક્તિથી પણ તેમાં બાધ આવે છે. કારણ કે શ્રીસૂર તે સમયે ૮૧ વર્ષના વયોવૃદ્ધ, જ્ઞાનવૃદ્ધ અને એક સ્થલ નિવાસી એવં '**गुरु प्रसाद होत यह दरशन सरसठ वरस प्रवीन**' આ વાક્યથી ભગવલ્લીલાના સાક્ષાત્કારને પ્રાપ્ત થઈ ચુકયા હતા. તેથી તેઓને સ્વઈષ્ટ શ્રીનાથજીની સેવા છોડી અત્રતત્ર ભટકવું શ્રેયસ્કર હોય એમ સંભવે નહીં. તેમજ તેઓ શુદ્ધ પુષ્ટિમાર્ગીય હોવાથી પ્રભુને પરિશ્રમ કરાવે એવા મર્યાદા ભક્તોને મળવા એટલી દૂર જાય એ પણ માની શકાય નહિ જ.

આ સંબંધી શ્રીયુત પં.રામદત્ત ભારદ્વાજ 'સુધા' માસિકના વર્ષ ૧૩ ખંડ ૨ અને સંખ્યા ૩ ના પૃષ્ઠ ૨૧૧ ઉપર '**मूल गोसांई चरित की अप्रमाणिकता**'એ લેખમાં આ પ્રમાણે લખે છે–

बावा वेणीदासजी सूरदासजी के विषय में लिखते हैं—

વિસ્પષ્ટ દર્શન થાય છે. જેથી એમ સહજ કહેવાઈ જવાય છે કે-જેમ સૂર્યના પ્રકાશથી જ ચંદ્ર પ્રકાશે છે તેમ સૂરદાસના કાવ્યના ભાવોની છાયા માત્રથી જ તુલસીનાં પદો જગતને મુગ્ધ કરે છે.

આ વૈજ્ઞાનિક સૂર્ય—ચંદ્રના સંબંધને ધ્યાનમાં લઇ એક વિદ્વાન્ કવિએ ઠીક જ કહ્યું છે કે—

सूर सूर तुलसी ससी...........

વાસ્તવમાં શ્રીસૂર સૂર્ય છે અને તુલસી શશી રૂપ છે. અને ઉભય ભક્ત કવિયો સાહિત્ય સંસારને આવશ્યક ઉષ્ણુશીતથી પોષી જીવનદાન આપે છે.

જે પુરુષો સૂરથી તુલસીને સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં કાવ્યની દૃષ્ટિએ ઉચ્ચ બતાવવાનો નિરર્થક પ્રયાસ કરી સૂરની વાણીમાં અશ્લીલતાનો દોષ મુકે છે, તેઓ કેવળ પક્ષપાતના અંધારામાં

" सोरह सो सोरह लगे, कामदगिरि ढिंग वास;
सुचि ऐकांत प्रदेश महँ आए सूर सुदास
पठए गोकुळनाथजी कृष्ण-रंग में बोरि ?

+ + +

कवि सूर दिखायेउ सागर को, सुचि प्रेम कथा नटनागर को ।
दिन सात रहे सतसंग-पगे; पद-कंज गहे जव आन लगे ।
गहि बाँह गोसाईं प्रबोध किए; पुनित गोकुलनाथ को पत्र दिये ।"

अर्थात् सं. १६१६ लगते ही कामदगिरि के समीप वास करते हुए तुलसीदासजी के पास (व्रजभूमि से) श्री गोकुलनाथजी द्वारा कृष्ण-रंग में

જાણી જોઈને ઉભા રહી સૂર્યની સામે ઘુવડ-દૃષ્ટિ કરે છે.

પરંતુ ઉક્ત પક્ષપાતીય આરોપના ઉત્તર રૂપે બે તટસ્થ વિદ્વાનો દ્વારા પ્રકાશિત થઈ ચુકેલા નિમ્ન અભિપ્રાયોને હું અહીં ઉદ્ધૃત કરૂં છું:—

(૧) શ્રીયુત **મિશ્રબન્ધુ** લખે છે કે-

तुलसीदास जब कभी राम की नरलीला का वर्णन करते हैं, तब पाठक को यह अवश्य याद दिला देते हैं कि राम परमेश्वर हैं; वह केवल नरलीला करते हैं । यह बात **ऐसे भोंडे प्रकार से भी वह सैकडों वार स्मरण करातें हैं कि जी उकता उठता है,** और यह जान पडता है कि—गोस्वामीजी पाठक को इतना बडा मूर्ख समझते थे कि कितनी ही वार याद दिलाने पर भी वह राम का ईश्वरत्व भुला देगा, अतः उउ को पुनः—पुनः स्मरण कराने की आवश्यकता है यह बात सूरदास में नहीं है।

(नवरत्न पत्र २३४)

"परंतु तोभी, यह महाराज (सूरदासजी) गोस्वामी तुलसीदास की भाँति और देवताओं को गालियाँ नहीं देते थे।" (नवरत्न पत्र २३३)

बोरे और भेजे हुए सूरदासजी आए! उन्होंने अपना 'सूरसागर' दिखाया, और वहां सात दिन रहें। चलते समय गोस्वामीजी के चरण छुए। तब गोस्वामीजीने उन्हें बोध और एक पत्र गोकुलनाथजी के लिये दिया। परंतु सं. १६१६ में श्री गोकुलनाथजी आठ वर्ष के थे, और सूरदासजी ७६ वर्ष के। वह तो कृष्णरँग में पहले से ही रँगे हुए थे। उन्हें आठ वर्ष के बालक कृष्ण के रंग में क्या रँगते। आठ वर्ष के श्री गोकुलनाथ का ६२ वर्ष के गोस्वामी तुलसीदास के पास ७६ वर्ष के महात्मा सूरदास को भेजने का प्रयोजन क्या था? सूरदासजी तो वृद्धावस्था में व्रज छोड़कर कहीं जाते न थे, नेत्रांध भी थे। (વિષેશ જુઓ પ્રસ્તાવનામાં).

શ્રીયુત વિયોગી હરિ લખે છે કે–

"सूरदासजी व्रज–साहित्य के जन्मदाता, परिपोषक एवं उद्धारक कहे जाय, तोभी कोई अत्युक्ति नहीं। इस में संदेह नहीं कि–यह हिन्दी के वाल्मीकि या व्यास हैं। भक्तिपक्ष में तो यह उद्धव के अवतार माने जाते हैं। वात्सल्य रस लिखने में तो आपने गजब किया है। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव–संवाद अपूर्व और अत्यन्त चमत्कार पूर्ण हैं। हमारा तो यह कहना है कि जिन्हे साहित्य का कुछ रसास्वादन लेना है, उन्हें अवश्य ही सूरदास के मधुर, भावपूर्ण पदों का पारायण करना चाहिए। सूरसागर के गानसे लोक और परलोक दोनों ही आनंद–दायक हो सकते हैं, इस में संदेह नहीं। कवि सम्राट सूरके सम्बन्ध में कई भावुक रसिक जनोंने अपनी २ अनुमतियाँ प्रकाशित की हैं।"

(व्रजमाधुरी सार पत्र ३)

શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતા, સ્વયં તારાગણ રૂપે મનાતા મહાકવિ કેશવે પણ, સહર્ષ ભરસભામાં, ઓડછા નરેશ રામસિંહના ભાઈ ઇન્દ્રજીતસિંહ આગળ સ્વીકારી છે અને અન્ય વિદ્વાનો પાસે સ્વીકારાવી પણ છે. તદ્વિષયક નિમ્ન પ્રસંગ પ્રસિદ્ધ છે—

એક સમય ઓડછા નરેશના–સર્વોચ્ચ કવિ કોણ એ–પ્રશ્નના જવાબમાં કવિ કેશવે ભર સભામાં ઉભા થઈ, વિદ્યમાન કવિઓમાં સર્વોચ્ચ રૂપે પોતાને ઘોષિત કર્યા.

જેથી વિદ્વાનોએ તેમને શ્રીસૂર માટે તેમનો શો અભિપ્રાય છે એમ પુછ્યું. ત્યારે કવિ કેશવે સહર્ષ કહ્યું કે–તેઓ ભાષા કાવ્યના કવિકુલ સમ્રાટ છે. અને મારા મત પ્રમાણે તો તેઓને કવિ કહેવા તે તેમના અપમાન સમાન છે. તેઓ કવિ નહીં કિંતુ વ્રજભાષા કાવ્ય–સાહિત્યના આદ્યપિતા છે અને કવિમાં તો હું સર્વોચ્ચ છું.

આ પ્રકારે મહાકવિ કેશવે પણ શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતાનો સ્વીકાર કર્યો છે. એથી વધુ ગૌરવ બીજું કયું હોય?

તેથી જ એક કવિયે શ્રેણી વિભાજન કરતાં કહ્યું છે કે–

'सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास'

વળી રાજા બીરબલે પણ શ્રીસૂરની કાવ્યશક્તિની, બાદશાહ અકબર સમક્ષ અત્યંત પ્રશંસા કરી છે. જે પ્રસંગ આ રહ્યો–

એક સમય બાદશાહ અકબરે ડુંડવાળા ખેતરમાં એક મનુષ્યને આળોટતાં જોઈ બીરબલને તેનું કારણ પુછ્યું. ત્યારે તેણે બાદશાહની આગળ શ્રીસૂરની કાવ્યશક્તિની પ્રશંસા કરતાં નિમ્ન દોહો કહ્યો–

'किधौं सूर को सर लग्यो–किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यो व्याकुल होत सरीर॥

આવી રીતે સૂરની વિદ્યમાનતામાં પણ તેમની સર્વોચ્ચતાની કીર્તિ–ધ્વજા, ભક્તિ અને કાવ્યક્ષેત્રના મહારથીઓમાં નિર્વિવાદ પણે સર્વ માન્ય અને પરમ વંદનીય હતી. અસ્તુ.

શ્રીસૂરદાસજી પ્રભુના અષ્ટસખા પૈકીના એક વ્રજવાસી સખા હતા, તેવી પ્રસિદ્ધિ આજ છે એમ નહિં પણ તેમની

વિદ્યમાનતામાં યે વિધર્મીઓ પણ દૃઢવિશ્વાસપૂર્વક તેમ માનતા હતા.

ઉક્ત વાતને સિદ્ધ કરતો એક પ્રસંગ 'ભક્તિમાહાત્મ્ય' નામક સંસ્કૃત ગ્રન્થમાંથી ઉદ્ધૃત કરીને અત્રે આપવામાં આવે છે—

'શ્રીકૃષ્ણના કોઈ એક સખા (ઉદ્ધવ ?) સુરસેન કુલમાં ઉત્પન્ન થયા હતા. જ્યારે ભગવાન દ્વારકા પધાર્યા ત્યારે તેમની સાથે તે પણ ત્યાં ગયા. કિંતુ એમનું મન વૃંદાવનમાં લાગી રહ્યું હતું. તેમણે એક દિવસ શ્રીકૃષ્ણને કહ્યું કે હું ક્યારે વ્રજનાં સ્થલોનાં દર્શન કરીશ ?'

'પછી થોડા સમય બાદ શ્રીકૃષ્ણે સ્વધામ પધારતી સમયે ઉક્ત સખા આગળ સ્વઇચ્છાને પ્રકટ કરી, પોતાનો મથુરામાં સદા નિવાસ છે એવં પોતાની લીલા નિત્ય છે એમ બતાવી તેમને નિમ્ન ભવિષ્ય કહ્યું—'

"તમે કલિના સન્ધ્યાંશ (સન્ધિ) સમયમાં મથુરાની પાસે **બ્રાહ્મણકુલ**માં પેદા થશો. અને મથુરા જઈને મારી લીલાનું સ્મરણ કરી પ્રાકૃત પદ્યોથી એનું ગાન કરશો. જેનો બીજા ઉપર પણ પ્રભાવ પડશે. અને તમારા પદ ગાનાર વ્યક્તિઓનો પણ હું ઉદ્ધાર કરીશ.* પરંતુ તમે જન્મતાંની સાથેજ નેત્રહીન થશો. જેથી તમને સ્ત્રી પુત્રાદિકનું બંધન પ્રાપ્ત થશે

---

* સરખાવો સૂરની વાણી—

अथ श्रीनाथजी के वरदान—

तब बोले जगदीश जगतगुरु सुनो सूर मम गाथ ।
तू कृत मम यश जो गावैगो, सदा रहे मम साथ ॥

सूरसारावली ११०४ छंद

નહિં અને અન્ધા હોવાના કારણથી કેવળ તમારી માતાજ તમને પાળશે. આ પ્રકારે કહી શ્રીકૃષ્ણ અંતર્હિત થયા. ”

× × ×

‘એક સમય મ્લેચ્છ ભૂપ દિલ્હીના બાદશાહે ભક્તિ-પૂર્વક સૂરદાસજીને પોતાને ત્યાં બોલાવી સત્કાર્યા. અને તેણે કહ્યું કે-**આપ ભગવાનના સખા યાદવ છો જેથી આપને બધું સ્મરણ છે.** તો મારી પ્રાર્થના છે કે મારી અનેક સ્ત્રીઓમાં કોઈ યાદવી હોય તો બતાવો÷’

‘ત્યારે સૂરદાસજીએ બધી રાણીયોને ક્રમશઃ પોતાની સન્મુખ લાવવાને કહ્યું. પછી તેમના કહેવા પ્રમાણે પ્રત્યેક બેગમ પડદાનો ત્યાગ કરી સૂરદાસજીને પ્રણામ કરીને જવા લાગી. અન્તમાં એક બેગમ આવી જેણે સૂરદાસજીને જોઈ સમીપમાં આવી તેમનાં ચરણ-સ્પર્શ કર્યાં. અને સ્પર્શ માત્રથી તેણીએ પોતાનો દેહ છોડી દીધો.

÷ આ પ્રસંગથી બે ત્રણ વાત સ્પષ્ટ થાય છે. એક તો સૂરદાસજીની વિદ્યમાનતામાંજ તેઓ ઉદ્ધવના અવતાર તરીકે પ્રસિદ્ધ હોવા જોઇએ. અને નિમ્ન દોહો પણ તે સમયનોજ હોવો જોઇએ—

विरहानल उरमें जरै बहत नैन जल धार ।
अचरज को है सूर का ऊधो को अवतार ॥

બીજું બાદશાહ અકબર નવીન ધર્મના સંસ્થાપક તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા બાદ પોતાને તેના ‘પયગમ્બર’ રૂપે માનતો હતો. અને તેથી કદાચ તેના હૃદયમાં શ્રીકૃષ્ણની સમાન હોવાની કંઈક અભિલાષા રહેતી હોવી જોઇએ. જેથી તેના મનમાં પોતાની સ્ત્રીઓમાં યાદવી હોવાની ભાવના ઉદ્ભવી.

—સમ્પાદક

'પછી તેનું કારણ પુછતાં બાદશાહને સૂરદાસજીએ કહ્યું કે–પહેલાં મથુરામાં 'સુલોચના' નામક એક વેશ્યા રહેતી હતી. તેણીને એક વૈશ્યે પોતાના પુત્રના વિવાહમાં ઇંદ્રપ્રસ્થ:(દિલ્હી) બોલાવી. ત્યાં પ્રશંસાવશ તેણીને રાજાએ પણ નૃત્ય માટે સભામાં બોલાવી અને એની કલા ઉપર પ્રસન્ન થઈ તેણીને બહુજ દ્રવ્ય આપ્યું. નૃત્યની સમય તેણીએ એક રાણીને જોઈ પોતાની વૃત્તિ ઉપર પશ્ચાત્તાપ કર્યો. પછી ત્યાંથી આવીને પોતાનું સમગ્ર દ્રવ્ય દરિદ્ર બ્રાહ્મણોને આપી દીધું અને એ ફળ માગ્યું કે હું આગલા જન્મમાં રાણી થાઉં.'

'તેણી આ પ્રકારનું ચિંત્વન કરતાં થોડા સમયમાં મૃત્યુ પામી અને તે તમારે ત્યાં રાણી થઇને આવી.'

'પછી આયુષ્ય ક્ષય થયા બાદ તેણી મને જોઇને દેહ છોડી મુક્ત થઈ. આ યાદવી ન હતી, કેમકે જેઓએ યાદવ વંશમાં જન્મ લીધો હતો તેઓ મનુષ્ય ન હતાં'*

---

* સૂરદાસજી મથુરા ગયા તે સમયે અકબર મળ્યો હતો (જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે) ત્યારનો આ પ્રસંગ છે. સૂરદાસજી દિલ્હી ગયા નથી.

—સમ્પાદક

સૂરદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ

———:o:———

ચોફેર પ્રચલિત પ્રસંગોનું નિરૂપણ કર્યા પછી હવે અમે શ્રીસૂરના ક્રમબદ્ધ ચરિત્રનું સંક્ષિપ્ત વર્ણન કરીએ છીએ–

વ્રજભાષા–ગદ્યસાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલનાથજી રચિત 'વાર્તા અને 'નિજવાર્તા'ના આધારે શ્રીસૂરનો જન્મ સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ શુકલ દ્વિતીય પંચમી અને રવિવારના મધ્યાન્હે દિલ્હી પાસે આવેલા 'સીંહી' નામક ગ્રામમાં એક સારસ્વત બ્રાહ્મણને* ત્યાં થયો હતો.

શ્રીસૂર સ્વગુરૂ મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીથી ફક્ત ૧૦ દિવસજ ન્હાના હતા.

---

* સૂરદાસજીનું બ્રહ્મભટ્ટ હોવું બીલકુલ અસઙ્ગત છે. કારણ કે–એ તદ્દન અસંભવ છે કે શ્રીસૂરના ઘનિષ્ઠ પરિચયવાળા શ્રીગોકુલેશ તેમની જ્ઞાતિ પણ ન જાણતા હોય!

અર્વાચીન તમામ અન્વેષણ કર્તાઓએ વાર્તાને જ તે વિષયમાં વધુ પ્રામાણિક માની એકી અવાજે સૂરદાસજીનું બ્રાહ્મણ હોવું સ્પષ્ટ કર્યું છે. વિસ્તાર ભયથી નીચે સમાલોચનાત્મક ફક્ત બેજ મત ઉધ્ધૃત કર્યાં છે--

"सरदार कवि ने इन्हें महाकवि चन्दवरदायी का वंशज मानकर, ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है, किन्तु 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में इसका कोई जिकर नहीं है, और 'वार्ता' ही प्रमाण कोटि में अधिकांशतः आ सकती है,

જનશ્રુતિના આધારે તેમના પિતાનું નામ રામદાસ અને માતાનું નામ ભગવતી લક્ષ્મી હતું.

તેઓ જન્મથી જ બાહ્ય ચક્ષુ ચિન્હ રહિત, ભગવદીય અને ત્રિકાલજ્ઞ હતા. શ્રીસૂર છ વર્ષના થયા ત્યારે તેઓ

क्यों कि उसे सूरदासजी के समसामयिक गोसाई गोकुल-नाथजी ने रचा था।"

वियोगीहरि रचित 'व्रजमाधुरी सार' पत्र. २

"इन छंदो के कपोल कल्पित होने का दूसरा बडा भारी प्रमाण यह है कि श्रीगोकुलनाथजी ने अपने चौरासी-चरित्र में और मियाँसिंह ने भक्त-विनोद में सूरदास को ब्राह्मण कहा है। गोकुलनाथ गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र थे, और सूरदास के मरने के समय गोस्वामीजी की अवस्था ४८ वर्ष की थी। अतः समझ पडता है कि गोकुलनाथ भी २०-२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामीजी और सूरदास में प्रेमका एवं अन्य घनिष्ठ संबंध था। अतः यह विचार भी मन में नहीं आता कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूर-दास का कुल तक न जानते हो। इसी प्रकार चौरासी वार्ता और भक्तविनोद में शत्रुनाश के वरदान का कोई हाल नहीं लिखा हैं, यद्यपि कूपपतन का वर्णन है, यह संभव नहीं कि यदि यह वरदान सूरदास को मिला होता, तो इन दोनों पुस्तकों में कूपपतन का वर्णन होने पर भी यह हाल न लिखा होता। फिर यह भी संभव नहीं कि यदि इन के छ भाई मारे गए होते, तो ये दोनो लेखक उस बात को न लिखते।"

मिश्रबन्धु-नवरत्न पात्र २२६

સ્વપિતાના કટુ વચનથી ઘરથી વિરક્ત થઈ ચાલી નીકળ્યા.* અને તેમણે ગામથી ચાર કોસ દૂર આવેલા એક નાના ગામની બહાર તલાવ ઉપર આવીને જળ પીધું. ત્યાં તેમણે લોકોને શુકન આદિ બતાવી ભવિષ્ય કહી કેટલીક પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. જેના પરિણામે ત્યાંના લોકોએ તેમને ખાનપાન આદિનો પ્રબંધ કરી આપ્યો.

પછી પ્રસિદ્ધિથી આકર્ષાઇ ઘણા મનુષ્યો, કંઠી એવં ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરી એમના શિષ્ય થયા. અને ત્યારથી તેઓ 'સૂરસ્વામી' તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા.

તેઓ કાવ્યરચના અને ગાનકળામાં જેવા સર્વોત્કૃષ્ટ હતા તેવાજ કોકીલકંઠી હતા. તેથી તેમના અનેક ગુણોથી આકર્ષાઈ કવિઓ અને ગુણીજનોનો સમૂહ તેમની નિકટ સર્વદા રહેતો.

ત્યાં બાર વર્ષના નિવાસ દરમ્યાન તેમણે હજારો પદ માહાત્મ્ય અને દીનતાનાં રચ્યાં.

જનશ્રુતિના આધારે, સં. ૧૫૫૨માં તેઓને નારદજીનો સાક્ષાત્કાર થયો. પછી તેમની દ્વારા ભગવદ્ ગુણાનુવાદ શ્રવણ કરી તેઓ અતિ પ્રસન્ન થયા. અને ભક્તપ્રકૃતિને અનુસરીને તેમણે નારદજી આગળ નિમ્ન પદ દ્વારા માહાત્મ્યજ્ઞાન સંયુક્ત પ્રભુની નિષ્ઠુરતાનું વ્યંગાત્મક વર્ણન કર્યું—

कहावत एसे त्यागी दानी ।
चार पदारथ दिये सुदामा, गुरु के सुत दये आनि ॥

---

* કેટલાકના મતે આઠ વર્ષના થઇ ઉપવિત લીધા બાદ તેઓ વિરકત થયા હતા.

विभीषन कौं लंक दीनी, प्रेम प्रीति पहचानि।
रावन के दस मस्तक छेदे, दृढ ग्रही सारंग पानि॥
प्रह्लाद को निज कृपा कीन्ही, सूरपति किये निदान।
सूरदास पर बहुत निठुरता नैनन हू की हान॥

આ પદ શ્રવણુ કરી નારદજી આર્દ્ર હૃદયે તેમને ભગવદ્દર્શનનો વર આપી અંતર્ધ્યાન થયા.

પછી એક દિવસે સૂરદાસજી ભગવદ્ગુણાનુવાદ ગાતાં આનંદના આવેશથી આત્મ-વિસ્મૃત થયા. અને તેઓ ભાવાવેશમાં ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. તે સમયે નજીકના એક કુવામાં પડતાં ગોપવેશધારી શ્રીકૃષ્ણે તેમની હાથ પકડી રક્ષા કરી*

આપના અલૌકિક સ્પર્શમાત્રથી તેઓને ભગવત્સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું. અને તેથી એમણે પણ તે પ્રભુના શ્રીહસ્તને મજબુત પકડયો.

પછી ગોપવેશ ધારી શ્રીકૃષ્ણ તેમના હાથમાંથી અંતર્ધ્યાન થયા ત્યારે શ્રીસૂરે નિમ્ન દોહો કહ્યો—

---

* '**भक्ति-माहात्म्य**' નામક એક પ્રાચીન સંસ્કૃત ગ્રન્થથી ઉદ્ધૃત.

જે ગ્રંથમાં સાત દિવસ સુધી કુવામાં પડી રહેવાનું વર્ણન છે તે, વાર્તાના આધારે તથા યુક્તિથી પણ અસંગત છે. કેમકે વાર્તાને અનુસરીને એ સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીસૂર કદીયે શિષ્યો વિહીન રહ્યા નથી. એટલે છ દિવસ સુધી શિષ્યોને સૂરદાસજીના કુવામાં પડવાની ખબર ન પડે એ માની શકાય નહિ.

આવોજ એક અન્ય પ્રસંગ બિલ્વમંગળ સુરદાસ સંબંધીનો 'ભક્તિ મહાત્મ્ય' ગ્રન્થમાં પ્રાપ્ત છે. એટલે સંભવ છે કે નામ સામ્યે સૂરદાસના પ્રસંગો અને પદોમાં સંમિશ્રણ થયું હોય.

* हाथ छुडाये जात हो निबल जानि के मोहि ।
हिरदे तें जब जाऊगे मर्द बदोंगो तोहि ॥

પશ્ચાત ચારે તરફ પ્રભુને ખોળતાં તેઓ વિકળ થઈ ત્યાંના મનુષ્યોને તે ગોપબાલકના વિષે પુછવા લાગ્યા.

જ્યારે મનુષ્યો તરફથી કોઈ પણ પ્રકારનો જવાબ ન મળ્યો ત્યારે તેઓ સ્વસ્થળે આવી અતિ દૈન્યતાપૂર્ણ હૃદયે શ્રીગોપીજનોની માફક હરિયશોગાન કરતા અસ્વસ્થ ચિત્તે રૂદન કરવા લાગ્યા.

તે સમયે ભક્તાધીન પ્રભુએ ત્યાં પ્રકટ થઈ શ્રીસૂરને દિવ્ય નેત્રો આપી દર્શન દીધાં.

આ વખતે શ્રીસુરે તે અલૌકિક સુધામય મૂર્તિનું દર્શન કરી હૃદયવેધક નિમ્ન પદ ગાયું—

'सन्मुख आवत बोलत बैंन ।
ना जानूं तिंहि समे जु मेरे सब तन श्रवण कि नैन ॥
रोम २ में सुरति शब्द की नख शिख लोचन ऐंन ।
इते मांझ बानी चंचलता सुनी न समुझी सैन ॥
तब जकि थकि चकि ठई मौन मुख अब न परै चित्त चैन।
सुनहु सूर यह सत्य, किधौं सुपनौ दिन रैन ॥

---

* ભક્તિમાહાત્મ્યમાં આ દોહો સંસ્કૃતમાં આ પ્રકારે પ્રાપ્ત છે.
मोटयित्वा करं यन्मे दुर्बलस्य गतोह्यसि ।
हृदयाचेद्बहिर्यसि तदा त्वां पुरुषं ब्रुवे ॥ (૧૦૪ પ્રકરણ)

પછી શ્રીકૃષ્ણે સુરની વાણીનો અંગિકાર કરી તેમને વર માગવાને કહ્યું. ત્યારે તેમણે અન્ય પ્રાકૃત વસ્તુ ન દેખાય તદર્થ નેત્રોના વિસર્જનપૂર્વક ભગવલ્લીલાનો સાક્ષાત્કાર માગ્યો.

એટલે શ્રીહરિએ તેઓને મથુરામંડલમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીના શરણુ દ્વારા તે ઇચ્છા પૂર્ણ થશે એમ આજ્ઞા કરી.

પછી શ્રીકૃષ્ણુના અંતર્ધ્યાન થયા બાદ શ્રીસૂરે કેટલાક દિવસ ત્યાં રહી ભગવદમાહાત્મ્ય જ્ઞાનનું પદો દ્વારા વર્ણન કર્યું. તે પૈકી એક રાત્રિએ પુનઃ શ્રીકૃષ્ણે તેમને દર્શન આપી મથુરામંડલમાં શીઘ્ર જવાની આજ્ઞા કરી.

તેથી તેઓ સં. ૧૫૫૩ માં કેટલાક શિષ્યો સહિત મથુરા જવા નિકળ્યા. આ સમયે તેમના પિતા પણુ ત્યાં આવી પહોંચ્યા. એટલે તેમણે તેઓને દુઃખી જાણી પોતે ત્યાગ કરેલો વૈભવ લેવાને કહ્યું.

પછી પિતાએ તે ગ્રહણુ કર્યો. અને સૂરદાસની સાથે તેઓ પણુ મથુરા યાત્રાર્થે ચાલ્યા.

કહે છે કે આ સમયે તેમના પિતાએ મથુરામાં એક સાધુને ત્યાં શ્રીસૂરનો યજ્ઞોપવિત સંસ્કાર કર્યો. અને તેમને વિદ્યાભ્યાસ અર્થે ત્યાં રાખ્યા.

પશ્ચાત સૂરદાસના આગ્રહથી તેમના પિતા ઘર ગયા. અને સૂરદાસજી થોડા દિવસ ત્યાં રહ્યા.

પછી મથુરાના ચોબાની પ્રવૃત્તિથી કંટાળી તેઓ મથુરા અને આગ્રાની વચ્ચે આવેલા ગૌઘાટ નામક સ્થાન ઉપર શિષ્યો સહિત ગયા. ત્યાં શિષ્યોને એક કુટી કરવાની આજ્ઞા

આપી. અને જ્યાં સુધી તે સિદ્ધ થઇ નહી ત્યાં સુધી તેઓ પાસેના 'રૂનકતા' નામક ગામમાં એક સ્થળે રહ્યા.

બાદમાં શ્રીસૂરે ગૌઘાટ ઉપર ૧૨ વર્ષ પર્યંત દઢનિવાસ યુક્ત અનેક શિષ્યો પ્રાપ્ત કરી, ભગવદ્યશોગાન દ્વારા મોટા પ્રમાણમાં પ્રસિદ્ધિ–લાભ મેળવ્યો.

ત્યાં સર્વ પ્રકારનું સુખ હોવા છતાં સૂરદાસજીનું હૃદય ભગવલ્લીલાના દર્શનને માટે વારંવાર અશાંત બનતું. તોપણ તેઓ કોઇ ન જાણે તે રીતે પોતાના અશાંત ચિત્તને, ભગવદાજ્ઞા ઉપર દઢ વિશ્વાસ રાખી શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની પ્રતિક્ષા કરતાં, પુનઃ પુનઃ સમજાવી આશા આપતા.

આ પ્રકારે ઘણા દિવસ વ્યતીત થયા. એવામાં દક્ષિણના મહારાજા 'નૃસિંહવર્મા' સાર્વભૌમના રાજ્યમાં, રાયલુ સેનાની રાજા કૃષ્ણદેવ દ્વારા વિદ્યાનગરમાં કનકાભિષેકથી સન્માન પ્રાપ્ત કરી મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય અડેલ થઈ સં. ૧૫૬૬ના ચૈત્ર વદ ૧૧ના દિવસે ગૌઘાટ પધાર્યા×

તે સમયે શ્રીસૂર શિષ્યો દ્વારા મહાપ્રભુનું આગમન સાંભળી હર્ષપૂર્વક આપની પાસે આવ્યા. અને તેમણે દીનતાનાં અનેક પદ ગાયા ઉપરાંત પોતાને શરણે લેવાની નિમ્ન પદ દ્વારા પ્રાર્થના કરીઃ—

' तुम तजि और कोन पै जाऊं ।
काके द्वार जाय शिर नाऊं परहथ कहां बिकाऊं ॥

× આ સંબંધી વિશેષ જુઓ અમારા તરફથી પ્રકટ થયેલ "શ્રી વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત"

एसो को दाता है समरथ जाके दिये अघाऊं ।
अंतकाल तुमरे सुमिरन बिनु और नहीं कहुं ठाऊं ॥
रंक सुदामा कियो अजाची दियो अभैपद ठाऊं ।
कामधेनु चिंतामनि दीनी कल्पवृक्ष तरछाऊं ॥
भव समुद्र अति देखि भयानक मनमें अधिक डराऊं ।
कीजे कृपा महाप्रभु मो पर,+ सूरदास बलिजाऊं ।

શ્રીસૂરની ઉક્ત દૈન્યતાપૂર્ણ વિનતીને સ્વીકારી આચાર્યશ્રીએ તેમને શ્રીયમુનામાં સ્નાન કરાવી તેજ દિવસે (ચૈત્ર વ. ૧૧) નામ નિવેદન આપીને શરણે લીધા. પછી ભાગવતના દશમસ્કંધની અનુક્રમણિકા એવં પુરૂષોત્તમ સહસ્રનામને રચી તેઓને શ્રવણ કરાવ્યાં. તેથી તેમને સમગ્ર લીલાનું જ્ઞાન થયું. પછી એમણે આચાર્યશ્રીના દશમસ્કંધની ટીકાના મંગલાચરણવાળા શ્લોકને અનુસરીને નિમ્ન પદ ગાયું—

+ ખેદ છે કે મિશ્રબન્ધુઓએ પોતાની 'સૂરસુધા' નામક પુસ્તકમાં આ કડીને ફેરવી નાખી છે–

कीजे कृपा सुमिरि अपनो प्रण सूरदास बल जाऊं ।

તો પણ

तुम तजि और कोन पै जाऊं । काके द्वार जाय शिर नाऊं
परहथ कहां बिकाऊं ॥

એ શબ્દોથી સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે કે શ્રીસૂરે મહાપ્રભુ આગળ પોતાને શરણે લેવાની પ્રાર્થના રૂપેજ, મહાપ્રભુ અને ઈશ્વરના સ્વરૂપમાં સાચો અને વાસ્તવિક અભેદ સમજી, આ પદ ગાયું છે, વિશેષ જુઓ વિશ્વનાથ ગોવિંદજી દ્વિવેદી રચિત શ્રીવલ્લભ દિગ્વિજય પાન ૯૨

—સમ્પાદક

चकईरी चल चरन सरोवर जहाँ नहिं प्रेम वियोग।'

ઉક્ત શ્લોકમાં **'लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिं'** જેમ કહ્યું છે તેમ સૂરે પણ આ પદના અંતમાં **'जहां श्रीसहस्र सहित नित क्रीडत शोभित सूरजदास'** એમ ગાયું છે. તેથી આચાર્યશ્રીએ જાણ્યું કે સૂરદાસજીને ભગવલ્લીલા સ્ફુરી.

પછી આચાર્યશ્રીએ તેમને નંદાલયની લીલા ગાવાની આજ્ઞા કરી ત્યારે તેમણે જન્મ પ્રકરણને અનુસરીને **'व्रजभयो महरि के पूत'** એ પદ ગાયું. તેમાં નંદાલયનું વર્ણન કર્યા પછી જ્યારે તેઓ ગોપીયોના ગૃહનું વર્ણન કરવા લાગ્યા ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેમને રોકવા માટે, તેમજ તેમના–સ્વ-શિષ્યોના ઉદ્ધાર સંબંધી–આંતરિક સંદેહના નિવારણાર્થે, **'सुनि सूर सबन की यह गति'** એ અંતિમ વાક્ય કહી ઉક્ત પદની પૂર્ણાહુતિ કરી તેમને ચુપ કર્યા.

પછી ત્રણ દિવસ પર્યંત આચાર્યશ્રી ત્યાં બિરાજ્યા તે દરમ્યાન શ્રીસૂરે પોતાના અનેક શિષ્યોને સેવક કરાવ્યા. અને ચોથા દિવસે તેઓ આપની સાથે શ્રીગોકુલ આવ્યા.

તે સમયે આગ્રાથી ગજ્જનધાવન કાલપીવાળા પણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને લઈને આચાર્યશ્રીની સાથે ગોકુલ આવ્યા હતા. અને આચાર્યશ્રી શ્રીનવનીતપ્રિયાજીને પ્રેમ-પૂર્વક બાલભાવથી લાડ લડાવતા હતા.

ઉભય સ્વરૂપોની પરસ્પર પ્રીતિનો હૃદયમાં અનુભવ કરી સૂરદાસજીએ આચાર્યશ્રીને પ્રસન્ન કરવાને અર્થે આપની આજ્ઞાથી શ્રીનવનીતપ્રિયજીના ગૂઢ સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં

બાલભાવનાં '**शोभित कर नवनीत लिये**' આદિ અનેક પદ ગાયાં. જેથી આચાર્યશ્રી પ્રસન્ન થયા.

પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી સૂરદાસજીને સાથે લઈ શ્રી-ગોવર્ધન પર્વત ઉપર પધાર્યા. ત્યાં નવીન મંદિરમાં બિરાજતા શ્રીનાથજીની સન્મુખ વૈ. શુ. ૩ અક્ષયતૃતીયાના દિવસે સૂર-દાસજીને કીર્તનની સેવા સોંપી.

તે સમયે શ્રીસૂરે વિજ્ઞપ્તીયુક્ત દીનતાનું–'**अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल**' એ–પદ ગાયા બાદ પુષ્ટિમાર્ગના મર્મને પ્રકટ કરતું, માહાત્મ્યજ્ઞાનયુક્ત પૂર્ણ સ્નેહને સૂચવતું "**कौन सुकृत इन व्रजवासिन को**"–પદ શ્રીનાથજીને શ્રવણ કરાવ્યું. જેથી આચાર્યશ્રી પૂર્ણ સંતુષ્ટ થયા.

પછી આચાર્યશ્રીના સંબંધથી શ્રીનાથજીએ શ્રીસૂરને વિવિધ પ્રકારની અનેક લીલાઓનો અનુભવ કરાવ્યો. અને તેમને તે લીલાઓનું સુચારૂ રૂપે વર્ણન કરવાની આજ્ઞા આપી.

જેનું સ્પષ્ટીકરણ શ્રીસૂર આ પ્રકારે નિજ 'સૂરસાવલી'માં આપે છે—

करमयोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो ।
श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो ॥
ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।
ताको सार सूरसारावलि, गावत अति आनंद ॥

अथ श्रीनाथजी के वरदान–

तब बोले जगदीश जगतगुरु, सुनो सूर मम गाथ ।
तू कृत मम यश जो गावैगो, सदा रहे मम साथ ॥

पत्र ६०–११०४

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે આચાર્યશ્રી અને શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીની કૃપાથી સમગ્ર લીલાનાં પદોનો વિસ્તાર કર્યો. અને તેમાં સૂર એવં સૂરદાસ એમ દ્વિવિધ છાપ ધરી. અસ્તુ.

સૂરસારાવલીના અવલોકનથી એ પ્રતીત થાય છે કે સં. ૧૫૬૬ થી સં. ૧૫૮૬ સુધીના વચગાળાના ૨૧ વર્ષમાં, શ્રીસૂરે, પોતાને પ્રાપ્ત શ્રીનાથજી એવં આચાર્યશ્રીના દિવ્ય પ્રસાદ દ્વારા અનેક લીલાઓનાં અસંખ્ય પદો રચ્યાં અને મહાપ્રભુને શ્રવણ કરાવ્યાં.

તેથી વાર્તાને અનુસાર આચાર્યશ્રી તેઓને 'સૂરસાગર' કહીને બોલાવતા અને આપની તે વાણી આજ પણ સાહિત્ય-સંસારમાં વિશુદ્ધ રૂપે સ્પષ્ટ છે.

સં. ૧૬૩૪ લગભગ જ્યારે બાદશાહ અકબર મથુરામાં સૂરદાસને મળ્યો ત્યારે તેણે શ્રીસૂરને પોતાનો પણ કંઇક યશ ગાવાને કહ્યું. પરંતુ ભગવદ્‌રસથી પરિપૂર્ણ એવા શ્રીસૂરે તેને સ્પષ્ટ કહ્યું કે '**नाहीन रह्यो मन में ठौर**'।

પછી બાદશાહે સૂરદાસજીને વિષ્ણુપદ સંભળાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે '**मनारे तू कर माधोसें प्रीत**' એ 'સૂરપચીસી' સંભળાવી તેને ઉપદેશ આપ્યો.

તેથી બાદશાહે પ્રસન્ન થઇને કંઇક માગવાને કહ્યું. ત્યારે શ્રીસૂરે નિડરતાપૂર્વક જણાવ્યું કે 'ફરીથી તમે મને કદી મળતા નહિ તેમજ બોલાવતા પણ નહિ'*

* 'આઇને અકબરી'નો અબુલફજલનો—સૂરદાસને બાદશાહને મળવા કાશીથી પ્રયાગ આવવા માટેનો—લખેલો પત્ર અષ્ટછાપના શ્રીસૂર પ્રત્યેનો નથી. કિંતુ સંભવ છે કે 'સૂરદાસ મદનમોહન'

સૂરદાસજીની આવી નિસ્પૃહતા અને નિડરતા જોઈ બાદશાહ આશ્ચર્યચકિત થયો. અને ત્યારથી તે તેમને અને તેમના કાવ્યને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિથી જોવા લાગ્યો. પછી તેણે તેમનાં અનેક કીર્તનો પોતાનાં માણસો પાસે ફારસીમાં ઉતરાવી લીધાં અને તેનું તે નિત્ય અધ્યયન કરવા લાગ્યો.

પશ્ચાત ધીરે ધીરે અકબર ને શ્રીસૂરનાં પદો પ્રત્યે બહુજ મમત્વ વધ્યું. અને જે કોઈ તેમનાં રચેલાં પદો તેને આપે તેને તે પ્રત્યેક પદ દીઠ એક એક મોહોર આપતો.

આ રીતે બાદશાહ અકબરે શ્રીસૂરનાં પદોનો બહુજ મોટો સંગ્રહ પ્રાપ્ત કર્યો.

આથી જો કે સૂરદાસજી અને તેમના કાવ્યની ખ્યાતિ જગ-પ્રસિદ્ધ થઈ કિંતુ તેની સાથે એક મહાન અનર્થ એ

છાપવાળા સૂરદાસ ઉપરનો હોય. કારણ કે તે સૂરદાસે બાદશાહ અકબરની નોકરી છોડી તે માટે તેમને મનાવવાને અર્થે તેની પ્રશંસાનો પત્ર બાદશાહે તેની ઉપર લખાવ્યો હોવો જોઇએ.

ઉક્ત અનુમાનમાં સમય બહુજ મળતો આવે છે કેમકે અબુલ-ફજલ સંવત ૧૬૩૧ (અકબરના ઇલાહી સન ૧૯)માં બાદશાહનો નોકર થયો હતો. અને સૂરદાસ મદનમોહન પણ તેજ અરસામાં નોકરી છોડી આગળ જણાવ્યા પ્રમાણે ભાગી ગયા હતા.

વળી અષ્ટછાપના શ્રીસૂર શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા પછી કદીયે ગોવર્ધન, મથુરા યા ગોકુલ શિવાય કોઈ સ્થળે ગયેલા જણાતા નથી.

અને એ અનુભવ સિદ્ધ વાત છે કે ભગવત્સાક્ષાત્કાર થયા બાદ બાદશાહને અથવા કોઈ અન્યને પણ મળવા અન્યત્ર જઈ મહાનુભાવો સ્થાનભ્રષ્ટ થતા નથીજ.

—સમ્પાદક

થયો કે શ્રીસૂરના નામે બનાવટી છાપવાળાં ઘણાં પદો રચાયાં.

એક દિવસે બાદશાહ અકબરની પાસે કેટલાક કવીશ્વરો લોભથી સૂરદાસજીની છાપ ધરી ઘણાં કલ્પિત પદો બનાવીને લાવ્યા. તે વાંચી અકબરે તે પદોની કલ્પિતતાને જાણી લીધી. અને તે બનાવટી પદોની સાથે સૂરદાસજીના વાસ્તવિક પદોને તેણે ઈશ્વરનું સ્મરણ કરી પાણીમાં મૂકયાં. ફલતઃ કલ્પિત પદો જળમાં ડુબી ગયાં અને સાચાં પદો પાણીની ઉપર તરવા લાગ્યાં.

આ સૂરદાસજીની વાણીનો પ્રત્યક્ષ પ્રભાવ જોઈ અકબરને પ્રસન્નતા તો અવશ્ય પ્રાપ્ત થઈ, પરંતુ સાથે સાથે એ વિચારથી ખેદ પણ ઘણો થયો કે મારી લોભ આપવાની પ્રવૃત્તિથીજ સૂરદાસજીનાં વિશુદ્ધ પદોમાં કલ્પિત પદોનું સંમિશ્રણ થયું.

પછી તેણે આર્દ્ર હૃદયે 'પ્રભુ મને આ પાપમાંથી મુક્ત કરો' એમ કહી પોતાની પાસેનાં તમામ પદોને જળમાં મૂકી દીધાં. અને ઈશ્વરને પ્રાર્થના કરતો તે કહેવા લાગ્યો કે 'હે પ્રભુ! સૂરદાસજીની વાણીથી અતિરિકત સર્વે પદોને શીઘ્ર ડુબાવી દો'

બાદશાહની ઉકત પ્રાર્થનાને સ્વીકારી પ્રભુએ સૂરદાસજીથી ભિન્ન સર્વે વાણીને જળમાં ડુબાવી દીધી.

આ રીતે અકબર દ્વારા શ્રીસૂરની વિશુદ્ધ વાણીનું પૃથક્કરણ થયું.+

+ ઉક્ત પ્રસંગ આ પ્રકારે પણ પ્રાપ્ત છે–

दूसरा यह कि—अकबर के वजीर भाषारसिक खानखाना ने सूरसागर संग्रह किया, प्रतिपद के लिये एकएक अशर्फी

પછી ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીની આજ્ઞાથી તે એક લાખ પદના સંગ્રહને અકબરે 'સૂરસાગર' નામ આપ્યું. જે આજ પણ પ્રસિદ્ધ છે.

વળી એક સમય સૂરદાસજી ગોકુલ આવ્યા ત્યારે ગુસાંઈજીએ તેમને ' પ્રેંખ પર્યંક શયનં ' એ પાલનાનું સંસ્કૃત પદ રચી શિખવાડ્યું. ત્યારથી તેઓએ તેને અનુસરીને અનેક પાલનાનાં પદો ગાયાં. અને તે દ્વારા શ્રીનવનીતપ્રિયજી અવં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીને પોતે પ્રસન્ન કર્યા.

પછી જ્યારે શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી શ્રીનાથજીની સેવાર્થે ગોવર્ધન પધાર્યા ત્યારે તેઓ પણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીથી વિદાય થઈ ત્યાં જવા લાગ્યા. તે સમયે શ્રીગિરધરજીએ ગોવિંદજી, બાલકૃષ્ણજી અને ગોકુલનાથજીના અત્યાગ્રહથી સુરદાસજીને થોડા દિવસ વધુ રહેવાનો આગ્રહ કરી ગોકુલમાં રાખ્યા. આ વખતે શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીગિરિધરજીને આશ્વ-

---

देते थे। परंतु जब लोग लोभ से झूठे पद बना बनाकर लाने लगे तब उन्होंने तोलना आरम्भ किया। जो पद सूरदासजी के होते वह चाहे बड़े हों या छोटे तौल में बराबर उतरते, और जो झूठे होते वे कितने ही बडे क्यों न हों हलके हो जाते ?

तीसरी यह कि—अकबर ने पदों का संग्रह किया परन्तु झूठे पदों की बहुतायत से संख्या बहुत बढ़ गई तब सब को आग में डाल दिया। जो सूरदासजी के थे न जले और जो झूठे थे सब जल गए।

'सूरदास' पत्र. १३७नागरी प्रचारिणी सभाद्वारा प्रकाशित–भूतपूर्व मंत्री बाबू राधाकृष्णदास लिखित

ર્યાન્વિત થઇ કહ્યું કે સુરદાસજી નેત્રવિહીન હોવા છતાં શ્રીનવનીતપ્રિયજીને જેવો શ્રૃંગાર થાય છે તેવુંજ તેઓ પ્રત્યક્ષ-દર્શી માફક વર્ણન કરે છે. માટે તેઓને અવશ્ય કોઈ કહેતું હોવું જોઇએ. જેથી આવતી કાલે કોઈને ખબર ન હોય તેવો અટપટો શ્રૃંગાર કરી આપ સૂરદાસજીની પરીક્ષા લો.

પછી બીજે દિવસે સૂરદાસજીને જગમોહનમાં બેસાડી કદી ન થયો હતો એવો શ્રૃંગાર શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીગિરધરજી પાસે શ્રીનવનીતપ્રિયજીને કરાવરાવ્યો. તે દિવસ જેઠ વદ ૧ નો હતો (વ્રજ અષાઢ વદ ૧) એટલે ગર્મી સખત પડતી હતી જેથી શ્રીગિરધરજીએ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને કેવળ મોતિના શ્રૃંગાર કર્યા.* પછી જ્યારે સૂરદાસજીને કીર્તન ગાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે આ પદ ગાયું–

देखेरी हरि नंगमनंगा।
जलसुत भूषण अंग विराजत, बसनहीन छवि उठत तरंगा॥
कहा कहुं अंग अंगकी शोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा।
कछू दधि हाथ कछू मुख माखन, सूर हसत व्रजयुवतिन संगा॥

આ પદ શ્રવણ કરી શ્રીગોકુલનાથજીને પ્રતીત થઈ કે વાસ્તવમાં શ્રીસુરને સર્વ લીલા પ્રત્યક્ષ છે. ×

---

* આજપણ જેઠ માસમાં શ્રીનાથજી અને નવનીતપ્રિયજીને આ શ્રૃંગાર ધરાવવામાં આવે છે.

× મિશ્રબન્ધુઓએ પોતાના 'નવરત્ન' ગ્રન્થમાં, સૂરદાસજી નેત્ર-વિહીન નહીં હોવા જોઇએ કેમકે જેવું અંધ પુરૂષ વર્ણન ન કરી શકે તેવું તેઓએ યથાર્થ અને આબેહુબ પ્રાકૃતિક વર્ણન કરેલું છે એવું કરેલું અનુમાન આ પ્રસંગથી અસત્ય ઠરે છે.

પશ્ચાત એક સમય શ્રીસૂરને મળવા હરિવંશ આદિ વૃંદાવનના સંત મહંતો પરાસોલી આવ્યા. ત્યારે શ્રીસૂરે તેમનો આદર કર્યો. અને પરસ્પર વાર્તાલાપાનન્તર શ્રીસ્વામિનીજીનાં પદો સંભળાવ્યાં. તે સમયે શ્રીસૂર એવા રસાવેશમાં ડુબી ગયા કે–તેમણે સાત દિવસ સુધી એક આસન બેસી શ્રીસ્વામિનીજીના સ્વરૂપને વર્ણન કરતાં અસંખ્ય પદો કહ્યાં.

આથી હરિવંશાદિક મહાનુભાવોએ આપની આર્દ્ર હૃદયે સ્તુતિ કરી. પછી પ્રણામ કર્યા બાદ તેઓ આપની પ્રશંસા કરતા વૃંદાવન ગયા. કિંતુ સૂરદાસજીને પોતાના શરીરનું ભાન ન રહ્યું અને ભાવાવેશમાં તલ્લીન થઇ તેમણે થોડા સમયમાં શ્રીસ્વામીનીજીનાં સહસ્રાવધિ પદ કર્યાં. આથી શ્રીસ્વામિનીજીએ પ્રસન્ન થઇને તેમને સાક્ષાત્ દર્શન આપ્યાં અને તેમની 'સૂરજ' છાપધરી, જે આજ પણ ઘણા પદોમાં જોવામાં આવે છે.

પછી જ્યારે શ્રીસૂરને નિત્યલીલા–પ્રવેશની ભગવદાજ્ઞા થઈ ત્યારે તેઓને સવા લક્ષમાં બાકી રહેલાં ૨૫૦૦૦ પદોની રચના માટે ચિંતા થઈ.

તે ચિંતાને દૂર કરવા શ્રીહરિએ તેમના સંગ્રહમાં બાકી રહેલાં પદો 'સૂરશ્યામ'ની છાપ ધરી પૂર્ણ કર્યાં જે આજ પણ પ્રાપ્ત છે.

પછી સં. ૧૫૪૦ ના મહા સુદ ૨ ના દિવસે સૂરદાસજી શ્રીનાથજીને દંડવત પ્રણામ કરી પરાસોલી આવી એક ચોતરા ઉપર ધ્વજાની સન્મુખ સુઈ ગયા, અને શ્રીગુસાંઈજીનું ચિંત્વન કરવા લાગ્યા.

આ સમયે ગોસ્વામીજી શ્રીનાથજીને શ્રંગાર કરી રહ્યા હતા તેવામાં તેમના હૃદયમાં આકસ્મિક–શ્રીસુરને કીર્તન કરતા ન

જોઈ—અનેક પ્રકારની શંકાઓ ઉદ્ભવી. પછી સેવકો દ્વારા શ્રીસૂરનું પરાસોલી ગમન જાણી આપે તે સેવકોને સ્પષ્ટ કહ્યું કે 'પુષ્ટિમાર્ગનું જહાજ જાય છે માટે જેને જે વસ્તુની આવશ્યક્તા હોય તે શીઘ્ર લઇ લ્યો.'

ગોસ્વામીજીની આ આજ્ઞાથી ઘણા સેવકો સુરદાસજીને મળવાને ગયા. પછી રાજભોગાનન્તર સ્વયં શ્રી ગુસાંઈજી પણ અષ્ટછાપના સાતે કવિયો એવં રામદાસ (મુખ્ય પ્રચારક)ને લઈને સૂરદાસજીને દર્શન આપવા ત્યાં પધાર્યા.

પશ્ચાત ગોસ્વામીજીના સંબોધન દ્વારા શ્રીસૂરે આપનું પધારવું જાણી પુનઃ બેઠા થઈ સાષ્ટાંગ દંડવત કરી અને 'દેખો દેખો હરિજુકો એક સુભાવ' એ પદ ગાઈ ગોસ્વામીજી પ્રત્યેના પોતાના હરિરૂપ ગુપ્તભાવનું ત્યાંના ઉપસ્થિત ભાગ્યશાળી વૃંદને દાન કર્યું.

ત્યાર પછી ચત્રભુજદાસના પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપે તેમણે સર્વે વૈષ્ણવોને 'દૃઢ ઈન ચરણન કેરો' એ પદ દ્વારા ગુરૂ, ગુરૂપુત્ર અને શ્રીહરિને ઐકય ભાવરૂપે જોનારને કલિ બાધા નથી કરી શકતો એવો અમૂલ્ય અંતિમ ઉપદેશ આપ્યો.

ત્યારબાદ ગોસ્વામીજીએ તેમને 'ચિત્તની વૃત્તિ કયાં છે' આદિ યાદગાર શબ્દોથી ભગવલ્લીલાનું પુનઃ સ્મરણ કરાવ્યું. પશ્ચાત શ્રીસ્વામિનીજીનું વર્ણન કરતાં તેઓએ પોતાનો દેહ છોડી દીધો.

આ રીતે શ્રીસુરે પોતાના પદો દ્વારા દૈન્ય અને ભક્તિભાવનું લોકોને દાન કર્યું.

સૂરસુધા પર એક દૃષ્ટિ

આર્યાવર્તની પુણ્યભૂમીનો ભાગ્યે જ કોઈ મનુષ્ય, કવિ-કુલ સમ્રાટ ભક્ત–શિરોમણિ શ્રીસૂરની કૃપા–વર્ષિણી સુધાથી અપરિચિત હશે ! એમની સુધાનું જેઓએ પાન કર્યું છે તેઓ વાસ્તવમાં આ લોક અને પરલોકમાં કૃતકૃત્ય થઈ ચુકયા છે એ નિઃસંદેહ છે.

શ્રીસૂરે, સૂરસાગર, સૂરસારાવલી, સાહિત્યલહરી સૂર-પચીશી, એવં સૂરસાઠી નામક ગ્રન્થો* તથા શ્રીહરિની વિવિધ નિર્દોષ લીલાનાં પાન કરાવતાં અસંખ્ય સ્ફુટ પદો રચી ખચિતજ સાહિત્ય–સંસાર એવં ભક્ત સમાજને પૂર્ણ ઉપકૃત કર્યો છે.

નાગરી પ્રચારિણી સભા દ્વારા નવીન શોધિત સૂરદાસના કહેવાતા **'ब्याहलो'** અને **'नलदमयंति'** નામક બે ગ્રન્થો અષ્ટ છાપ શ્રીસૂરના હોવામાં અમને જ નહીં કિંતુ 'વિયોગી હરિ' 'મિશ્રબન્ધુઓ' આદિ ઘણાને સંદેહ છે.

કારણકે શ્રીસુરે શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત અન્ય કોઇ પણ વ્યક્તિનાં ચરિત્રોને ગ્રન્થાકાર રૂપે લખ્યાં નથી. હાં ! મહા

---

* 'કેટાલાગસ કેટાલાગોરમ'માં 'હરિવંશ–ટીકા' નામનો ગ્રન્થ સૂરદાસજી રચિત હોવાનું લખેલું છે તેમજ પદસંગ્રહ, દશમસ્કંધ. ટીકા અને નાગલીલા એવં ભાગવત નામક શ્રીસૂરના રચેલા ગ્રન્થો નાગરી પ્રચારિણી સભા કાશીદ્વારા પ્રાપ્ત થયાનો ઉલ્લેખ વિનોદ પા. ૨૮૮માં છે. ઉક્ત પ્રથમ ગ્રન્થ જોવામાં આવ્યો નથી. અન્ય ગ્રન્થો સ્ફુટ લાંબા પદોના અન્તર્ગત આવી જાય છે.

પ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય એવં તત્પુત્ર ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથ પ્રભુચરણની આજ્ઞાને માન્ય આપી તેમણે પુષ્ટિ સેવામાં આવશ્યક જન્માષ્ટમીથી અતિરિક્ત અન્ય ત્રણ જયંતિઓ (વામન, નૃસિંહ અને રામ)નાં ફૂટકર પદો અવશ્ય રચ્યાં છે. તેમજ ભાગવતના અનુવાદમાં આવતા અન્ય અવતારોનાં આવશ્યક વર્ણન પણ તેમણે કર્યાં છે. કિંતુ તે ગ્રન્થરૂપે ક્રમબધ્ધ અથવા સ્વતંત્ર તો નહીજ.

વળી એ પણ ધ્યાનમાં રાખવાનું છે કે શ્રીસૂરે, પોતાની કાવ્ય શક્તિ એવં પ્રાસાદાત્મક વાણીને, એક પરબ્રહ્મ શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત કોઈ પણ મનુષ્ય યા રાજાના યશોગાન કરવામાં ખર્ચ કરી નથી.

તેઓ શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત અન્યદેવોને પણ શક્તિહીન જાણી ભક્તિમાં તેમની ઉપેક્ષા જ કરતા. તેના પ્રમાણ રૂપે '**अन्य देव सब रंक भिखारी देखे वहुत घनेरे**' આદિ અનેક પદો પ્રાપ્ત છે.

છતાંય તેઓ તુલસીદાસજીની માફક અન્ય દેવોની નિંદા કરતા ન હતા. કિંતુ તેમણે શ્રીકૃષ્ણની સર્વોપરિ સત્તાને, જડ, ચૈતન્ય, કલા, અંશ અને અવતારાદિમાં શુદ્ધાદ્વૈત જ્ઞાન સ્વરૂપે જાણી તેમનું આવશ્યક હેતુથી વર્ણન કર્યું છે.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે અન્ય અવતારોનું આવશ્યક વર્ણન કર્યાં છતાં શ્રીકૃષ્ણ શિવાય કોઇનીયે સત્તાને ભિન્નરૂપે સ્વીકારી નથી. એવી સ્થિતિમાં અમે 'બ્યાહલો' અને ' નલદમયંતિ ' નામક ઉભય ગ્રન્થો અષ્ટછાપવાળા શ્રીસુર રચિત હોય એ

માની શકતા નથી.*

શ્રીસૂરના સર્વે ગ્રન્થોમાં 'સૂરસાગર' એક અદ્વિતીય ગ્રન્થ છે. અને તેની રચના શ્રીસૂરના જણાવ્યા મુજબ વિ. સં. ૧૬૦૨ સુધીની છે.× તેને ક્રમબદ્ધ કરવામાં શ્રીસૂરે ૧૬૦૮થી ૧૬૩૦ સુધીનો સમય ખર્ચ્યો હોય એમ અનુમાન થઈ શકે છે અને તે અયથાર્થ નથી.

---

* 'નલદમન' કાવ્યનો વિશેષ પરિચય આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થયો છેઃ–

'નલદમન' કાવ્યની રચના હિજરી સન ૧૦૬૮ એટલે સં. ૧૭૧૪ માં પ્રારંભ થઇ છે તેના રચયતા કવિ 'સૂર'ના પિતાનું નામ ગોવરધનદાસ હતું અને તેઓ કંબુ ગોત્રના હતા. તેમના પૂર્વ પુરૂષો 'ગુરદાસપુર' જીલ્લા 'કલાનૌર' સ્થાનમાં રહેતા હતા; અને ત્યાંથી તેમના પિતા લખનૌ આવીને રહ્યા. ત્યાંસૂરદાસ કવિનો જન્મ થયો હતો. (વિશેષ જુઓ 'નાગરી પ્રચારિણી પત્રિકા, વર્ષ ૪૩ ભાગ ૧૯ અંક ૨ માં મુંબાઈના પ્રીંસ ઑફ વેલ્સ મ્યુઝિયમના ક્યુરેટર ડૉ. મોતીચંદ દ્વારા લખાયલો લેખ.)

× गुरु प्रसाद होत यह दरशन सरसठ वरस प्रवीन ॥ १००२ ॥

\+ \+ \+

श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो ॥ ११०२ ॥
तादिन तें हरिलीला गाई एक लक्ष पदबंध ।
ताको सार सूरसारावली गावत अति आनन्द ॥ ११०३ ॥

ઉક્ત વાક્યોથી શ્રીસૂર ૧૫૬૬ માં જ્યારથી મહાપ્રભુશ્રી વલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા ત્યારથી તેમણે ૧૬૦૨ સુધીમાં એમની ૬૭ વર્ષની ઉમર તક એક લક્ષ પદોની રચના કર્યાનું અને તેની અનુક્રમણીકારૂપે સૂરસારાવલી ૧૬૦૨ પછી રચવાનું સ્પષ્ટ કહેલું છે. —સંપાદક.

એ તો નિશ્ચિત છે કે સૂરસાગરની રચના પછીજ સારાવલી અને સાહિત્ય-લહરીની રચના થયેલી છે. અતઃ સૂર-સારાવલીનો સમય ૧૬૦૩ થી ૧૬૦૫ વિ. સંવત સુધીનો છે. તેમજ સાહિત્ય-લહરી નિચેના પ્રસિદ્ધ પ્રસંગના આધારે નંદદાસજીના હિતાર્થે બનાવેલી હોવાથી–નંદદાસજી ૧૬૦૭માં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથ પ્રભુચરણુને શરણે આવેલા હોઇ–તે અરસામાં એટલે ૧૬૦૭ ના કારતકથી વૈશાખ માસની ત્રીજ સુધીમાં પુરી થયેલી છે.

ઉક્ત પ્રસંગ આ પ્રમાણે સંપ્રદાયમાં પ્રસિદ્ધ છે—

સં. ૧૬૦૭ માં નંદદાસજી એક સ્ત્રીથી આકર્ષિત થઈ ગોકુલ આવ્યા. ત્યાં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીના પ્રભાવથી તેઓ શ્રીકૃષ્ણુમાં આસક્ત બની સાચા ભક્ત થયા. પછી ગોસ્વામી પ્રભુચરણુ તેમને લઇ શ્રીગોવર્ધન પધાર્યા. અને ત્યાં આપે શ્રીનાથજીની આજ્ઞાનુસાર અષ્ટછાપમાં તેમને સ્થાપી અષ્ટસખાની પૂર્તિ કરી. (વિશેષ જુઓ નંદદાસનો ઈતિહાસ).

આ સમયે શ્રીસૂર આદિ અન્ય સાત સખાએ નંદદાસજીને આવો 'નંદનંદન દાસ' કહીને પોતાની પાસે બેસાડયા. પછી નંદદાસજીની પ્રાર્થનાથી શ્રીસુરે તેમને છ માસ પોતાની પાસે રાખી પ્રથમ **'अर्थ करो पंडित अरु ज्ञानी'** એ પદ દ્વારા નંદદાસજીના પાંડિત્ય—ગર્વનું નિવારણુ કરી તેમને દૃષ્ટકૂટ આદિ કાવ્ય-ચિત્ર દ્વારા સાંપ્રદાયિક રહસ્ય રૂપ માનસી ધ્યાન એવં ઉપમા ઉપમેય અને શ્રૃંગારી રાધાકૃષ્ણુનાં દર્શન કરાવી પુષ્ટિમાર્ગના સિદ્ધાંતથી વાકેફ કર્યા. અને તે કાવ્યચિત્રોના સંગ્રહ રૂપ સાહિત્ય—લહરીની પૂર્તિ સં. ૧૬૦૭ના વૈશાખ

સુદ ૩ ના દિવસે કરી. તેમાં શ્રીસૂરે સ્પષ્ટ શબ્દો નિમ્ન પ્રકારે યોજ્યા છે. જે આ રહ્યા—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख ।
नंदनंदन मास छयते हीन तृतिया वार;
तृतीय ऋक्ष सुकर्म जोग बिचारि सूर नवीन;
नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन ।

આ પ્રકારે નંદદાસજીએ સુરદાસજી દ્વારા પ્રગાઢ પાંડિત્ય અને શ્રૃંગાર પરિપૂર્ણ કાવ્યોને પ્રાપ્ત કર્યાં

આ રીતે કાવ્યક્ષેત્રમાં નંદદાસજી એક પ્રકારે શ્રીસૂર ના શિષ્યવત્ થયા એટલે તેમના કાવ્યોમાં કંઈ મણા રહે ખરી ? તેથીજ અષ્ટછાપમાં સાહિત્યરસિકો દ્વારા નંદદાસજીને શ્રીસૂર પછીનું દ્વિતીયસ્થાન પ્રાપ્ત થયું છે.

અન્ય સૂરપચીસી અને સૂરસાઠી આદિની રચનાનો પ્રસંગ વાર્તામાં સ્પષ્ટ છે અને તેના અનુમાને તેનો રચનાકાળ સં. ૧૬૩૪ લગભગનો અનુમાન થાય છે. અસ્તુ

શ્રીસૂરે અર્વાચીન અને પ્રાચીન વ્રજભાષાના સર્વોત્કૃષ્ટ કવિયોમાં અગ્ર પદ પ્રાપ્ત કર્યું છે તેનું મુખ્ય કારણ તેમની સર્વવ્યાપી (general vision) દૃષ્ટિ છે. જે કવિયો પોતાના મતથી વિરૂદ્ધ વચનોને પણ પોતાના અન્યપાત્રો દ્વારા આદરપૂર્વક કહેવડાવે તેને સર્વ વ્યાપી દૃષ્ટિના કવિયો કહેવાય

છે. ઉક્ત દૃષ્ટિ અમારા શ્રીસૂરમાં અન્ય કરતાં અત્યધિક અંશમાં વિદ્યમાન છે. અને તેથીજ આજ સાહિત્ય—ક્ષેત્રમાં સૂર સૂર્યની માફક પ્રકાશે છે.

સૂરદાસની શુદ્ધ વ્રજભાષા અને કાવ્ય રચના દેખતાં વસ્તુતઃ તેઓ હિન્દીના વાલ્મીક છે એમ કહેવું એ તદ્દન સાચું છે. અસ્તુ.

સૂરસુધામાં જેવો જ્ઞાન ભક્તિ અને શ્રૃંગારનો એકરસ અબાધિત ધોધ વહેતો જોવામાં આવે છે તેવો પાંડિત્ય અને ઉપમા આદિના બહુમૂલ્ય તત્ત્વોનો અવિરોધ સંગ્રહ પણ ઉપસ્થિત છે.

વળી તેમની રસિક રચનામાં લોકોક્તિઓને પણ યથાસ્થાન મળેલું જોવામાં આવે છે જેમકે–**प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।** ઈત્યાદિ.

જેવી રીતે સૌર કવિતા, ભક્તિ, દૈન્ય, શ્રૃંગાર, અને માહાત્મ્યથી પરિપૂર્ણ છે. તેવી રીતે તેમાં ઉપમા ઉપમેય, ગાંભીર્ય અને પાંડિત્યની પણ જરાય કમી નથી.

શ્રીસૂરની હૃદયગત સાચા ભક્તિભાવવાળી ઉદ્ધવસંવાદની રચના ખરેજ કઠોર હૃદયને પણ દ્રવીભૂત કરી નેત્રોદ્વારા અશ્રુધારા વહેવડાવે તેવી છે.

તે કાવ્યોના અવલોકન દ્વારા એ કહેવું યથાર્થ છે કે તેઓ એક સત્યવકતા અને વિશુદ્ધ ભકત હતા. અને તે તેમનાં શ્રીષ્ણ અને રાધિકા પ્રતિના પ્રેમયુક્ત આવશ્યક નિંદાત્મક કઠોર પદોથી પણ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. તેમણે તુલસીદાસજીની માફક ખુશામદી પદો બહુ ઓછાં રચ્યાં છે.

તેમની સુધા રૂપીણી વાણીમાં ક્ષેત્રોની પૂર્ણતા અને વેધકતા સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.

સૂરની ભાષા શુદ્ધ વ્રજભાષા છે. તેઓ વ્રજભાષાના પ્રથમ કવિ હોવા છતાં એ કહેવું અવાસ્તવિક નથી કે એમની ભાષા લલિત અને શ્રુતિ મધુર છે, કે જેવી પાછળના અન્ય કવિયોની પણ જોવામાં આવતી નથી.

એમની કવિતામાં માધુર્ય અને કૃપા ઝળહળે છે. યદ્યપિ શ્રીસૂરને અનુપ્રાસનો ઇષ્ટ નહતો તોપણ ઉચિત સ્થાને તેઓએ તેનો પ્રયોગ અવશ્ય કરેલો છે.

શ્રીસૂરની વાણીમાં ઉપમા અને રૂપકોનું બાહુલ્ય છે અને તે પ્રાયઃ સંયોગાત્મક શ્રૃંગાર વર્ણનના પદોમાં વિસ્પષ્ટ રૂપે દેખાઈ આવે છે.

તેમના વિયોગાત્મક શ્રૃંગાર વર્ણનના પદોમાં ઉપમા અને રૂપકો જોવામાં આવતાં નથી કિંતુ તેની જગ્યાએ સ્વભાવોક્તિની પ્રાધાન્યતા રહેલી છે.

શ્રીસૂર–સુધામાં પ્રબંધધ્વનિ વિશેષ છે તેમજ તેમાં ઉપર કહ્યા પ્રમાણે વર્ણન–પૂર્ણતા (ક્ષેત્રોના વર્ણનની પૂર્ણતા) પરમોત્કૃષ્ટ રૂપે વિદ્યમાન છે.

સૂરદાસજીના પદો સરળમાં સરળ અને કઠિનમાં કઠિન પણ પ્રાપ્ત થાય છે એજ તેની વિશેષતા છે. આજકાલના શાબ્દિક વિદ્વાનો યા કવિયો તેવી રચના કરવામાં નિઃસંદેહ અસમર્થ છે.

વળી કઠિન પદોમાં ઝળમળતું સૂરદાસજીનું વિશુદ્ધ પાંડિત્ય એ વૈદિક એવં પોપટિયા જ્ઞાન તુલ્ય નથી કિંતુ તે પ્રભુદત્ત અલૌકિક કૃપાથી ભરેલું છે.

સૂરદાસજીનાં 'દૃષ્ટકૂટ' પદો ખરેખર સમર્થ પંડિતોને પણ મુંઝાવી નાંખે તેવાં છે. ઉક્ત પદોની પ્રાપ્ત થતી ટીકાના આશ્રય વિના તેનું વાસ્તવિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું બહુ જ મુશ્કેલ છે.

સૂરદાસજી પાંડિત્યમાં તો તુલસી અને કેશવ થી પણ ઘણા આગળ વધેલા છે. તેમજ બહુજ્ઞતામાં યે ઉક્ત બન્ને કવિયો તેમની સમાનપણું ભોગવી શકતા નથી.

સૂરદાસજીને પૌરાણિક જ્ઞાન જીર્ણાગ્ર હતું. તેમજ તેઓ સંસ્કૃતના પણ પુરા પંડિત હતા એમ 'કૂટપદો' ના નિરીક્ષણ દ્વારા પ્રતિત થાય છે.

વળી કૂટકર પદોમાં તેઓએ સંસ્કૃત સાહિત્યના વિચાર એવં કોઇ કોઈ સ્થળે તો સંસ્કૃત શ્લોકોને જેમના તેમ પોતાની રચનામાં વ્યાપ્ત કર્યા છે. દૃષ્ટાન્ત રૂપે—

'जो गिरिपति मसि वोरि उद्धि मै लें सुरतरु निज हाथ।
मम कृत दोष लिखैं वसुधा भरि तऊ नहीं मित नाथ॥

આ ઉક્તિને આ શ્લોકથી મેળવો—

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवर शाखा०

સૂરદાસજીની બીજી ઉક્તિ આ છે કે—

चर्चित चंदन नील कलेवर बरसति बुन्दन सावन।

આ ઉક્તિને જયદેવના ગીત ગોવિન્દના આ પ્રસિદ્ધ ગીતથી મેળવો.

'चंदन चर्चित नील कलेवर पीत बसन बनमाली'।

આ તો એક સાધારણ સમાનતા છે કિંતુ તેમનાં પદોનું અધિક બારિક અધ્યયન કરવાથી ઘણી બારીકમાં બારીક સમાનતાઓનું પણ દિગ્વદર્શન થશે.

સૂરદાસજીના પદોમાં જ્યોતિષની પણ બહુ સારી ઝળક જોવામાં આવે છે. જ્યોતિષની રાશિ અને લગ્ન સંબંધી વાતો વિગેરેનું તેમણે પદોમાં બહુ સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. એથી શ્રીહરિરાયજીના કહેલા ભાવપ્રકાશની પણ સારી પુષ્ટિ થાય છે

તેમણે બાદશાહ અકબરને કહેલું નિમ્મપદ તેમની જ્યોતિષ વિદ્યાની પુષ્ટિ કરે છે—

रे मन ! धीरज क्यों न धरे ।

एक हजार नौसें के उपर एसो जोग परे ॥ વિગેરે

તેમની ફારસી કવિતાઓમાં અમને સંદેહ છે જેનું કારણ અમે આગળ કહી ગયા છીએ.

પાંડિત્ય અને બહુજ્ઞતા ના અતિરિક્ત પ્રાકૃત નિરક્ષણના ગુણનું મહાકવિમાં હોવું આવશ્યક છે. કારણ કે તે વિના કાવ્યમાં સ્વાભાવિકતા પ્રાપ્ત થતી નથી.

સૂરદાસજીના કાવ્યોમાં ઉક્ત ગુણની ભરમાર જોવામાં આવે છે.

શ્રી સૂરની કવિતા કૃષકજીવન, અને પશુપક્ષી આદિનાં જીવનથી સમ્બન્ધ રાખવાવાળી ઉપમાઓ વડે પરિપૂર્ણ છે. દૃષ્ટાન્તરૂપે—

जनके उपजे दुख किन काटत ।

जैसे मथम आषाढ के वृक्षनि खेतहर निरखि उपास,

कृषक जीवन—

પક્ષિજીવન—

यह संसार सुआ सेमर ज्यों सुन्दर देख लुभायो।
चाखन लाग्यो रुई उड़ि गई हाथ कछू नहि आयो।

વૃક્ષજીવન—

मन रे! तू वृक्षन को मत ले,
काटे ता पर क्रोध न कीजे सींचे करे न सनेह।
धूप सहत सिर आपने औरन छाया देत।
जो कोऊ तापर पत्थर चलावे ताको तत्क्षन फल देत।

શ્રીસૂરે ગ્રામ્યભાષાને પણ અપનાવી છે તેનું દૃષ્ટાંત—

सरश्याम विनु कोन छुडावै चले जाहु भाइ पोइस,

શ્રીસૂરે જે વસ્તુને હાથમાં લીધી, તેનું તેમણે સાંગોપાંગ રૂપે એવું વર્ણન કર્યું છે કે પાછળના કવિયોને માટે તેમાં વર્ણન અર્થે કશુંય બાકી રાખ્યું નથી.

શ્રીસૂરના આ વર્ણન-પૂર્ણતા ગુણનું રીવાંનરેશ મહારાજ રઘુરાજસિંહદેવે આ પ્રમાણે વર્ણન કર્યું છે—

'मतिराम भूषण बिहारी नीलकंठ गंग, वेनी संभु तोष चिंतामनि कालिदासकी। ठाकुर नेवाज सेनापति सुकदेव देव-पूजन घनआनंद घनश्यामदास की॥ सुंदर मुरारी बोधा श्रीपति हू दयानिधि जुगल कविंद त्यों गोविंद केसौदास की। 'रघुराज' और कविगन की अनूठी उक्ति मोहि लगै झूठी जानि जूठी सूरदास की॥'

અસ્તુ.

શ્રીસૂરની વાણીમાં 'મથુરાગમન'. જેવું હૃદયવેધક છે તેવુંજ બાલલીલાનું સ્વાભાવિક વર્ણન હૃદયગ્રાહી અને પરમ મનોહર છે.

દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—

જે વખતે સહૃદય પાઠક શ્રીસૂર દ્વારા માતા યશોદાના કહેલા શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિના આ શબ્દો–'**कजरी को पय पियहु लाल तव चोटी बाढै**'–ના અધ્યનન બાદ, તરતજ બાલક શ્રીકૃષ્ણના દૂધ પીને પુછેલા "**मैया! कबहि बढैगी चोटी। किती बार मोहि दूध पियत भई अजहूँ है यह छोटी।**" એ શબ્દોનું મનન કરે છે ત્યારે ખરેખર તેના હૃદયમાં સાચો વાત્સલ્ય રસ પ્રકટ થઈ જે આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે તે અદ્વિતીય અને અવર્ણનીય છે.

એવીજ રીતે શ્રીસૂરસુધામાં ઉખલ-બંધન, ગોવર્દ્ધન-લીલા આદિ પણ દોષ રહિત અતિરમણીય છે.

વળી એ કહેવું તદ્દન ઉચિત છે કે શ્રીસૂરે પોતાની રચનામાં કોઈનાય ભાવની ચોરી કરી નથી, બલ્કે તેમના ભાવની દરેક કવિયોએ નિઃસંદેહ ચોરી કરી છે. અસ્તુ.

સૂરદાસજીનું કાવ્યક્ષેત્ર યદ્યપિ તુલસીદાસજીની માફક બૃહદ નથી કિંતુ તેઓએ ઉત્તમતા, ગંભીરતા અને ઉપમા આદિ જે જે વસ્તુઓને આવશ્યક સ્થળે અપનાવી છે, તેમાં તેમણે પાછળના કવિઓને માટે જરાયે જગા રહેવા દીધી નથી. એટલે તેમની કાવ્યક્ષેત્રની ઉત્તમતામાં પરિપૂર્ણતાનો સમાવેશ હોવાથી તેઓ તુલસીદાસજીથી કાવ્યક્ષેત્રમાં આગળ વધ્યા છે એ કહેવું અતિશયોક્તિ પૂર્ણ નથી.

જોકે તુલસીદાસજીએ લોકોક્તિને પદ્યમાં રચી રામ સમ્બન્ધી બનાવી જગતમાં લોકપ્રિયતા પ્રાપ્ત કરી છે કિંતુ અમે ઉપર કહી ગયા તેમ તેઓ પાંડિત્ય, ભક્તિ અને

કાવ્યના ગુણોની દૃષ્ટિએ સૂરથી આગળ જઈ શક્યા નથીજ. એવો મત કેવળ અમારોજ નહિં કિંતુ સર્વે કાવ્ય–સાહિત્યના વિદ્વાન નિરીક્ષકોનો પણ છે—

દૃષ્ટાંત રૂપે—

'पाण्डित्यमें सूरदास, तुलसीदास और केशवदास दोनों से बढकर थे। बहुज्ञता में यह दोनों उनकी बराबरी का दावा नहीं कर सक्ते।'

'जो आज हिन्दी साहित्य–संसार में कवियों का मुकुटमणि माना जाता है उसकी कविता के सम्बन्ध में कहना ही क्या?'

'और सचभी है क्यों कि– सूरदास के बराबर अधिक लिखने वाला कोई शायद ही अन्य कवि हिन्दी भाषा का हुआ होगा। कहते हैं कि– अकेले सूरसागर में सवा लाख पद हैं। कवि–प्रतिभा इनमें पूरी थी क्यों कि– जो पद अपने प्रेम और भक्ति के जोश में लिखे हैं वह पढ़ने वालों के हृदय को विना द्रवित किए रहते नहीं–'

बाबू राधाकृष्णदास, नागरीप्रचारिणी सभाके भूतपूर्व मंत्री.

સમયાભાવથી શ્રીસૂર સંબંધી અન્ય વિવેચન અમે અમારા 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત કવિ' નામક ગ્રન્થમાં હવે પછી આપીશું.

—સમ્પાદક

*

શ્રીસૂર નું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક:-

જન્મ—વિ. સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ સુદ ૫ ને રવિવારના મધ્યાહ્ન સમયે દિલ્હી પાસેના 'સીંહી' ગ્રામમાં.

જાતિ—સારસ્વત બ્રાહ્મણ એવં પિતૃનામ રામદાસ.

શરણાગતિસમય—વિ. સં. ૧૫૬૬ ના ચૈત્ર કૃષ્ણ ૧૧ના દિવસે આગ્રા અને મથુરાની વચ્ચેના 'ગૌઘાટ' મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ—ચંદ્રસરોવર, પરાસોલી.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ઉત્થાપન.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૦ ના મહા સુદ ૨, (?) સ્થાન પરાસોલી (અહીં હાલ પણ તે સ્થળમાં કુટી અને દ્વાર છે)

લીલાત્મક સ્વરૂપ—કૃષ્ણ સખા એવં ચંપકલતા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ—વાક્.

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ--શ્રી મથુરેશજી.

શ્રૃંગારાસક્તિ--પાગ.

લીલાસક્તિ--માનલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર*

સંગ્રાહક:-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે—

શ્રીપરમાનંદદાસજી

(સં. ૧૫૫૦ થી સં. ૧૬૪૦)

યદ્યપિ અમારા વિશુદ્ધ ચરિત્ર–નાયક મહાનુભાવ મહાકવિ શ્રીપરમાનંદદાસજીનું વિસ્તૃત જીવનચરિત્ર પ્રાપ્ત કરવાને અર્થે અમારી પાસે વધુ સાધનો નથી, છતાં અમે ગો. શ્રીગોકુલનાથજી રચિત '૮૪ વાર્તા,' શ્રીહરિરાયજી કૃત 'ભાવપ્રકાશ,' ધ્રુવદાસ રચિત ભક્તનામાવલી, 'ભક્તિમાહાત્મ્ય' એવં પરમ પૂજ્ય નિત્યલીલાસ્થ ગોસ્વામિ તિલકાયત શ્રી ગોવર્દ્ધનલાલજી (નાથદ્વારા)ના મૌખિક– પરમ ભગવદીય જદુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત–વચનામૃતોના આધારે સંક્ષિપ્તમાં તેમના ચરિત્રને અહીં ઉદ્ધૃત કરી આશા રાખીએ છીએ કે ઐતિહાસિક વધુ સાધનોના અભાવમાં નિમ્ન સંગ્રહીત ઈતિહાસ સાહિત્યકારોને અવશ્ય સંતોષ આપશે.

મહાકવિ પરમાનંદદાસજીનો જન્મ સં. ૧૫૫૦ ના માગશર સુદ ૭ ને સોમવારની સવારે કનોજમાં એક કાન્યકુબ્જ દરિદ્ર બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો.

બાલકના જન્મતાં વેંતજ તેના પિતાને એક યજમાન શેઠ દ્વારા અઢળક દ્રવ્ય મળ્યું. જેથી પિતાને પરમ આનંદ પ્રાપ્ત થયો અને તેના સ્મારક રૂપે તેણે પોતાના ભાગ્યશાલી પુત્રનું નામ 'પરમાનંદ' રાખ્યું. પછી બ્રાહ્મણો દ્વારા

જન્મપત્રિકાથી પણ તે નામ ને પુષ્ટિ મળી જેથી તેને અત્યંત હર્ષ થયો.

પરમાનંદદાસજી સ્વરૂપે ગૌરવર્ણી એવં કંઈક ઉંચા અને મધ્યમ કદના હતા. વળી તેમનો સ્વર પણ તીવ્ર અને સુમધુર હતો. તેમનું લલાટ વિશાળ અને ભવ્ય હતું. તેમની બન્ને ભુજા દીર્ઘ હતી. અને તેમને લલાટ, ગ્રીવા અને ઉદરે ત્રિરેખા હતી.

આઠ વર્ષની ઉમરે તેમને સ્વપિતાદ્વારા યજ્ઞોપવીત પ્રાપ્ત થયું. અને ત્યારથી તેઓ એક મહાપુરુષની પાસે નિકટના એક ગામમાં વિદ્યાભ્યાસાર્થે જવા લાગ્યા.

ત્યાં તેમણે આવશ્યક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યા બાદ એક મહાત્માના સમાગમ દ્વારા શ્રીકૃષ્ણની વિવિધ નિર્દોષ લીલાનું શ્રવણ કર્યું. પશ્ચાત પંચદશ વર્ષીય ઉમરે તેઓને પ્રભુદત્ત કાવ્યશક્તિનું સહસા દાન થયું અને ત્યારથી તેમણે પોતાના સુમધુર ભાવયુકત પદોની રચના કરવા માંડી.

પરમાનંદદાસજીએ પોતાની પચીસ વર્ષની ઉમરે એક મહાન કવિ તરીકેની પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. અને તેઓએ પોતાના ત્યાગમય ભકિતયુકત જીવન દ્વારા અનેક ગુણી, ભકત અને કવિયોને આકર્ષ્યા.

ત્યારથી તેમની પાસે પ્રત્યેક સમયે ગુણી લોકોનો મોટો સમૂહ રહેવા લાગ્યો કે જેને તેઓ યથાપ્રાપ્ત સાધનોથી ભાવપૂર્વક સંતોષતા.એમના એવા અનેક ગુણોથી મુગ્ધ થઈ

ઘણાએક તેમના શિષ્ય બન્યા અને તેઓ 'સ્વામી' તરીકે અનાયાસ પ્રસિદ્ધ થયા.

આ અરસામાં કન્નોજમાં દુષ્કાળ પડયો જેના ફલરૂપે ત્યાંના હાકિમે તેમનું ઘર લૂંટી લીધુ. ત્યારથી ધનવાન પુરૂષો દ્વારા તેમને દ્રવ્યની મદદ મળતી રહેતી. કિંતુ તેઓ તે દ્રવ્યનો સંગ્રહ ન કરતાં ગુણી અને ભકતોના સત્કારમાં તેને ખર્ચ કરી દેતા. આ જોઈ લોભી અને સ્વાર્થી પિતાએ તેમને તે દ્રવ્યના સંગ્રહ દ્વારા લગ્ન કરવાની લાલચ આપી. કિંતુ ઉક્ત વાતને પરમાનંદદાસે ધિક્કારતાં તેનો નકારાત્મક જવાબ આપ્યો. તેથી તે ધન–ઉપાસક પિતા પરમાનંદદાસજીને એકેલા છોડી પૂર્વ તરફ ધન પ્રાપ્તિને અર્થે ચાલી નિકળ્યો. અને ત્યારથી તેઓ સ્વતંત્ર રૂપે ગુણી સમાજની સાથે રહેવા લાગ્યા.

ત્યાં બે વર્ષના સ્વતંત્ર નિવાસ દરમ્યાન સં. ૧૫૭૭ માં પરમાનંદદાસજી પ્રયાગ આવ્યા અને ત્યાંજ સમૂહ સહિત રહેવા લાગ્યા. કન્નોજની માફક પ્રયાગમાં પણ તેમની ઘણી કીર્તિ પ્રસરી અને કર્ણોપકર્ણ તેની ચર્ચા આચાર્યશ્રીની પાસે અડેલમાં પણ થઈ.

આ સમયે પોરબંદર નિવાસી સંગીતપ્રેમી કપૂરક્ષત્રી જલઘરિયાએ, આચાર્યશ્રી દ્વારા પરમાનંદદાસના કાવ્યગુણની પ્રશંસાની પુષ્ટિ થતી સાંભળી તેમના પદ સાંભળવાનો નિશ્ચય કર્યો. પશ્ચાત સમય પ્રાપ્ત કરી જેઠ સુદ ૧૧ ની મધ્યરાત્રિએ આચાર્યશ્રીના વચનામૃતો શ્રવણ કર્યા બાદ તેઓ ત્રિવેણીમાં તરીને સામી પાર પ્રયાગ–જ્યાં પરમાનંદદાસજીનો મુકામ હતો ત્યાં–આવ્યા.

તે દિવસે એકાદશી હોવાથી પરમાનંદસ્વામી ભક્તોના સમૂહસહિત રાત્રિ જાગરણ નિમિત્તે ભગવત્સંકીર્તન કરતા હતા.

આ સમયે ત્યાં ઉપસ્થિત કેટલાએક પ્રયાગના જાણીતા વૈષ્ણવોએ કપૂરક્ષત્રીને પરમાનંદદાસની નિકટ બેસાડી તેમનો સત્કાર કર્યો. અને પરમાનંદદાસ સાથે તેમનો પરિચય કરાવ્યો.

પશ્ચાત સમસ્ત રાત્રિ કીર્તન શ્રવણ કરી હૃદયાંતર્ગત પરમાનંદદાસના ગુણો અને પદોની પ્રશંસા કરતા તેઓ બ્રાહ્મમુહૂર્તમાં પુનઃ ત્રિવેણી તરીને અડેલ આવ્યા અને નિજસેવામાં પ્રવિષ્ટ થયા.

અહીં પ્રયાગમાં પરમાનંદદાસજીએ આલસ નિવૃત્ત્યર્થ બ્રાહ્મમુહૂર્ત થયે વિશ્રામ કર્યો. તે સમયે તેમને સ્વપ્ન આવ્યું અને તેમાં તેમને કપૂરક્ષત્રીના ખોળામાં તેમના પૂર્વ સંબંધી ચિરપરિચિત પરમપ્રિય આત્મારૂપ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને પોતાના કીર્તન સાંભળતાં જોયા.

પછી સ્વપ્નભંગ થયા બાદ ઉક્ત સ્વરૂપના લાવણ્યમાં મુગ્ધ થઈ તેઓ તરતજ અડેલ આવ્યા અને ત્યાં આચાર્યશ્રીનાં તેમને દર્શન કર્યાં.

પશ્ચાત કપૂરક્ષત્રીને મળી તેમણે આચાર્યશ્રીની પાસેથી નામનિવેદન પ્રાપ્ત કર્યું. પછી આચાર્યશ્રીએ પરમાનંદદાસજીને દશમની અનુક્રમણિકા શ્રવણ કરાવી ભગવલ્લીલા—પીયૂષ-સમુદ્રરૂપ ભાગવતને તેમના હૃદયમાં સ્થાપ્યું. અને ત્યારથી તેઓ શ્રીસૂરની માફક 'સાગર'રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

તે સમયે તેમણે ગુરૂભેટ રૂપે, પોતાને આચાર્યશ્રીની દ્વારા

પ્રાપ્ત થયેલ ભગવલ્લીલાની સ્ફુરણાની પ્રતીતિ અર્થે, બાલલીલાનું નિમ્ન પદ ગાઈ આપને સંતુષ્ટ કર્યા—

'माईरी ! कमलनयन श्यामसुंदर झूलत हैं पलना ।'

પછી તેઓ આચાર્યશ્રીની પાસેજ રહેવા લાગ્યા અને તેમની દ્વારા શ્રીસુબોધિનીજીની કથાનું નિત્યપ્રતિ શ્રવણ કરી તેના ભાવ ને તેઓ પદ્યમાં વ્યક્ત કરી આચાર્યશ્રી એવં શ્રીનવનીતપ્રિયજીને અહર્નિશ શ્રવણ કરાવતા.

તેમની આ ચિત્તપ્રવીણતા રૂપ માનસી સેવાથી આચાર્યશ્રી પૂર્ણ સંતુષ્ટ થયા. પછી સં. ૧૫૮૨ માં તેમની 'यह मागों गोपीजन-वल्लभ०' એ પ્રાર્થના શ્રવણ કરી આપ તેમને લઇને વ્રજ તરફ પધાર્યા.

તે સમયે રસ્તામાં કનોજ મુકામે પરમાનંદદાસે વૈષ્ણવો સહિત આચાર્યશ્રીને અત્યંત દૈન્યતા પ્રેમયુક્ત આગ્રહ પૂર્વક પોતાના ઘરમાં પધરાવ્યા. અને ત્યાં તેમના આગ્રહને વશ થઈ ભક્તવત્સલ આચાર્યશ્રીએ ત્રણ દિવસ સુધી મુકામ રાખ્યો.

મુકામના પ્રથમ દિવસેજ ભોજન કર્યા બાદ આચાર્યશ્રીને પ્રસન્ન કરવાને અર્થે—આપની ચિત્તવૃત્તિ વ્રજના દર્શનમાં લીન છે એમ જાણી—પરમાનંદદાસજીએ નિત્યલીલા ને સ્મરણ કરાવતું નિમ્ન પદ આચાર્યશ્રી સન્મુખ ગાયું—

"हरि तेरी लीला की सुधि आवे ।'

ઉક્ત પદના કેવળ શ્રવણ માત્રથી આચાર્યશ્રી, મૂળ નિજસ્વરૂપાવેશમાં આવી લીલામાં મગ્ન થયા. અને ત્રણ દિવસ સુધી દેહાનુસંધાન રહિત રહ્યા. આ જોઈ પરમાનંદ-

દાસજી આદિ વૈષ્ણવો ગભરાયા અને તે સર્વે–ત્રણ દિવસ સુધી ખાનપાન આદિ આવશ્યક દેહકાર્યનો પણ સદંતર ત્યાગ કરી સ્તબ્ધ થઈ ત્યાંજ બેસી રહ્યા. ચોથા દિવસે જ્યારે આચાર્યશ્રીએ નેત્ર ખોલ્યાં ત્યારે નિકટવર્તી વૈષ્ણવોમાં પણ પ્રાણસંચાર થયો અને તેઓ આનંદિત બન્યા.

પશ્ચાત પરમાનંદદાસજીએ–' माइरी ! हों आनंद मंगल गाऊं'–એ પદ ગાઈ આચાર્યશ્રીને શ્રીગોકુલની સુધિ કરાવી.

બાદમાં આપના ભોજન કર્યા પછી સર્વે વૈષ્ણવોએ પ્રસાદ લીધો અને પરમાનંદદાસજીએ પણ દેહકાર્યથી નિવૃત્ત થઇ આચાર્યશ્રી આગળ આ પદો ગાયાં–

'विमल जस वृंदावन के चंद्को'०–२ ''चल री ! सखी नंद्गाम जाय बसिये० ''

આ દ્વિતીય પદ શ્રવણ કરી આચાર્યશ્રીએ વિશ્રામ અનન્તર કન્નોજથી પરમાનંદદાસાદિ વૈષ્ણવોને લઈને વ્રજ તરફ પ્રયાણ કર્યું.

તે સમયે પરમાનંદદાસજીએ પોતાના પૂર્વ શિષ્યોને આચાર્યશ્રી પાસે નામમંત્ર અપાવી સેવક કરાવ્યા.

પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી જ્યેષ્ઠ માસમાં ગોકુલ પધાર્યા. ત્યાં ભીતરની બેઠકમાં (શ્રીદ્વારકાધીશજીના મંદિરમાં હાલ જે બેઠક છે તેમાં) આપે મુકામ કર્યો. અને ત્યાં પરમાનંદદાસજીને શ્રીયમુનાષ્ટકનો પાઠ કરાવી શ્રીયમુનાજીનાં અલૌકિક દર્શન કરાવરાવ્યાં. તે સમયે પરમાનંદદાસજીએ શ્રીયમુનાજીની સ્તુતિનાં નિમ્ન પદો ગાયાં–

૧ 'श्रीयमुनाजी यह प्रसाद हौं पाऊं'०।

૨ 'श्रीयमुनाजी दीन जानि मोहि दीजे'०।

૩ 'कालिंदी कलिकल्मष-हरनी'।

પછી આચાર્યશ્રીની કૃપાથી પરમાનંદદાસજીને પનઘટ આદિ લીલાનાં પણ દર્શન થયાં. તદનુસાર તેમણે અનેક પદો જેવાં કે-**श्रीयमुना घट भर ले चलि श्रीचंद्रावलि नारि०** આદિ ગાયાં.

બાલલીલાનાં દર્શન આપી આસક્તિ ઉત્પન્ન કરાવ્યા પછી આચાર્યશ્રી તેમને લઈને શ્રીગોવર્દ્ધન પધાર્યા. ત્યાં શ્રીનાથજીની સન્મુખ તેમને પદ ગાવાની આજ્ઞા કરી.

એ સમયે આચાર્યશ્રીની આજ્ઞાથી પરમાનંદદાસજીએ શ્રીનાથજીને '**मोहन नंदराय कुमार**'. વિગેરે પદો ગાઈ પ્રસન્ન કર્યા. તેથી શ્રીનાથજીની આજ્ઞાથી આપે તેમને સમયાનુસારનાં કીર્તનની સેવા સોંપી.

પછી આચાર્યશ્રીએ પરમાનંદદાસજીને સેનના પ્રસાદી દૂધ દ્વારા નિકુંજ લીલાનું દાન કર્યું. ત્યારથી તેમણે તે લીલાનાં અનેક પદો ગાયાં જે વાર્તામાં પ્રકાશિત છે.

પશ્ચાત કેટલાક સમયાનન્તર સં. ૧૫૮૫ માં આચાર્ય શ્રી જ્યારે શ્રીગોવર્દ્ધન પધાર્યા હતા તે સમયે ઓડછા દેશનો રાજા પોતાની રાણી સહિત ત્યાં શ્રીનાથજીના દર્શનાર્થે આવ્યો. તેણે—રાણીના પડદામાં રહી શ્રીનાથજીના દર્શન કરવાના આગ્રહથી આચાર્યશ્રી પાસે તેવો બંદોબસ્ત કરાવી—પોતાની રાણીને પડદામાં દર્શને મોકલી. આ સમયે પરમાનંદદાસજી કીર્તનની સેવામાં ઉપસ્થિત હતા.

એ વખતે શ્રીનાથજીએ—જ્યારે રાણી પડદામાં દર્શન કરી રહી હતી ત્યારે—મંદિરનાં દ્વાર ખોલી દીધાં કે જેને લઈ ને મનુષ્યોની ગીડદી રાણી ઉપર આવી પડી. આથી રાણીની બેઈજ્જતી થઈ. એ સમયે પરમાનંદદાસે તે દૃશ્યને જોઇ પોતાના પરમ ઇષ્ટ પ્રભુને પણ એક નીતિ અને સત્યતારૂપે મધુર ઠપકો આપવાને માટે '**कोन यह खेलिवे की बान**' એ ગાવાનો પ્રારંભ કર્યો.

પરંતુ આચાર્યશ્રીએ, પોતાના પ્રાણરૂપ શ્રીનાથજીની સ્વચ્છંદ બાલલીલામાં મ્હેણારૂપ તે શબ્દો કહેવા ઉચિત નથી તેમ કહીને તે પદ ગાતાં પરમાનંદદાસજીને રોકયા, અને તેમને આ પ્રમાણે ગાવાની આજ્ઞા આપી-

'**भली यह खेलिवेकी बान ।**
मदन गोपाललाल काहूकी राखत नाँहिन कान ॥"

પછી પરમાનંદદાસે પણ આજ્ઞાનુસાર ઉક્ત પદને સુધારીને તે પ્રમાણે ગાયું. અસ્તુ.

સંવત ૧૫૮૯માં એક સમય સૂરદાસ, કુંભનદાસ અને રામદાસાદિ પરમાનંદદાસના હૃદયાંતર્ગત ભાવને જાણવાને અર્થે તેમને ત્યાં સુરભીકુંડ ઉપર સેનઆરતી પશ્ચાત ગયા. ત્યારે પરમાનંદદાસે પોતાને ત્યાં અચાનક ભગવદ્દભક્તોને આવેલા જોઈ અત્યંત હર્ષપૂર્વક પ્રથમ તેમનું સ્વાગત કર્યું. અને પછી તેમણે તેઓની ન્યોછાવર માટે નિમ્ન પદ ગાયું-

आये मेरे नंदनंदनके प्यारे ।०

બાદમાં વૈષ્ણવ માહાત્મ્યનાં અનેક પદો ગાઈ પોતાના ભાવને તે ભગવદીયો સમક્ષ પ્રકટ કર્યો.

ત્યારપછી રામદાસે તેમના ગુપ્ત અભિપ્રાયને જાણવાને અર્થે પ્રશ્ન કર્યો કે–વ્રજનાં શ્રીનંદ, ગોપી, ગ્વાલ આદિ ભક્તોમાં સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રેમ કોનો છે ?

યદ્યપિ પરમાનંદદાસના ચિત્તની સંલગ્નતા બાલલીલામાં વિશેષ હતી તો પણ તેમણે આચાર્યશ્રીના અભિપ્રાયમાં તો સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રેમ શ્રીગોપીજનોનો જ છે તે, નિમ્ન પદ ગાઈ કહી બતાવ્યું—

'गोपी प्रेमकी ध्वजा०'

પછી व्रजजन सम धर पर कोउ नांहीं'० આદિ અન્ય પદો દ્વારા ઉક્ત અભિપ્રાયની પુષ્ટિ કરી.

આ પદો શ્રવણ કરી સૂરદાસાદિ મહાનુભાવો અત્યંત પ્રસન્ન થઈ તેમની આજ્ઞા માગી પોતપોતાના સ્થાનકે ગયા.

પછી સં. ૧૬૨૧–૨૨ના અરસામાં પ્રભુચરણ જ્યારે શ્રીગોકુલ પધાર્યા ત્યારે પરમાનંદદાસજી પણ ત્યાં ગયા. અને તે સમયે આપે તેમને સંસ્કૃતમાં મંગલાર્તિનું 'मंगल मंगलं'० પદ રચીને શ્રવણ કરાવ્યું. તેથી પરમાનંદદાસે તેને અનુસરીને ભાષામાં 'मंगल माधो नाम उच्चार' ઈત્યાદિ અનેક પદો રચ્યાં. પછી પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી પરમાનંદદાસે તેની મંગલાર્તિ સમે ગાવાની શરૂઆત કરી જે આજ તક સમ્પ્રદાયમાં ચાલુ છે.

પછી સં. ૧૬૪૦માં જન્માષ્ટમીના બીજા દિવસે પરમાનંદદાસજીને પ્રભુચરણે જન્મપ્રકરણની લીલાનાં દર્શન

કરાવ્યાં. જેથી તેને અનુસરીને પરમાનંદદાસે જન્મ-લીલાનાં અનેક પદો રચ્યાં, અને તે આનંદને હૃદયમાં ધારણ કરી તેઓ શ્રીનાથજીને દંડવત્ પ્રણામ કરી સુરભીકુંડ પોતાના સ્થાનકે આવીને સુઈ ગયા.

અહીં શ્રીગુસાંઈજીએ પરમાનંદદાસને રાજભોગના સમે શ્રીનાથજીની સન્નિધાન કીર્તન કરતાં ન જોયા ત્યારે સેવકોને પરમાનંદદાસજી ક્યાં છે એમ પુછ્યું.

પછી સેવકો દ્વારા પરમાનંદદાસનું સુરભીકુંડ જવાનું સાંભળી આપને અનેક શંકાઓ ઉદ્ભવી. અને છેવટે રાજ-ભોગ આરતિ કર્યા બાદ આપ વૈષ્ણવોને સાથે લઈને પરમા-નંદદાસને દર્શન દેવા પધાર્યા.

આ સમયે પરમાનંદદાસ અચેત હતા. તેથી પરમ દયાલુ ભક્તવત્સલ પ્રભુ શ્રીવિઠ્ઠલેશે પોતાના કોમલ શ્રીહસ્તને તેમના માથે ફેરવી તેમને સચેત કર્યા.

પછી પરમાનંદદાસજીએ પ્રભુચરણને સાષ્ટાંગ દંડવત્ પ્રણામ કર્યા અને આપે અંતિમ સમયે પોતાને દર્શન આપી કૃત-કૃત્ય કર્યો એમ જાણી ગદગદ થઈ **'प्रीति तो श्रीनंदनंदनसों कीजे'**૦ એ પદ ગાયું. અને તે દ્વારા શ્રીસૂરની માફક ગુરૂ, ગુરૂપુત્ર અને નંદનંદનમાં પોતાની અભેદ બુદ્ધિનો સર્વે વૈષ્ણવોને પરિચય કરાવ્યો.

ત્યારબાદ એક વૈષ્ણવના—શ્રીઠાકુરજી કૃપા કેવી રીતે કરે ? એ—પ્રશ્નનો જવાબ આપતાં પરમાનંદદાસજીએ **' प्रात समे उठि करिये श्रीलक्ष्मनसुत-गान '** એ પદ ગાઈ તેને ગુરૂભક્તિનો મહામૂલો ઉપદેશ આપ્યો.

પશ્ચાત ગોસ્વામીજીએ તેમને ચિત્તની વૃત્તિ ક્યાં છે ? એમ પુછ્યું ત્યારે પરમાનંદદાસે તેના પ્રતિઉત્તર રૂપે સારંગ રાગમાં અંતિમપદ આ ગાયું—

राधे बैठी तिलक संवारति ।
मृगनैनी कुसुमायुध के डर सुभग नंदसुत–रूप विचारति ॥
दर्पन हाथ सिंगार बनावति बासर जाम जुगति यों डारति ।
अंतरप्रीति स्यामसुंदर सों प्रथम समागम केलि संभारति
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवर्द्धनधारी ॥
परमानंदस्वामी के संगम रतिरस मगन मुदित व्रजनारी ॥

ઉક્તપદને પૂર્ણ કરતાંની સાથેજ પરમાનંદદાસજીએ પણ પોતાના બાહ્ય જીવનને સં. ૧૬૪૦ના શ્રાવણ વદ ૯ના મધ્યાહ્ન સમયે સમાપ્ત કરી દીધું.

પશ્ચાત વૈષ્ણવોએ તેમનો અગ્નિસંસ્કાર કર્યો અને પ્રભુચરણે તેઓને પરમાનંદદાસનું સ્વરૂપ સમજાવતાં આજ્ઞા કરી કે પુષ્ટિમાર્ગનાં વિવિધ રત્નો ભર્યા બન્ને સાગરો અદ્રશ્ય થયા.

પરમાનંદ સુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ—

મહાકવિશિરોમણિ પરમાનંદદાસજીના કાવ્યોનું અવલોકન કરનાર પ્રત્યેક વિદ્વાન વ્યક્તિ એ કહી શકે છે કે– તેઓ એક સર્વોત્કૃષ્ટ ઉત્તમોત્તમ શ્રેણીના મહાકવિ છે. અને કાવ્યોમાં જે ભાવો અને તત્ત્વોની યથાર્થતા પૂર્વક આવશ્યકતા છે તે તેમના કાવ્યોમાં વિશેષરૂપમાં સ્પષ્ટ ઝળમળે છે.

તેથીજ મિશ્રબન્ધુઓ આદિ આધુનિક તટસ્થ વિદ્વાનોએ પણ તેમને 'તોષ'ની ઉત્તમ શ્રેણીમાં રાખેલા છે (જુઓ મિ૦વિનોદ પાન ૨૪૪)

આથી જાણી શકાય છે કે તેમની કાવ્ય પ્રતિભા વિશાલ અને તીવ્ર હતી. છતાં સાહિત્યિક દૃષ્ટિએ નિષ્પક્ષપાત હૃદયે કહિયે તો તેઓ શ્રીસૂરની માફક સર્વવ્યાપી દૃષ્ટિના કવિ તો નજ ગણાય. પરંતુ તેથી તેમની કાવ્યશકિતમાં જરાયે ન્યૂનતા પ્રાપ્ત થતી નથી. કેમકે તેમના કાવ્યમાં તાદૃશતા અને તલ્લીનતા આદિ તત્ત્વો કે જે કાવ્યના પ્રાણ સમાન છે તે વિશેષ ચમકે છે.આથી તેમની મહાકવિત્વ શક્તિની પ્રતિભાની કોઈથીયે અવગણના થઈ શકે તેમ નથીજ.

સાંપ્રદાયિક દૃષ્ટિએ તેઓ શ્રીસૂરની માફકજ 'સાગર' સમાન છે. અને તેમનાં કાવ્યોમાં પણ શ્રીસૂરનાં કાવ્યોની સમાન મહત્ત્વ રહેલું છે. તેથીજ ગોસ્વામિચરણે તેમને સૂરદાસની સાથેજ અષ્ટછાપમાં સ્થાન આપ્યું.

પરમાનંદદાસજીના કીર્તનોમાં જે સ્તુત્ય તત્ત્વોનું દિગ્દર્શન થાય છે તેને વર્ણન કરવાને ભાષામાં કોઈ શબ્દોજ નથી એ કહેવું અતિશયોક્તિ ભરેલું નથી. અને તેથીજ

આધુનિક સાહિત્યકારોએ પણ તેમને ઉત્તમોત્તમ શ્રેણી ના બતાવી મુઝાઇને તે વિષે મૌન સેવ્યું છે.

પરમાનંદદાસજીના ગ્રન્થોમાં 'પરમાનંદસાગર'* મુખ્ય છે. તદતિરિક્ત દાનલીલા, ઉદ્ધવલીલા, એવં તેમના રચેલાં સ્ફૂટ પદો પણ પ્રાપ્ત છે.

પરમાનંદદાસજીના કાવ્યોમાં એ શક્તિ હતી કે જેના કેવળ શ્રવણ માત્રથી મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી જેવા પ્રૌઢ જ્ઞાની ત્રણ દિવસ સુધી દેહાનુસંધાન રહિત થયા. કહો! એથી વિશેષ એમની કાવ્યશક્તિની મહાનતાનું બીજું કયું પ્રમાણ હોઈ શકે? અસ્તુ.

તેમના કાવ્યોમાં વિશેષ ઝળમળતી તલ્લીનતા, નિસ્પૃહતા એવં તાદશતા આદિના કેટલાક નમૂના અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ:—

તાદૃશતાના પ્રત્યક્ષ નમૂના—

देखोरी ! कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुंदर वदन कमलदल लोचन देखत चंद्र लजाया है।

*

पिछोरा खासा को कटि बांधे।
वे देखो आवत हैं नंदनंदन नयनकुसुमशर सांधे॥

मैं तोहि कै बिरियां समझाई।
उठ उठ उझकि हरि हेरती चंचल टेव जनावति।

---

* 'પરમાનંદ સાગર' કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગમાં પ્રાપ્ત છે અને તેના પ્રકાશનની યોજના વિચારાધીન છે. કોઈ સદ્‌ગ્રહસ્થની મદદથી તે પ્રકટ થશે જ. —સમ્પાદક

તલ્લીનતાનો નમૂનો–

मेरो माई ! माधो सों मन मान्यो ।
मेरो मन और वा ढोटा को एकमेक कर सान्यो ॥
अब क्यों भिन्न होय मेरी सजनी दूध मिल्यो ज्यों पान्यो ।

× × ×

પ્રેમભાવનો નમૂનો—

प्रेम की पीर सरीर न माई ।
निसवासर जिय रहत चटपटी इह धकधकी न जाई ॥
प्रबल सूल सह्यो जात न सखीरी ! आवे रोवन गाई ।
कासों कहौं मरम कों माई ! उपजी कोन बलाई ॥
जो कोऊ खोजे खोज न पईयत ताको कोन उपाई ।
हौं जानत हों मेरे मनकी लागी है कछु बाई ॥
पाछे लगे सुनत परमानंद हरि मुख मृदु मुसकाई ।
मूंदि आंखि आए पाछे तें लीनी कंठ लगाई ॥

कहा करौं बैकुंठ हि जाय;
जहँ नहिं नँद जहाँ नहीं जसोदा जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ॥
जहँ नहिं जल जमुना कों निरमल और नहीं कदमन की छाय ।
परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी व्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ॥

*

એ ખરૂં છે કે પરમાનંદદાસજી શ્રીસૂરની તરહ સર્વ-વ્યાપિ દૃષ્ટિના કવિ નથી તો પણ તેઓ સૌરકાલના અન્ય કવિયોમાં પ્રથમ અને મહત્વનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે.

એમાં જરાય સંદેહ નથી કે સામ્પ્રદાયિક દૃષ્ટિએ પરમાનંદદાસજીનું સ્થાન શ્રીસૂરથી ન્યૂન નથીજ. છતાં કાવ્યદૃષ્ટિએ તો તેઓ સૂર અને નંદદાસ પછીજ આવી શકે તેમ છે.

ભગવદીયતામાં તો તેઓ સૂરની માફકજ મહાન છે. તેમના હૃદયનો પ્રેમ અવર્ણનીય, અચિંત્ય અને અગમ્ય છે. મહાપ્રભુની પૂર્ણ કૃપા વિના તેમનાં પદોમાં રહેલું નિગૂઢ તત્ત્વ કોઈનાય હૃદયમાં પ્રવેશી શકે તેમ નથી.

પરમાનંદ સુધામાં સૂરના સર્વોચ્ચ સર્વવ્યાપી પ્રેમને મનોયોગ દ્વારા સંકુચિત કરિ તેને આસક્તિનું સ્વરૂપ આપેલું હોવાથી તે (સુધા) જોકે જગતમાં સર્વ વ્યાપી રૂપે ન રહી છતાં ભક્તિ કોટીમાં તો અગ્રસ્થાનેજ બિરાજે છે. તેનું વિશેષ વિવેચન કુંભનની કાવ્યસુધામાં વિસ્તૃત રૂપે આવેલું છે.

—સમ્પાદક
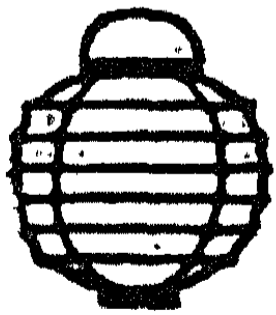
પરમાનંદદાસજીનું ચરિત્ર–વિવરણ કોષ્ઠક–

જન્મ–વિ. સં. ૧૫૫૦ ના માગશર સુદ ૭ ને સોમવારે સવારમાં કનોજ મુકામે.

જાતિ–કનોજીયા બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિસમય–વિ. સં. ૧૫૭૭ ના જેઠ સુદ ૧૨ ના 'અડેલ' મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ–સુરભી કુંડ, શ્યામતમાલ વૃક્ષની નીચે

કીર્તનનો મુખ્ય સમય–મંગલા.

અંતસમય–વિ. સં. ૧૬૪૦ ના શ્રાવણ સુદ ૯, સ્થાન સુરભી કુંડ (અહીંનું વૃક્ષ હાલમાં પડી ગયું છે)

લીલાત્મક સ્વરૂપ–તોક સખા એવં ચંદ્રભાગા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ–જીહ્વા ઇંદ્રિય.

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ–શ્રીનવનીતપ્રિયજી.

શૃંગારાસકિત–ગ્વાલપગા.

લીલાસકિત–બાળલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર×

સંગ્રાહકઃ–સમ્પાદક વાર્તા–સાહિત્ય.

× મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

ભક્ત-શિરોમણિ મહાકવિ

કુંભનદાસ

—◇■◇—

(સં. ૧૫૨૫ થી સં. ૧૬૪૦+)

—◇◇—

કુંભનદાસ અષ્ટસખાઓ પૈકીના એક છે. તેમનો જન્મ વિ. સં. ૧૫૨૫ના ચૈત્ર વદ ૧૧ ના દિવસે વ્રજમંડલમાં આવેલા શ્રીગોવર્દ્ધન ધામની અતિ નિકટના જમનાવતા નામક ગ્રામમાં એક ગોરવા ક્ષત્રિય ને ત્યાં થયો હતો.

તેમના જન્મની આખ્યાયિકા નિમ્ન પ્રકારે પ્રચલિત છે—

કહે છે કે તેમના પિતા ભગવાનદાસ (?) એક સમય સહકુટુંબ કુંભના પર્વમાં પ્રયાગ ગયા હતા. ત્યાં તેમણે સેવાદ્વારા એક મહાપુરૂષની પ્રસન્નતા પ્રાપ્ત કરી પુત્ર પ્રાપ્તિનો વર મેળવ્યો. પશ્ચાત્ ઘર આવ્યા બાદ તેમને ત્યાં યથાસમય એક પુત્રરત્ન સાંપડ્યું. જેનું નામ તેમણે કુંભના પ્રસંગની સ્મૃતિ તરીકે 'કુંભન' રાખ્યું.

+ સૂરદાસજીના અંતિમ સમયે કુંભનદાસજીની ઉપસ્થિતિ વાર્તાથી સિદ્ધ છે. પરંતુ પરમાનંદદાસજીના અંતિમ સમયે તેઓ ન હતા. તેથી ઉક્ત બન્ને મહાનુભાવોના અંતિમ કાલની વચમાં તેમનો અંતિમ સમય અનુમાન થઈ શકે છે. —સમ્પાદક.

કુંભનદાસને આઠ વર્ષે ઉપવીત આપ્યા બાદ તેમના પિતાએ વૈકુંઠવાસ કર્યો. જેથી કુંભનદાસે પોતાની શેષ બાલ્યાવસ્થા પોતાના કાકા ધર્મદાસની દેખરેખમાંજ વ્યતીત કરી.

ત્યારબાદ સં. ૧૫૩૫ માં પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથે ગોવર્દ્ધન પર્વતમાં સ્વતઃ પ્રકટ થઈ ધર્મદાસને કુંભનને પોતાની સાથે રમવા મોકલવાની આજ્ઞા કરી; ત્યારથી કુંભનદાસને કૃપાયુક્ત ભગવત્સાક્ષાત્કાર પ્રાપ્ત થયો.

એ પ્રકારે પ્રભુ શ્રીગોવર્ધનનાથની કૃપાથી કુંભનદાસમાં **મહાત્મ્યજ્ઞાન યુક્ત સુદૃઢ સ્નેહરૂપ પુષ્ટિભક્તિનો** ઉદય થયો. અને વીસ વર્ષ પર્યંત તેઓએ શ્રીનાથજીની વિવિધ લીલાનો અનુભવ કર્યો. તે દરમ્યાન સં. ૧૫૫૦ લગભગ તેમનું લગ્ન 'બહુલા' ગામમાં એક સજાતીય કન્યા સાથે થયું.

સં. ૧૫૫૫ માં મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યે આન્યોર પધારી પ્રભુ શ્રીનાથજીને પર્વતથી બહાર પધરાવ્યા તે સમયે કુંભનદાસ સ્ત્રી સહિત આચાર્યશ્રીની શરણે આવ્યા. ત્યારથી વાકપતિ–શ્રીવલ્લભની કૃપાદ્વારા તેમની દિવ્ય વાણીમાં કૃપાત્મક કાવ્યશક્તિનો પ્રવેશ થયો. એટલે આપની આજ્ઞાથી તેમણે સર્વ પ્રથમ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજી સન્નિધાન નિમ્ન પદ ગાયું—

सांझ के साँचे बोल तिहारे।
रजनी अनत जगे नंदनंदन आये निपट सकारे ॥

ઉક્ત પદ શ્રવણ કરી મહાપ્રભુ અત્યંત પ્રસન્ન થયા અને તેમને શ્રીનાથજી ની સન્નિધાન ઋતુ અનુસાર નિત્યપદ ગાવાની આજ્ઞા આપી.

આ સમયે કુંભનદાસની સ્ત્રીએ આચાર્યશ્રી પાસે પુત્ર પ્રાપ્તિનો વર માગ્યો, ત્યારે આપે તેણીને સાત પુત્રો થવાનું વરદાન આપ્યું. જેથી યથાસમય કુંભનદાસને ત્યાં સાત પુત્રો થયા જેમાં કૃષ્ણદાસ અને ચત્રભુજદાસ નામના બે મહાન ભગવદભક્ત હતા.

કુંભનદાસ મોટા કુટુંબવાળા હતા છતાં ઉપજ તેમને કેવળ ખેતીનીજ હતી, જેથી તેઓ સદા અકિંચન અવસ્થા ભોગવતા હતા. તોપણ તેઓ ધર્મની સિદ્ધિના કારણે એટલા તો ત્યાગી અને સંતુષ્ટ રહેતા કે જેની જોડ તે સમયે ન હતી. એ વાતનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ રાજા માનને થયો હતો જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે.

વિ. સંવત ૧૬૦૨ માં પ્રભુચરણે જયારે પુષ્ટિ અષ્ટ-છાપની સ્થાપના કરી મહાકવિઓનું નિર્માણ કર્યું ત્યારે તેમાં કુંભનદાસની પણ ગણના થઈ. ત્યારથી તેમની પ્રસિદ્ધિ ભક્ત સમાજ ઉપરાંત સાહિત્ય—સંસારમાં પણ ખૂબ પ્રચલિત થઇ. જેના ફલ સ્વરૂપે વૃંદાવનના હરિવંશાદિક સંત મહંત ઉચ્ચ કવિયો તેમજ રાજા ‘માન’ જેવા રાજનૈતિક પુરુષો પણ તેમની મુલાકાત લેવા જમનાવતામાં આવવા લાગ્યા.

એ પ્રકારના કુંભનદાસજીના જીવનના અનેક મહત્વપૂર્ણ પ્રસંગોમાં એક એ પણ છે કે તેઓ ભગવત્સાક્ષાત્કારને પ્રાપ્ત

થયેલા હોવા છતાં નિરભિમાનપણે આચાર્યશ્રીની મર્યાદાને જ અવલંબીને રહેતા હતા. કેમકે તેમણે તે જ્ઞાન સારી રીતે પ્રાપ્ત કર્યું હતું કે પુષ્ટિસ્થ પ્રભુ 'कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं सर्व सामर्थ्य युक्त' છે. એટલે પોતાના ખેત ઉપર કૃપા કરીને અહર્નિશ દર્શન દેતા પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનધરના લાવણ્યામૃતના લોભનો પરિત્યાગ કરીને પણ તેઓ આચાર્યશ્રીએ બાંધેલા સેવાના સમયે, આપની મર્યાદાથી સ્થિત મંદિરની ચરણ ચોકી ઉપર બિરાજમાન શ્રીગોવર્દ્ધનધરની સેવામાં ઉપસ્થિત થતા.

આ રીતે કુંભનદાસજી પ્રભુની સ્વતઃ થયેલી કૃપા કરતાં પણ સ્વગુરૂ મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની મર્યાદાને અધિક મહત્વ દેતા જેનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ વાર્તામાં છે.

એ પ્રકારે કુંભનદાસજીએ લગભગ ૧૧૫ વર્ષની આયુ ભોગવી સં. ૧૬૪૦ માં જમનાવતામાં દેહ છોડી.

× × × ×

કુંભનદાસજીના ચરિત્રમાં રહેલી દૈવીસંપત્તિઓ–

ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે ગીતાના ૧૬ મા અધ્યાયમાં કહેલી દૈવી સમ્પત્તિઓ કુંભનદાસજીના આ વાર્તાત્મક ચરિત્રમાં પૂર્ણરૂપે સ્પષ્ટ તરીઆવે છે, જેનાં કંઈક ઉદાહરણ અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ–

૧ अभय–સં. ૧૬૩૦ની લગભગ જ્યારે બાદશાહ અકબરે કુંભનદાસજીના પદોથી મુગ્ધ થઈ તેમને સન્માનયુક્ત ફત્તેહપુર સીકરીમાં બોલાવ્યા અને તેઓને સત્તાત્મક રૂપે પોતાનો કંઈક યશ ગાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે વિવેકપુરઃસર તે સત્તા અને સન્માનનો અનાદર કરતાં પોતાની દૈવી સમ્પત્તિના મૂળરૂપ જે <u>અભયને</u> નિમ્ન પદ દ્વારા પ્રસિદ્ધ કર્યો તે આ રહ્યો–

भक्त को कहा सीकरी काम ?
आवत जात पन्हैया तूटी विसर गयो हरिनाम ॥
जाको मुख देखत दुःख उपजे ताकों करनी परी प्रणाम ।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु यह सब झूंठो धाम ।

આથી વિશેષ અભયતા શું સંસારમાં હોઈ શકે ખરી ? એક વિધર્મી બાદશાહને સર્વસમક્ષ 'जाको मुख देखत दुःख उपजे' એ શબ્દો નિડરતા પૂર્વક કહેવા એ શું મનુષ્ય તાકાતની બહારની વાત નથી ? અને તેના પ્રતિધ્વનિરૂપે વળી બાદશાહને શાંત રાખવો તે શું તેમના દૈવી સમ્પત્તિમાંના ૨૧ મા ગુણ 'તેજ' નો પ્રભાવ ન ગણાય ?

૨ सत्त्वसंशुद्धि—દૈવી સમ્પત્તિનું બીજું લક્ષણ જે અંતઃકરણની શુદ્ધિ છે તે, એમના સૂતક એવં શ્રીગુસાંઈજીના વિદેશ ગમનાદિ અનેક સમયે થયેલા ભગવદ્ વિયોગાત્મક પ્રસંગોથી સિદ્ધ જ છે. કેમકે અંતઃકરણની પૂર્ણ શુદ્ધિ વિના સુદૃઢ ભગવદાસક્તિ થવી અસંભવ છે. અને આસક્તિ વિના તાપ થવો દુર્લભ છે. એ ભગવદ્ વિયોગાત્મક તાપ કુંભનદાસજીમાં કેવા પ્રકારનો હતો તે તેમના અનેકાનેક પદોમાંના ફક્ત નિમ્ન એક પદ દ્વારા પણ પ્રત્યેક મનુષ્ય સમજી શકે છે—

केते दिन व्हे जु गये बिनु देखे ।
तरुण किशोर रसिक नंदनंदन कछुक उठत मुख रेखे ॥
वह शोभा वह कांति वदन की कोटिक चंद्र बिसेखे ।
वह चितवनि वह हास्य मनोहर वह नटवरवपु भेखे ॥
श्यामसुंदर मिलि संग खेलनि की आवत जीय अपेखे ॥
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखे ।

આહ ! ઉક્ત પદ કેટલું હૃદયવેધક છે ? તેમાં શબ્દ શબ્દમાં આસક્તિ ઠાંસી ઠાંસીને ભરી છે. એમાંયે वह शोभा, वह कांति, वह चितवनि, वह हास्य ઈત્યાદિ સ્થલોએ ધરેલો 'वह' શબ્દ કેટલો હૃદયગ્રાહી અને માર્મિક છે ? તેનું વર્ણન કરવું અશકય છે. શું ઉક્ત પદથી કુંભનદાસના અંતઃકરણની પૂર્ણ શુદ્ધિ વિસ્પષ્ટરૂપે નથી ઝળહળતી ? એ વાતનો જવાબ તો ભક્ત–હૃદય જ આપી શકે.

३ ज्ञानयोग व्यवस्थिति–દૈવી સમ્પત્તિનું ત્રીજું લક્ષણ જ્ઞાન અને યોગમાં સ્થિતિ તે કુંભનદાસજીના નિમ્ન પ્રસંગોમાં સ્પષ્ટ દેખાઈ આવે છે–

એક સમયે શ્રીપ્રભુચરણે કુંભનદાસજીને કેટલા પુત્ર છે એમ પુછ્યું ત્યારે તેમણે સાત પુત્રો હોવા છતાં પોતાને કેવળ ડોઢજ પુત્ર છે એમ કહ્યું. તેમના આ ઉત્તરથી ઉપસ્થિત સર્વ વૈષ્ણવો જ્યારે આશ્ચર્યાન્વિત થયા ત્યારે તેમના જ્ઞાનાર્થે શ્રીપ્રભુચરણે કુંભનદાસજીને ડોઢ પુત્રનો પ્રકાર પુછયો. એટલે તેમણે કહ્યું કે શ્રીગોપીજનોની ભાવનાનુસાર સંયોગ અને વિપ્રયોગાત્મકપણે ક્રમશઃ રૂપ અને નામની જે સેવા કરે છે તે ચત્રભુજદાસ આખો પુત્ર છે અને કૃષ્ણદાસ કેવળ સ્વરૂપનીજ સેવા કરતો હોવાથી તે અડધો પુત્ર છે.

આ પ્રકારે કુંભનદાસજીએ શ્રીગોપીજનોના હાર્દિક નિગૂઢ ભાવને પ્રકટ કરી પોતાની મહાઅલૌકિક જ્ઞાનાત્મક સ્થિતિને જનહિતાર્થે પ્રકાશી.

એજ રીતે મનને એકાગ્ર કરવાવાળી યોગસ્થિતિ (પુષ્ટિમાર્ગીય ભગવદ્ વ્યસન) એમના સંયોગ–વિપ્રયોગાત્મક

સેવા પ્રકારથી સિદ્ધ છે. યોગીની માફક તેમણે ઉક્ત ઉભય અંગ સ્વરૂપ સેવાદ્વારા મનની એકાગ્રતા પ્રભુમાં કેવી સિદ્ધ કરી હતી તે જાણુવા માટે તેમના અનેકોમાંનું 'હિલગ'નું એકજ પદ અત્રે આપીએ છીએ—

जो पे चोंप मिलन की होई।
तो क्यों रह्यो परे बिनु देखे लाख करे जो कोई ॥
जो पें विरह परस्पर व्यापे तो कछु जीय बने।
लोकलाज कुल की मरियादा एको चित्त न गिने ॥
कुंभनदास प्रभु जाहि तन लागी और कछू न सुहाई।
गिरिधरलाल तोहि बिनु देखे छिनु २ कल्प बिहाई ॥

અહા! શું સંયોગ અને વિપ્રયોગનું પરસ્પર મિલાન છે! આ હૃદયની સ્વરૂપાત્મક એકાગ્રતા યોગીઓના પ્રાકૃત યોગદ્વારા સિદ્ધ થતી નથી. એ તો ભગવત્કૃપાથી સિદ્ધ થતી સેવારૂપી અલૌકિક યોગદ્વારા જ સાધ્ય છે.

૪ दान—એજ પ્રકારે દૈવીસમ્પત્તિના ચોથા લક્ષણરૂપ તેમનું અદેય 'દાન' પણ અલૌકિક જ છે. આજ સૂતકમાં રસાત્મક શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીનાં દર્શન રૂપી જે ભિક્ષા વૈષ્ણવોને મળે છે તે કુંભનદાસજીના દાનના ફલ સ્વરૂપ જ છે એ કહેવું ભાગ્યેજ આવશ્યક કહી શકાય! કુંભનદાસજીએ એ અલૌકિક દાન આપી વૈષ્ણવ સમૂહને અસીમ ઋણી બનાવ્યો છે તે વાર્તાના પ્રસંગથી સિદ્ધ છે.

૫ दम–દૈવી સમ્પત્તિનું પાંચમું લક્ષણ જે દમ (ઇંદ્રીય દમન) તેને બતાવવાને માટે વિસ્તારપૂર્વક વિવેચનની કોઈ આવશ્યક્તા નથી. તે તો ' આંબા ' વિગેરેના પ્રસંગથી સ્વયંસિદ્ધ છે.

૬ यज्ञ—કુંભનદાસજીમાં દૈવી સમ્પત્તિના છઠ્ઠા લક્ષણરૂપ 'યજ્ઞ' પણ અત્યલૌકિક આધિદૈવિક સ્વરૂપે વિદ્યમાન છે. યજ્ઞનો દેવતા જેમ અગ્નિ છે તેમ અહિં આધિદૈવિક યજ્ઞના દેવતા સ્વરૂપ ભગવદ્ મુખાગ્નિ છે. અને કુંભનદાસજીએ તે અગ્નિને દૈન્ય ભાવયુક્ત પરમ સ્નેહના પુટથી વિવિધ સામગ્રિયો આરોગાવી તેને સંતુષ્ટ કર્યો છે જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે. તેથી વિશેષ બીજો કયો યજ્ઞ હોઈ શકે ?

૭ स्वाध्याय—એજ પ્રકારે સાતમા લક્ષણરૂપ સ્વાધ્યાય (વેદાધ્યયન) તો તેમના ભગવત્સાક્ષાત્કારયુક્ત આધિદૈવિક વેદ સ્વરૂપ કીર્તનોજ છે જેમાં ભક્તિમાર્ગીય જીવોને તો કંઈ સંદેહ નથીજ.

જે કીર્તનો આજ પણ કેવળ અધ્યયન માત્રથી ત્રણે દુઃખને દૂર કરી દૈવી જીવોને પરમાનંદમાં મગ્ન કરે છે તે આધિદૈવિક વેદરૂપ નહિં તો બીજું શું ?

૮ तप तथा धैर्य–દૈવી સમ્પત્તિના આઠમા લક્ષણ રૂપ 'તપ' અને ૨૩ મા લક્ષણ રૂપ ધૈર્ય' તો કુંભનદાસજીના જીવનમાં ક્ષણે ક્ષણે દેખાઈ આવે છે. ' त्रिदुःख सहनं धैर्यम् ' એ આચાર્યશ્રીના વાકયને તેમણે પોતાના જીવનમાં પ્રત્યક્ષ ઉતાર્યું હતું એમ વાર્તાના અનેક પ્રસંગોથી જણાય છે.

તેમનું તપરૂપ ત્રિવિધ ધૈર્ય આ પ્રકારે છે–

એમણે દરિદ્ર અવસ્થા ભોગવીને લૌકીક દુઃખને ધૈર્યપૂર્વક સહર્ષ સહન કરી શારીરીક ભૌતિક તપ કર્યું, તેજ પ્રકારે ચત્રભુજદાસના પ્રાકટયના પૂર્વે સત્સંગ અર્થે તેમણે માનસિક દુઃખને ધૈર્યપૂર્વક સહન કરી આધ્યાત્મિક તપ કર્યું. અને અસહ્ય ભગવદ્વિયોગમાં પણ દેહની સ્થિતિ રાખીને જે કષ્ટને એમણે ધૈર્યપૂર્વક સહન કર્યું તે આધિદૈવિક તપ તો અદભૂતજ કહેવાય. એ પ્રકારે 'તપ' અને 'ધીરજ' રૂપી સમ્પત્તિ એમનામાં સહજ હતી.

એ રીતે દૈવી સમ્પત્તિનાં સરળતા, અહિંસા, સત્ય, અક્રોધ, અને ત્યાગ આદિ તો તેમના સાદા પરોપકારી અને નિઃસ્પૃહયુક્ત સત્ય જીવનમાં સ્પષ્ટ તરી આવે છે. જેના ઉદાહરણ રૂપે રાજા માનની મુલાકાતનો, શ્રીપ્રભુચરણના વિદેશગમનનો તથા ટોડના ઘના આદિના પ્રસંગો વિસ્પષ્ટજ છે.

એ પ્રકારે અન્ય લક્ષણો પણ એમનામાં વિદ્યમાન હતાં જેનું સ્થળ સંકોચથી વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ અમે અત્રે આપી શકતા નથી. અસ્તુ.

કુંભનસુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ—

કુંભનદાસજીના કાવ્યોમાં સહુથી મહત્ત્વપૂર્ણ જે વસ્તુ વિશેષ માત્રામાં દેખાઈ આવે છે તે તેમની ભગવદ્દાસક્તિ ઉપરાંતનું વ્યસન છે.

તેમની કાવ્યસુધામાં તલ્લીનતા એટલી તો વ્યાપક રૂપે વિદ્યમાન છે કે તેના નિરંતરના અવગાહન માત્રથી પણ જીવ ભગવદ્ તન્મયતા સહજમાં પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

તેમણે ગોકુલની બાલલીલા ગાઈ નથી કેમકે તેઓ પ્રમેયને જ મુખ્ય માનનારા હતા પ્રમાણને નહિ. છતાં તેમની સખ્યભક્તિ વિશેષતઃ માહાત્મ્ય જ્ઞાન સંયુક્ત હતી.
દૃષ્ટાંત રૂપે—

एसो भूपति कोन जो हम पे हाथ उठावे।
बंदीजन द्विज वेद पढ़ें द्वारे नित्य गावे॥
ब्रह्मरूप उत्पन्न करूं रुद्र रूप संहार।
विष्णुरूप रक्षा करूं सो मैं हूं नंदकुमार॥(दानलीला)

સૂરે જેમ સર્વવ્યાપી પ્રેમનું મૂર્તિમંત સ્વરૂપ 'સૂર-સાગર' દ્વારા જનતા સમક્ષ મુકયું છે; અને જેમ પરમાનંદદાસે ભગવદાસક્તિ પરમાનંદ સાગરમાં મૂકી છે તેમ કુંભને ભગવાન પ્રત્યેની પોતાની થએલી વ્યસન અવસ્થાનું વિશુદ્ધ દૃશ્ય પોતાના પદો દ્વારા જનસમૂહ સમક્ષ સ્થાપ્યું છે.

એ કહેવું ભાગ્યે જ બાકી ગણાય કે પ્રેમ એ ત્રિલોકીની સર્વવ્યાપી વસ્તુ છે એટલે તેના સુદૃઢ અને સર્વો-ત્કૃષ્ટ ઉપાસક રૂપે સૂરની વાણી પણ સર્વવ્યાપી હોય જ. કિંતુ

આસક્તિ અને વ્યસન મનની એકાગ્રતાને અર્થે ક્રમશઃ એકપછી એક પોતામાં સંકુચિત તત્ત્વોનો સમાવેશ કરતાં હોઈ તેઓ જગતમાં ગુપ્ત અને ગુપ્તતમ રૂપે સ્થિત રહે છે. તે પ્રમાણે તેના ઉપાસક રૂપે પરમાનંદ અને કુંભન ક્રમશઃ એક પછી એક સર્વ સાધારણની દૃષ્ટિમાં ગુપ્ત અને ગુપ્તતમ છે. હાં! તે વસ્તુના ગ્રાહકો આગળ તો તેઓ ગુપ્ત હોવા છતાં પૂર્ણ પ્રકાશિત છે જ એમાં સંદેહ નહિ.

આ રીતે કુંભનના કાવ્યો સૂરની માફક સર્વવ્યાપી ન હોવા છતાં સંકુચિત તત્ત્વને લીધે ભગવદ્ વ્યસન અવસ્થામાં પૂર્ણ ઉપયોગી અને મહત્ત્વનાં છે જ.

—સમ્પાદક

કુંભનદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક-

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૨૫ ના ચૈત્ર વદ ૧૧ ના દિવસે જમનાવતા ગામમાં.

જાતિ-ગોરવા ક્ષત્રિય, પિતૃનામ-ભગવાનદાસ

શરણાગતિસમય-વિ. સં. ૧૫૫૫ ના વૈશાખ સુદ ૩ ગોવર્ધન-ગોપાલપુર-મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ-જમનાવતા.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય-રાજભોગ.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૦

લીલાત્મક સ્વરૂપ-અર્જુન સખા એવં વિશાખા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-શ્રોત્ર ઇંદ્રિય

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજી.

શૃંગારાસક્તિ-કુલ્હે.

લીલાસક્તિ-નિકુંજલીલા

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર×

સંગ્રાહક:-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

× મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે,

ભક્ત કવિરત્ન શ્રીકૃષ્ણદાસજી

———:x:———

(સં. ૧૫૫૩ થી સં. ૧૬૩૧)

———:x:———

હિન્દી સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં યદ્યપિ કૃષ્ણદાસ પયહારી, કૃષ્ણદાસ કવિ આદી અનેક કૃષ્ણદાસ નામક પ્રાચીન સુ-કવિયોની નામાવલી છે; તોપણ તેમાં મૂર્દ્ધન્ય રૂપે બિરાજમાન અષ્ટછાપના મહાકવિ શ્રીકૃષ્ણદાસજી વિશ્વવિદિત છે.

આ અષ્ટછાપના ભક્ત કવિરત્ન શ્રીકૃષ્ણદાસજીનો જન્મ સં. ૧૫૫૩ ના વૈશાખ સુદ ૩ ના દિવસે અમદાવાદ જીલ્લામાં આવેલા ' ચલોતર ' નામક ગ્રામમાં એક કણબી ' મુખી 'ને ત્યાં થયો હતો. એમની બાલ્યાવસ્થા અને ગૃહત્યાગનું સવિસ્તર વર્ણન વાર્તામાં હોવાથી અત્રે એટલું કહેવું જ પર્યાપ્ત છે કે તેઓએ ૧૩ વર્ષની વયેજ પિતાના અસત્યાચરણથી ગૃહ-ત્યાગ કરી તીર્થાટનનો પ્રારંભ કર્યો હતો.

પ્રારંભના થોડા જ સમય અનન્તર સં. ૧૫૬૮ માં તેઓ મથુરાના વિશ્રાંત ઉપર મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા. અને ત્યાંથી આપની સાથે શ્રીગોવર્દ્ધન જઇ શ્રીનાથજીની સન્મુખ તેમણે આચાર્યશ્રીથી નિવેદન પ્રાપ્ત કર્યું.

નિવેદનની સાથે જ કૃષ્ણદાસ ઉપર અસીમ ભગવત્કૃપા ઉતરી અને તેમને ભગવલ્લીલાનો સાક્ષાત્કાર થયો. આથી

તેમની વાણી દિવ્ય અને પ્રસાદાત્મક બની, જેથી તેઓ આગળ જતાં મહાકવિ રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

કૃષ્ણદાસે શરણ આવ્યા બાદ ગુરૂભેટ રૂપે જે પ્રાથમિક પદ આચાર્યશ્રી સન્મુખ ગાયું તે આ છે—

'श्रीवल्लभ पतित-उद्धारन जानो ।
शरण लेत लीला दरसावत तापर ढरत गोवर्द्धन रानो ॥
साधन वृथा करत दिन खोवत श्रीवल्लभ को रूप न जाने ।
जाकी कृपा कटाक्ष सकल फल कृष्णदास तीनो जनम न माने ॥'

આ પદ સાંભળી આચાર્યશ્રીએ તેમને ભગવત્સન્નિધાન કીર્તન કરવાની આજ્ઞા આપી. અને ત્યારથી તેઓ કીર્તનની સેવામાં રહ્યા.

પશ્ચાત્ સં. ૧૫૮૨ થી આચાર્યશ્રીએ તેમને શ્રીનાથજીની ભેટ ઉઘરાવવાની સેવા સોંપી ત્યારથી તેઓ વિદેશમાં ભેટ લેવાને જતા. તે દરમ્યાન એક સમય ગુજરાતથી ભેટ ઉઘરાવીને આવતાં રસ્તામાં તેઓ મીરાબાઈના મુકામે આવ્યા. તે વખતે કૃષ્ણદાસને જોઈ મીરાબાઈએ તેમને શ્રીનાથજીની ભેટ રૂપે ૧૧ મહોર અનેક સાધુસંતોના દેખતાં આપવા માંડી. ત્યારે તેમણે તે ન લેતાં મીરાંબાઈને સ્પષ્ટ કહ્યું કે શ્રીનાથજી આચાર્યશ્રીના સેવક વિના અન્યની ભેટને સ્વીકારતા નથી. એ રીતે દિવ્યત્યાગ દ્વારા સ્વામીનો સુયશ વધારી કૃષ્ણદાસ ગોવર્દ્ધન આવ્યા. તેમની આ નીતિ કુશળતાથી પ્રસન્ન થઈ આચાર્યશ્રીએ તેમને મંદિરની

દેખરેખ સમેત શ્રીનાથજીના મુખ્ય ભંડારનું કાર્ય સોંપ્યું.

બાદમાં આચાર્યશ્રીના તિરોધાનાન્તર કૃષ્ણદાસે અવધૂતદાસ દ્વારા શ્રીનાથજીની આજ્ઞાને જાણી મંદિરમાં સ્વચ્છન્દ રીતે સેવા કરતા નિરંકુશ બંગાલીઓને પોતાની નીતિ કુશળતાથી દૂર કર્યા. તેથી પ્રભુચરણે કૃષ્ણદાસ ઉપર પ્રસન્ન થઈ તેમને ઉપરણો ઓઢાવીને શ્રીનાથજીના અધિકારી જાહેર કર્યા.

પશ્ચાત્ પ્રભુચરણે કૃષ્ણદાસની ગાદી કાયમ કરી અને તેમના મુખ્ય ભંડારને 'कृष्ण-भंडार' એ નામ આપ્યું. વળી તેમને અનેક રથો, ઘોડાઓ અને સશસ્ત્ર વ્રજવાસિયોનું સૈન્ય પણ આપ્યું.

ત્યારથી કૃષ્ણદાસની સમ્મતિ વિના મંદિરમાં પ્રભુચરણ પણ કોઈ કાર્ય ન કરતા. આથી કૃષ્ણદાસનો પ્રભાવ સર્વત્ર પ્રસર્યો અને તેઓ પૂર્ણ રાજસમાં ઢળ્યા.

'ભર્યામાં ભરે' એ સૃષ્ટિના નિયમાનુસાર પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ પણ પ્રભુચરણની કૃષ્ણદાસ પ્રત્યેની કૃપાને જોઈ પોતાની કૃપાને દ્વિગુણીત કરી. જેના ફલ સ્વરૂપે તેમને અનેક વખતે શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ પોતાની રાસાદિ લીલાનાં પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યાં અને તે તે સમયે તેમની વાણીનો પણ અંગીકાર કર્યો.

પરમ દયાલ ભક્તવત્સલ પ્રભુ કૃષ્ણદાસ ઉપર એટલી કૃપા કરી ને જ સંતુષ્ટ ન થયા. કિંતુ તેમની દ્વારા સમર્પાયલી એક તુચ્છ વેશ્યાને તેમના રચેલા કીર્તનના સંબંધ-

માત્રથી સદેહે લીલામાં લઈ આપે જગતમાં પોતાનું ભક્તાધીનત્વ સિદ્ધ કર્યું. તેવી જ રીતે તે કૃપાળુ શ્રીજીએ સાહિત્ય સંસારમાં પણ કૃષ્ણદાસના સુયશને વધારવાને માટે કાવ્યપિતા શ્રીસૂરના હૃદયસ્થલમાં નહિ આવેલા 'નેચુકી' ગાયના વર્ણનને કૃષ્ણદાસના નામથી સંપાદન કરી પોતે તેમને અને તેમનાં પદોને પણ જગતવિખ્યાત સૂર્યવત્ શ્રી સૂરના દિવ્ય કાવ્યોની હરોળમાં મૂક્યાં.

આ રીતે શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ શ્રીકૃષ્ણદાસજી ઉપર વ્યાપક કૃપા કરી તેમના નામને 'યાવચ્ચંદ્રદિવાકરો' પર્યંત ઉજ્જ્વલ રીતે પ્રસિદ્ધ કર્યું. છતાં કૌતુહલ પ્રિય પ્રભુએ અનેક ઉદ્દેશ્યોને સિદ્ધ કરવાને અર્થે કૃષ્ણદાસજીના જીવનમાં પણ એક અસંભવિત કૌતુકને ઉત્પન્ન કર્યું. જેના પરિણામે કૃષ્ણદાસનો પ્રભુચરણથી વિરોધ થયો. તેથી તેમના અતિ ઉજ્જ્વલ ચરિત્રમાં દ્રષ્ટિ નિવારણાર્થ એક શ્યામબિંદુ પ્રવેશ્યું.

ઉક્ત વિરોધમાં કૃષ્ણદાસે રાજ્યનીતિનો આશ્રય લઈ શ્રીગોપીનાથજીના પુત્ર શ્રીપુરુષોત્તમજીને શ્રીનાથજીના મંદિરના હક્કદાર તરીકે સિદ્ધ કર્યા; અને તે દ્વારા પ્રભુચરણને સં. ૧૬૨૦ લગભગના પોષ સુદ ૬ ના દિવસથી શ્રીનાથજીનાં દર્શન બંધ કર્યાં.

આ સમયે યદ્યપિ પ્રભુચરણને કલ્પનાતીત અસહ્ય કષ્ટ પ્રાપ્ત થયું. તો પણ આપે આચાર્યશ્રીનાં 'निजेच्छात करिष्यति,' 'पुष्टिमार्ग स्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिलः,' 'त्रिःदुःख सहनं धैर्यम्' આદિ વાક્યોનું સ્મરણ કરી, તે વાણીના આશ્રય બલે નિષ્ક્રીય બની પ્રભુના વિયોગમાં ચંદ્રસરોવર પરાસોલી તરફ પ્રયાણ કર્યું.

ત્યારપછી છ માસ બાદ શ્રીપુરૂષોત્તમજીના લીલા-પ્રવેશ અને શ્રીગિરધરજીના પ્રયાસથી પુનઃ પ્રભુચરણ શ્રીનાથજીના મંદિરના માલિક બન્યા. આ સમયે કૃષ્ણદાસને રાજા બીરબલે કેદ કરેલા હોવાથી પરમ આર્દ્રહૃદયી શ્રીવિઠ્ઠલેશે તેમને શીઘ્ર મુક્ત કરાવ્યા અને પુનઃ પૂર્વવત્ અધિકારારૂઢ કર્યા.

શ્રીવિઠ્ઠલેશની એ હાર્દિક દયાનો કૃષ્ણદાસ ઉપર અત્યંત પ્રભાવ પડયો. જેના ફલરૂપે તેઓ આસુરાવેશથી મુક્ત થઈ પુનઃ આપશ્રીના અનન્ય ભક્ત બન્યા. તે સમયે કૃષ્ણદાસે પ્રભુચરણના નિરપેક્ષ ઉપકારથી દ્રવીભૂત થઈ આપના સુયશ ને પ્રકટ કરતાં અનેક પદ ગાયાં જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે.

ત્યારબાદ કૃષ્ણદાસની પ્રાર્થનાથી યદ્યપિ શ્રીવિઠ્ઠલેશે તેમના અવિસ્મરણીય અપરાધને શ્રીનાથજી પાસે ક્ષમા કરાવ્યો તોપણ આપનું કોમળ હૃદય કે જે પ્રાણપ્રેષ્ઠ પ્રભુના અસહ્ય તાપથી એટલું તો વિકળ બની ગયું હતું કે આપના અનેકાનેક પ્રયાસોથી પણ તે ઉક્ત અપરાધને વિસારી શક્યું નહિંજ.

એ રીતે ઘણા વર્ષ પર્યંત અધિકારારૂઢ રહ્યા બાદ સં. ૧૬૩૩માં કૃષ્ણદાસે પોતાના અપરાધી શરીરને કુવામાં લીન કર્યું અને તેઓ સદાને માટે તેનાથી મુક્ત થયા.

શંકા-સમાધાન

પૂર્વપક્ષી—પ્રેતવિષયક પ્રસંગમાં અમને નીચે પ્રકારની શંકાઓ રહે છે તદર્થે તેનું સમાધાન કરવું આવશ્યક છે.

૧ શું તમે કહી શકો છો કે કૃષ્ણદાસના સંબંધનો પ્રેત વિષયક પ્રસંગ 'વાર્તાકાર'ના નામથી તેમની હયાતી બાદ કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા તેમાં પાછળથી યોજવામાં નહિ આવ્યો હોય ? જો એમ હોય તો એ પ્રસંગ નિઃસંદિગ્ધ પ્રક્ષિપ્ત હોઈ તેને વાર્તામાંથી દૂર કરવો આવશ્યક છે.

૨ કૃષ્ણદાસ જેવા મહાનુભાવ ભગવદીય પ્રભુચરણ ને ભગવદ્ દર્શનમાં અંતરાયરૂપ થઇ પડે એ વાત શું અસભવ નથી ?

૩ કદાચ પ્રશ્ન બીજાને સ્વીકારી પણ લઇએ તો પણ એ વાત તો સર્વથા પાયાહીન માની શકાય એમ છે કે કૃષ્ણ-દાસ પ્રેતરૂપે શ્રીનાથજી સાથે વાર્તાલાપ કરે, અને છતાં તેઓ પ્રેતજ રહે ?

યદ્યપિ અમારી ઉપર્યુક્ત શંકાઓનું સમાધાન ભાવનાત્મક દૃષ્ટિએ શકય હોવા છતાં સમ્ભવિત અને ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ તેમ બનવું શકય નથી તેમ અમે માનીએ છીએ. માટે અમારા મત પ્રમાણે તો વાર્તામાં ઇતિહાસને સઙ્ગત રૂપ થઇ પડે એવો નિમ્ન પ્રકારનો ફેરફાર થવો આવશ્યક છે—

'અમારા મન્તવ્યને અનુસાર કૃષ્ણદાસ પ્રેત થયા બાદ શ્રીનાથજી સાથે વાર્તાલાપાનન્તર તેઓ તે યોનિમાંથી છુટી ગયા અને તેના પ્રમાણ રૂપે કૃષ્ણદાસનું 'कृष्णदास सुर तें असुर भये असुर ते सुर भये चरनन छोय' એમ લખવું જોઇએ

ઉત્તરપક્ષી—પ્રથમ મારે ઉક્ત પ્રશ્નોનો ખુલાસો કરતાં

પહેલાં એ વાત ઉપર આપનું ધ્યાન ખેંચવું આવશ્યક છે કે તે પ્રેતવિષયક પ્રસંગ સદંતર ભૌતિક તો નથીજ. કેમકે પ્રેતયોનિ મૃત્યુલોકના પ્રાણીઓથી શ્રેષ્ઠ છે એમ શાસ્ત્ર કહે છે. તેથી તેનો સંબંધ પણ મૃત્યુલોક સાથે સંભવિત નહીં હોવાથી ત્યાં ભૌતિક ઇતિહાસની ગમ્ય નથી. અતઃ તે શંકાઓનું નિવારણ આવશ્યક ભૌતિક ઉપરાંત શાસ્ત્રીય એવં સામ્પ્રદાયિક દૃષ્ટિએજ નિમ્ન પ્રકારે આપવામાં આવે છે—

આપના પ્રશ્ન પહેલાના નિવારણ રૂપે અમારી પાસે કાંકરોલી સરસ્વતી ભંડારથી પ્રાપ્ત શ્રીગોકુલેશની ઉપસ્થિતિ સમયની ગોકુલમાં લખાયેલી વ્રજ સં. ૧૬૯૭ (ગુ. ૧૬૯૬)ના ચૈત્ર સુદ ૫ ને વાર રવિની પ્રતિ વિદ્યમાન છે. અને તેની 'પુષ્પિકા'નો ફોટો પણ પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં આપવામાં આવેલો છે. અતઃ તે વિષે કોઇ શંકા રહેતી નથી. વળી વાર્તા શ્રીગોકુલેશ દ્વારા લખાયલી છે કે અન્યથી, તે આપના આંતરિક સંદેહનો વિચાર પ્રસ્તાવનામાં કરેલો છે એથી અત્રે તેનો ઊહાપોહ કરવો પણ વ્યર્થ છે.

આપના બીજા અને ત્રીજા પ્રશ્નનો ઉત્તર યદ્યપિ શ્રીહરિરાયજીના 'ભાવપ્રકાશમાં' સ્પષ્ટ છે તથાપિ તેના સારનું એકીકરણ ત્રિવિધ સંગતિથી અત્રે સૂક્ષ્મરૂપે આપવામાં આવે છે—

અન્ય વાર્તાની માફક આ વાર્તામાં પણ 'વાર્તાકારે' ત્રિવિધ ભાષા (લૌકિક-પરમતા અને સમાધિરૂપ) એવં ભાવનાની જે સુંદર સંગૃતિ રચી છે તે નીચે પ્રકારે છે—

લોક સઙ્ગતિ—ભૌતિક દૃષ્ટિ—

લોકમાં એ સ્પષ્ટ છે કે અંતિમ સમયે મનુષ્યનું મન કોઇપણ ભૌતિક વસ્તુમાં રહી જાય તો તેને પ્રેતાદિ યોનિ

ભોગવવી આવશ્યક થઈ પડે છે. તે વાતની સઙ્ગતિ અત્રે પણ કુવાના કાર્યાર્થના રૂા ૧૦૦)માં કૃષ્ણદાસનું મન રહેલું હોવાના પ્રસંગદ્વારા વાર્તાકારે સિદ્ધ કરી છે.

વેદસઙ્ગતિ—આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિ—

વેદ નિયમાનુસાર શ્રીગુરૂદેવનો અપરાધ મહાનતમ મનાય છે. એક વખતે પ્રભુ પોતાના અપરાધને ક્ષમા કરે છે કિંતુ શ્રીગુરૂદેવના અપરાધને તે કદાપિ ક્ષમા કરી શકતા નથી એ લોક અને વેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. તદનુસાર પ્રભુચરણની પ્રાર્થનાથી શ્રીનાથજીએ કૃષ્ણદાસના સ્વ પ્રત્યેના અપરાધને ક્ષમા કર્યો. કિંતુ ન તો શ્રીજીએ તથા ન પ્રભુચરણે ગુરૂ સ્વરૂપ પ્રતિના અસહ્ય અપરાધથી કૃષ્ણદાસ ને મુક્ત કર્યા. જેથી તે અપરાધની નિવૃત્તિને અર્થે તેમને પ્રેતયોનિ ભોગવવી આવશ્યક થઇ પડી.

યદ્યપિ પ્રભુ સર્વસમર્થ છે છતાં શાસ્ત્રીય પ્રણાલીની રક્ષાને અર્થે આપે તેમને સ્વયં પ્રેતયોનિથી મુક્ત ન કર્યા. કિંતુ ગુરૂદેવના અપરાધનું નિવારણ ગુરૂદેવ જ કરી શકે છે એ સિદ્ધાંત ચરિતાર્થ કરાવવાને અર્થે જ પ્રભુચરણ પાસે તેમની મુક્તિ કરાવી. આમ લોક અને વેદની શાસ્ત્રીય પદ્ધતિનું રક્ષણ કર્યા છતાં પ્રભુએ આચાર્યશ્રીના વિશદ સ્વતંત્ર પુષ્ટિમાર્ગની પ્રણાલીને પણ ગૌણ થવા દીધી નહિ. એ જ પ્રભુનું વિરૂદ્ધધર્માશ્રયત્વ આ વાર્તામાં સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું છે.

લોક અને વેદની દૃષ્ટિએ કૃષ્ણદાસ અપરાધી હોવા છતાં પુષ્ટિદૃષ્ટિએ તેઓ નિર્દોષ જ રહ્યા. જેથી શ્રીજીએ તેમનો દેહ દંડ દ્વારા લોકવેદની રક્ષા કરી તોપણ 'પુષ્ટિ'ની સર્વોચ્ચતા સિદ્ધ કરવાને માટે તે યોનિમાં પણ **ભગવદ્દર્શન એવં વાર્તાલાપનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત** કરાવ્યું. જે લોક અને વેદની

દૃષ્ટિએ સર્વથા અસમ્ભવ છે. અને આચાર્યશ્રીના 'अत्रापि वेदनिंदायामधर्मकरणात्तथा, नरके न भवेत्पातः किन्तु हीनेषु जायते'। એ વાકયને ગોપીનાથદાસ દ્વારા લોક સમક્ષ સિદ્ધ કર્યું.

પ્રેતયોનિમાં પણ ભગવદ્દર્શનના આ પ્રસંગને બિલ્વમં-ગલના ચરિત્રદ્વારા પણ ઐતિહાસિક પુષ્ટિ મળે છે.

આ રીતે લોક, વેદ અને 'પુષ્ટિ'નું પૃથક્કરણ કરી કૃષ્ણદાસને પુષ્ટિના વિશુદ્ધરૂપમાં લેવાને માટે દર્શન દ્વાર, સ્પર્શરૂપ ફ્લ મળે તદર્થ વિપ્રયોગનું દાન પણ આપ્યું.

ભાવસઙ્ગતિ–આધિદૈવિક દૃષ્ટિ—

આધિદૈવિક ભાવાત્મક ભક્તિની દૃષ્ટિએ મહાનુભાવ શ્રીહરિરાયજીએ પોતાના ભાવપ્રકાશ દ્વારા જે ભાવસઙ્ગતિ ભક્તજનો સમક્ષ રાખી છે તે પૂર્ણ સંતોષ રૂપ હોવાથી તેની વિશદ ચર્ચાની આવશ્યક્તા અત્રે રહેતી નથી.

આ પ્રકારે વાર્તાકારે શ્રીપ્રભુના વિરૂદ્ધધર્માશ્રયત્વનું દિગ્દર્શન કરાવી સાથે સાથે ત્રિવિધ મર્યાદાની જે સઙ્ગતિ જનતા સમક્ષ સુચારૂ રૂપે ઉપસ્થિત કરી તે વાસ્તવમાં સરાહનીય છે.

આ સંબંધી કોટા શ્રીબડે મથુરેશજીના મુખિયાજી વિદ્યાસુધાકર શ્રીયુત ગોકુલદાસજી નીચે પ્રમાણે લખી જણાવે છે—

साधारण पुरुषोंको समझाने के लिये तो यही उत्तर है कि मनुष्य के रुधिर मांस के शरीरसे भूतोंका वायुका शरीर उत्तम है। इसीसे अमरकोषमें 'भूतोऽमी देवयोनयः' एसा लिखा है अर्थात् भूत देवताओंमें गिने जाते हैं और जिस प्रकार सेवोपयोगि अथवा ज्ञानोपयोगी देह जिनका हो

वह उत्तम मनुष्य गिना जाता है, और जिनका विषयोपभोग के लिये देह है वह संसारी हीन मनुष्य गिना जाता है। ऐसेही भूतगणों में जिनका ज्ञानोपयोगी या भजनोपयोगी देह हो वह उत्तमभूत गिने जाते हैं। उनकी गुह्यक, सिद्ध नाम से प्रसिद्धि होती है। और जो अधार्मिक जीव स्त्री पुत्रादि की वासना से भूत हो जाते हैं वे अधम गिने जाते हैं। एवं विषयोपयोगी पृथ्वी के राजा के देह की अपेक्षा कृष्णदासजी अधिकारी का कोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीगोवर्द्धनजी के लीलोपयोगी भूत शरीर अत्यन्त ही श्रेष्ठ हैं। जैसे भक्तजीवों को व्रजके पशु पक्षी वृक्ष आदि के कलेवर देके प्रभुने उनके साथ क्रीडा की, वैसेही कृष्णदासजी अधिकारी को कुछ कारण वशभूत शरीर देके कुछ समय इनको लीलाका अनुभव कराया। पुष्टिमर्यादामार्गीय भी भक्त भगवान से जन्म मरण से छूटनेकी प्रार्थना नहीं करते हैं, जैसे भागवत प्रथम स्कन्ध में परीक्षित ने कहा है–

'महत्सु यां या मुपयामि योनिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः'

हे ब्रह्म ऋषियों! आपसे नमस्कारपूर्वक मैं यही प्रार्थना करता हूं कि जन्म २ में मेरी महापुरुष भक्तों के साथ मित्रता हो।

और भक्त योगीश्वर भी पवन का देह धारण करके ब्रह्मांड के भीतर बाहर विचरते हैं जसा कि भा. द्वि. स्कन्ध में लिखा है—

योगिश्वराणां गतिमाहुरन्तर्
बहि स्त्रिलोक्यां पवनान्तरात्म नाम्।

———

છીતસ્વામી

(સં. ૧૫૭૨ થી સં. ૧૬૪૨)

સૂર એવં પરમાનંદ આદિ ઉક્ત પ્રાથમિક અષ્ટછાપના કવિયોની માફક છીતસ્વામીનો ઈતિહાસ પ્રાપ્ત થતો નથી. તેમજ વાર્તામાં પણ તેમનું પૂર્વ ચરિત્ર આપેલું નથી. અતઃ લાખ ચેષ્ટા કરવાથી પણ તેમના માતાપિતાના નામ આદિની વિશેષ વિગતો પ્રકાશમાં લાવી શકાતી નથી. તોપણ તિ. શ્રીગોવર્દ્ધનલાલજી મહારાજશ્રીની આજ્ઞાનુસાર આ મહાકવિનો જન્મ સં. ૧૫૭૨ ના માગશર વદ ૧૦ ને વાર શનિના દિવસે મથુરામાં એક ચતુર્વેદી બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો.

યદ્યપિ આ મહાનુભાવનું પ્રાથમિક જીવન દુઃસંગને લીધે વિપરીત પથાનુગામી લોકમાં રહ્યું, તથાપિ સં. ૧૫૯૨માં જ્યારે તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની સન્મુખ આવ્યા ત્યારે તેમની જીવનદશાએ તેમાં પલટો ખાધો.

શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરના અપનાવ્યા બાદ, કુસંગરૂપી વાદળથી ઢંકાયલો એ દિવ્ય'તારલો' પુનઃ ભક્તિ તથા સાહિત્યાકાશમાં પ્રકાશ્યો. અને એના પ્રકાશે ભક્તિના મહત્ત્વ અંગરૂપ ગુરૂના સ્વરૂપનું પ્રથ-પ્રદર્શન કરાવી અનેકોને સુપથગામી કર્યા.

જો કે એમનું વાર્તાત્મક ચરિત્ર સંક્ષિપ્ત હોવાથી લૌતિકક્ષેત્રમાં સંતોષપ્રદ નથી તથાપિ આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિએ તે અત્યંત મહત્ત્વપૂર્ણ સિદ્ધ થઇ ચુકયું છે.

તેમના ચારિત્ર્યદ્વારા, ગુરૂ એવં ઈશ્વર વચ્ચે રહેલા શાસ્ત્રીય અભેદનો જે દિવ્યપ્રકાશ ધાર્મિક-ક્ષેત્રમાં દેખાય છે તે વસ્તુતઃ ઉર્ધ્વપથને પ્રકટકર્તા હોઇ અનુસરણીય છે. એટલુંજ

નહિં કિંતુ તેથીયે વિશેષ ગુરૂપ્રત્યેનો તેમનો કેન્દ્રિત ભાવ એવં **દૃઢાશ્રય** પરમમનનીય છે. અને તે દ્વારા તેમનો, રાજા બીરબલ જેવા સબલ રાજકીય પુરુષનો વિમુખતા અર્થેનો ઉજ્જવલ ત્યાગ સર્વેને અનુકરણીય છે. એ બધા પ્રસંગો દૈવી સંપત્તિઓનું વિસ્પષ્ટ દર્શન કરાવનારા છે.

વળી પેટના અર્થે ધર્મનો ઉપયોગ ન કરવો એ તેમનો સિદ્ધાંત વસ્તુતઃ આશ્રયના સિદ્ધિરૂપ છે.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન કહેતાં તેમના સ્વરૂપ વિષે અમારૂં આટલું કથન પર્યાપ્ત થશે કે-શ્રીસૂર જે પ્રકારે **ભાવ–સમ્પન્ન** છે તેજ પ્રકારે છીતસ્વામી **સ્વરૂપ–સમ્પન્ન** છે. દૃષ્ટાંતરૂપે—

પોતાના ભાવના પરમકેન્દ્રિય એવં પ્રાણાધિક્ય સ્વરૂપ શ્રી-વિઠ્ઠલેશ્વરના અંતર્ધ્યાન થતાં માત્ર આ સ્વરૂપાસક્ત મહાનુભાવે પણ **સ્વરૂપાવિયોગે** કરીને નિમ્ન પદ ગાઈ સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ ના દિવસે 'પૂંછરી' સ્થલે શ્યામ તમાલની નીચે દેહ છોડ્યો.

'विहरत सातों रूप धरें ।
सदा प्रकट श्रीवल्लभनंदन द्विजकुलभक्तिवरें ॥
श्रीगिरिधर राजाधिराज व्रजराज उद्योत करें ।
श्रीगोविंद इंदु जगकिरन सींचत सुधा अधरें ॥
श्रीबालकृष्ण लोचन विशाल देखे मन्मथ कोटि हरें ।
गुण लावण्य दयाल करुनानिधि गोकुलनाथ भरें ॥
श्रीरघुपति यदुपति घनसामल मुनिजन शरण परें ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल जिहिं भज अखिल तरें ॥'

છીતસ્વામીનું ચરિત્ર–વિવરણ કોષ્ઠક–

જન્મ–વિ. સં. ૧૫૭૨ ના માગશર વદ ૧૦ ને વાર શનિ, મથુરામાં.

જાતિ–ચતુર્વેદી બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિ સમય–વિ. સં. ૧૫૯૨.

સ્થાયીનિવાસ–ગિરિરાજમાં 'પૂંછરી' સ્થાને શ્યામતમાલ વૃક્ષની નીચે.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય–સંધ્યાર્તિ.

અંતસમય–વિ. સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ 'પૂંછરી' સ્થાને.

લીલાત્મક સ્વરૂપ–'સુબલ' સખા એવં 'પદ્મા' સખી.

ભગવદંગસ્વરૂપ–ભુજા.

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ–શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી.

શૃંગારાસક્તિ–સેહરા.

લીલાસક્તિ–શ્રીગુસાંઇજીની જન્મલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર.*

સંગ્રાહક–સમ્પાદક વાર્તા–સાહિત્ય.

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

ગોવિંદસ્વામી

(સં. ૧૫૭૩ થી સં. ૧૬૪૨)

છીતસ્વામીની માફક આ મહાકવિનો ઇતિહાસ પણ હજુ સુધી અંધકારમાંજ રહ્યો છે. અતઃ વાર્તાથી એટલુંજ જાણી શકાય છે કે તેઓ ભરતપુર રાજ્યાન્તર્ગત આવેલા 'આંતરી'× નામક ગામમાં અનુમાનતઃ સં. ૧૫૭૩ માં એક સનાઢ્ય બ્રાહ્મણને ત્યાં જન્મ્યા હતા. ગૃહસ્થાશ્રમાનન્તર તેઓ ભગવત્પ્રાપ્તિને અર્થે વ્રજમાં આવ્યા હતા અને ત્યાં વિશેષ કરીને તેઓ મહાવનના ટીલા ઉપર રહેતા હતા. તેઓ કેવલ મહાકવિ હતા એટલુંજ નહિં અપિતુ એક સર્વોચ્ચ ગવૈયા પણ હતા. સં. ૧૫૯૨ માં જ્યારથી તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની શરણે આવ્યા ત્યારથી તેમણે ભગવત્ સન્નિધાનાતિરિક્ત અન્યત્ર સ્વવાણીનો વિનિયોગ કર્યો નહિં. એટલુંજ નહિં કિંતુ અનાયાસ રૂપમાં પણ જ્યારે તેમની વાણી બાદશાહ અકબરે*

× જે લોકો આ આંતરી ગામને દક્ષિણમાં સતારા જીલ્લામાં આવેલું કહે છે તે સ્વયં ભ્રમિત છે. કેમકે નંદદાસજીની માફક ગોવિંદસ્વામીના કાવ્યોમાં કોઇપણ દક્ષિણી ભાષાનો શબ્દ જોવામાં આવતો નથી. વળી તેમની બેટી અકેલીનું 'આંતરી' જવાનું લખેલું છે. તેથી પણ જ્ઞાત થાય છે કે તે વ્રજની નજીકમાં જ હોવું જોઇએ. કેટલાકો ગ્વાલિયર રાજ્યાન્તર્ગત છાવનીથી આવેલા સાત ગાઉ ઉપરના આંતરી ગામને આ આંતરી ગામ સાથે મેળવે છે તે પણ ઉપરનાં કારણથી અમને ઠીક લાગતું નથી.

* ઘણી પ્રાચીન પ્રતિયોમાં આ સમયે અકબરનો ઉલ્લેખ જોવામાં આવે છે. જ્યારે આ પ્રતિમાં કેવળ એક મ્લેચ્છ એમ લખ્યું છે.

—સમ્પાદક.

ગુપ્તવેશે સાંભળી અને તેની સરાહના કરી ત્યારથી તેમણે તે રાગને સદાને માટે પ્રભુ સન્નિધાન નિવેદન ન કર્યો એવા તેઓ અનન્ય ટેકી હતા.

શરણે આવ્યા ત્યારે આ મહાનુભાવે ગુરૂભેટરૂપે 'श्रीवल्लभनंदनरूप अनूप' એ પદ ગાઈ પોતાની સ્વરૂપાસક્તિને પ્રકટ કરી. જેથી પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા.

તેમની ગાનવિદ્યાની નિપુણતા તો એથી સ્વયંસિદ્ધ છે કે–તે સમયના અકબરના દરબારના નવરત્નોમાંના સર્વોચ્ચ ગવૈયા તાનસેન પણ તેમની પાસેથી ગાન સાંભળવા અને શિખવા હરિદાસના શિષ્ય હોવા છતાં પ્રભુચરણના સેવક થયા.

સ્થલાભાવથી અત્રે સમગ્ર વાર્તાનું દિગ્દર્શન ન કરતાં ટુંકમાં એટલું જ કહેવું પર્યાપ્ત છે કે તેઓ એક નિ:શંક સખ્યભક્તિથી યુક્ત એવં નિરભિમાની મહાકવિ હતા. તેમની સખ્ય ભક્તિનો આદર્શનમૂનો રૂપાપોલિયાના પ્રસંગ ઉપરાંત શ્રીનાથજીના દાવ લઈને ભાગીજવાના સમયે કહેલા આપદમાં સ્પષ્ટ છે—

'पोत ले आयो भाजि गंवार ।
खोलि किंवाड़ घस्यो घर भीतर सिखइ दये लंगवार ॥१॥
कबहू तो निकसेगो बाहिर एसी दउंगो मार ।
गोविंदसों तू वैर अब करिके सुखे न सोवे यार' ॥२॥

ધન્ય છે આ પરમકાષ્ટાપન્ન સખ્ય ભક્તિને !

તેમનું પરલોકગમન અત્યદ્ભુત રૂપે છે. તે સંબંધી ૧૨૦ વચનામૃતમાં એમ પ્રસિદ્ધ છે કે જ્યારે પ્રભુચરણ-(સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭મે) પૂજની શિલાના દ્વારથી લીલામાં પધાર્યા ત્યારે આ મહાકવિ પણ સદેહે સાથેજ લીલામાં ગયા.

ગોવિંદસ્વામીનાં ૨૫૨ પદ અદ્ભુત છે. તેમનું ગિરિરાજમાં રહેવાનું એકાંતિક સ્થાન 'કદમખંડી' સુપ્રસિદ્ધ છે.

ગોવિંદસ્વામીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ—વિ. સ. ૧૫૭૩ ભરતપુર રાજ્યાન્તર્ગત 'આંતરી' ગામમાં.

જાતિ—સનાઢ્ય બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિ સમય—વિ. સં. ૧૫૯૨.

સ્થાયી નિવાસ—ગિરિરાજમાં કદમખંડી, ગોકુલમાં મહાવનના ટીલા ઉપર.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ગ્વાલ.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ પૂજની શિલા આગળના દ્વારથી.

લીલાત્મક સ્વરૂપ—'શ્રી દામા' સખા એવં 'ભામા' સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ—નેત્ર.

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ—શ્રીદ્વારકાધીશ પ્રભુ.

શૃંગારાસક્તિ—ટિપારા

લીલાસક્તિ—આંખમિચૌની, હિંડોરા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર*

સંગ્રાહક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

ચત્રભુજદાસ.

(સં. ૧૫૯૭ થી સં. ૧૬૪૨)

આ મહાકવિના જન્મની કથા જેવી અત્યદ્દ્ભુત છે તેવીજ તેમની બાલ્યચેષ્ટા પણ. વાર્તાને અનુસાર કુંભનદાસની વૃદ્ધ વયે, આચાર્યશ્રી એવં શ્રીગોવર્દ્ધનધરના આશીવાદથી ચત્રભુજદાસનું પ્રાકટય સં. ૧૫૯૭માં જમનાવતામાં થયું હતું. તેઓ જન્મથી જ દિવ્ય શક્તિવાળા એક મહાનુભાવો ભક્ત–કવિ હતા.

જન્મથી એકતાલીસમા દિવસે જ નામ નિવેદન પ્રાપ્ત કરી તેમણે પ્રભુચરણ આગળ ગુરૂ ભેટ રૂપે ‘ सेवक की सुखरास सदा श्रीवल्लभराजकुमार ’ એ માર્મિક પદ ગાયું.

યદ્યપિ ચત્રભુજદાસની ભક્તિ વિશેષત: સખ્ય પરિપૂર્ણ હતી તથાપિ સ્વગુરુ સન્મુખ તો તેઓ સંપૂર્ણ દાસ્ય ભાવને જ ધારણ કરતા હતા. તેઓ તેમના પિતા કુંભનદાસજીની માફક ભગવદનુગ્રહથી પણ વિશેષ ગુરુની મર્યાદાનેજ મહત્ત્વ આપતા હતા.

એમણે ફુટકર પદોથી અતિરિક્ત અન્ય કોઈ ગ્રન્થ રચ્યો હોય એમ જણાતું નથી. તેમનાં ફુટકર પદોના સંગ્રહ રૂપે, ચતુર્ભુજ કીર્તન સંગ્રહ, કીર્તનાવલી અને દાનલીલાના ત્રણ ગ્રન્થો કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગમાં છે. તથાપિ એ સ્વતંત્ર ગ્રન્થ ન કહેવાય.

‘ મધુમાલતી–કથા ’ અને ‘ભક્તિ–પ્રતાપ’ નામના બે ગ્રન્થો કે જે કાશી નાગરી પ્રચારિણી સભાના સભ્યોદ્વારા એમના નામ ઉપર મૂકવામાં આવ્યા છે તે ઠીક નથી.

વાર્તાથી એ જ્ઞાત થાય છે કે સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ ના દિવસે સ્વગુરુ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરના લીલાપ્રવેશ અનન્તર આ સ્વરૂપાસક્ત અનન્ય ભક્તે ‘ રૂદ્રકુંડ ’ ઉપર તેમના અલૌકિક વિરહમાં આમલીના વૃક્ષ નીચે દેહ છોડ્યો.

ચત્રભુજદાસનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૯૭ જમનાવતામાં.

જાતિ-ગોરવા ક્ષત્રિય.

શરણાગતિ સમય-વિ. સં. ૧૫૯૭.

સ્થાયી નિવાસ-જમનાવતા.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ભોગ.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ રુદ્રકુંડ ઉપર આમલીના વૃક્ષ નીચે.

લીલાત્મકસ્વરૂપ-'વિશાલ'સખા એવં 'વિમલા' સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-ત્વચા

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીગોકુલનાથજી

શૃંગારાસક્તિ-દુમાલા.

લીલાસક્તિ-અન્નકૂટ લીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર*

સંગ્રામક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

મહાકવિશિરોમણિ
શ્રીનંદદાસજી

(સં. ૧૫૯૦ થી સં. ૧૬૪૦)

આ મહાકવિનો ઇતિહાસ આજ સુધી હિન્દી સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં એક 'સમસ્યા' રૂપ હતો. જેથી આધુનિક અનેક લબ્ધપ્રતિષ્ઠ લેખકોએ પણ તેને પોતપોતાના ઉર્વર મસ્તિષ્કની યોજનાઓ દ્વારા રજૂ કરી ઇતિહાસમાં અરાજકતા ફેલાવી. પરિણામે અનેક મતભેદોએ હઠાગ્રહનો આશ્રય લઈ, વાક્યુદ્ધ દ્વારા એક સાહિત્યિક 'કલહ' ઉત્પન્ન કર્યો. જે 'કલહે' પ્રાચીન પ્રામાણિક ગ્રન્થો ને પણ 'અછૂતા' ન રાખ્યા.

કિંતુ ભક્તેચ્છાપૂરક આચાર્યશ્રીના અનુગ્રહબળે અમારા પરમમિત્ર માનનીય સોરોંનિવાસી પં. ગોવિંદવલ્લભશાસ્ત્રી કાવ્ય-તીર્થનો તદ્‌વિષયક પ્રયાસ સફળ થયો. અને પરિણામે અન્ય તટસ્થ વિદ્વાનો પણ તેમાં સહમત થયા.

આ રીતે વાગીશ પ્રભુની પ્રેરણાથી ૨૫૨ વાર્તા ઉપર વિરોધ પક્ષે કરેલા સબલ અને તીવ્ર પ્રહારનો નિર્મૂળ નાશ થયો.

પં. ગોવિંદવલ્લભશાસ્ત્રીએ અત્યધિક પરિશ્રમ કરીને વાર્તાને અનુસરતાં જે અકાટય પ્રમાણો પ્રાપ્ત કર્યાં તેમાંનાં કેટલાંક આ રહ્યાં—

सूकरक्षेत्र माहात्म्य—

गणपति गिरा गिरीस, गिरजा गंगा गुरु चरन ।
बन्दहुं पुनि जगदीस, छवि वराह महि उद्धरन ।
बन्दहुँ तुलसीदास, पितु वड़भ्राता-पदजलज ।
जिन निज बुद्धि विलास, रामचरित मानस रच्यो ।

सानुज श्रीनंददास, पितु की बन्दहुं चरन-रज।
कीनो सुजस प्रकास, रास पंच अध्यायि भनि।
बन्दहुं कृपानिकेत, पितु गुरु श्रीनरसिंह पद।
बन्दहुं शिष्य समेत, वल्लभ आचारज सुषद।
बन्दहुं कमला मात, बन्दहुं पद रतनावली।
जासु-चरणजलजात, सुमिरि लहहिं तिय सुरथली।
सुकुलवंस द्रुजमूल, पितरन पद सरसिज नमहुँ।
रहहिं सदा अनुकूल, कृष्णदास निज अंस गनि।
महि वराह संवाद, सूकरक्षेत्र महात्म कर।
हों धरि कर आह्लाद, कृष्णदास भाषा करहुं।

ग्रन्थनो अंतिम दोहो आ प्रकारे छे—

सोरह सौ सत्तर प्रमित, सम्वत् सित दल मांह,
कृष्णदास पूरन करयो, छेत्र महात्म वराह।
तीरथवर सौकर निकट, गाम रामपुर वास।
सोइ रामपुर श्यामपुर, करयो पिता नंददास।

आ ग्रन्थना अन्तमां 'कृष्णदास' पोतानी वंशावली आ प्रमाणे आपे छे—

खेत वराह समीप सुचि गाम रामपुर एक।
तहं पंडित मंडिन वसत सुकुल वंश सविवेक॥
पंडित नारायण सुकुल, तासु पुरुष परधान।
धारयो सत्य सनाढ्य पद, व्है तपवेद निधान॥
शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल, भे गुरु द्रोण समान।
ब्रह्मरंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्वान॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्त पिता अनुहारि।
पंडित श्रीधर शेषधर, सनक सनातन चारि॥
भये सनातन देव सुत, पण्डित परमानंद।
व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चिदानन्द।

तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परवीन ।
लघु सुत जीवाराम मे, पंडित धरम धुरीन ॥
पुत्र आतमारामके, पंडित तुलसीदास ।
तिमि सुत जीवाराम के, नन्ददास चन्द्रहास ॥
मथ २ वेद पुरान सब, काव्य शास्त्र इतिहास ।
रामचरितमानस रच्यो, पंडित तुलसीदास ॥
वल्लभकुल वल्लभ भये, तासु अनुज नन्ददास ।
धरि वल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास ॥
नन्ददास सुत हौं भयो, कृष्णदास मतिमन्द ।
चन्द्रहास बुध सुत अहे, चिरजीवी व्रजचन्द ॥

'रत्नावली' (चरित्र)

तवै मीत इक दई आस, गुरु नृसिंह के जाउ पास ।
स्मारत वैष्णव सो पुनीत, अखिल वेद आगम अधीन ॥
चक्र तीर्थ ढिग पाठसाल, तहीं पढ़ावत विपुल बाल ।
तहां रामपुर के सनाढय, सुकुल बंशधर द्वै गुनाढय ॥
तुलसीदास और नन्ददास, पढ़त करत विद्याविलास ।
एक पितामह पौत्र दोउ, चन्द्रहास लघु अपर सोउ ॥
तुलसी आतमराम पूत, उदर हुलासी के प्रसूत ।
गये दोउ ते अमरलोक. दादी पोतहिं करि ससोक ॥

\+ \+ \+

नन्ददास अरु चन्द्रहास, रहहिं रामपुर मातुपास ।
दम्पति वसि वाराह धाम लहत मोद आठौंहु याम ॥

ગ્રન્થના અન્તમાં કવિ આ પ્રમાણે લખે છે—

एक पितामह सदन दोउ जनमे बुधि रासी ।
दोऊ एकै गुरु नृसिंह बुध अन्तेवासी ॥
तुलसीदास नंददास मते द्वै मुरलीधारे ।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे ॥

एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे ।
एक रामगाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥

એક અન્ય પદ શોધમાં મળ્યું છે જે આ રહ્યું—

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद वंदे ।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनंदे ॥
रामचरित जिन कोन ताप त्रय कलि–मलहारी ।
करि पोथी पर सही आदरेउ आप मुरारी ॥
राखी जिनकी टेक मदनमोहन धनुधारी ।
वालमीकि अवतार कहत जेहि संत प्रचारी ।
नंददास के हृदय नयन कों खोलेउ सोई ।
उज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई ॥

ઉપર્યુક્ત આપેલાં અકાટય પ્રમાણોમાં 'सूकरक्षेत्रमहात्म्य' સં. ૧૬૫૭માં આપણા ચરિત્રનાયક મહાનુભાવ નંદદાસજીના સુપુત્ર શ્રી કૃષ્ણદાસે રચેલો છે કે જેની પ્રમાણિકતા સર્વ વિદ્વાનોએ મુક્તકંઠે સ્વીકારી છે.

ઉક્ત દ્વિતીય 'रत्नावली' નામક ગ્રન્થ પં. મુરલીધર ચતુર્વેદી સોરોં નિવાસીએ સં. ૧૮૨૯ માં રચેલો છે.

આ બે ગ્રન્થોના પ્રમાણો માટે એક બે સમાલોચકોએ સંદિગ્ધતા પણ દેખાડી, તથાપિ પં. રામદત્ત ભારદ્વાજ એમ. એ. એલ–એલ–બી. ને હાલમાં કાસગંજના પંડા હરગોવિંદને ત્યાંથી 'વર્ષતન્ત્ર' અને 'વર્ષફલ' નામના જે બે જીર્ણ જ્યોતિષ ગ્રન્થો પ્રાપ્ત થયા છે તેનાથી ઉક્ત સમાલોચકોની સંદિગ્ધતા પૂર્ણ રૂપેણ નષ્ટ થાય છે. કેમકે આ જ્યોતિષ ગ્રન્થો એટલા તો ગહન છે કે આધુનિક લોકો તેને સહજમાં સમજી શકે તેમ

નથી. વળી તે સાહિત્યિક વિષય નહિં હોવાથી તેમાં કૃત્રિમ રચનાનો પણ આરોપ થઈ શકે તેમ નથી.

જો કે 'વર્ષતન્ત્ર'ના રચયતા પણ કવિ કૃષ્ણદાસ છે છતાં તે સાહિત્ય અને ઈતિહાસની દૃષ્ટિએ નિરર્થક છે. અતઃ ઉક્ત દ્વિતીય ગ્રન્થ–'વર્ષફલ'–ની ઐતિહાસિક પંક્તિઓ જ અમે અત્રે ઉદ્ધૃત કરિએ છીએ—

दोहा–तात अनुज चन्द्रहास बुधवर निदेस हिय धारि ।
लिख्यो जथामति वर्षफल, बालबोध संचारि ॥

कवित्त–कीरति की मूरति जहां राजे भगीरथकी,
तीरथ बराह भूमि वेदनु जे गाई है ।
जाही धाम रामपुर स्यामसर कीनों तात,
स्यामायन स्यामपुर वास सुखदाई है ॥
सुकुल विप्रवंस मे विग्य तहां जीवाराम,
तासु पुत्र नन्ददास कीरति कवि पाई है ।
ता सुत हौं कृष्णदास 'वर्षफल' भाषा रच्यौ,
चूक होइ सोधै मम जानि लघुताई है ॥
सोरह सौ सत्तामनि विक्रम के मांझ भई,
अतिसय कोप-दृष्टि विश्व के विधाता की ।
बीतत आषाढ बाढ़ लाइ बढ़ि देवधुनी,
बूड़ी जल जन्मभूमि रत्नावलि माताकी ॥
नारी नर बूड़े कछु सेस बड़भाग रहे,
चिन्ह मिटे बदरी के दुखद कथा ताकी ॥
आजु नभ कृष्ण मास तेरसि सनि कृष्णदास,
वर्षफल पूरयौ भयो दया बोध दाताकी ॥

ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થથી અતિરિક્ત એક 'दोहारत्नावली' નામક

ગ્રન્થ પણ ઉક્ત પં. શ્રી ગોવિંદવલ્લભ શાસ્ત્રીને પ્રાપ્ત થયો છે. તેમાં નંદદાસજી સંબંધી એક દોહો નિમ્ન પ્રકારનો છે—

'मोहि दीनो संदेश पिय अनुज 'नंदके' हाथ।
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरित रघुनाथ' ॥

ઉપર્યુક્ત દોહો રામાયણ કર્તા તુલસીદાસજીના ધર્મપત્ની કવિયત્રી શ્રીરત્નાવલી રચિત છે.

આ ઉપરાંત પ્રાચીન વસ્તુઓની શોધ ખોળમાં શ્રીરામ-દત્ત ભારદ્વાજ એમ. એ. એલ. બી.ને ભ્રમરગીતના ખંડિત જીર્ણ પત્રો કાસગંજના પુરોહિત અને વૈદ્ય હરગોવિન્દ પણ્ડયાને ત્યાંથી પ્રાપ્ત થયાં છે—જે વાર્તાની પુષ્ટિ કરતા છે તે—આ પ્રમાણે છે—

पत्र—१ भ्रमरगीतसम्पुरनम् वि...त नंददास भ्राता तुलसीदास के स्यामस खासी सोंरोजी मध्ये लिखितं कृष्णदास सिष्य बालकृष्ण आज्ञानुसार गुरु कृष्णदास बेटा नन्ददास नाती जीवारामके शुक्ल श्यामपुरी सनाढ्य......रद्वाज गोती सच्चिदानंद के बेटा आतमाराम...के वेटा रामायण के करता तुलसीदास दूजे...टा नन्ददास चन्द्रहास तिनके बेटा कृष्णद-...सके बेटा व्रजचंद पोथी लिखी माघ...ोज चन्द्रवार सं. १६७२ शुभम्।

पत्र—२ अस्पष्ट.

पत्र—३ न कियो सो यह लीला गाइ पाइ रस पुंजना वंदौ तुलसीदास के चरना सानुज नंददास दुःख हरना जिन पितु आतमाराम सुहाये जिन सुत रामकृष्ण जस गाए:
द्र सुवन मम गुरु प्रवीना दास कृष्ण मम नाम सोचीना।
शुक्ल सनाढ्य तेज गुण रासी धर्म धुरीण श्याम स खासी॥

बाल कृष्ण में उर कर दा(सा) (सू)कर क्षेत्र जान मम वासा...भ्र ॥
माधुरी. वर्ष १८ खण्ड २ मई, १९४०

આ તમામ અકાટચ પ્રમાણોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે મહાનુભાવ નંદદાસજી રામાયણ રચયિતા શ્રીતુલસીદાસજીના કાકાના પુત્ર નાના ભાઈ હતા.

હવે જે ભક્તમાલનો છંદ ટાંકી પ્રસિદ્ધ પંડિત રામચંદ્ર શુક્લે **એમના 'હિન્દી શબ્દ સાગર' એવં 'ઈતિહાસ'માં વાર્તા ઉપર કટાક્ષ કર્યું છે** તેને અમે ઉપર્યુક્ત પ્રમાણો સાથે સરખાવી વાર્તાની નિર્દોષતા સિદ્ધ કરવાને અર્થે અત્રે ઉદ્ધૃત કરિએ છીએ—

भक्तमाल—

श्रीनंददास आनन्दनिधि, रसिक प्रमुदित रग मगे । टेक.
लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ॥
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी ।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी ।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे ॥ श्री नंददास०

આથી પાઠકો સહજ સમજી શકશે કે 'વાર્તા' એવં ભક્તમાલ પરસ્પર અવિરૂદ્ધ છે, અને વાર્તાની પ્રામાણિકતા વસ્તુતઃ અકાટચ છે.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન લખતાં ઉક્ત પ્રાપ્ત પ્રમાણોની સાથે વાર્તાની એકવાક્યતા કરી જનશ્રુતિના આધારે હવે અમે નંદદાસજીનો ઇતિહાસ આપીશું.

નંદદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ

નંદદાસજીનો જન્મ અનુમાનતઃ સં. ૧૫૯૦ લગભગ સોંરો નિકટના 'રામપુર' ગામમાં 'જીવારામ' સનાઢ્ય બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો. નંદદાસજીના પિતા જીવારામ સોંરો નિવાસી તુલસીદાસજીના પિતા 'આતમારામ' ના સગા ભાઈ હતા. નંદદાસજીને એક નાના 'ચંદ્રહાસ' નામના પણ ભાઈ હતા. તુલસીદાસજી અને નન્દદાસજી બન્નેનાં માતા પિતા તેમના બાલપણમાંજ ગત થઇ ગયેલાં હોવાથી તે બન્ને ભાઇઓ તેમની દાદીમાની પાસે સોરમમાં રહેતા હતા. **જેથી તેઓ લોકમાં 'અનુજ' અને 'અગ્રજ' રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.**

તુલસીદાસજી અને નંદદાસજી બન્ને રામાનંદી પંડિત શ્રીનરહરિને ત્યાં વિદ્યાભ્યાસ કરી સંસ્કૃતના પ્રખર જ્ઞાતા થયા. અનન્તર તુલસીદાસજી પ્રાયઃ કથાદ્વારા પોતાની આજીવિકા કરવા લાગ્યા. અને નંદદાસજી તેમની સાથે રહેતા. આ બન્ને ભાઈઓ રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા. સં. ૧૬૦૬ માં જ્યારે તુલસીદાસજી કથાને માટે નંદદાસજીને લઈને કાશી રહેતા હતા ત્યારે એક સંઘ ત્યાંથી યાત્રાર્થે નિકળ્યો. તેની સાથે નંદદાસજી પણ ચાલી નિકળ્યા. પ્રસંગોપાત રસ્તામાં સિંહનંદમાં તેઓ એક ક્ષત્રાણીથી આસક્ત થયા અને તેની પાછળ પાછળ ગોકુળ આવી શ્રીવિટ્ઠલેશ્વરના સેવક થયા. એજ સમયે સેવક થતાં માત્ર નંદદાસજીના જીવને અદ્‌ભૂત પલટો ખાધો.

પછી તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની સાથે ગોવર્દ્ધન આવ્યા. અને ત્યાં ભગવદ્‌ ઈચ્છાથી અષ્ટસખાની પૂર્તિ રૂપે અષ્ટછાપમાં સ્થપાયા.

આ સમયે શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે જ્યારે સંપ્રદાયના જ્ઞાનાર્થે સત્સંગ કરવાને નંદદાસજીને તેમની પ્રાર્થનાથી મહાનુભાવ શ્રીસૂરને સોંપ્યા ત્યારે શ્રીસૂરે—કે જે ત્રિકાલજ્ઞ હતા—નંદદાસજીને પ્રથમ રામભક્ત જાણી 'આવો નંદનંદનદાસ!' એ પ્રકારે સંબોધ્યા.

અનન્તર પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી શ્રીસૂરે તેમને પોતાની પાસે ચંદ્રસરોવર ઉપર છ માસ તક રાખ્યા. તે દરમ્યાન પ્રથમ તેમના હૃદયમાં સર્વવિધ દૈન્યતા સ્થાપવાને માટે તેમણે નંદદાસજીને 'अर्थ करो पंडित अरु ज्ञानी' પદ રચીને સંભળાવ્યું. અને તે દ્વારા તેમનો હૃદયાન્તર્ગત વિદ્યામદ નિવૃત્ત કર્યો.

પશ્ચાત્ કાવ્યચિત્રો—કૂટપદો—દ્વારા તેમના હૃદયમાં શૃંગાર પરિપૂર્ણ કૃષ્ણને સ્થાપી, મર્યાદા રામભક્તિને દૂર કરી. આ કાવ્યોએ નંદદાસજીના હૃદયને કૃષ્ણાસક્ત કર્યું એટલું જ નહિ અપિતુ તેમનામાં રહેલી કાવ્ય–પ્રતિભાને શક્તિશાલી કરી. ફલત: નંદદાસજીની રચના અનેક અલંકારોથી પરિપૂર્ણ શૃંગારમયી બની. અને તેમણે હિન્દી સાહિત્યક્ષેત્રમાં શ્રીસૂર પછી પોતાનું સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે એક પ્રકારે તેઓ કાવ્ય-ક્ષેત્રમાં શ્રીસૂરના શિષ્યવત્ થયા. સૂરદાસજીએ પણ તેમને માટે છ માસમાં સમગ્ર સાહિત્ય લહરીની રચના કરી અને તેની પૂર્તિ (વ્રજ) સં. ૧૬૦૭ના વૈશાખ સુદ ૩ ના દિવસે નિમ્ન પદ દ્વારા કરી—

'मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गोरीनंदको लिखि सुबल संवत पेख ।
नन्दनन्दन मास छय ते हीन तृतिया बार ॥
नन्दनन्दन जन्म ते हैं बाण सुख आगार ।
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन ।
नन्दनन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन ।'

આ પ્રકારે નંદદાસજી શૃંગાર રસ—પરિપૂર્ણ નંદનંદનના સ્વરૂપમાં આસક્ત થયા.

વાર્તાથી જ્ઞાત થાય છે કે આ અરસામાં તુલસીદાસજીએ નંદદાસ પ્રત્યેના મમત્વથી આકર્ષાઈ તેમને પુન: ઘર આવવાનો પત્ર લખ્યો. કિન્તુ તેઓએ તે પત્રની ઉપેક્ષા કરી.

અનન્તર પ્રસિદ્ધ જનશ્રુતિને અનુસાર સૂરદાસજીએ તેમને તેમનું ભવિષ્ય કહી ઘર જવાને પ્રેર્યા. છતાં જ્યારે ભવિષ્ય સાંભળીને પણ નંદદાસજીનું મન ઘર જવાને તૈયાર થયેલું ન જોયું ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને સ્પષ્ટ શબ્દોમાં નિમ્ન પ્રકારે કહ્યું—

જ્યાંસુધી તમો ઘર જઈને ગૃહસ્થાશ્રમમાં સ્થિત નહિ થાવ, તેમજ તમારે ત્યાં થનાર એક ભગવદીય પુત્રનું પ્રાકટ્ય નહિ થાય ત્યાં સુધી તમને 'નંદનંદન'નો સાક્ષાત્કાર અને તેની ભક્તિનો આસ્વાદ કદી પણ પ્રાપ્ત નહિં થાય. કેમકે તમારા હૃદયનો વૈરાગ્ય સુદૃઢ નથી. અતઃ મારી આ વાણીનો સ્વીકાર કરી એકવાર તમો ગૃહસ્થાશ્રમ ભોગવો અને તે દરમ્યાન ત્યાં કૃષ્ણભક્તિનો પ્રચાર કરો.

સૂરદાસજીની આ વાણી શ્રવણ કરીને નંદદાસજી પોતાના ગામમાં ગયા અને ત્યાં સંવત ૧૬૧૨ લગભગ કમલા નામની કન્યા સાથે તેમનું લગ્ન થયું.

ત્યાંના નિવાસ દરમ્યાન તેઓએ ભાગવતની કથા દ્વારા લોકોને કૃષ્ણભક્તિમાં આસક્ત કર્યા. અને પોતાના પ્રભાવથી રામપુર ગામને [૧]"શ્યામપુર' નામે પ્રસિદ્ધ કર્યું. અહીં તેમણે એક તલાવ પણ ખોદાવ્યું જેનું નામ તેમણે 'શ્યામસર' પાડ્યું.

૧. હાલપણ રામપુર ગામને સરકારી પત્રોમાં શ્યામપુર અથવા શ્યામસર એ નામથી જ લખવામાં આવે છે. આ રામપુર ગામ સોરમજીથી બે કોસ દૂર છે. યદ્યપિ નંદદાસજીના ગૃહસ્થાશ્રમ આદિની વાત વાર્તામાં નથી–કેમકે વાર્તામાં આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિનું જ પ્રાધાન્ય હોવાથી ભગવદ્ભક્તિમાં આવશ્યક હોય એટલો જ ભૌતિક અંશ પ્રત્યેકની વાર્તામાં આપેલો છે–તોપણ બાહ્ય પ્રમાણો એવં સમ્પ્રદાયમાં પ્રચલિત જનશ્રુતિના આધારે ઉક્ત વાતને પુષ્ટિ મળે છે.

અનન્તર તેમને ત્યાં એક પુત્ર ઉત્પન્ન થયો જેનું નામ તેમણે કૃષ્ણદાસ[૨] રાખ્યું. આ રીતે સૂરદાસજીની વાણી સફલ થયા બાદ સં. ૧૬૨૪ લગભગ તેઓ જ્યારે પુનઃ ગોકુલ આવ્યા ત્યારે તેમણે શ્રીગુંસાઈજીને દંડવત કરી **'जयति रुक्मिनिनाथ पद्मावती प्राणपति'** એ પદ ગાયું.

અહીં સં. ૧૬૨૪ માં તુલસીદાસજી કાશીથી પોતાના ઘર સોરમજી આવ્યા. અને ત્યાં પોતાની સ્ત્રી 'રત્નાવલી'ને 'બદરિયા' ગામમાં તેના પિયર ગયેલી જાણી તેઓ પણ ત્યાં ગયા. અહીં સ્ત્રીના સાધારણ ઉપદેશથી તુલસીદાસજીને રામ પ્રતિ દૃઢભાવ ઉત્પન્ન થયો અને તેઓ રાત્રે જ ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા.

અનન્તર તેઓ કાશી ગયા અને ત્યાંથી ફરતા ફરતા સં. ૧૬૨૮ લગભગ વૃંદાવન આવ્યા. ત્યાં તમામ સ્થલે દર્શન કરી જ્યારે તેઓ ગોવર્દ્ધનમાં નંદદાસજીને મળવા ગયા ત્યારે તેમને 'ચંદ્રસરોવર' ઉપર સૂરદાસજીનો સમાગમ થયો. અહીં ત્રિકાલજ્ઞ શ્રીસૂરે તેમના હૃદયમાં ઉછલિત રામ પ્રત્યેના અનન્ય ભાવને અનુભવી તેમને રામ અને કૃષ્ણની અભેદતાનાં દર્શન કરાવ્યાં.× અને તેમણે નંદદાસજી દ્વારા સાક્ષાત્ કૃષ્ણસ્વરૂપ કોટાનકોટિમન્મથ–મોહન પ્રભુ શ્રીનાથજીમાં સ્વઇષ્ટ શ્રીરામચન્દ્રજીનાં પ્રત્યક્ષ દર્શન કરવાનો આદેશ આપી તેમને ગોપાલપુર મોકલ્યા.

---

૨. નંદદાસજી પહેલાં રામભક્ત હતા એ વાત વાર્તાથી સિદ્ધ છે. એટલે પુત્રનું નામ કૃષ્ણદાસ હોવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની શરણે આવી કૃષ્ણ ભક્ત બન્યા પછી જ પાછા ઘર આવેલા હોવા જોઈએ. અને તેથી જ ગામનું નામ શ્યામસર અને પુત્રનું નામ કૃષ્ણદાસ રાખ્યું.

× આ સંબંધી વિશેષ જુઓ આજ ગ્રંથમાં આપેલો સૂરદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ પેજ ૧૩ થી ૧૫

અહીં તેમના મન્દિરમાં આવ્યા બાદ નન્દદાસજીની

'कहा कहौं छबि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी-मस्तक तब नमै, धनुष बाण लो हाथ ॥'

આ પ્રાર્થનાથી પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનધારીએ 'ધનુર્ધારી' રૂપે દર્શન આપ્યાં અને એજ રીતે ગોકુલમાં શ્રીગુસાંઈજીએ પણ નંદદાસજીની પ્રાર્થનાથી પંચમ પુત્ર શ્રીરઘુનાથજી-કે જેમનું લગ્ન જાનકી વહુજી સાથે હાલમાં જ થયું હતું-દ્વારા તેમને રામ એવં જાનકી સ્વરૂપે દર્શન કરાવરાવ્યાં. આથી તુલસીદાસજીનું હૃદય અત્યંત દ્રવિત થયું અને તેમણે શ્રીવિટ્ઠલેશ્વરને પોતાને સેવક કરવાની પ્રાર્થના કરી + કિંતુ ઉદાર હૃદયના શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે તે પ્રાર્થનાનો અસ્વીકાર કરતાં સમજાવ્યું કે પુષ્ટિમાર્ગમાં તમારા જેવા અનન્ય અનેક ભક્તો છે, કિંતુ મર્યાદામાર્ગમાં તમારા જેવો અનન્ય બીજો નથી અત: તમારી તે માર્ગમાં સ્થિતિ આવશ્યક છે.

+ આ સંબંધી 'संप्रदायकल्पद्रुम' માં નિમ્ન પ્રકારે છે.

'मुरली मुकुट दुरायके धनुष बाण गहि हाथ।
रामभक्ति हिय जानि दृढ, नाथ भये रघुनाथ' ॥

करि प्रमाण गिरिधरनकों, आयजु विट्ठल पास।
शरण मंत्र की विनय किय, मुदितजु तुलसीदास ॥

विट्ठलेश संतोषि मन, रामभक्ति पहिचान।
पंचम सुत रघुनाथ ढिंग भेज दीन्ह नृप मान ! ॥
दरसन करि रघुनाथ के, करि प्रणाम नृप मान ! ।
भक्ति मांगि गृहकों गये तुलसोदास सुजान ॥ सं. क० पत्र ७३

આ પ્રસંગની પુષ્ટિ શ્રીદ્વારકેશજીએ પણ પોતાની 'ભાવભાવના'માં કરી છે. સં. ક. માં સં. ૧૬૨૮ ના ફાગણ સુદ ૧૧ ના દિવસે આ પ્રસંગ બનેલો છે. એમ લખ્યું છે. —સમ્પાદક

આ પ્રસંગનો અનુભવ કરી તુલસીદાસજીએ રામ અને કૃષ્ણની અભેદ લીલાનું પ્રભુચરણ આગળ નિમ્ન પદ દ્વારા વર્ણન કર્યું—

बरनौं अवधि श्रीगोकुल ग्राम ।
उत विराजत जानकीवर इतहिं स्यामास्याम ॥१॥
उहां सरजू बहत अदभुत इहां श्रीजमुना नीर ।
हरत कलिमल दोउ मूरत सकल जनकी पीर ॥२॥
मनि जटित सिर क्रीट राजत संग लछमन बाल ।
मोर मुकुट रु बन कर इहां निकट हलधर ग्वाल ॥
उहां केवट सखा तारे बिहसिके रघुनाथ ।
इहां नृग जदुनाथ तारयो कूप-गहि निज हाथ ॥४॥
उहां सिवरी स्वर्ग दीनौ सीलसागर राम ।
इहां कुबजा ल्याय चंदन किये पूरन काम ॥५॥
भक्तिहित श्रीरामकृष्ण सुधरयो नर अवतार ।
दास तुलसी दोउ आसा कोउ उबारो पार ॥६॥

તુલસીદાસજીની આ અભેદબુદ્ધિ જોઇ પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા. અને તેમની પ્રાર્થનાથી આપે તેમની વાણીને શ્રીનાથજીની સન્મુખ સદાને માટે અષ્ટછાપની સાથે સ્વસંપ્રદાયમાં ગાવાને તેમને અભયવચન આપ્યું. કે જે આજપર્યંત ચાલુ છે.

એથી પ્રસન્ન થઇ તુલસીદાસજીએ પ્રભુચરણ પ્રતિ પોતાનો ભક્તિ-ભાવ અને કૃતજ્ઞતા પ્રકટ કરવાને અર્થે આ પદ ગાયું—

" जे कहावत सेवक निजद्वारके ।
धरो संवारि पन्हैया ताकी श्रीवल्लभ राजकुमारके ॥
चरनोदक की करों लालसा मन वच क्रम अनुसारके ।
तुलसी के सुख को बरनन करि कोन सके संसारके ॥"
(कांकरोली स० भं० हि० बन्ध १ पु. सं. २ पत्र ९०)

આ પ્રકારના વર્ણનથી પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા અને સુદૃઢ ભક્તિનો વર આપી તેમને વિદાય કર્યા. અનન્તર તુલસીદાસજીએ વ્રજમાં રહી '**कृष्णगीतावली**' ની રચનાની શરૂઆત કરી. તેમાં સૂરદાસજીનાં બાળલીલાનાં પદોના ભાવનો મુખ્ય આશ્રય લીધો. જે વાંચવાથી પાઠકોને તેનો (સૂરદાસજીની છાયાનો) પ્રત્યક્ષ અનુભવ થાય છે. અસ્તુ.

પશ્ચાત્ નન્દદાસજીએ શ્રીગોકુલમાં રહી શ્રીભાગવતને ભાષામાં કરી, કિન્તુ બ્રહ્મક્લેશના કારણે પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી દશમસ્કન્ધના પ્રથમથી ભ્રમરગીત સુધીના અધ્યાયની ભાષા સિવાયની તમામ રચના શ્રીયમુનાજીમાં પધરાવી દીધી.

એ રીતે સં. ૧૬૩૯ સુધી નન્દદાસે ૬૮ વ્રજવાસ કરી પ્રભુચરણમાં પોતાની અનન્ય ભક્તિ સ્થાપી અને અનેક પદો રચ્યાં.

અંતમાં સં. ૧૫૪૦ લગભગ તેમને ગોવર્દ્ધન ગામમાં માનસીગંગા ઉપર પીપળના વૃક્ષ નીચે અકબરના એક પ્રશ્ન ઉપર દેહ છોડયો. જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે

નંદદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ—વિ.સં. ૧૫૯૦ (?) સોરો પાસેના 'રામપુર' ગામમાં

જાતિ—સનાઢ્ય બ્રાહ્મણ પિતૃનામ—જીવારામ

શરણાગતિ—સમય—વિ.સં. ૧૬૦૬

સ્થાયી નિવાસ—ગોવર્દ્ધન, માનસીગંગા

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—શૃંગાર

અંત સમય—વિ.સં. ૧૬૪૦ માનસી ગંગા ઉપર પીપરના
[વૃક્ષ નીચે

લીલાત્મક સ્વરૂપ—'ભોજ' સખા એવં 'ચંદ્રરેખા' સખા

ભગવદંગ સ્વરૂપ—ઉદર

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપોસક્તિ—શ્રીગોકુલચંદ્રમાજી

શૃંગરાસક્તિ—ફેંટા

લીલાસક્તિ—કિશોરલીલા-રાસપંચાધ્યાયીની

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર

સંગ્રાહક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

છીતસ્વામી આદિ પાછળના ચાર સખાઓની કાવ્ય-સુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ-

જે પ્રકારે શ્રીસૂર આદિના પ્રથમ ચાર મહાકવિયોની સુધા સંપ્રદાયમાં જેટલી મહત્ત્વપૂર્ણ છે; એ પ્રકારે એટલીજ આ ચાર કવિઓની સુધા પણ છે. તથાપિ કાવ્ય એવં તત્ત્વ-દૃષ્ટિથી એમાં મૌલિક ભેદ રહેલો છે.

નંદદાસજીથી અતિરિક્ત આ અન્ય ત્રણ કવિયોની કાવ્ય ચમત્કૃતિ પ્રથમના ત્રણ કવિયોની અપેક્ષા સાધારણ હોવા છતાં તેમના સ્વરૂપ પરત્વેનાં પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન ક્રમશ: અક્ષરશ: સમાન ઝળકે છે. ફેર એટલોજ છે કે સૂર આદિનાં પ્રેમ, આ-સક્તિ અને વ્યસન **ભાવપરત્વે** છે. જ્યારે આ **સ્વરૂપપરત્વે** છે.

નંદદાસજીની કાવ્ય ચમત્કૃતિ અદ્‌ભુત છે. તેમને માટે એ કહેવત પણ પ્રસિદ્ધ છે કે **'और सब गढ़िया नंददास जड़िया।'** નંદદાસજી કાવ્યમાં સૂરદાસજીના શિષ્ય સમાન હોવાથી તેમનાં કાવ્યો અસાધારણ એવં મનોહર હોયજ એ સ્વાભાવિક છે.

વળી નંદદાસજીને સૂરદાસજીની માફક ભાવાત્મક સ્વરૂ-પની સાથે પ્રભુચરણે અનોસરમાં બ્રહ્મસંબંધ કરાવ્યું છે એ પણ મર્મજ્ઞોને માટે એક ખાસ સમજવાની વાત છે. —અસ્તુ.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન લખતાં 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત-કવિ' નામક ગ્રંથમાં સર્વેની કાવ્યસુધા ઉપર સમાલોચના રૂપે વિસ્તૃત લખવામાં આવશે. —**સમ્પાદક.**

અષ્ટછાપના ચરિત્ર-વિવરણનો પ્રમાણ-સંગ્રહ

नंददासजी—

कोन लई कोन दई इंडुरिया गोपाल मेरी,
ग्वाल बाल सखन मांझ तुमही हसत हो ।

× × ×

नंददास बसत वास व्रजमें गिरिराज पास
टेडो फटा आडबंद कोनपें कसत हो ?

श्रीहरिरायजी—

सूरदास शिरपाग बिराजे, कृष्णदास मुकुट मणि राजे ।
ग्वालपगा परमानन्द भ्राजे, कुंभनदास कुल्हे शिरताजे ॥
गोविंदस्वामी टिपारे साजे, चत्रभुजदास दुमाले गाजे ।
फेंटा नन्द अनंगन लाजे, सेहरा छीत सघन समाजे ॥
नित्य लीला भक्त हित काजे, दरशन अष्ट उपाधि भाजे ।
कुम्भनदास महारस कंद, प्रेम भरे निज परमानन्द ॥
छीतस्वामी गावे सब कोऊ, बांधे हरि गुण सूर वहु ।
कृष्णदास जो पावन करे, चत्रभुजदास कीतन उच्चरे ॥
नंददास सदा आनंद, गुण गावे स्वामी गोविन्द ।
'रसिक' यही श्रवन राखे, श्रीवल्लभकी बानी मुख भाखे ।
करि सेवा मन कीजे ध्यान, नितप्रति लीजे आठों नाम ॥

श्रीद्वारकेशजी— छप्पय—

सूरदास सो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो ।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीतस्वामी सुबल बखानो ॥
अर्जुन कुम्भनदास, चत्रभुजदास विशाला ।
नन्ददास सो भोज, स्वामी गोविंद श्रीदामा ।
अष्टछाप आठों सखा, द्वारकेश परमान ।
जिनके कृत गुनगान करि, होत सुजीवन थान ॥

श्रीमट्टुजी महाराज—

जो जन अष्टछाप गुन गावत।
चित्त निरोध होत ताही क्षण हरिलीला दरसावत।
सूर सूर जस हृदे प्रकाशत परमानंद बढ़ावत।
छितस्वामी गोविंद जुगल बस, तन पुलकित जल आवत॥
कुंभनदास चत्रभुजदास, गिरिलीला प्रकटावत।
तरुण किशोर रसिक नंदनंदन, पूरन भाव जनावत॥
नंददास कृष्णदास रास रस, उछलित अंग अंग नमावत।
रसिकदास जन कहांलों बरनों श्रीवल्लभ मन भावत॥

ગદ્ય સંગ્રહ—

ગદ્યમાં શ્રીહરિરાયજીએ જે કંઇ અષ્ટછાપનું ભૌતિક, આધ્યાત્મિક અને આધિ દૈવિક વર્ણન લખ્યું છે તે 'ભાવપ્રકાશ' માં આવેલું હોવાથી અત્રે લખતા નથી.

ઉપરાંત 'નિજવાર્તા'માં સૂરદાસજીનો જન્મસમય આ માણે છે—

'सो सूरदासजी, जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुको प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है। सो श्रीआचार्यजी सों ये दिन दस छोटे हुते'।

શ્રીદ્વારકેશજી ગદ્યમાં આ પ્રમાણે અષ્ટછાપ સંબંધી લખે છે. સુરદાસજીના જન્મ સમયનો ઉલ્લેખ—

'सो सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते। लीलामें उनको स्वरूप कृष्णसखा,–चंपकलता सखी श्रीजीके वाक् को स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण–सींहीगामके वासी'।

શ્રીદ્વારકેશજી ગોવિંદસ્વામીના આધિદૈવિક સ્વરૂપવિષે આટલું વિશેષ લખે છે-

'ये गोविंदस्वामी लीलामें श्रीठाकुरजीके अन्तरंग सखा 'श्रीदामा' तिनको प्राकट्य हैं। सो श्रीदामा सखा श्रीस्वामिनीजी को भाई है, तातें श्रीठाकुरजीकों अधिक प्रिय हैं। सो एक दिन खेलमें श्रीदामा श्रीठाकुरजीके कंधा उपर चढयो, सो श्रीस्वामीनीजीने देख्यो। तब श्रीस्वामिनीजीने उनकों शाप दियो जो भूमि ऊपर गिरो। उह समय श्रीजीने श्रीस्वामिनीजीसों कह्यो जो-ये तो मेरी मालारूप हैं। परि आपने नहीं मान्यो। ता पाछे ये आंतरी गाममें जन्मे और गोविंदस्वामीके नाम सों प्रसिद्ध भये। परि इनकों भगवन्मिलन की चाह बहोत तातें ये व्रजमें आये' × × ×

નંદદાસજી સંબંધી—

'ये नंददासजी लीलामें 'भोज' सखा अन्तरंग तिनको प्राकट्य हैं। सो दिवसकी लीलामें तो ये 'भोज' सखा हैं और रात्रिकी लीलामें श्रीचंद्रावली की सखी 'चंद्ररेखा' इनको नाम है। इनको मन शृङ्गार करिवे में और रूप सम्हारवे में बहोत, सो वे पूर्व में 'रामपुर' गाममें जन्मे।

એ પ્રકારે આઠે સખાના સ્વરૂપનો વિચાર લખ્યો છે જે શ્રીહરિરાયજીના 'ભાવપ્રકાશ'ને મળતો હોવાથી અત્રે આપતા નથી.

—સમ્પાદક

કૃષ્ણસુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ—

(અનુસંધાન પત્ર ૯૦)

શ્રીકૃષ્ણદાસજીની સુધા મહાઅલૌકિક છે. સૂર, પરમાનંદ અને કુંભનની માફક તેમની વાણી પણ ભાવ પ્રાધાન્ય છે. એમની સુધામાં જે તન્મયતા ઝળહળે છે તેના પ્રત્યક્ષ પુરાવા રૂપે તેમને '**मो-मन गिरधर छबि पर अटक्यो**' એ પદ દ્વારા એક સાધારણ વેશ્યાને પણ સદેહે લીલામાં પહોંચાડી તે વિદ્યમાન છે.

જે પ્રકારે કુંભનદાસજીએ દાનલીલા દ્વારા શ્રીનાથજીને મથુરાલીલામાં નિમગ્ન કર્યા* તેજ પ્રકારે કૃષ્ણદાસે પણ પોતાના સિદ્ધ નિસાધનાત્મક ભાવ દ્વારા સ્વવાણીમાં શ્રીનાથજીની સુધાને પ્રાપ્ત કરી સાહિત્યમાં એક નવીન કલ્પના-ક્ષેત્રનો અવિર્ભાવ કર્યો તે કંઇ ઓછું મહત્ત્વનું નથી. તેમાંયે તેમનાં રાસલીલાવિષયક પદ તો એટલાં બધાં અનુપમ છે કે તેના ગાન દ્વારા મનુષ્ય સહજ ભગવત્તન્મયતાને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. એથી જ પ્રભુચરણે પણ તે પદોની મુક્ત કંઠે પ્રશંસા કરી છે. અતઃ કૃષ્ણસુધામાં ભાવસમ્પન્ન તન્મયતા—કે જે પ્રેમની પરાકાષ્ઠા છે તેની સિદ્ધિ રહેલી અનુભવાય છે.

કૃષ્ણદાસજીનું એક પ્રાચીન પદ—કે જે શ્રીગુસાંઇજી સાથેના તેમના અવાંચ્છનીય પ્રસંગની પુષ્ટિ કરે છે તે, આ રહ્યું—

परम कृपाल श्रीनंद के नंदन करि कृपा मोहि अपनो जानि के। मेरे सब अपराध निवारे श्रीवल्लभ की कानि मानि के। श्री जमुना जलपान करायो कोटिन अघ कटवाये प्रान के। पुष्टि तुष्टि मन नेम यही निश 'कृष्णदास' गिरिधरन आन के ॥

—×—

* આ સબંધી વિશેષ જુઓ વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિત્ર,

કૃષ્ણદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક-

જન્મ—વિ. સં. ૧૫૫૩

જાતિ—કણબી પટેલ ચરોતરના

*શરણાગતિ સમય—વિ. સં. ૧૫૬૮

સ્થાયી નિવાસ—ગોપાલપુર તથા બિલછુ, શ્યામતમાલના વૃક્ષ નિચે

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—સેન

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૩૩

લીલાત્મક સ્વરૂપ—ઋષભ સખા એવં લલિતા સખી

ભગવદંગસ્વરૂપ—ચરણ

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ—શ્રીમદનમોહનજી

શૃંગારાસક્તિ—મુકુટ

લીલાસક્તિ—રાસલીલા

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી-
પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર.×
સંગ્રાહક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

* શરણાગતિ સમયમાં બે મત છે, યદુનાથદિગ્વિજયના અનુમાને સં. ૧૫૬૮ અને વાર્તાના આધારે સં. ૧૫૬૪ છે.

× મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.